अमरनाथ पाण्डेय

बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन

। श्रीः ।

परमादरणीय मान्य प्रो० डॉ० सत्यव्रत शास्त्री
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
को
सविनय-सप्रेम

अमरनाथ पाण्डेय
२७.१२.७४

बाणभट्ट
का
साहित्यिक अनुशीलन

•

डॉ० अमरनाथ पाण्डेय
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

•

भारतीय विद्या प्रकाशन
वाराणसी : दिल्ली

सदा ध्यातं शास्त्रं विपुलनिधिसम्भारभरणं
निबद्धं साहित्यं मधुरसभरं येन सुधिया ।
नवां सृष्टिं नीता सदसि महनीया च भणिति-
र्नतिः प्रीतिस्तस्मै विमलमतये बाणकवये ॥

अमरनाथपाण्डेयः

प्रस्तावना

एम० ए० की परीक्षा के लिए बाणभट्ट की कादम्बरी को पढ़ने का अवसर मिला। कादम्बरी में अनुस्यूत भारतीय संस्कृति की विशद एवं महनीय व्याख्या के परिसर का दर्शन कर मैं अत्यधिक विस्मित हुआ। साहित्य के कमनीय परिधान के अन्तराल में कवि ने अपने देश के अमर सन्देशों को अभिनव विधा से छिपा रखा है। परिधान अत्यन्त आकर्षक, अनर्घ एवं सूक्ष्म है तथा कवि के सन्देश आह्लादक। मैं धीरे-धीरे कवि की कृति का आस्वादन करने लगा। विचार उठता था कि यदि बाणभट्ट के साहित्य के विषय में अनुसन्धान करने का अवसर मिलता, तो हृदय को बड़ी शान्ति मिलती। मैं देखता पुरातन भारत को, उसके आचारों, व्यवहारों तथा परम्पराओं को, अनेक निर्मल एवं उदात्त चरित्रों को, श्रुति, स्मृति आदि के विमल परीवाहों को, समाज की नवनिर्मिति के लिए नियोजित पद्धतियों को, भूलोक तथा गन्धर्वलोक को एक ही आधारशिला पर स्थापित करने की विधियों को। मुझे बाण द्वारा चित्रित प्राकृतिक दृश्य आकृष्ट करने लगे, कवि के काव्यसौष्ठव का परिपुष्ट परिवेश अभिराम दिखायी पड़ने लगा, अविरल कल्पनावलि तथा कोमल भावविलास माधुर्य बिखेरने लगे।

मुझे परीक्षा में सफलता मिली और जब मुझे अपना प्रिय विषय 'बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन' अनुसन्धान के लिए मिला, तब अत्यधिक प्रसन्नता हुई। कार्य प्रारम्भ हुआ और शीघ्र ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने छात्रवृत्ति देकर मुझे उत्साहित किया। कुछ ही समय के बाद अनेक परिस्थितियाँ मुझे उद्विग्न करने लगीं। ऐसी स्थिति बहुत दिनों तक बनी रही, जिसके कारण मुझे अनेक प्रकार के अनुभव मिले, विद्या की दुर्गम अटवी की छटा देखने के लिए गुरुओं, मनीषियों और महापुरुषों के सदुपदेश भी प्राप्त हुए। मैं तत्त्वज्ञों द्वारा निर्दिष्ट सृति का अनुगमन करता हुआ कवि के साहित्य के विविध पक्षों का आकलन करने का अभ्यास करने लगा। मैंने अनुभव किया कि बाण द्वारा चित्रित पात्रों के जीवन में जो अवरोध और उद्वेग था, वह मेरे जीवन की गतिविधि में भी विद्यमान है। कवि ने अपनी महत्ता, साधना और वैदुष्य की राशि का सहस्रांश भी मुझे नहीं दिया, किन्तु अपने जीवन की विषमताओं को प्रदान करने में कोई संकोच नहीं किया। मेरे प्रिय कवि हैं बाण। मुझे उनके दर्शन से परिचित होने का अवसर मिला। क्या यह प्राक्तन पुण्य का फल नहीं है?

बाण की भाषा और उसके माध्यम से व्यक्त किया गया सारस्वत-तत्त्व—ये दोनों मन को लुभाने वाले हैं। जहाँ भाषा के मनोरम शृङ्गार का वैभव है, वहीं सृष्टि के अनिर्वचनीय रहस्य की छटा भी है, जीवन के चाकचक्य और मिथ्यात्व का सविस्तर उपपादन भी है और नियतिचक्र का स्पष्ट निदर्शन भी है। विद्वानों से यह छिपा नहीं है कि बाण के आलोचक उनकी वाणी की [illegible] से अधिक अभिभूत हुए हैं, किन्तु इससे

बहुत अधिक आकर्षक और प्रेरक है उनका अर्थतत्त्व। यह उनकी भाषा के साथ-साथ चलता है। भाषा तो प्राणहीन हो जाती, यदि उसका आलिङ्गन न करता पीयूष-वर्षण करने वाला यह अखण्ड तत्त्व। बाण की भाषा प्रकृति की भाँति है और उनका अर्थ पुरुष की भाँति। कवि के साहित्यिक सौन्दर्य का परीक्षण करने के समय मेरी दृष्टि सदैव इस बिन्दु पर केन्द्रित रही है। बाण की भाषा के अङ्गों-उपाङ्गों की कमनीयता और सन्तुलित विन्यास से हम प्रभावित होते हैं। मैंने उसके विभिन्न सङ्घटक अवयवों का आकलन किया है और चारुत्व के जो हेतु हैं, उनका भी निर्देश किया है। बाण के अर्थतत्त्व का लोक अतिशय अद्‌भुत है। उन्होंने आदर्श-समाज की कल्पना की और अपनी रचनाओं के माध्यम से उसका भव्य चित्र प्रस्तुत किया। मनुष्य का स्वरूप क्या है, उसे जीवन में किन परम्पराओं और आदर्शों का अनुसरण करना चाहिए, वह किस प्रकार अपने परम लक्ष्य तक पहुँच सकता है, उसमें कितनी अपार शक्ति विद्यमान है—ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो दार्शनिकों और विचारकों के चिन्तन-प्रवण मानस को आन्दोलित करते रहे हैं। बाण के सामने भी ये प्रश्न थे। उन्होंने इनका समाधान प्रस्तुत किया है, जो सूक्ष्म दृष्टि से देखा जा सकता है। बाण मानव की ऊर्जस्विता की व्याख्या करते हैं और अनेक परिस्थितियों का प्रतान फैलाकर उनमें मानव की व्यवहृति, उलझन, उत्थान-पतन आदि का अङ्कन करते हैं। उन्होंने अपने चरित्रों के जीवन की विविध समस्याओं के सङ्कोच और विस्तार में अपना जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है। चन्द्रापीड, महाश्वेता, कादम्बरी आदि पात्रों के जीवन का जैसा रोचक तथा मार्मिक चित्रण मिलता है, वैसा अन्यत्र प्रायः दुर्लभ है। यहाँ हम बाण के अर्थतत्त्व के गम्भीर सन्निवेश में प्रविष्ट होकर उसके सौन्दर्य की मीमांसा कर सकते हैं।

बाण के पास ज्ञान और अनुभव का विशाल भाण्डार सुरक्षित है। कहीं दार्शनिक मान्यताएँ उनका आलिङ्गन कर रही हैं, तो कहीं रामायण, महाभारत आदि के रोचक प्रसङ्ग उनकी अर्चना कर रहे हैं; कहीं भारत के मनोहर भूभाग अपने कामनीयक से उन्हें आह्लादित कर रहे हैं, तो कही मानव-सौन्दर्य का अपूर्व उल्लास उनकी क्रीडास्थली में कौतुक कर रहा है; कहीं नर-नारी की प्रीति और क्षेम की सुधा के निर्झर झर रहे हैं, तो कहीं योग और साधना, चिन्तन और विरक्ति का पावन सौरभ दिगन्त में फल रहा है। कवि की प्रतिभा के अगणित पक्ष हैं। वे मेरे लिए सदा आकर्षक रहे हैं। बाण तत्त्वद्रष्टा कवि हैं। उन्होंने अपनी समाधि में जिस शाश्वत सत्य का दर्शन किया है, वह समाज को मङ्गलमय भूमि पर अधिष्ठित कर सकता है।

'कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्'—भूषण की यह उक्ति कितनी समीचीन है ! मैं बार-बार कवि-पुत्र के इस कथन पर विचार करता रहा हूँ। भूषण ने कादम्बरी-रस का पान किया था। वह कितना सौभाग्यशाली था ! मुझे यह प्रतीत होता रहा है कि कदाचित् बाण का यह पानक कोई अलौकिक सृष्टि है। इसे पीकर मनुष्य मत्त हो जाता है। यह वह मत्तता नहीं है, जो मदिरा-कृत

है । मदिरा का नशा तो स्थायी नहीं होता, कुछ ही समय के बाद उतर जाता है, किन्तु कादम्बरी-रस का एक बार पान कर लेने पर नशा बना रहता है । पीने वाला भूमा-आनन्द का अनुभव करने लगता है, वह ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है, जहाँ द्वन्द्व नहीं हैं, इस लोक के कोई व्यापार नहीं हैं । भूषण की उक्ति का मर्म शायद समझ में आ जाय, अर्थतत्त्व अपना द्वार शायद खोल दे—कुछ इसी लालसा, कुछ इसी कामना से बाण की अद्‌भुत लीला को देखने का विचार हुआ था ।

कुछ आलोचकों की दृष्टि में बाण के कतिपय चित्रण समीचीन नहीं हैं । मैंने ऐसे आलोचकों की धारणाओं का सतर्क खण्डन किया है और प्रमाणों से विनिर्णीत सिद्धान्त का उपस्थापन किया है । बाण की कृतियों में निविष्ट उनकी चिन्तनधारा तथा मान्यता और उनके युग के परिवेश का सम्यक् आलोडन करने से ही उनके विषय में समीचीन निर्णय किया जा सकता है । जब आलोचक युग की विशेषताओं और कवि की मान्यताओं का तिरस्कार करके उसकी आलोचना प्रस्तुत करता है, तब वह कवि के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाता । मैंने बाण के साहित्य के निर्मल समीक्षण की स्थापना के हेतु प्रयास किया है और उनके विषय में प्रचलित भ्रान्तियों का उन्मूलन किया है ।

इस कार्य में मुझे गुरुवर्य प्रो० डॉ० आद्याप्रसाद मिश्र, संस्कृतविभागाध्यक्ष, प्रयाग विश्वविद्यालय तथा गुरुवर्य पं० लक्ष्मीकान्त दीक्षित, रीडर, संस्कृत-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय से सहायता मिली है, अतः इनके प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हूँ । महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज और दिवंगत गुरुवर्य प्रो० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय मेरे लिए प्रेरणा के स्रोत रहे हैं । प्रो० सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी के प्रोत्साहन से मैं लाभान्वित हुआ हूँ । इन सभी मनीषियों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ ।

भारतीय विद्या प्रकाशन के सहृदय प्रकाशक ने तन्मयता से प्रकाशन-कार्य सम्पन्न किया । इसके लिए उन्हें अनेक साधुवाद ।

अमरनाथ पाण्डेय

संस्कृत-विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सङ्केत

काद०	...	कादम्बरी
हर्ष०	...	हर्षचरित
AIOC	...	All India Oriental Conference
IA	...	Indian Antiquary
IHQ	...	Indian Historical Quarterly.

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

बाणभट्ट का समय तथा जीवनवृत्त

समय

बाण के काल का निर्धारण उनके ग्रन्थों तथा अन्य कवियों के उल्लेखों और प्रशस्तियों के आधार पर अत्यधिक सरलता से हो जाता है। प्रमुख बात तो यह है कि वे सम्राट् हर्षवर्धन के समय में थे और हर्षवर्धन का समय ६०६–६४६ या ६४७ ई०[१] निश्चित है, अतएव उनका समय भी सप्तम शतक निश्चित हो जाता है। हुएनसांग, जो ६२९ ई० से ६४५ ई० तक भारत में रहा, हर्षवर्धन और उनकी साम्राज्य-व्यवस्था का उल्लेख करता है।[२] बाण ने हर्षचरित में हर्ष के जीवन के कुछ अंश पर साहित्यिक शैली में प्रकाश डाला है। हुएनसांग के हर्ष-विषयक वर्णन तथा बाण के हर्षचरित के वर्णन की तुलना करने से यह निश्चित हो जाता है कि दोनों के हर्ष एक हैं।[३] राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद मन्त्रियों ने हर्षवर्धन को जो प्रेरणा दी है, उसका हुएनसांग ने संक्षिप्त, किन्तु नितान्त कमनीय वर्णन किया है।[४] इसी प्रकार हर्षचरित में राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद सिंहनाद ने हर्ष को प्रेरित किया है।[५]

बहिःसाक्ष्य तथा अन्तःसाक्ष्य के आधार पर भी बाण का यही समय निश्चित होता है। पहले बहिःसाक्ष्य के आधार पर निरूपण किया जा रहा है।

---

१. R. C. Majumdar and others : An Advanced History of India pp. 156 and 160.

२, ३. Kane's Introduction to the Harshacharita, p. 6.

४. "The opinion of the people as shown in their songs, proves their real submission to your eminent qualities. Reign, then, with glory over the land; conquer the enemies of your family; wash out the insult laid on your kingdom and deeds of your illustrious father. Great will your merit be in such a case. We pray you reject not our prayer." Si-yu-Ki (Tr. by Samuel Beal), Vol. I, p. 211.

५. हर्ष० ६।४५-४७

क्षेमेन्द्र अपनी रचनाओं में अनेक बार नाम-पूर्वक बाण का उल्लेख करते हैं।[१] क्षेमेन्द्र का समय ११वीं शताब्दी ई० का मध्यभाग है।[२]

रुद्रट के काव्यालंकार के टीकाकार नमिसाधु कादम्बरी और हर्षचरित को क्रमशः कथा और आख्यायिका बताते हैं।[३] नमिसाधु ने टीका की रचना १०६९ ई० में की थी।[४]

भोज सरस्वतीकण्ठाभरण में बाण के ग्रन्थों से उद्धरण देते हैं।[५] भोज का समय ११ वीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध है।[६]

सोड्ढल ने उदयसुन्दरीकथा में कई श्लोकों में बाण की प्रशंसा की है।[७] उन्होंने उदयसुन्दरीकथा की रचना लगभग १००० ई० में की थी।[८]

धनञ्जय ने दशरूपक में बाण और कादम्बरी का नाम-पूर्वक उल्लेख किया है।[९]

---

१. कविकण्ठाभरण में निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है—

"यथा च भट्टबाणस्य–

कटु क्वणन्तो मलदायकाः खलास्तुदन्त्यलं बन्धनशृंखला इव।

मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव॥"

काव्यमाला, चतुर्थ गुच्छक, पृ० १५४।

औचित्यविचारचर्चा में निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है—

"न तु यथा भट्टबाणस्य–

जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सया यः क्षणलब्धलक्ष्यया।

दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम्॥"

काव्यमाला, प्रथम गुच्छक, पृ० १३८।

२. रामजी उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २७८।

३. काव्यालंकार, पृ० १७०-७१।

४. वही, पादटिप्पणी, पृ० १।

५. सरस्वतीकण्ठाभरण, परिच्छेद २, पृ० १३२ तथा २११; परि० ३, पृ० २६१; परि० ५, पृ० ६०६।

६. कन्हैयालाल पोद्दार : संस्कृत साहित्य का इतिहास (प्रथम भाग), पृ० २१५।

७. श्रीहर्ष इत्यवनिर्वातिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु।

गीर्हर्ष एव निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः॥

उदयसुन्दरीकथा, पृ० २।

इसके अतिरिक्त और श्लोक भी प्रयुक्त हुए हैं।

८. कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेव शास्त्री), पृ० ३६७।

९. 'यथा हि महाश्वेतावर्णनावसरे भट्टबाणस्य।'

दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, पृ० १२२।

'यथा कादम्बर्यां वैशम्पायनस्येति।'

वही, चतुर्थ प्रकाश, पृ० २७०।

धनञ्जय मालवा के परमार वंश के राजा मुञ्ज (वाक्पतिराज द्वितीय) के राजकवि थे । मुञ्ज का समय ९७४–९९५ ई० माना जाता है ।[१]

धनपाल तिलकमञ्जरी में बाण, कादम्बरी तथा हर्षचरित की प्रशंसा करते हैं ।[२] धनपाल धारा के राजा मुञ्ज वाक्पतिराज के समय में थे। उन्होंने तिलकमञ्जरी की रचना लगभग ९७० ई० में की थी ।[३]

त्रिविक्रमभट्ट नलचम्पू में बाण तथा कादम्बरी के गद्य की प्रशंसा करते हैं ।[४] त्रिविक्रमभट्ट का समय १० वीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध है, क्योंकि राष्ट्रकूट के राजा इन्द्र तृतीय के एक अभिलेख (९१५ ई०) के लेखक त्रिविक्रमभट्ट ही हैं ।[५]

ध्वन्यालोक में बाण और कादम्बरी का नामोल्लेख हुआ है तथा हर्षचरित के अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं ।[६] ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा (८५५-८८४ ई०) के समय में थे ।[७]

---

१. M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 746.

२. केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन् ।
किं पुनः क्लृप्तसंधानपुलिन्ध्रकृतसंनिधिः ॥२६॥
कादम्बरीसहोदर्या सुधया वैबुधे हृदि ।
हर्षाख्यायिकया ख्यातिं बाणोऽब्धिरिव लब्धवान् ॥२७॥ –तिलकमञ्जरी, पृ० ४ ।

३. Dasgupta and De : History of Sanskrit Literature, Vol. I, pp. 430-31.

४. शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः ॥ –नलचम्पू, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ५ ।
'कादम्बरीगद्यबन्धा इव दृश्यमानबहुव्रीहयः केदाराः ।'
वही, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ११ ।

५. कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेवशास्त्री), पृ० ४९३ ।

६. "यथा स्थाण्वीश्वराख्यजनपदवर्णने भट्टबाणस्य–
'यत्र च मातंगगामिन्यः शीलवत्यश्च गौर्यो विभवरताश्च श्यामाः पद्मरागिण्यश्च धवलद्विजशुचिवदना मदिरामोदिश्वसनाश्च प्रमदाः ।' "
ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत, पृ० २४५ ।
"यथा कादम्बर्यां कादम्बरीदर्शनावसरे ।" –वही, द्वितीय उद्योत, पृ० २२२ ।
"यथा–
'अत्रान्तरे कुसुमसमययुगमुपसंहरन्नजृम्भत ग्रीष्माभिधानः फुल्लमल्लिकाधवलाट्टहासो महाकालः' ।" –वही, द्वितीय उद्योत, पृ० २४१ ।
"यथा तत्रैव–'समवाय इव विरोधिनां पदार्थानाम् । तथाहि–सन्निहितबालान्धकारापि भास्वन्मूर्तिः' इत्यादौ ।" –वही, द्वि० उ०, पृ० २४६ ।
"तस्यैव वाक्यप्रकाशता यथा हर्षचरिते सिंहनादवाक्येषु–'वृत्तेऽस्मिन् महाप्रलये धरणीधारणायाधुना त्वं शेषः' ।" –वही, तृतीय उद्योत, पृ० २९७ ।

७. M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 740.

अभिनन्द ने कादम्बरीकथासार की रचना की। कादम्बरीकथासार में कादम्बरी की कथा श्लोकवद्ध की गयी है। अभिनन्द का समय नवम शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध है।[1]

वामन काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में कादम्बरी से उद्धरण देते हैं।[2] वामन का समय ८०० ई० के लगभग माना जाता है।[3]

प्रकाशवर्ष रसार्णवालंकार में वाण का उल्लेख करते हैं।[4] प्रकाशवर्ष ६५० ई० तथा ७५० ई० के मध्य में उत्पन्न हुए होंगे।[5]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह ज्ञात होता है कि अष्टम शताब्दी ई० के प्रारम्भ से ही वाणभट्ट का उल्लेख होता रहा है। अतः वाण सप्तम शताब्दी ई० के वाद नहीं रखे जा सकते।

अब अन्तरंग समीक्षण के आधार पर वाण के काल के सम्वन्ध में विचार किया जा रहा है।

वाण की रचनाओं में अनेक ग्रन्थों और लेखकों का उल्लेख प्राप्त होता है।

कादम्बरी में रामायण और महाभारत का उल्लेख किया गया है।[6] रामायण की रचना प्रायः ५०० ई० पू० से पहले हो चुकी थी।[7]

हर्षचरित में व्यास तथा महाभारत का उल्लेख किया गया है।[8] श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य का कथन है कि महाभारत ई० सन् के लगभग २५० वर्ष पूर्व तैयार हो गया होगा।[9] ग्रीक लेखक डायो क्रायसोस्टोम सन् ५० ई० में पाण्डच देश में आया

---

१. Dasgupta and De : A History of Sanskrit Literature, Vol. I, p. 324.

२. "अनुकरोति भगवतो नारायणस्य" इत्यत्रापि मन्ये 'स्म' शब्दः कविना प्रयुक्तो लेखकैस्तु प्रमादान्न लिखित इति।"

काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, पञ्चम अधिकरण, द्वितीय अध्याय, पृ० ३२९।

३. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, डॉ० नगेन्द्र की भूमिका, पृ० ३।

४. यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः।

रसार्णवालंकार, ३।८७

(See Supplement to IHQ., March, 1929, Vol. V).

५. See Supqlement to IHQ., March, 1929, Vol. V, p. 10.

६. "महाभारतपुराणरामायणानुरागिणा"।

काद०, पृ० १०२।

७. पाण्डेय तथा व्यास : संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० १५।

८. नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्॥

हर्ष० १।१

९. महाभारतमीमांसा, पृ० ५४।

था। उसने अपने संस्मरण में एक लाख श्लोकों के 'इलियड' का उल्लेख किया है। वैद्य महाशय का विचार है कि 'इलियड' से अभिप्राय महाभारत से है। सन् ५० ई० के लेखक ने महाभारत का उल्लेख किया है, अतः महाभारत की सबसे नीचे की सीमा ५० ई० सिद्ध होती है।[१]

रामायण और महाभारत के अतिरिक्त भास,[२] कालिदास[३] आदि का भी उल्लेख किया गया है।

भास चतुर्थ या पञ्चम शताब्दी ई० पू० में हुए थे।[४]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र का उल्लेख उपलब्ध होता है।[५] अर्थशास्त्र की रचना ई० पू० ३२१ तथा ३०० के मध्य में किसी समय की गयी होगी।[६]

कालिदास के सम्बन्ध में दो मत महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ विद्वान् उन्हें प्रथम शताब्दी ई० पू० में मानते हैं।[७] अन्य विद्वानों का कथन है कि वे गुप्तकाल में (विशेपतः चन्द्रगुप्त द्वितीय—३८०-४१३ ई०—के समय में) विद्यमान थे।[८]

वाण बृहत्कथा की प्रशंसा करते हैं।[९] बृहत्कथा गुणाढच की कृति थी। यह पैशाची प्राकृत में लिखी गयी थी। यह अब उपलब्ध नहीं है। बूलर इसे प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई० की कृति मानते हैं।[१०]

---

१. महाभारतमीमांसा, पृ० ४४।

२. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥

हर्ष० ११२

३. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

वही, ११२

४. बलदेव उपाध्याय: महाकवि भास—एक अध्ययन, पृ० १५३।

५. "किं वा तेषां सांप्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्।"

काद०, पृ० २०७।

६. R. Shamasastry : Kautilya's Arthaśāstra, Preface, p. 6.

७. K. C. Chattopadhyaya : 'The Date of Kalidasa', Allahabad University Studies, Vol. II, pp. 97-170.

८. Dasgupta and De : A History of Sanskrit Literature, Vol. I, p. 125.

९. समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा॥

हर्ष० ११२

१०. See Peterson's Introduction ... adambarī, p. 84, foot-note.

सातवाहन का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है। सातवाहन ने विशुद्ध स्वभावोक्तियों से युक्त सूक्तियों का अविनाशी तथा अग्राम्य कोश (संग्रह) बनाया।[१]

सातवाहन का सुभाषितकोश हालकृत गाथासप्तशती ही है। डॉ० मिराशी का कथन है कि गाथासप्तशती का नाम पहले कोश था।[२] प्राकृतकुवलयमाला के रचयिता इन्द्रसूरि हाल के ग्रन्थ को कोश कहते हैं।[३] गाथासप्तशती के टीकाकार बलदेव तथा गंगाधर भी हाल के संग्रह को गाथाकोश कहते हैं।[४] अभिधानचिन्तामणि में हाल तथा सातवाहन एक माने गए हैं।[५] हेमचन्द्र द्वारा विरचित देशीनाममाला से भी हाल तथा सातवाहन एक सिद्ध होते हैं।[६]

सातवाहन का समय प्रथम शताब्दी ई० है।[७]

हर्षचरित में प्रवरसेन और सेतुबन्ध का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[८] प्रवरसेन ने सेतुबन्ध की रचना की थी। एक परम्परा के आधार पर कहा जाता है कि सेतुबन्ध के रचयिता कालिदास हैं।[९] डॉ० मिराशी का अनुमान है कि कालिदास ने द्वितीय प्रवरसेन को सेतुबन्ध की रचना में सहायता दी होगी।[१०]

प्रवरसेन वाकाटक वंश के राजा प्रवरसेन द्वितीय हैं।[११] इनका समय ५ वीं शताब्दी ई० है।[१२]

---

१. अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः।
विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव सुभाषितैः॥

हर्ष० १।२

२. V. V. Mirashi : 'The original Name of the Gāthāsaptaśatī', AIOC, 13th Session, 1946, pp. 370-371.

३. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित–एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६।

४. वही, पृ० ६।

५. 'हालः स्यात् सातवाहनः'—अभिधानचिन्तामणि, काण्ड ३, श्लो० ३७६।

६. S. V. Dixit : Bāṇabhaṭṭa : His Life and Literature, p. 21.

७. गाथासप्तशती, उपोद्घात, पृ० ६६।

८. कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥

हर्ष० १।२

९. See Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. I, p. 11.

१०. वा० वि० मिराशी : कालिदास, पृ० ३४, ११२।

११. रावणवहमहाकाव्य, भूमिका, पृ० ८-९।

१२. वही, पृ० ७।

बाण ने अभिधर्मकोश की ओर भी संकेत किया है।[1] ताकाकूसू अभिधर्मकोश के रचयिता वसुबन्धु का समय ४२० ई० तथा ५०० ई० के बीच मानते हैं।[2] बोगिहारा के अनुसार वसुबन्धु का समय ३६० ई० तथा ४७० ई० के बीच है।[3]

उपर्युक्त उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि बाणभट्ट ५ वीं शताब्दी ई० तक के लेखकों और ग्रन्थों की ओर संकेत करते हैं। इससे भी बाण का समय सप्तम शताब्दी ई० पुष्ट होता है।

जीवन

हर्षचरित के प्रारम्भिक अंश से बाण के जीवन के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है।[4] बाण वत्सगोत्रीय थे।[5] उनके पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम

---

१. "अत्र लोकनाथेन दिशां मुखेषु परिकल्पिता लोकपालाः सकलभुवनकोशश्चाग्रजन्मनां विभक्त इति"।

हर्ष० ३।४०

"दर्पात्परामृशन्नखकिरणसलिलनिर्झरैः समरभारसम्भावनाभिषेकमिव चकार दिङ्नागकुम्भकूटविकटस्य बाहुशिखरकोषस्य वामः पाणिपल्लवः"।

वही, ६।४१

"शुकैरपि शाक्यशासनकुशलैः कोशं समुपदिशद्भिः"।

वही, ८।७३

२. अभिधर्मकोश, वासुदेवशरण अग्रवाल की भूमिका, पृ० ७।

३. वही, पृ० ७।

४. द्रष्टव्य – हर्ष०, उच्छ्वास १-३।

५. बभूव वात्स्यायनवंशसम्भवो द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणीः सताम्।
अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः कुबेरनामांश इव स्वयंभुवः॥

काद०, पृ० ४।

परमेश्वरप्रसाद शर्मा ने लिखा है कि आज भी बच्छगोतियों (वत्सगोत्रियों) की बस्तियाँ च्यवनाश्रम (आधुनिक देवकुर या देवकुण्ड) के आसपास पायी जाती हैं। इनमें सोनभद्दर आदि स्थान माना जाता है। शोणभद्र के किनारे पर रहने के कारण ही इसका नाम शोणभद्र पड़ा होगा। यहाँ के वासी अपने को बच्छगोतिया कहते हैं।

द्रष्टव्य—परमेश्वरप्रसाद शर्मा का लेख 'महाकवि बाण के वंशज तथा वासस्थान' (माधुरी, वर्ष ८, खण्ड १, पृ० ...)

राजदेवी था।[१] उनकी माता का देहान्त उनकी बाल्यावस्था में ही हो गया। इसके बाद उनके पिता ने उनका पालन किया।[२] श्रुति-स्मृति-विहित ब्राह्मणोचित कर्मों का सम्पादन करके उनके पिता भी मर गये। उस समय बाण चौदह वर्ष के थे।[३] पिता की मृत्यु से बाण का हृदय रात-दिन जलने लगा। शोक के कम हो जाने से बाल्यावस्था के कारण बाण अधिक चपल हो गये। वे देशों को देखने के कुतूहल से पितृपितामहादि द्वारा उपार्जित विभव के रहने पर भी मित्रों के साथ घर से निकल पड़े। परिभ्रमण के पश्चात् वे अपनी जन्मभूमि को लौट आये।

ग्रीष्मकाल में एक समय हर्ष के भाई कृष्ण ने बाण को बुलाया। बहुत विचार करने के बाद बाण ने जाने का निश्चय किया। उन्होंने प्रातःकाल स्नान किया, धवल दुकूल-वस्त्र तथा अक्षमाला धारण की और तब परम भक्ति से भगवान् शिव की अर्चना की। विधिपूर्वक गमन-मंगल सम्पादित कर दिये जाने के बाद वे प्रीतिकूट से निकले। पहले दिन चण्डिकाकानन पार करके मल्लकूट नामक ग्राम में पहुँचे। वहाँ पर जगत्पति नामक सुहृद् ने उनकी सपर्या की। दूसरे दिन भागीरथी को पार करके यष्टिग्रहक नामक गाँव में रात बितायी। फिर दूसरे दिन मणितार के समीप में अजिरवती के किनारे पर स्थित स्कन्धावार में पहुँचे तथा राजभवन के समीप ठहरे।

---

१. 'अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राजदेव्यभिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्'।
हर्ष० १।१९

हर्षचरित (१।१८-१९) के आधार पर बाण का वंशवृक्ष अधोलिखित है—

वत्स
|
कुबेर (वत्स के कुल में उत्पन्न)
|
अच्युत | ईशान | हर | पाशुपत
पाशुपत
|
अर्थपति
|
भृगु | हंस | शुचि | कवि | महीदत्त | धर्म | जातवेदस् | चित्रभानु | त्र्यक्ष | अहिदत्त | विश्वरूप
चित्रभानु
|
बाण
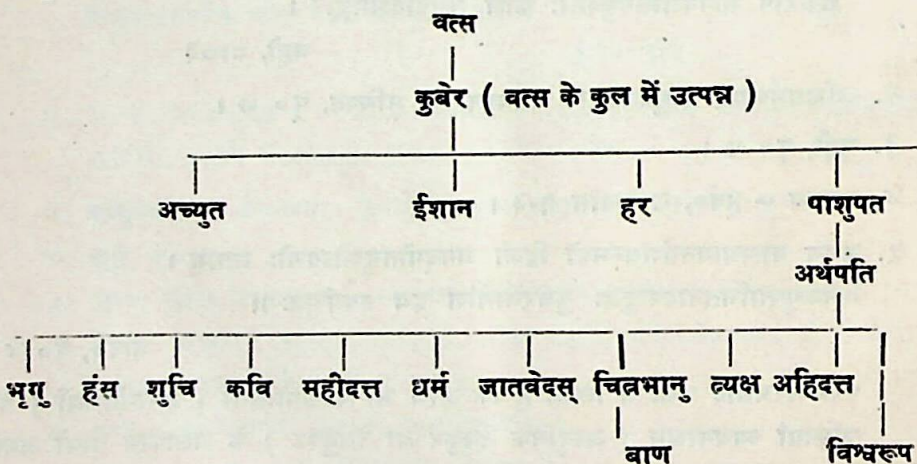
२. "स बाल एव विधेर्बलवतो वशादुपसम्पन्नया व्ययुज्यत जनन्या। जातस्नेहस्तु नितरां पितैवास्य मातृतामकरोत्।"
—हर्ष० १।१९

३. "कृतोपनयनादिक्रियाकलापस्य समावृत्तस्य चतुर्दशवर्षदेशीयस्य पितापि श्रुतिस्मृति-विहितं कृत्वा द्विजजनोचितं निखिलं पुण्यजातं कालेनादशमीस्थ एवास्तमगात्।"
वही, १।१९

स्नान-भोजन करके बाण ने विश्राम किया। जब एक प्रहर दिन अवशिष्ट था, तब राजा से मिलने के लिए मेखलक के साथ राजद्वार पर पहुँचे। बाण ने पहले राजा के दर्पशात हाथी को देखा। इसके बाद हर्ष को देखा। उन्हें देखकर बाण अभिभूत हो गये। समीप जाकर उन्होंने हाथ उठाकर स्वस्ति शब्द का उच्चारण किया। राजा ने पूछा—"यह वही बाण हैं?।" द्वारपाल ने कहा—वही है। राजा ने कहा—मैं इसे अभी नहीं देखूँगा। फिर हर्ष ने मालवराज के पुत्र से कहा—यह बहुत बड़ा भुजंग (लम्पट) है। बाण ने कहा—मैं सोम पीने वाले वात्स्यायनों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे उपनयन आदि संस्कार यथाकाल सम्पन्न किये गये। मैंने अंगों के साथ वेदों का सम्यक् अध्ययन किया है। तो मुझमें क्या भुजंगता है? दोनों लोकों की अविरोधिनी चपलताओं से मेरा शैशव शून्य नहीं था। मैं इसका अपलाप नहीं करता। इससे मेरा हृदय पश्चात्ताप-सा करता है। इस समय भगवान् बुद्ध और मनु की भाँति दण्डधारी देव के शासन करने पर कौन अविनय का अभिनय कर सकता है? मनुष्यों की बात जाने दीजिए; पशु-पक्षी भी आपसे डरते हैं।[1]

यद्यपि देव हर्ष ने बाण पर अनुग्रह नहीं किया, तथापि उनके हृदय में राजा के प्रति श्रद्धा घर कर गयी। शिविर से निकल कर वे मित्रों तथा बान्धवों के घर ठहरे। राजा उनके स्वभाव से परिचित हो गए और उन पर प्रसन्न हो गए। उन्होंने पुनः राज-भवन में प्रवेश किया। कुछ दिनों में राजा ने उन्हें प्रेम, विश्वास, मान, द्रविण आदि की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।[2]

कुछ समय के बाद बाण बन्धुओं को देखने के लिए प्रीतिकूट पहुँचे। वहाँ उनका बहुत सम्मान हुआ। मध्याह्न के समय उठकर उन्होंने स्नान आदि कृत्यों का सम्पादन किया। उनके भोजन कर लेने पर उनके बन्धु उन्हें घेर कर बैठ गये। इसी समय पुस्तक-वाचक सुदृष्टि आया और श्रोताओं के चित्त को आकृष्ट करता हुआ वायुपुराण पढ़ने लगा। सुदृष्टि के श्रुतिसुभग पाठ करने पर बन्दी सूचीबाण ने दो आर्याएँ पढ़ीं। उनको सुनकर बाण के चचेरे भाई गणपति, अधिपति, तारापति तथा श्यामल एक दूसरे को देखने लगे। श्यामल ने कहा—तात बाण, ययाति, पुरुरवा, नहुष, मान्धाता आदि राजाओं में दोष थे, पर राजा हर्ष कलंकरहित हैं। उनके विषय में बहुत-सी आश्चर्य-युक्त बातें सुनायी पड़ती हैं। उनके बड़े-बड़े समारम्भ हैं। अतएव पुण्यराशि सुगृहीत-नामधेय हर्ष का चरित वंशक्रम से सुनना चाहते हैं। आप कहें, जिससे भार्गववंश राजर्षि के चरित-श्रवण से शुचितर हो जाय।

इसके बाद बाण हर्ष के चरित का वर्णन करते हैं।

बाण विवाहित थे।[3] बाण के एक पुत्र था, जिसका नाम भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट

---

१. हर्ष० २।३६

२. वही, २।३७

३. वही, २।३६

था ।[१] डॉ० बूलर का कथन है कि उनके पुत्र का नाम भूषणवाण था ।[२] कादम्बरी की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में उनके पुत्र का नाम पुलिन्द या पुलिन प्राप्त होता है ।[३] धनपाल की तिलकमञ्जरी से यह संकेत प्राप्त होता है कि बाण के पुत्र का नाम पुलिन्ध्र था ।[४]

बाण के चन्द्रसेन और मातृषेण नामक दो पारशव भाई थे ।[५]

उनके ये मित्र थे—भाषाकवि ईशान, प्रणयी रुद्र तथा नारायण, विद्वान् वारबाण और वासबाण, वर्णकवि वेणीभारत, प्राकृतकवि कुलपुत्र वायुविकार, वन्दी अनङ्गबाण तथा सूचीबाण, कात्यायनिका चक्रवाकिका, विषवैद्य मयूरक, ताम्बूलदायक चण्डक, वैद्यपुत्र मन्दारक, पुस्तकवाचक सुदृष्टि, स्वर्णकार चामीकर, स्वर्णकारों का अध्यक्ष सिन्धुषेण, लेखक गोविन्दक, चित्रकार वीरवर्मा, मिट्टी आदि के खिलौने बनाने वाला कुमारदत्त, मृदङ्ग बजाने वाला जीमूत, गायक सोमिल और ग्रहादित्य, सैरन्ध्री कुरङ्गिका, वंशी बजाने वाले मधुकर और पारावत, गीतशास्त्र का मर्मज्ञ दर्दुरक, अंग दबाने वाली केरलिका, युवक नर्तक ताण्डविक, द्यूतक्रीड़ा में निपुण आखण्डल, जुआ खेलने वाला भीमक, युवक नट शिखण्डक, नर्तकी हरिणिका, बौद्धभिक्षु सुमति, जैन-साधु वीरदेव, कथक जयसेन, शैव वक्रघोण, मन्त्रसाधक कराल, असुरविवरव्यसनी लोहिताक्ष, धातुवादी विहङ्गम, दर्दुर नामक वाद्य बजाने वाला दामोदर, ऐन्द्रजालिक चकोराक्ष तथा परिव्राजक ताम्रचूड ।[६]

बाण के मित्रों की सूची को ध्यान से पढ़ने पर ज्ञात होता है कि उनमें कुछ कवि एवं विद्वान् थे, कुछ कलाओं के ज्ञाता थे, कुछ साधु और संन्यासी थे, कुछ वैद्य तथा मन्त्र साधक थे और कुछ धूर्त और परिचारक थे ।

बाण के गुरु का नाम भत्सु था ।[७] 'भत्सोः' के स्थान पर 'भर्त्सोः' तथा 'भर्वोः' पाठ भी मिलते हैं ।[८] इससे उनके गुरु का नाम भर्त्सु या भर्वु सिद्ध होता है । महादेव 'भर्वोः' को भरु के द्विवचन का रूप मानते हैं । महादेव के अनुसार बाण के गुरु का नाम भरु था ।[९] बाण के गुरु का नाम भश्चु या भर्चु भी बताया जाता है ।[१०]

---

१. कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेव शास्त्री), पृ० ३७२ ।
२. See Kane's Introduction to the Harshacharita, p. 4.
३. ibid., p. 4.
४. 'केवलोऽपि......क्लृप्तसंधानपुलिन्ध्रकृतसंनिधिः ॥' —तिलकमञ्जरी, पृ० ४ ।
५. हर्ष० १।१९
६. वही, १।१९
७. 'नमामि भत्सोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम् ।' कादं० पृ० ३ ।
८. See Peterson's Notes on the Kādambarī, p. 111.
९. S. V. Dixit : Bāṇabhaṭṭa : His Life and Literature, p. 7.
१०. ibid., p. 7.

वल्लभदेव की सुभाषितावलि में भश्चु द्वारा निर्मित श्लोक उद्धृत किये गये हैं।[1]

दुर्गासिंह के कर्नाटकपञ्चतन्त्र से ज्ञात होता है कि 'अवनिधवचक्रवर्ति-नरेन्द्रप्रवरहर्ष' ने बाण को 'वश्यवाणीकविचक्रवर्ती' की उपाधि प्रदान की थी।[2]

इन्द्रायुध के समुज्ज्वल वर्णन के कारण उन्हें 'तुरङ्गबाण' कहा जाता था।[3]

बाण समृद्ध परिवार में उत्पन्न हुए थे। उनके पास भोग के लिए पर्याप्त धनराशि थी।[4] हर्ष ने भी उन्हें धन दिया था।[5] इस प्रकार उनका जीवन आर्थिक दृष्टि से सुखमय था।

बाण और मयूर

बाण और मयूर की कथा अनेक स्थलों पर उपलब्ध होती है। यहाँ भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में आयी हुई बाण-मयूर-विषयक कथाओं पर विचार किया जा रहा है और कथाओं के आधार पर बाण और मयूर के सम्बन्ध के विषय में भी चर्चा प्रस्तुत की जा रही है।

प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा विरचित प्रभावकचरित में बाण और मयूर की कथा सविस्तर श्लोक-बद्ध की गई है।[6] इस रचना से ज्ञात होता है कि बाण और मयूर श्रीहर्ष की सभा में रहते थे। मयूर की दुहिता से बाण का विवाह हुआ था। एक बार बाण की पत्नी ने मान किया। उसको मनाते हुए बाण ने कहा—

> 'गतप्राया रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव
> प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव।
> प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो
> कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते सुभ्रु! कठिनम्॥'[7]

मयूर इसे सुन रहे थे। उन्होंने कहा कि 'सुभ्रु' शब्द के स्थान पर 'चण्डि' शब्द का प्रयोग करना चाहिए—

> 'स्थाने त्वं 'सुभ्रु' शब्दस्य 'चण्डी' त्वाख्यामुदाहरेः।'[8]

इसे सुनकर बाण की पत्नी ने अपने पिता को कोढ़ी होने का शाप दे दिया। मयूर ने सूर्य की स्तुति की और इससे उनका कोढ़ दूर हो गया। बाण ने भी अपने प्रभाव को प्रकट करने के लिए अपने हाथ-पैर काट डाले। उन्होंने चण्डिका की स्तुति की। भगवती

---

१. द्रष्टव्य – सुभाषितावलि, श्लो० ५१३, ६३७ तथा १८३८।
२. S. V. Dixit : Bāṇabhaṭṭa : His Life and Literature, p. 7.
३. ibid., p. 7.
४. हर्ष० १।१९
५. वही, २।३७
६. प्रभावकचरित, पृ० ११३-११६।
७. वही, पृ० ११४।
८. वही, पृ० ११४।

की कृपा से बाण के अंग पहले की भाँति कमनीय हो गये। जब बाण राजा के पास पहुँचे, तो राजा ने उनका सम्मान किया। प्रबन्धचिन्तामणि (रचना-काल–१३०६ ई०) में दी गयी बाण-मयूर-विषयक कथा इस प्रकार है—

'मयूर और बाण दोनों पण्डित थे। बाण मयूर के साले थे। एक समय बाण मयूर से मिलने के लिए उनके घर गये। रात्रि का समय था, अतः बाण मयूर के द्वार पर लेट गये। रात्रि में मयूर अपनी पत्नी को मना रहे थे। बाण ने मयूर द्वारा कहे गये श्लोक के अधोलिखित तीन चरण सुने—

'गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो'

जब बाण ने मयूर द्वारा बार-बार कहे जाते हुए इन्हीं तीनों चरणों को सुना, तब उन्होंने चतुर्थ चरण इस प्रकार कहा—

'कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि! कठिनम्।'

इस पर मयूर की पत्नी ने अपने भाई को कुष्ठी होने का शाप दे दिया। बाण ने कुष्ठ से मुक्ति प्राप्त करने के लिए शिव की स्तुति प्रारम्भ की। जब उन्होंने ६ ठां श्लोक पढ़ा, तब सूर्य प्रकट हो गये। सूर्य के प्रसाद से उनका कुष्ठ दूर हो गया। मयूर ने भी अपने उत्कर्ष को प्रकट करने के लिए अपने चरणों और हाथों को काट कर के भवानी की स्तुति की। भवानी प्रथम श्लोक के षष्ठ अक्षर पर प्रसन्न हो गयीं और उनकी कृपा से मयूर का शरीर पूर्ववत् कमनीय हो गया।'[1]

हाल ने भक्तामरस्तोत्र की दो टीकाओं की चर्चा की है।[2] इनमें बाण और मयूर की कथा प्राप्त होती है। पहले हाल द्वारा निर्दिष्ट भक्तामरस्तोत्र की द्वितीय टीका (१५वीं शताब्दी ई०) में प्राप्त कथा दी जा रही है[3]—

'मयूर उज्जयिनी में रहते थे। वे शास्त्रों के मर्मज्ञ थे। वृद्धभोज उनका सम्मान करते थे। बाण मयूर के दामाद थे। दोनों एक दूसरे के प्रति ईर्ष्यालु थे। एक दिन दोनों विवाद कर रहे थे। राजाने उनसे कहा—हे पण्डितों, कश्मीर जाओ। वही श्रेष्ठ माना जायगा, जिसे भारती, जो कश्मीर में रहती है, श्रेष्ठ मानेगी। यात्रा के लिए सामग्री लेकर वे चल पड़े और कश्मीर को जाने वाले मार्ग पर पहुँच गये। उन्होंने

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि, द्वितीय प्रकाश, पृ० ४४।

२. See F. Hall's Introduction to the Vāsavadattā, pp. 7-8, note and p. 49.

३. Bühler : 'On the Chaṇḍīśataka of Bāṇabhaṭṭa,' IA, Vol. I (1872), pp. 113-14.

G. P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayūra, General Introduction, pp. 21-24.

ऐसे पाँच सौ बैलों को देखा, जिन पर भार लदा हुआ था। उनके पूछने पर वाहकों ने उत्तर दिया—'ॐ' अक्षर पर की गयी टीकाएँ लादी गयी हैं। आगे उन्होंने दो सहस्र बैलों को देखा। पूछने पर ज्ञात हुआ कि 'ॐ' अक्षर पर की गयी टीकाएँ लादी गयी हैं। इस पर उन लोगों का गर्व चूर्ण हो गया। वे रात्रि में एक स्थान पर सो गये। मयूर को सरस्वती ने जगाया और पूर्ति करने के लिए एक समस्या दी—**'शतचन्द्रं नभस्तलम्'**। मयूर ने नत होकर समस्या की पूर्ति की—**'दामोदरकराघातविह्वलीकृतचेतसा। दृष्टं चाणूरमल्लेन शतचन्द्रं नभस्तलम्॥'**

वाण से भी इसी प्रकार प्रश्न किया गया। उन्होंने हुँकार किया और समस्या की पूर्ति इस प्रकार की—

'तस्यामुत्तुङ्गसौधाग्रविलोलवदनाम्बुजैः।
विरराज विभावर्यां शतचन्द्रं नभस्तलम्॥'

सरस्वती ने कहा—तुम दोनों कवि हो और शास्त्रों को जानते हो, किन्तु वाण अवर है, क्योंकि उसने हुँकार किया। मैंने ही तुम लोगों को 'ॐ' पर की गयी टीकाएँ दिखलायीं। वाग्देवता का पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता, अतः किसी को यह गर्व नहीं करना चाहिए कि मैं ही इस युग का एकमात्र पण्डित हूँ।

एक बार वाण की पत्नी ने मान किया। रात्रि का अधिक अंश बीत गया। उस समय मयूर उस स्थान पर आये। पति तथा पत्नी की वाणी को सुनकर मयूर रुक गये। वाण अपनी पत्नी के चारणों पर गिर पड़े और कहने लगे—प्रिये, क्षमा करो; अब मैं तुम्हें क्रुद्ध नहीं करूँगा। उनकी पत्नी ने उन्हें पैर से मार दिया। उस समय बाण ने 'गतप्राया रात्रिः-·····कठिनम्॥' श्लोक पढ़ा। श्लोक को सुनकर मयूर ने कहा—उसे 'सुभ्रु' मत कहो, अपितु 'चण्डि' कहो। इस पर बाण की पत्नी ने मयूर को कोढ़ी हो जाने का शाप दे दिया। शाप के प्रभाव से मयूर के शरीर में कुष्ठ के चिह्न प्रकट हो गये। प्रातःकाल बाण और मयूर सभा में पहुँचे। बाण ने मयूर को देखकर कहा—'वरकोढी' आ गया।

राजा ने वचन का मर्म समझ लिया और मयूर से सभा छोड़कर जाने के लिए कहा। सूर्य के मन्दिर में जाकर मयूर ने सौ श्लोकों से सूर्य की आराधना की। जब उन्होने छठां श्लोक पढ़ा, तब सूर्य प्रकट हो गये। मयूर ने कहा—भगवन्, मेरा कुष्ठ दूर कर दीजिए। सूर्य ने अपनी एक किरण मयूर को दे दी। उस किरण ने मयूर के शरीर को आवृत कर लिया और कुष्ठ को नष्ट कर दिया। राजा ने मयूर का बहुत सम्मान किया।

बाण को मयूर के यश से ईर्ष्या हुई। उन्होंने अपने हाथों और पैरों को काट कर सौ श्लोकों में चण्डिका की स्तुति की। प्रथम श्लोक के ६ ठें अक्षर के उच्चारण पर चण्डिका प्रकट हो गयीं और उन्होंने बाण के अंगों को पूर्ववत् अविकल कर दिया।'

हाल द्वारा उपस्थापित भक्तामरस्तोत्र की प्रथम टीका से ज्ञात होता है कि मयूर

को अपनी कन्या के सौन्दर्य का अश्लील वर्णन करने के कारण कोढ़ हो गया। उन्होंने मयूराष्टक की रचना की, यह विशेष बात इस टीका से मालूम होती है।[१]

मधुसूदन (१६५४ ई०) ने सूर्यशतक की टीका में बाण और मयूर की कथा दी है। इसमें दोनों कवि राजा हर्ष की सभा में विद्यमान बताये गये हैं, भोज की सभा में नहीं। मयूर के कुष्ठी होने का कारण मयूर द्वारा अपनी कन्या का अश्लील वर्णन है।[२] सूर्यशतक के टीकाकार भट्टयज्ञेश्वर भी प्रबन्धचिन्तामणि के आधार पर बाण और मयूर की कथा उद्धृत करते हैं। भट्टयज्ञेश्वर की टीका से ज्ञात होता है कि मयूर बाण के साले हैं, किन्तु प्रबन्धचिन्तामणि में बाण मयूर के साले माने गये हैं।[३]

सूर्यशतक की जगन्नाथ (१७ वीं शताब्दी ई०) द्वारा की गयी टीका में भी मयूर के कुष्ठ-ग्रस्त होने का प्रमाण मिलता है।[४]

मम्मट ने भी काव्यप्रकाश में मयूर-सम्बन्धी घटना की ओर संकेत किया है।[५]

काव्यप्रकाश के टीकाकार भीमसेन अपनी सुधासागर नामक टीका (१७७६ संवत्) में इस घटना का वर्णन करते हैं।[६]

---

१. G. P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayūra, General Introduction, p. 25, and
F. Hall's Introduction to the Vāsavadattā, p. 8, note.

२. Bühler : 'On the Authorship of the Ratnāvalī', IA, Vol. II (1873), pp. 127-128.
G. P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayūra, General Introduction, pp. 6-7.

३. काव्यप्रकाश, झलकीकर की टीका, पृ० ८-९।

४. "श्रीमान् मयूरभट्टः पूर्वजन्मदुरदृष्टहेतुकगलितकुष्ठजुष्टो.....क्षमो बान्धवस्कन्धावलम्बी भगवत्सूर्यमन्दिरसंकीर्णद्वारावलम्बनाशक्तस्तत्पश्चादुपविष्टः पूर्वजन्मदुरदृष्टसृष्टकुष्ठरोगापनोदनेप्सुर्बान्धवाशीर्वादव्याजेन रश्मिराजिरथमण्डल.....एव भगवन्तं स्तौति जम्भारातीभेति।"
G. P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayūra, General Introduction p. 32.

५. 'आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थनिवारणम्'।
काव्यप्रकाश (झलकीकर की टीका से युक्त), उल्लास १, पृ० ८।

६. 'पुरा किल मयूरशर्मा कुष्ठी कविः.....एवं क्रियमाणकाव्यपरितुष्टो रविः सद्य एव नीरोगां रमणीयां च तत्तनुमकार्षीत्। प्रसिद्धं च तन्मयूरशतकम् (सूर्यशतकापरपर्यायम्)' इति।
वही, उल्लास १, पृ० ८ पर उद्धृत।

काव्यप्रकाश के टीकाकार जयराम भी कहते हैं—'**मयूरनामा कविः शतश्लोकेनादत्यं स्तुत्वा कुष्ठान् निस्तीर्ण इति प्रसिद्धिः।**'[१]

उपर्युक्त स्थलों पर प्राप्त कथाओं के अतिरिक्त अन्यत्र भी बाण और मयूर का साथ ही साथ उल्लेख हुआ है। सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर के नाम से श्लोक उद्धृत किया गया है।[२]

कन्नड़-कवि नागवर्मा (लगभग ९८४ ई०) बाण और मयूर का उल्लेख करते हैं।[३]

पद्मगुप्त (१० वीं शताब्दी ई० का अन्त और ११ वीं शताब्दी ई० का प्रारम्भ) नवसाहसांकचरित में दोनों का साथ ही उल्लेख करते हैं।[४]

माधव (१३००-१३५० ई०) ने संक्षेपशङ्करजय में बाण और मयूर का उल्लेख किया है।[५]

यहाँ तक यह निरूपण करने का प्रयास किया गया है कि बाण-मयूर-विषयक कथा कहाँ-कहाँ प्राप्त होती है और उसका क्या स्वरूप है। यह भी देखने का प्रयास किया गया कि बाण और मयूर दोनों का एक साथ कई स्थलों पर उल्लेख हुआ है। इन बातों से इतना तो निश्चित हो जाता है कि बाण और मयूर समकालिक थे और एक दूसरे के सम्बन्धी थे। इतने स्थलों के उल्लेखों का प्रत्यादेश नहीं किया जा सकता।

हर्षचरित से ज्ञात होता है कि बाण मयूर के मित्र थे—'जांगुलिको मयूरकः'।[६] जांगुलिक का अर्थ विषवैद्य है। सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर के नाम से अधोलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है—

---

१. G. P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayūra, General Introduction, p. 30.

२. 'अहो प्रभावो वाग्देव्या यच्चण्डालदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समं बाणमयूरयोः॥'

सूक्तिमुक्तावली ४।७०

३. A. Venkatasubbiah : 'A note on Mayūra as a writer on Prosody,' The Journal of Oriental Research, Madras, Vol. IX (for 1935), p. 82; and
S. V. Dixit : Bāṇabhaṭṭa : His Life and Literature, p. 11.

४. स चित्तवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीपतिः।
श्रीहर्ष इव सङ्घट्टं चक्रे बाणमयूरयोः॥

नवसाहसाङ्कचरित २।१८

५. G. P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayūra, General Introduction, p. 14.

६. हर्ष० १।१९

'दर्पं कविभुजङ्गानां गता श्रवणगोचरम् ।
विषविद्येव मायूरी मायूरी वाङ्‌ निकृन्तति ॥'[१]

उक्त श्लोक से ज्ञात होता है कि मयूर उच्चकोटि के कवि थे और विपवैद्य भी थे।

हर्पचरित में उल्लिखित जांगुलिक मयूरक मयूर कवि ही प्रतीत होते हैं। ये वाण के मित्र थे। मैक्समूलर,[२] पीटर्सन[३] आदि का मत है कि जांगुलिक मयूर ही मयूर कवि हैं।

बूलर ने भी स्वीकार किया है कि हर्पचरित के मयूरक सूर्यशतक के रचयिता मयूर ही हैं।[४]

सुभापितावलि में मयूर के नाम से उद्‌धृत **'भूपालाः शशिभास्करान्वयभुवः के नाम नासादिता भर्तारं पुनरेकमेव हि भुवस्त्वां देव मन्यामहे। येनाङ्गं परिमृष्य कुन्तलमथाकृष्य व्युदस्यायतं चोलं प्राप्य च मध्यदेशमधुना काञ्च्यां करः पातितः ॥'**[५] श्लोक शायद राजा हर्प की ओर संकेत करता है।[६]

हर्पचरित के आधार पर यह सिद्ध होता है कि मयूरक वाण के मित्र थे। मयूरक ही सूर्यशतक के कर्त्ता मयूर हैं, यह भी उपरिनिर्दिष्ट कथनों से प्रमाणित हो जाता है।

कथाओं के आलोड़न से यह प्रकट होता है कि मयूर या तो वाण के श्वशुर थे या साले। वाण ने हर्पचरित में अपने मित्रों की सूची में मयूरक का उल्लेख किया है। मयूर वाण की अवस्था के रहे होंगे, अतः उन्हें वाण का साला मानना अधिक संगत प्रतीत होता है। प्रवन्धचिन्तामणि में वाण मयूर के साले तथा सूर्यशतक के कर्त्ता माने गये हैं, परन्तु यह कथन समीचीन नहीं प्रतीत होता। वाण चण्डीशतक के रचयिता हैं, इसके लिए अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। भक्तामरस्तोत्र के टीकाकार मयूर और वाण को राजा भोज की सभा में स्थित मानते हैं, किन्तु यह अत्यन्त काल्पनिक है, क्योंकि वाण तो राजा हर्प की सभा में विद्यमान थे। उन्होंने हर्पचरित में इसका उल्लेख किया ही है। हमें कथाओं की एक-एक वात पर ध्यान नहीं देना है, अपितु उनमें अनुस्यूत रहस्य को ग्रहण कर वाण और मयूर के सम्वन्ध की गवेपणा करनी है। सभी कथाओं से वाण और मयूर के सम्वन्ध की पुष्टि होती है।

---

१. सूक्तिमुक्तावली ४।६८
२. F. Max Müller : India : What can it teach us ?, p. 329.
३. Peterson's Introduction to the Subhāṣitāvali, p. 86.
४. Bühler : On the Chaṇḍīśataka of Bāṇa Bhaṭṭa, IA ,Vol.I(1873), p. 111.
५. सुभाषितावलि, श्लो० २५१५।
६. See Peterson's Introduction to the Subhāṣitāvali p. 86.

वास-स्थान

हर्षचरित में किये गये वर्णन से ज्ञात होता है कि बाण के पूर्वज प्रीतिकूट में रहते थे ।[१] यह शोणनद के पूर्वी तट पर स्थित था । परमेश्वरप्रसाद शर्मा ने च्यवन ऋषि के आश्रम की पहचान अपने निबन्ध में की है । उसके आधार पर बाण के जन्म-स्थान का निर्धारण सरलता से हो जाता है । 'शोणनद' के किनारे खोज करने से च्यवन ऋषि का आश्रम आजकल भी 'देवकुर' (देवकुण्ड) के नाम से एक सुविस्तृत जंगल-झाड़ियों के बीच में गया जिले में शोणनहर के आसपास शोण की वर्तमान धारा से पूर्व की ओर, गया से पश्चिम रफीगंज से १४ मील उत्तरपश्चिम में बसा हुआ है । तब तो यह बात निःसन्देह प्रमाणित हो जाती है कि बाण का जन्मस्थान इसी के आसपास कहीं होगा ।'[२]

धार्मिक भावना

बाण शिव के भक्त थे । इसके पर्याप्त प्रमाण उनकी रचनाओं में उपलब्ध होते हैं ।

हर्षचरित के प्रारम्भ में शिव और उमा की स्तुति की गयी है ।[३]

जब बाण हर्ष से मिलने के लिए जाने का विचार करते हैं, तब वे कहते हैं कि भगवान् शिव मेरा कल्याण करेंगे ।[४] वे हर्ष से मिलने के लिए जाने के समय शिव की पूजा करते हैं ।[५]

बाण कादम्बरी के प्रारम्भ में शिव के चरणों की धूलि की महत्ता का वर्णन करते हैं ।[६] इसके बाद उन्होंने विष्णु की स्तुति की है । इससे प्रकट होता है कि शिव के प्रति उनकी विशिष्ट भक्ति है ।

बाण उज्जयिनी का वर्णन करते हुए महाकाल का वर्णन करते हैं ।[७]

---

१. 'चकार च कृतदारपरिग्रहस्यास्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूटनामानं निवासम् ।'
हर्ष० १।१८

२. परमेश्वरप्रसाद शर्मा : 'महाकवि बाण के वंशज तथा वास-स्थान', माधुरी, वर्ष ८, खण्ड २, १९८७ वि०, पृ० ७२३-७२४ ।

३. नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे ।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे ॥
हरकण्ठग्रहानन्दमीलिताक्षीं नमाम्युमाम् ।
कालकूटविषस्पर्शजातमूर्च्छागमामिव ॥
हर्ष० १।१

४-५. 'देवदेवस्य विरूपाक्षस्य...विधाय पूजाम्' ।
वही, २।२५

६. जयन्तिबाणासुरमौलिलालिता दशास्यचूडामणिचक्रचुम्बिनः ।
सुरासुराधीशशिखान्तशायिनो भवच्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसवः ॥
काद०, पृ० २ ।

७. वही, पृ० ९८ तथा १०७ ।

कवि ने अपने पात्रों को भी शिव के भक्त के रूप में चित्रित किया है।

सावित्री दुर्वासा के द्वारा शप्त सरस्वती को शिव की पूजा करने के लिए सलाह देती है।[१]

राजा पुष्पभूति शिव के भक्त थे।[२] उनके राज्य में प्रत्येक घर में शिव की पूजा होती थी।[३]

महाशैव भैरवाचार्य का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।[४]

युद्धार्थ प्रयाण करने के समय हर्षवर्धन शिव की पूजा करते हैं।[५]

राजा भास्करवर्मा भी शैव थे।[६] हर्ष ने उनसे मित्रता की थी।[७]

राजा शूद्रक शिव की पूजा करते हैं।[८]

विलासवती महाकाल की अर्चना करती है।[९]

महाश्वेता शिव की पूजा करती हुई चित्रित की गयी है।[१०] जब महाश्वेता सर्वप्रथम अच्छोदसरोवर में स्नान करने के लिए जाती है, तब वह शिय के प्रतिबिम्ब की वन्दना करती है।[११]

चन्द्रापीड भी शिव की पूजा करता है।[१२]

हर्षचरित और कादम्बरी—इन दोनों रचनाओं में अनेक स्थलों पर भगवान् शिव की पूजा का उल्लेख किया गया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाण शिव के भक्त थे। वे पात्रों के माध्यम से भगवान् भूतेश्वर की अर्चना करते रहते हैं और उनके चरणों पर पूजा के पुष्प चढ़ाते रहते हैं। उन्होंने चण्डीशतक की रचना की है। इससे भी उनके शैवत्व की पुष्टि होती है।

---

१. हर्ष० ११७
२. 'यतस्तस्य......भूतभावने......भक्तिरभूत्।'
वही, ३।४५
३. 'गृहे गृहे भगवानपूज्यत खण्डपरशुः।'
वही, ३।४५
४. वही, ३।४६-५५
५. वही, ७।५३
६. वही, ७।६३
७. वही, ७।६४
८. काद०, पृ० ३३।
९. वही, पृ० १२४।
१०. वही, पृ० २४३-२५१।
११. 'त्र्यम्बकप्रतिविम्बकानि वन्दमाना।'
वही, पृ० २६२।
१२. वही, पृ० ३७८।

अनुभाव

बाण में अनेक विशेषताएँ थीं। उनकी मेधाशक्ति उन्हें विषयों के वर्णन के लिए निरुपम कला प्रदान करती थी। विविध विषयों का शृंगार उनके मानस को प्रेरित करता रहता था। उनकी दूसरी विशेषता थी—प्रत्येक विषय को जानने की उत्सुकता। नयी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनके मानस में कुतूहल उत्पन्न होता था। इससे उनकी ज्ञानराशि निरन्तर बढ़ती रहती थी। दर्पशात हाथी को देखने के लिए वे उत्सुक हो जाते हैं—

" 'भद्र, श्रूयते दर्पशातः। यद्येवमदोषो वा पश्यामि तावद्वारणेन्द्रमेव। अतोऽर्हसि मामत्र प्रापयितुम्। अतिपरवानस्मि कुतूहलेन' इति।"[१]

बाण अनुभव-सम्पन्न कवि थे। उन्होंने भ्रमण करके अनुभव का अनुपम भाण्डागार संगृहीत कर रखा था। हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास के वर्णन से ज्ञात होता है कि वे अनेक मित्रों को साथ लेकर भ्रमण करने के लिए निकले थे। उन्होंने राजकुलों के उत्तम व्यवहारों का अध्ययन किया था तथा विद्वानों की गोष्ठियों में भाग लिया था। उन्होंने विदग्धों की मण्डलियों के रहस्यों को भी समझा था।[२]

बाण का हृदय स्नेहार्द्र था। मित्रमण्डली के साथ रहने में उन्हें अत्यधिक आनन्द मिलता था।[३]

वे सरल तथा उदार थे। वे गुणी का आदर करते थे। हर्षवर्धन के गुणों से वे आकृष्ट हो जाते हैं।[४]

वे स्वाभिमानी थे। जब हर्षवर्धन उन्हें भुजंग (लम्पट) कहते हैं, तब वे कहते हैं—'मैं ब्राह्मण हूँ। मैं सोमपान करने वाले वात्स्यायनों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे उपनयन आदि संस्कार समय पर किय गये हैं। मैंने अंगों के साथ वेदों का अध्ययन किया है तथा यथाशक्ति शास्त्रों को सुना है।'[५]

यहाँ उनका स्वाभिमान प्रकट होता है।

---

१. हर्ष० २।२६

२. **'अथ शनैः शनैरत्युदारव्यवहृतिमनोहृन्ति बृहन्ति राजकुलानि वीक्षमाणः, निरवद्यविद्याविद्योतितानि च गुरुकुलानि सेवमानः, महार्हालापगम्भीरगुणवद्गोष्ठीश्चोपतिष्ठमानः, स्वभावगम्भीरधीधनानि विदग्धमण्डलानि च गाहमानः पुनरपि तामेव वैपश्चितीमात्मवंशोचितां प्रकृतिमभजत।'**

वही, १।१६-२०

३. वही, १।२०

४. वही, २।३७

५. वही, २।३६

बाण स्पष्टवादी थे। उन्हें अपने दोषों का ज्ञान था। उन्होंने हर्ष के समक्ष यह स्वीकार किया कि मेरा शैशव चपलताओं से शून्य नहीं था। इससे उनके हृदय में पश्चात्ताप था।[१]

इस प्रकार बाण सरसता, सरलता, धारणाशक्ति, उदारता आदि गुणों के निधान थे। वे एक उदात्त मानव थे। उनमें अनेक विचित्रताओं का समावेश था।

---

१. हर्ष० २।३६

द्वितीय अध्याय

बाणभट्ट की कृतियाँ

हर्षचरित, कादम्बरी तथा चण्डीशतक—बाण की ये तीन कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। महाकवि द्वारा विरचित अन्य कृतियों का भी उल्लेख होता है। यहाँ उनकी कृतियों के सम्बन्ध में विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

१–हर्षचरित

इसमें आठ उच्छ्वासों में बाण ने अपने प्रारम्भिक जीवन तथा हर्ष के जीवन के प्रारम्भिक अंश का वर्णन किया है। विद्वानों का कथन है कि हर्षचरित अपूर्ण है,[1] परन्तु विचार करने से यह मत पुष्ट नहीं प्रतीत होता। यदि हम सम्यक् रूप से हर्षचरित का आलोड़न करें, तो यह स्पष्ट होगा कि हर्षचरित पूर्ण रचना है।

हर्षचरित को लिखने के पहले बाण ने यह विचार किया था कि हर्ष के जीवन के केवल 'एकदेश' का वर्णन करना है। जब श्यामल बाण से हर्षचरित का वर्णन करने के लिए कहते हैं, तब बाण कहते हैं—'आर्य, आपने युक्ति-युक्त बात नहीं कही। आपके कुतूहल के मनोरथ को अघटित-सा समझता हूँ। प्रायः स्वार्थ की इच्छाएँ सम्भव और असम्भव के विवेक से शून्य होती हैं। दूसरे के गुणों में अनुरक्त, प्रियजनों की कथा को सुनने के रस से मोहित बुद्धि बड़े लोगों के विवेक का अपहरण कर लेती है। आर्य, देखें, कहाँ परमाणु के परिमाण वाला वटु-हृदय और कहाँ समस्त ब्रह्मस्तम्भ में व्याप्त देव का चरित ! कहाँ परिमत वर्णों वाले कतिपय शब्द और कहाँ असंख्य वे गुण ! वे सर्वज्ञ के भी अविषय हैं, वाचस्पति के भी अगोचर हैं, सरस्वती के लिए भी अतिभार हैं, तो फिर हम-जैसों के विषय में कहना ही क्या ? कौन पुरुषों की सौ आयु से भी इनके चरित का वर्णन कर सकता है ? यदि एक अंश के प्रति कुतूहल हो, तो हम प्रस्तुत हैं। कतिपय अक्षरों को प्राप्त करने से लघु इस जिह्वा का कहाँ उपयोग हो सकता है ? आप लोग श्रोता हैं। हर्षचरित का वर्णन किया जा रहा है।'[2]

बाण के इस कथन से ही उनके विचार का पता लगता है। वे हर्ष के जीवन के केवल एक अंश का वर्णन करना चाहते हैं। इसका क्या कारण हो सकता है ? यह तो हम जानते ही हैं कि बाण किसी वस्तु का संक्षिप्त वर्णन नहीं करते। वे उस वस्तु की समुपस्थापना अनेक दृष्टियों से करते हैं। इसलिए हर्षचरित के आठ उच्छ्वासों में

---

१. कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेव शास्त्री), पृ० ३७६ तथा Kane's Introduction to the Harshacharita, p. 28.

२. हर्ष० ३।४१

छोटी-सी घटना का वर्णन हो सका है। बाण ने हर्ष के पूरे चरित की वर्णना के विषय में अपनी जो असमर्थता व्यक्त की है, उसका तात्पर्य यह है कि वे हर्ष के पूरे जीवन का वर्णन नहीं कर सकते थे। जब उन्होंने थोड़े से अंश का वर्णन सात उच्छ्वासों में किया है, तो पूरे जीवन के वर्णन के लिए पचासों उच्छ्वासों की योजना करनी पड़ती। यह बहुत ही कठिन कार्य था। अतः उन्होंने पहले ही व्यक्त कर दिया है कि हर्ष के पूरे जीवन का वर्णन नहीं हो सकता। जब उन्होंने ऐसा विचार कर लिया, तो उन्हें इसका भी निर्णय करना था कि हर्ष के जीवन के कितने अंश का वर्णन किया जाय कि पूर्ण काव्य की मान्यता की दृष्टि से समीचीन हो। ऐसा उन्होंने दो दृष्टियों से किया। एक तो राज्यश्री की प्राप्ति का वर्णन भी आवश्यक था और दूसरी बात यह भी है कि राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति की ओर संकेत भी हो जायगा। यहीं बाण के एकदेश का समापन हो जाता है। यह अपने में पूर्ण है। हर्षचरित में राज्यश्री की प्राप्ति ही फल है। बाण स्वयं कथा की समाप्ति की सूचना देते हैं—'**तत्र च राज्यश्रीप्राप्तिव्यतिकरकथां कथयत एव प्रणयिभ्यो रविरपि ततार गगनतलम्**।'[1]

यदि बाण आगे का वर्णन करते, तो उस सौन्दर्य का आधान नहीं कर सकते थे, जिसका आधान उन्होंने राज्यश्री की प्राप्ति के वर्णन के द्वारा किया। बाण ने हर्ष के जीवन का वर्णन केवल एक दिन किया। सन्ध्या हो जाने पर उन्होंने कथा समाप्त कर दी। इसका प्रमाण '**तत्र च...गगनतलम्**' है।

फ्यूरर् के द्वारा सम्पादित हर्षचरित के अष्टम उच्छ्वास के अन्त में '**भद्रमोम्**' प्रयोग प्राप्त होता है।[2] यह प्रयोग माङ्गलिक है तथा ग्रन्थ की समाप्ति की सूचना देता है। अन्य उच्छ्वासों के अन्त में '**भद्रमोम्**' प्रयोग नहीं हुआ है। इससे अष्टम उच्छ्वास का अन्य उच्छ्वासों से वैशिष्ट्य प्रतीत होता है। कवि ने ग्रन्थ की पूर्णता को सूचित करने के लिए यह प्रयोग किया है।

हर्षचरित का अन्तिम वाक्य मांगलिक है—

'सन्ध्या-समय का अवसान होते ही निशा नरेन्द्र के लिए उपहार में चन्द्रमा ले आयी, मानो निज कुल की कीर्ति अपरिमित यश के प्यासे राजा के लिए मुक्ताशैल की की शिला से बना पात्र ले आयी, मानो राज्यश्री कृतयुग का आरम्भ करने के लिए उद्यत राजा के लिए आदिराज की राज्याधिकार की राजतमुद्रा ले आयी, मानो आयति सभी द्वीपों को जीतने की इच्छा से प्रस्थान किये हुए राजा के लिए श्वेतद्वीप का दूत ले आयी।'[3]

---

१. हर्ष० ८।८६

२. श्रीहर्षचरितमहाकाव्य (फ्यूरर् द्वारा सम्पादित), पृ० ३४२।

३. '**अवसिते सन्ध्यासमये समनन्तरमपरिमितयशःपानतृषिताय मुक्ताशैलशिलाचषक इव निजकुलकीर्त्या, कृतयुगकरणोद्यतायादिराजराजतशासनमुद्रानिवेश इव राज्यश्रिया, सकलद्वीपजिगीषाचलिताय श्वेतद्वीपदूत इव चायत्या, श्वेतभानुरूपानीयत निशया नरेन्द्रायेति**।' —हर्ष० ८।८६

उपर्युक्त प्रमाणों[1] के आलोक में देखने से यह प्रकट होता है कि हर्षचरित पूर्ण रचना है।

हर्षचरित के टीकाकार

शङ्कर—हर्षचरित की शङ्कर-कृत टीका का नाम सङ्केत है। यह प्रकाशित हो चुकी है। सङ्केत की एक पाण्डुलिपि मिली है, जिसका समय स्यात् विक्रम संवत् १५२० है।[2] शङ्कर के समय का निश्चित पता नहीं है। उन्होंने अमरसिंह, कालिदास, कौटिल्य, भरतमुनि, भामह, मनु, महाभारत, राजशेखर, वात्स्यायन आदि का उल्लेख किया है और अपनी टीका में उद्भटकृत काव्यालङ्कार, ध्वन्यालोक, मेघदूत तथा रघुवंश से उद्धरण भी दिये हैं।[3] अतएव उनका समय नवम शताब्दी ई० के बाद होना चाहिए। शङ्कर भामह का उल्लेख करते हैं और उद्भट के काव्यालङ्कार से उद्धरण देते हैं। भामह और उद्भट कश्मीर के हैं। शङ्कर मम्मट और रुय्यक (दोनों कश्मीर के हैं) का उल्लेख नहीं करते।[4] अतः यह बहुत सम्भव है कि वे १२ वीं शताब्दी ई० के पहले के हैं।[5]

शङ्कर शायद कश्मीर के थे, क्योंकि उनकी टीका केवल कश्मीर में प्राप्त हुई है।[6] शङ्कर ने अपनी टीका में देशी-भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है।[7] इन शब्दों की ठीक पहचान हो जाने से शङ्कर की जन्मभूमि अथवा निवास-स्थान के सम्बन्ध में अधिक निश्चित धारणा बन सकेगी।

शङ्कर की टीका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें प्रायः सभी क्लिष्ट शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं।[8] तात्कालिक संस्कृति को समझने में इससे पर्याप्त सहायता मिलती

---

१. अमरनाथ पाण्डेय : बाणभट्ट का आदान-प्रदान, पृ० १३-१५।

२. Kane's Introduction to the Harshacharita, p. 41.

३. ibid., p. 41.

४. ibid., p. 41.

५. ibid., p. 42.

६. ibid., p. 41.

७. 'गुञ्जासंज्ञः शङ्खभेदो यत्पृष्ठे जतु परिकलितं भवति। 'सन्ना' इति यस्य प्रसिद्धिः।'
हर्ष०, शंकरकृत टीका, पृ० ३५३।
'प्रौढिको योग्याशनार्थं प्रसेवको यो बुक्कण इति प्रसिद्धः।' —वही, पृ० ३५६।
'लम्बापटहाः पटहभेदाः। 'तमिला' इति प्रसिद्धाः।' —वही, पृ० ३६०।

८. दुर्बोधे हर्षचरिते सम्प्रदायानुरोधतः।
गूढार्थोन्मुद्रणां चक्रे शङ्करो विदुषां कृते॥
वही, पृ० ४५३।

है। शङ्कर अपनी टीका में केचित्, अन्ये आदि पदों के द्वारा अन्य विद्वानों के मतों का भी निर्देश करते हैं।[1] टीका के प्रारम्भ में प्रयुक्त श्लोकों से ज्ञात होता है कि शङ्कर काव्य-रचना में भी निपुण थे।[2] प्रथम श्लोक में उन्होंने गणेश की वन्दना की है।[3] इससे वे गणेश के भक्त प्रतीत होते हैं। उनके पिता का नाम पुण्याकर था।[4]

रङ्गनाथ—रङ्गनाथ की टीका का नाम मर्मावबोधिनी है।[5] यह केरल विश्व-विद्यालय के हर्षचरित के संस्करण के साथ प्रकाशित हुई है। रङ्गनाथ कृष्णार्य के पुत्र थे और गोष्ठी कुल में उत्पन्न हुए थे। वे नारायण के शिष्य और श्रीकृष्ण के भक्त थे।[6] रङ्गनाथ केरल में उत्पन्न हुए थे या केरल देश के वासी थे, क्योंकि कठिन पदों को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अपनी टीका में केरलभाषा (मलयालम) के पदों का भी प्रयोग किया है।[7] दूसरी बात यह भी है कि केरल में प्रचलित पाठ ही रङ्गनाथ के द्वारा समादृत हुए हैं।[8]

---

१. हर्ष०, शङ्कर-कृत टीका, पृ० १, ४, ८, १० आदि।

२. श्च्योतन्मदाम्बुभरनिर्भरचण्डगण्डशुण्डाग्रशौण्डपरिमण्डितभूरिभृङ्गान्।
विघ्नानिवानवरतं चलगण्डतालैरुत्सारयञ्जयति जातघृणो गणेशः ॥—वही, पृ० १।

३. 'श्च्योतन्......गणेशः ॥' —वही, पृ० १।

४. शङ्करनामा कश्चिच्छ्रीमत्पुण्याकरात्मजो व्यलिखत्।
शिष्टोपरोधवशतः सङ्केतं हर्षचरितस्य ॥ —वही, पृ० १।

५. स्पष्टार्थानां प्रदेशानां व्याख्यानं निष्फलं यतः।
अस्पष्टार्थानि वाक्यानि व्याख्यातानि पदानि च ॥
निदर्शयन्त्यप्रसिद्धं नाम व्यावृण्वती तथा।
दुर्बोधाख्यानियं व्याख्या नाम्ना मर्मावबोधिनी ॥
हर्ष० (के० वि०), रङ्गनाथ-कृत व्याख्या, पृ० २।

६. जननेन यदोर्वंशं वंशं च वदनेन्दुना।
पुनानं श्रुतिभिर्गीतं गायन्तं कृष्णमाश्रये ॥
निष्कलङ्कशरच्चन्द्रसहस्रसदृशद्युति।
धियं धिनोतु मे वाचामीश्वरं परमं महः ॥
यद्यावच्च मम ज्ञानं तत्सर्वं यत्प्रसादतः।
वन्दे नारायणार्यं तं नारायणमिवापरम् ॥
... ...
अतोऽस्य व्याक्रिया गोष्ठीकुलजेन यथामति।
श्रीरङ्गनाथेन कृता श्रीकृष्णार्यस्य सूनुना ॥
—वही, पृ० १-२।

७. हर्ष० (के० वि०), परिशिष्ट २, पृ० १-१८।

८. द्रष्टव्य – उक्त संस्करण की अवत[illegible] पृ० १५।

यह टीका हर्षचरित के अर्थ के निर्धारण में बड़ी सहायता करती है। टीकाकार ने व्याकरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण शब्दों की व्युत्पत्ति भी प्रस्तुत की है और पाणिनि के सूत्रों का उल्लेख किया है।[१] टीका में ऋक्संहिता, रामायण, महाभारत, विष्णु-पुराण, गौतमधर्मसूत्र, काव्यादर्श, नाट्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, दशकुमारचरित, सूर्यशतक, कादम्बरी, शिशुपालवध, किरातार्जुनीय, अनर्घराघव, जानकीहरण, काशिका आदि ग्रन्थों से उद्धरण दिये गये हैं।[२]

रुय्यक—रुय्यक ने हर्षचरितवार्तिक की रचना की थी। यह अलङ्कारसर्वस्व[३] और महिमभट्टकृत व्यक्तिविवेक की रुय्यक (ऐसा प्रायः माना जाता है कि रुय्यक ही व्यक्तिविवेक के टीकाकार हैं) द्वारा विरचित टीका[४] से ज्ञात होता है। यह टीका अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।

शङ्करकण्ठ—श्रीकृष्णमाचार्य ने शङ्करकण्ठ की टीका का उल्लेख किया है।[५]

हर्षचरित की श्लोक-बद्ध टीका

बाण ने हर्षवर्धन का वर्णन करते हुए 'अविसंवादी'[६] पद का प्रयोग किया है। इसे स्पष्ट करने के लिए रङ्गनाथ-कृत टीका में अधोलिखित श्लोक उद्धृत किये गये हैं—

संवादस्त्वानुकूल्यं स्याद् विसंवादो विलोमता।
अत्रायमर्थोऽभिप्रेतः कविना क्रियते स्फुटम्॥
व्रतानुष्ठानसमये कान्तया शयनस्थया।
सकामयाभिलषितः तस्यामविकृतेन्द्रियः॥
नाचरत्यानुकूल्यं यः सम्भोगकरणादिना।
स विसंवादिकोऽन्यो यः सोऽविसंवादिसंज्ञितः॥[७]

ये श्लोक जिस ग्रन्थ के हैं, उसका उल्लेख टीका में नहीं किया गया है। टीका में पहले संवाद का अर्थ आनुकूल्य और विसंवाद का अर्थ विलोमता दिया गया है। इससे

---

१. हर्ष० (के० वि०), अवतारिका पृ० १८-२१।

२. हर्ष० (के० वि०), परिशिष्ट १, पृ० १-६।

३. 'एषापि समस्तोपमाप्रतिपादकविषयेऽपि हर्षचरितवार्तिके साहित्यमीमांसायां च तेषु तेषु प्रदेशेषूदाहृता इह तु ग्रन्थविस्तरभयान्न प्रपञ्चिता।'
अलङ्कारसर्वस्व, पृ० ७७।

४. 'एतच्चास्माभिः हर्षचरितवार्तिके निर्णीतमिति तत एवावगन्तव्यम्।'
व्यक्तिविवेक, रुय्यककृत टीका, द्वितीय विमर्श, पृ० ३९३।

५. M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 449.

६. 'अविसंवादिनं राजर्षिम्' —हर्ष० २।३२

७. हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० १०२-१०३।

भाव का प्रकटन नहीं होता, अतः टीकाकार कहता है कि कवि को जो अर्थ अभिप्रेत है, उसे स्फुट किया जा रहा है—**'अन्नायमर्थोऽभिप्रेतः कविना क्रियते स्फुटम् ।'** इस श्लोकार्ध से प्रकट होता है कि हर्षचरित की कोई श्लोक-वद्ध टीका थी । यदि यह अंश न होता और अवशिष्ट अंश उद्धृत किया गया होता, तो यह समझा जाता कि ये श्लोक कहीं के भी हो सकते हैं । उस स्थिति में यही निष्कर्ष निकलता कि किसी ग्रन्थ में **'अविसंवादी'** का लक्षण निवद्ध किया गया था और टीकाकार रङ्गनाथ ने हर्षचरित में प्रयुक्त **'अविसंवादी'** पद को स्पष्ट करने के लिए उसे अपनी टीका में उद्धृत किया है । शङ्करकण्ठ और रुय्यक की टीकायें उपलब्ध नहीं होतीं । यह नहीं कहा जा सकता कि इस टीका की रचना शङ्करकण्ठ या रुय्यक अथवा किसी अन्य ने की । किन्तु यह निश्चित रूप से प्रमाणित होता है कि हर्षचरित की श्लोक-वद्ध टीका थी ।[1]

२—कादम्बरी

वाण ने कादम्वरी (पूर्वार्द्ध) की रचना की । उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र भूषण ने अवशिष्ट कादम्वरी पूरी की । भूषण ने कादम्वरी के उत्तरभाग के प्रारम्भ में इसका निर्देश किया है ।[2] पिता के प्रभाव से ही वे रचना करने में समर्थ हुए ।[3]

कुछ लोगों का कथन है कि कादम्वरी (पूर्वार्द्ध) के प्रारम्भ के श्लोकों की रचना वाण ने नहीं की थी, अपितु उनके पुत्र ने या किसी अन्य ने की थी ।[4] यह कथन समीचीन नहीं है । यदि बाण के पुत्र ने कादम्वरी के प्रारम्भिक श्लोकों की रचना की होती, तो वे अपनी कर्तृता के सम्बन्ध में इसका निर्देश करते, जैसा कि उन्होंने उत्तरभाग के प्रारम्भिक श्लोकों में कहा है ।[5] क्षेमेन्द्र औचित्यविचारचर्चा और कविकण्ठाभरण में कादम्बरी की भूमिका के श्लोकों को बाण के नाम से उद्धृत करते हैं ।[6] वाण परम्परावादी कवि

---

१. आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस, यादवपुर (१९६९) में पढ़े गये मेरे शोधपत्र 'ए नोट आन ए श्लोकबद्ध कमेण्टरी आन द हर्षचरित' के आधार पर ।

२. याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः ।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य
प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् ॥

कादं०, पृ० ४१९ ।

३. वही, पृ० ४१९–४२० ।

४. Kane's Introduction to the Harshacharita, p. 19.

५. ibid., p. 19.

६. काव्यमाला, प्रथम गुच्छक, औचित्यविचारचर्चा, पृ० १३८ तथा काव्यमाला, चतुर्थ गुच्छक, कविकण्ठाभरण, पृ० १५४ ।

थे। मंगल का विधान किये विना वे काव्य-रचना का विधान क्यों करते ? हर्षचरित के प्रारम्भ में भी उन्होंने मांगलिक श्लोकों की योजना की है। अतः कादम्वरी की भूमिका के श्लोकों को वाण-विरचित न मानना असंगत है।

कादम्बरी के टीकाकार

भानुचन्द्र तथा सिद्धचन्द्र—कादम्वरी के पूर्वभाग (वाणकृत) के टीकाकार भानुचन्द्र हैं और उत्तरभाग (भूषणकृत) के टीकाकार सिद्धचन्द्र। भानुचन्द्र सूरचन्द्र के शिष्य थे और सिद्धचन्द्र भानुचन्द्र के शिष्य। ये दोनों अकवर के समय में हुए थे और सम्राट् से सम्मानित भी हुए थे।[1] भानुचन्द्र और सिद्धचन्द्र जैन थे।[2] इनकी टीकाओं में प्रायः प्रत्येक पद का स्पष्टीकरण किया गया है। इससे कादम्वरी का अर्थ समझने में बड़ी सहायता मिलती है। यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि कहीं-कहीं अर्थ करने में खींचातानी की गयी है और कहीं-कहीं अर्थ भी अशुद्ध है।[3]

वैद्यनाथ—वैद्यनाथ की टीका का नाम विषमपदविवृति है।[4] यह कादम्वरी

---

१. श्रीसूरचन्द्रः समभूत्तदीयशिष्याग्रणीर्न्यायविदां वरेण्यः।
यत्तर्कयुक्त्या त्रिदिवं निषेवे तिरस्कृतश्चित्रशिखण्डिजोऽपि॥
तदीयपादाम्बुजचञ्चरीको विराजतेऽद्धा हरिधीसखाभः।
श्रीवाचकः सम्प्रति भानुचन्द्रो ह्यकब्बरक्ष्मापतिदत्तमानः॥
श्रीशाहिचेतोऽब्जषडङ्घ्रितुल्यः श्रीसिद्धचन्द्रोऽस्ति मदीयशिष्यः।
कादम्बरीवृत्तिरियं तदीयमनोमुदे तेन मया प्रतन्यते॥
काद०, भानुचन्द्रकृत टीका, पृ० २।

२. वही, पृ० १।

३. Kane's Introduction to the Kūdamdarī (Pūrvabhāga, pp. 1-124 of Peterson's Edition), p. 45.

४. यह टीका प्रकाशित नहीं हुई है। मैंने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के ग्रन्थागार में विद्यमान पाण्डुलिपि का उपयोग किया है। इसके सम्बन्ध में विवरण इस प्रकार है—

कादम्बरीविषमपदविवृति

ग्रन्थकार	—	वैद्यनाथ
क्रमसंख्या	—	४१२३८
पत्रसंख्या	—	१–१८
आकार	—	१२.२ इं०—४.७ इं०
पंक्तिसंख्या (प्रत्येक पृष्ठ में)	—	१०
अक्षरसंख्या (प्रत्येक पंक्ति में)	—	५०
लिपि	—	देवनागरी

के केवल पूर्वभाग पर है। इसमें कठिन पदों का ही स्पष्टीकरण किया गया है।[1]

शिवराम, सुखाकर, बालकृष्ण, महादेव—पीटर्सन ने अपनी टिप्पणी में शिवराम, सुखाकर, बालकृष्ण तथा महादेव की टीकाओं (केवल पूर्वभाग पर) से उद्धरण दिये हैं।[2] इससे कादम्बरी की इन चार टीकाओं के सम्बन्ध में भी ज्ञान प्राप्त होता है।

अष्टमूर्ति—अष्टमूर्ति की टीका का नाम आमोद है। यह श्लोकबद्ध है। अष्टमूर्ति के पिता का नाम नारायण था। ये केरल के रहने वाले थे तथा भृगुगोत्र के थे।[3] अष्टमूर्ति ने पूर्वभाग तथा उत्तरभाग—दोनों की टीका की है।[4] एक स्थान पर कादम्बरी के एक टीकाकार मत्स्यकेतु का उल्लेख हुआ है।[5] टीका में अधोलिखित कवियों और रचनाओं का निर्देश है—अमर, कालिदास, केशवस्वामी, कौटिल्य, क्षेमेन्द्र, दण्डी, धनञ्जय,

---

१. 'अवचूलेति गुच्छकं चावचूलकमिति त्रिकांडशेषः'।
कादम्बरीविषमपदविवृति, चतुर्थ पर्ण।
'शोभना प्ता जटा यस्य प्ता जटापि प्रकीर्तितेति कोशः।'
वही, पञ्चम पर्ण।
'पटलकं दीपाच्छादकसूक्ष्मवस्त्रपुटकं शीतलं मधूच्छिष्टादि तन्निर्मितैः प्रदीपैः अवतरण-मंगलं भूतग्रहादिनिवारकं मंगलम्।'
वही, सप्तम पर्ण।

२. Peterson's Notes on the Kādambarī, pp. 111, 112, 113, 114, 115, etc.

३. टीका के प्रारम्भिक श्लोक—

'उपास्महे जगज्जन्मस्थितिसंहारकारणम्।
अविद्याध्वान्तविध्वंसि जानकीरमणं महः ॥१॥
पूर्वेण गुणतामासीत् केरलेषु भृगोः कुले।
विप्रो नारायणस्तस्मादष्टमूर्तिरजायत ॥२॥
कादम्बरीकथामृततरङ्गिणीरसजिगाहिषा येषाम्।
तेषां तु कृते निबन्धनतीर्थं तेनेदमारब्धम् ॥३॥
न विना वृत्तबन्धेन वस्तु प्रायेण सुग्रहम्।
इति प्रवचसामेतदनुसृत्य सुभाषितम् ॥४॥
जातिसमन्वयसम्भृतपरभागैः साधयाम्यहं विदुषाम्।
वृत्तैः साधु निबद्धैश्चम्पकदामभिरिवामोदम् ॥५॥'

Quoted on p. 46 in Kane's Introduction to the Kādambarī (Pūrvabhāga, pp. 1-124 of Paterson's Editton).

४. ibid., p. 47.

५. ibid., p. 47.

बादरायण, बालवाल्मीकि (मुरारि), भर्तृहरि, भोज, माघ, राजशेखर, शाकटायन, शारदातनय, हलायुध, अजय, अनर्घराघव, कामन्दकीयनीति आदि।[२] मनुस्मृति, काव्यादर्श और काव्यप्रकाश के उद्धरण दिये गये हैं।[३] म० म० काणे का कथन है कि टीकाकार लगभग बारहवीं शताब्दी ई० के पहले के नहीं हो सकते।[४]

कादम्बरीपदार्थदर्पण (कर्ता अज्ञात)—टीकाकार केरल अथवा दक्षिणी भारत के किसी अन्य भूभाग के निवासी थे।[४] टीका के प्रारम्भिक श्लोक से ज्ञात होता है कि वे कृष्ण के भक्त थे।[५] यह टीका पूर्वभाग तथा उत्तरभाग दोनों पर है।[६] टीका में अधोलिखित कवियों और कृतियों का निर्देश हुआ है—कौटिल्य, अमर, दण्डी, कृष्ण (प्रश्नग्रन्थ के रचयिता), हलायुध, केशव, वैजयन्ती, कुमारसम्भव, किरातार्जुनीय, छन्दोविचिति, भावविवेक और महिमापरस्तव।[७]

आमोद और दर्पण—इन दोनों टीकाओं में बहुत स्थलों पर साम्य प्राप्त होता है। म० म० काणे का अनुमान है कि आमोद के टीकाकार दर्पण के टीकाकार के बाद के हैं।[८]

श्रीकृष्णमाचार्य ने कादम्बरी की हरिदास[९] तथा घनश्याम[१०] द्वारा विरचित टीकाओं का भी उल्लेख किया है। सूरचन्द्र नामक टीकाकार का भी उल्लेख मिलता है।[११]

अर्जुन—म० म० काणे ने उत्तर भाग की एक टीका का उल्लेख किया है। इसके रचयिता अर्जुन पण्डित हैं। वे चक्रदास के पुत्र थे।[१२]

---

१. Kane's Introduction to the Kādambarī (Pūrvabhāga pp. 1-124 of Peterson's Edition), p. 47.
२. ibid., p. 47.
३. ibid., p. 47.
४. ibid., p. 47.
५. ibid., p. 47.
६. ibid., p. 47.
७. ibid., p. 48.
८. ibid., pp. 48-49.
९. M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 450.
१०. ibid., p. 450.
११. Kane's Introduction to the Kādambarī (Pūrvabhāga, pp. 1-124 of Peterson's Edition), p. 46.
१२. ibid., p. 49.

कादम्बरी से सम्बद्ध तथा कादम्बरी के आधार पर विरचित कथाएँ

सोमदेव-कृत कथासरित्सागर,[१] क्षेमेन्द्र-कृत बृहत्कथामञ्जरी[२] और दण्डी की अवन्तिसुन्दरीकथा[३] में कादम्बरी की कथा उपलब्ध होती है।

अभिनन्द-कृत कादम्बरीकथासार (८ सर्गों में), विक्रमदेव (त्रिविक्रम) द्वारा रचित कादम्बरीकथासार (१३ सर्गों में), त्र्यम्बक-कृत कादम्बरीकथासार, श्रीकण्ठाभिनवशास्त्री द्वारा विरचित कादम्बरीचम्पू, नरसिंह-कृत कादम्बरी-कल्याण, क्षेमेन्द्र-कृत पद्यकादम्बरी,[४] कल्पितकादम्बरी (कर्ता अज्ञात), मणिराम-कृत कादम्बरीकथासार तथा काशीनाथ-विरचित संक्षिप्तकादम्बरी में कादम्बरी की कथा संक्षिप्त रूप में उपनिबद्ध हुई है।[५]

३—चण्डीशतक

इसमें चण्डी की स्तुति की गयी है। चण्डीशतक लिखते समय बाण के सामने मार्कण्डेयपुराण के देवीमाहात्म्य की कथा[६] या इसी प्रकार की अन्य कोई कथा रही होगी। देवी महिषासुर का वध करती है, यही चण्डीशतक की कथावस्तु है। यह संक्षिप्त कथानक १०२ श्लोकों में निबद्ध किया गया है।[७]

अमरुशतक के टीकाकार अर्जुनवर्मदेव अपनी टीका में चण्डीशतक का एक श्लोक उद्धृत करते हैं और उसे बाण-विरचित बताते हैं।[८]

---

१. कथासरित्सागर (द्वितीय खण्ड), दशम लम्बक, तृतीय तरङ्ग।
२. बृहत्कथामञ्जरी १६।१८३-२४८।
३. M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 459.
४. क्षेमेन्द्र ने अपने कविकण्ठाभरण में अपनी पद्यकादम्बरी से आठ श्लोक उद्धृत किये हैं। इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने पद्यकादम्बरी की रचना की थी।
द्रष्टव्य—काव्यमाला, चतुर्थ गुच्छक, कविकण्ठाभरण, पृ० १५७-६०, १६३-६५।
५. M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, pp. 450-451.
६. द्रष्टव्य—मार्कण्डेयपुराण, देवीमाहात्म्य (अध्याय ८१-९३)।
७. चण्डीशतक में स्रग्धरा और शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग किया गया है। ६ शार्दूलविक्रीडित (श्लोक २५, ३२, ४६, ५५, ५६ तथा ७२) हैं और शेष स्रग्धरा छन्द हैं।
द्रष्टव्य – काव्यमाला, चतुर्थ गुच्छक, चण्डीशतक।
८. "उपनिबद्धं च भट्टबाणेनैवंविध एव संग्रामप्रस्तावे देव्यास्तत्तद्भङ्गिभिर्भगवता भर्गेण सह प्रीतिप्रतिपादनाय बहुधा नर्म। यथा – 'दृष्टावासक्तदृष्टिः प्रथममथ तथा संमुखीनाभिमुख्ये स्मेरा हासप्रगल्भे प्रियवचसि कृतश्रोत्रप्रेयाधिकोक्तिः। उद्युक्ता नर्मकर्मण्यवतु पशुपतेः पूर्ववत् पार्वती वः कुर्वाणा सर्वमीषद्विनिहितचरणालक्तकेव क्षतारिः ॥' "
—अमरुशतक, अर्जुनवर्मदेव-कृत टीका, पृ० ३।
अर्जुनवर्मदेव द्वारा उद्धृत श्लोक चण्डीशतक का ३७ वाँ श्लोक है।

भोज-कृत सरस्वतीकण्ठाभरण में चण्डीशतक के श्लोक उद्धृत किये गये हैं।[१]

श्रीधरदास-प्रणीत सदुक्तिकर्णामृत[२] में 'विद्राणे...भवानी ॥' श्लोक (चण्डीशतक, श्लोक ६६) उद्धृत किया गया है।

वाग्भट्ट के काव्यानुशासन में चण्डीशतक के श्लोक 'मा भाङ्क्षीः... ॥'[३] (चण्डी०, श्लोक १) तथा 'शूलं तूलं नु... ॥'[४] (चण्डी०, श्लोक २३) उद्धृत किये गये हैं।

चण्डीशतक का 'विद्राणे...भवानी ॥' श्लोक शार्ङ्गधरपद्धति[५] में भी उपलब्ध होता है। यह श्लोक हरिकवि-प्रणीत हारावलि या सुभाषितहारावलि में भी उद्धृत किया गया है।[६]

हेमचन्द्र के अनेकार्थसंग्रह की महेन्द्र द्वारा की गयी टीका में अंह्रि (अंघ्रि ?) पद पर विचार किया गया है।[७]

चण्डीशतक के टीकाकार

चण्डीशतक की चार टीकाओं[८] का उल्लेख मिलता है—(१) धनेश्वर-कृत, (२) नागोजिभट्ट-कृत, (३) भास्करराय-कृत तथा (४) लेखक का नाम अज्ञात।

पं० दुर्गाप्रसाद तथा काशीनाथ परब ने काव्यमाला के चतुर्थ गुच्छक में प्रकाशित चण्डीशतक की टिप्पणी के लिए दो टीकाओं[९] का उपयोग किया है—(१) सोमेश्वर-सूनुधनेश्वर-कृत तथा (२) लेखक का नाम अज्ञात।

४—मुकुटताडितक

नलचम्पू की चण्डपाल-कृत व्याख्या से ज्ञात होता है कि बाण ने मुकुटताडितक

---

१. 'नीते निर्व्याजदीर्घामघवति...समुद्राः ॥' (चण्डीशतक, श्लो० ४०) सरस्वतीकण्ठाभरण के द्वितीय परिच्छेद, पृ० २११ पर, 'प्राक्कामं...यया ॥' (चण्डीशतक, श्लोक ४६) सरस्वतीकण्ठाभरण के पञ्चम परिच्छेद, पृ० ६०६ पर तथा 'विद्राणे..... भवानी ॥' (चण्डीशतक, श्लोक ६६) सरस्वतीकण्ठाभरण के द्वितीयपरिच्छेद, पृ० २११ पर उद्धृत किया गया है।

२. सदुक्तिकर्णामृत १।२५।५

३. काव्यानुशासन, अध्याय २, पृ० २५।

४. वही, पृ० २७।

५. शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक ११२।

६. G. P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayūra, Introduction, p. 263.

७. हेमचन्द्र : अनेकार्थसंग्रह, Extracts from the Commentary of Mahendra, p. 59.

८. M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 451.

९. काव्यमाला, चतुर्थ गुच्छक, चण्डीशतक, पृ० १ (पाद-टिप्पणी)।

नाटक की रचना की थी। चण्डपाल ने अपनी व्याख्या में इसका एक श्लोक भी उद्धृत किया है।[१]

भोज-कृत शृंगारप्रकाश में भी इसका उद्धरण प्राप्त होता है।[२]

इस नाटक के सम्बन्ध में अभी तक अन्यत्र कोई उल्लेख नहीं मिला है।

५–शारदचन्द्रिका

भावप्रकाशन के उल्लेख से ज्ञात होता है कि बाण ने शारदचन्द्रिका की भी रचना की थी।[३] श्रीकृष्णमाचार्य ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखा है कि दशरूप में बाण-कृत शारदचन्द्रिका का उल्लेख हुआ है,[४] किन्तु दशरूप में बाण-कृत शारदचन्द्रिका का उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

६. क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में बाण के नाम से एक श्लोक उद्धृत किया है। इसमें चन्द्रापीड से वियुक्त कादम्बरी की विरह-व्यथा का वर्णन है।[५] इससे अनुमान किया जाता है कि बाण ने शायद **पद्यकादम्बरी** भी लिखी थी।

---

१. "यदाह मुकुटताडितकनाटके बाण :– आशा : प्रोषितदिग्गजा इव गुहा : प्रध्वस्तसिंहा इव द्रोण्य : कृत्तमहाद्रुमा इव भुवः प्रोत्खातशैला इव। बिभ्राणाः क्षयकालरिक्त-सकलत्रैलोक्यकष्टां दशां जाताः क्षीणमहारथाः कुरुपतेर्देवस्य शून्याः सभाः॥"

नलचम्पू, चण्डपाल-कृत टीका, उ० ६, पृ० १८५।

२. "यथा मकुटतापिते भीमः–

ध्वस्ताः क्षुब्धा धार्तराष्ट्रास्समस्ताः पीतं रक्तं स्वादु दुश्शासनस्य।
पूर्णा कृष्णाकेशबन्धप्रतिज्ञा तिष्ठत्येकः कौरवस्योरुभङ्गः॥
ऊरू निपीड्य गदया यदि नास्य तस्य पादेन रत्नमकुटं शकलीकरोमि।
देहं निपीतनिजधूमविजृम्भमाणज्वालाजटालवपुषि ज्वलने जुहोमि॥"

शृंगारप्रकाश, द्वादश प्रकाश, पृ० ५४५, तथा

V. Raghavan : Bhoja's Śṛṅgāra Prakāśa, p. 776.

३. चन्द्रापीडस्य मरणं यत्प्रत्युज्जीवनान्तिमम्।
कल्पितं भट्टबाणेन यथा शारदचन्द्रिका॥

शारदातनय : भावप्रकाशन, अष्टम अधिकार, पृ० २५२।

४. M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 452, footnote.

५. "यथा वा भट्टबाणस्य–

'हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः॥'

अत्र विप्रलम्भभरभग्नधैर्यायाः कादम्बर्या विरहव्यथावर्णने माधुर्यसौकुमार्यादिगुण-योगेन पूर्णेन्दुवदनेव प्रियंवदत्वेन हृदयानन्ददायिनीं दयिततमतामातनोति।"

काव्यमाला, प्रथम गुच्छक, औचित्यविचारचर्चा, पृ० १२१।

७. श्रीकृष्णमाचार्य ने लिखा है कि बाण ने शिवस्तुति की रचना की थी।[१]

८. सर्वचरित नाटक भी वाण-विरचित माना जाता है।[२]

९. श्रीकृष्णमाचार्य का कथन है कि आनन्दानुभव-कृत न्यायरत्नदीपावलि की आनन्दजीवी-विरचित वेदान्तविवेक नामक टीका में बाण के किसी वेदान्त-विषयक ग्रन्थ का निर्देश हुआ है।[३]

न्यायरत्नदीपावलि के टीकाकार आनन्दज्ञान हैं, आनन्दजीवी नहीं।[४] आनन्दज्ञान की वेदान्तविवेक टीका में मुझे कहीं भी बाण के वेदान्त-विषयक ग्रन्थ का निर्देश नहीं मिला।

१०—पार्वतीपरिणय

पार्वतीपरिणय की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि पार्वतीपरिणय की रचना वत्सगोत्रीय बाण ने की थी।[५] इसके आधार पर कहा जाता है कि यह कादम्बरी आदि के रचयिता बाण की कृति है।[६] कादम्बरी आदि के कर्त्ता बाण के अतिरिक्त पन्द्रहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए एक अन्य बाण (वामनभट्टबाण) का भी उल्लेख मिलता है।[७] इनकी कृतियाँ भी मिलती हैं। ये बाण भी वत्सगोत्र में उत्पन्न हुए थे। पार्वतीपरिणय की भाषा, शैली आदि की समीक्षा करने पर प्रतीत होता है कि यह वामनभट्टबाण की कृति है, प्राचीन बाण की नहीं। पार्वतीपरिणय की प्रस्तावना में कवि अपने लिए 'कवि-सार्वभौम' पद का प्रयोग करता है और कहता है कि मेरी रसना पर सरस्वती नर्तन करती हैं। यह गर्वोक्ति कादम्बरी आदि के कर्त्ता बाण की नहीं हो सकती। पार्वतीपरिणय सामान्य रचना है और उसमें बाणभट्ट अपनी प्रशंसा करें, यह संगत नहीं प्रतीत होता। क्या यह प्रलाप नहीं है कि कवि अपने लिए 'कवि-सार्वभौम' पद का प्रयोग करे और कहे कि सरस्वती मेरी रसना पर नर्तन करती है और स्वयं पद-पद पर कालिदास का अनुकरण करे और कहीं भी अपनी कल्पना का वैभव प्रकट न कर सके। बाण या तो ऐसी गर्वोक्ति का प्रयोग न करते और यदि करते, तो उत्कृष्ट रचना का निर्माण कर विद्वत्समाज को

---

१. M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 451.

२. Theodor Aufrecht : Catalogus Catalogorum (Part I), p. 368.

३. M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 452.

४. द्रष्टव्य – मद्रास शासन द्वारा प्रकाशित आनन्दज्ञान की वेदान्तविवेक नामक टीका से युक्त आनन्दानुभवविरचित न्यायरत्नदीपावलि।

५. अस्ति कविसार्वभौमो वत्सान्वयजलधिसंभवो बाणः।
नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखलासिका वाणी॥
पार्वतीपरिणय, अंक १, पृ० २।

६. Kane's Introduction to the Harshacharita, p. 17.

७. कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेव शास्त्री), पृ० ३७३।

विस्मित कर देते। हर्षचरित और कादम्बरी की प्रस्तावना में बाण ने इस प्रकार की गर्वोक्ति का प्रयोग नहीं किया है।

यदि पार्वतीपरिणय को बाण की प्रारम्भिक कृति मानें,[१] तो भी समस्या का समाधान नहीं होता। पार्वतीपरिणय में वह बीज विद्यमान नहीं है, जो कादम्बरी आदि के रूप में अंकुरित हो। बाण विद्वानों के कुल में उत्पन्न हुए थे। हर्षचरित से ज्ञात होता है कि उन्होंने वेदों और शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन किया था। यदि यह उनकी प्रारम्भिक रचना होता, तो भी इसमें उनके वैदुष्य की झाँकी मिलती। पार्वतीपरिणय सामान्य धरातल पर स्थित है। इसमें ऐसा कोई वैशिष्ट्य नहीं प्राप्त होता, जिसके कारण इसे बाण की कृति मान लें।

पार्वतीपरिणय और कादम्बरी आदि में शैली आदि की दृष्टि से कहीं-कहीं समानता दिखायी पड़ती है। यह भी एक तर्क है, जिसका आश्रय पार्वतीपरिणय को बाण की कृति सिद्ध करने में लिया जाता है।[२] यह समानता तो भिन्न-भिन्न कवियों की रचनाओं में भी मिलती है। जैसी समानता कुमारसम्भव और पार्वतीपरिणय में मिलती है, वैसी पार्वतीपरिणय और कादम्बरी आदि में नहीं।

काणे महोदय का कथन है कि बाण पद्य-रचना में उस प्रकार कुशल नहीं थे, जिस प्रकार गद्य-रचना में, अतः पार्वतीपरिणय कादम्बरी की भाँति उत्कृष्ट नहीं है।[३] इसके लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हर्षचरित, कादम्बरी तथा चण्डीशतक में अत्यन्त सुन्दर श्लोकों के दर्शन होते हैं। पार्वतीपरिणय के श्लोकों में उद्भावना का नितान्त अभाव है। चण्डीशतक आदि के श्लोक अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। इनकी तुलना में पार्वतीपरिणय के श्लोक किसी प्रकार नहीं रखे जा सकते।

पार्वतीपरिणय और बाण की रचनाओं का तुलनात्मक दृष्टि से समीक्षण करने पर भी निश्चित हो जाता है कि पार्वतीपरिणय बाण की रचना नहीं है। एक ओर तो बाण के प्रौढ़ एवं विलक्षण विवेचन-कौशल, प्रसंगोपस्थापन की कमनीय कला, जीवन के विविध अंगों की आकर्षक चित्रपटी, कल्पना तथा भावसौकुमार्य की निर्बाध परम्परा आदि के दर्शन होते हैं और दूसरी ओर पार्वतीपरिणय की अनुकृति-परायण साधारण शैली है। पार्वतीपरिणय की कल्पना भी साधारण धरातल पर स्थित है। पार्वतीपरिणय का कवि पद-पद पर कुमारसम्भव का अनुकरण करता है। कुमारसम्भव की छाया पार्वतीपरिणय के भाव, भाषा, शैली आदि पर प्रायः परिलक्षित होती है। बाण ने किसी भी कवि का इस प्रकार अन्धानुकरण नहीं किया है। उनकी प्रतिभा अनुपम थी। उन्होंने अनेक विषयों का समुचित अध्ययन किया था और सबको आत्मसात् किया था। पार्वती-परिणय पर कुमारसम्भव का जैसा स्पष्ट एवं व्यापक प्रभाव उपलब्ध होता है,

---

१. Kane's Introduction to the Harshacharita, p. 18.
२. ibid., p. 18.
३. ibid., p. 18.

वैसा कालिदास के ग्रन्य ग्रन्थों का बाण के ग्रन्थों पर नहीं प्राप्त होता। इस स्थिति में पार्वतीपरिणय को बाण-रचित मानना उचित नहीं होगा।

अब हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि पार्वतीपरिणय का कर्त्ता कालिदास का किस प्रकार अनुकरण करता है। यहाँ पार्वतीपरिणय तथा कालिदास के ग्रन्थों से समान भाव वाले उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

पार्वतीपरिणय — 'तन्वीमण्डलमार्द्रयन्ति कणिका मन्दाकिनीपाथसा-
मप्यन्तःकरणं च मे सुमहतीमालम्बते निर्वृतिम्।'[१]

अभिज्ञानशकुन्तल— 'राजा – मातले! अतः खलु सबाह्याऽन्तःकरणो
ममाऽन्तरात्मा प्रसीदति।'[२]

पार्वतीपरिणय — 'उच्चाङ्गैः शिखरैरमी कतिचन व्यज्यन्त एवाचला
वैमल्यादनुमीयते च सरितां स्रोतस्विनीसंततिः।
सूच्यन्ते परिमण्डलेन तरवो नीलाम्बुदश्रीमुषो
मन्दं मन्दमुपैति लोचनपथग्राह्यां दशां मेदिनी॥'[३]

अभिज्ञानशकुन्तल— 'शैलानामारोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः।
सन्तानात्तनुभावनष्टसलिला व्यक्ति भजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते॥'[४]

पार्वतीपरिणय — 'त्रिभुवनगुरुणा गुणातिरागात्
कमलभुवाकलिताधिपत्यलक्ष्मीः।
अविरतमनुशास्ति देवतात्मा
सकलमिदं कुलशैलचक्रवालम्॥'[५]

कुमारसम्भव — 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा'[६]।
'प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत्।'[७]

पार्वतीपरिणय — 'शिरसि निपतिता पुरा पुरारेरथ शिखरे तव यत्ततोऽवतीर्णा।
अमरसरिदशेषलोकमान्या त्रिभुवनपावनतामुपैति तेन॥'[८]

---

१. पार्वतीपरिणय १।८
२. अभिज्ञानशकुन्तल, अंक ७, पृ० २७८।
३. पार्वतीपरिणय १।६
४. अभिज्ञानशकुन्तल ७।८
५. पार्वतीपरिणय १।१२
६. कुमारसम्भव १।१
७. वही, १।१७
८. पार्वतीपरिणय १।१७

कुमारसम्भव -- 'यथैव श्लाघ्यते गङ्गा पादेन परमेष्ठिनः ।
प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया ॥'[१]

पार्वतीपरिणय -- 'अष्टाभिरेव तनुभिर्भुवनं दधानः ।'[२]

मालविकाग्निमित्र-- 'अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः ।'[३]

पार्वतीपरिणय -- 'अन्येषु सत्स्वपि य ईश्वरशब्दवाच्यः
सोऽयं तपस्यति तटे तव चन्द्रमौलिः ।'[४]

विक्रमोर्वशीय -- 'यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः ।'[५]

पार्वतीपरिणय -- 'न हीश्वराणां व्याहृतयो व्यभिचरन्ति ।'[६]

कुमारसम्भव -- 'न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् ।'[७]

पार्वतीपरिणय -- 'मुखरमधुपमालाचारुमौर्वीसनाथं
त्रिभुवनजययोग्यं चापमंसे दधानः ।'[८]

कुमारसम्भव -- 'रतिवलयपदाङ्के चापमासज्य कण्ठे ।'[९]

पार्वतीपरिणय -- 'दनुजो वा मनुजो वा मुनिरपि वा मुग्धचन्द्रचूडो वा ।
सुरलोकसुन्दरीणां स भवतु बद्धः कटाक्षशृङ्खलया ॥'[१०]

कुमारसम्भव -- 'तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा ।
कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये ॥'[११]

पार्वतीपरिणय -- 'त्यजन्यास्यामि कार्याय प्राणान् प्रियतमानपि ।'[१२]

कुमारसम्भव -- 'अङ्गव्ययप्रार्थितकार्यसिद्धिः' ।[१३]

पार्वतीपरिणय -- 'आदाय चापमधिरोपितषट्पदज्यं
तस्मिन् हिमाचलमुपेयुषि पञ्चबाणे ।

---

१. कुमारसम्भव ६।७०
२. पार्वतीपरिणय १।२१
३. मालविकाग्निमित्र १।१
४. पार्वतीपरिणय १।२१
५. विक्रमोर्वशीय १।१
६. पार्वतीपरिणय, अंक २, पृ० १२ ।
७. कुमारसम्भव ३।६३
८. पार्वतीपरिणय २।८
९. कुमारसम्भव २।६४
१०. पार्वतीपरिणय २।१२
११. कुमारसम्भव ३।१०
१२. पार्वतीपरिणय २।१५
१३. कुमारसम्भव ३।[illegible]

वेलातिलङ्घि किमपि प्रणयातिरेका-
द्द्वन्द्वानि लौल्यमभजन्त विमोहितानि ॥'[१]

कुमारसम्भव — 'तं देशमारोपितपुष्पचापे रतिद्वितीये मदने प्रपन्ने ।
काष्ठागतस्नेहरसानुविद्धं द्वन्द्वानि भावं क्रियया विवव्रुः ॥'[२]

पार्वतीपरिणय — 'चूताः कोरकिता विनापि सुदृशां हस्ताम्बुजामर्शना-
त्तत्पादाम्बुजताडनैरपि विना कङ्केलयः पुष्पिताः ।'[३]

कुमारसम्भव — 'असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात् प्रभृत्येव सपल्लवानि ।
पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां सम्पर्कमासिञ्जितनूपुरेण ॥'[४]

पार्वतीपरिणय — 'स कामो रत्या वसन्तेन चान्वीयमानो महति देवदारु-
खण्डमण्डपे तरक्षुचर्मनिर्मितायामहिमशिलावेदिकायामा-
सीनमन्तर्मुखनिहितचित्तवृत्तिमभ्यन्तरपवननिरोधनिश्च-
लाननं नासाग्रनिहितपक्ष्माण्यक्षीणि धारयन्तमपरमिव
निस्तरङ्गमम्बुधिं तमिन्दुशेखरमपश्यत् ।'[५]

कुमारसम्भव — 'स देवदारुद्रुमवेदिकायां शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम् ।
आसीनमासन्नशरीरपातस्त्रियम्बकं संयमिनं ददर्श ॥'[६]

तथा

'अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहमपामिवाधारमनुत्तरङ्गम् ।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधान्निवातनिष्कम्पमिव प्रदीपम् ॥'[७]

पार्वतीपरिणय — 'ततो भगवानन्तःकरणविक्रियां तपोबलेन संयम्य तत्कारणाय
विष्वग्विलोचनानि व्यापारितवान् ।'[८]

कुमारसम्भव — 'अथेन्द्रियक्षोभमयुग्मनेत्रः पुनर्वशित्वाद् बलवन्निगृह्य ।
हेतुं स्वचेतोविकृतेर्दिदृक्षुर्दिशामुपान्तेषु ससर्ज दृष्टिम् ॥'[९]

पार्वतीपरिणय — 'आरादपश्यदधिसंहितमोहनास्त्रं
कर्णावतंसपदकल्पितकार्मुकज्यम् ।

---

१. पार्वतीपरिणय ३।५
२. कुमारसम्भव ३।३५
३. पार्वतीपरिणय ३।६
४. कुमारसम्भव ३।२६
५. पार्वतीपरिणय, अंक ३, पृ० १९ ।
६. कुमारसम्भव ३।४४
७. वही, ३।४८
८. पार्वतीपरिणय, अंक ३, पृ० २० ।
९. कुमारसम्भव ३।६९

आकुञ्चितैकपदमञ्चितपूर्वकायं
लक्ष्यीकृतात्मवपुषं मदनं महेशः ॥'[१]

कुमारसम्भव — 'स दक्षिणापाङ्गनिविष्टमुष्टिं नतांसमाकुञ्चितसव्यपादम् ।
दर्दश चक्रीकृतचारुचापं प्रहर्तुमभ्युद्यतमात्मयोनिम् ॥'[२]

पार्वतीपरिणय — 'तेन पुरारेर्नयनानलेन मदनः पुरोडाशतां नीतः ।'[३]

कुमारसम्भव — 'तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ।'[४]

पार्वतीपरिणय — 'भवितव्यता हि बलवती ।'[५]

अभिज्ञानशकुन्तल— 'अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।'[६]

पार्वतीपरिणय — 'संचारिणीव वल्ली विद्युल्लतिकेव चापलान्मुक्ता ।'[७]

कुमारसम्भव — 'संचारिणी पल्लविनी लतेव ।'[८]

पार्वतीपरिणय — 'परुषस्तपोविशेषस्तव पुनरङ्गं शिरीषसुकुमारम् ।
व्यवसितमेतत्कठिनं पार्वति तद्दुष्करमिति प्रतिभाति ॥'[९]

कुमारसम्भव — 'मनोषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्व वत्से !
क्व च तावकं वपुः ।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥'[१०]

पार्वतीपरिणय — 'शेते या किल हंसतूलशयने निद्राति सा स्थण्डिले' ।[११]

कुमारसम्भव — 'महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते ।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी निषेदुषी स्थण्डिल एव केवलम् ॥'[१२]

पार्वतीपरिणय — 'जन्मान्ववाये प्रथमस्य धातुः पिता गरीयान् गिरिसार्वभौमः।
वपुर्मनोहारि वचश्च रम्यं पदं च लोकादतिलोकमस्याः ॥'[१३]

---

१. पार्वतीपरिणय ३।१०
२. कुमारसम्भव ३।७०
३. पार्वतीपरिणय, अंक ३, पृ० २१ ।
४. कुमारसम्भव ३।७२
५. पार्वतीपरिणय, अंक ३, पृ० २१ ।
६. अभिज्ञानशकुन्तल १।१५
७. पार्वतीपरिणय ३।१५
८. कुमारसम्भव ३।५४
९. पार्वतीपरिणय ३।१६
१०. कुमारसम्भव ५।४
११. पार्वतीपरिणय ४।२
१२. कुमारसम्भव ५।१२
१३. पार्वतीपरिणय ४।११

कुमारसम्भव — 'कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः।
अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वयस्तपः फलं स्यात् किमतः परं वद॥'[१]

पार्वतीपरिणय — 'कोऽसावात्मसौभाग्यविशेषदुर्विदग्धः कठिनहृदयः।'[२]

कुमारसम्भव — 'अवैमि सौभाग्यमदेन वञ्चितं तव प्रियं यश्चतुरावलोकिनः।'[३]

पार्वतीपरिणय — 'तव हस्तदानचतुरस्तपसा हि कृतोऽयमस्मि दासजनः।'[४]

कुमारसम्भव — 'अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः'।[५]

शिशुपालवध, अमरुशतक, अनर्घराघव आदि के श्लोकों तथा पार्वतीपरिणय के श्लोकों में भी साम्य प्राप्त होता है।

पार्वतीपरिणय के 'अनात्मज्ञता हि पुंसामात्मनिधनमापादयति'[६] तथा शिशुपालवध के 'प्रतिपत्तुमङ्ग घटते च न तव नृपयोग्यमर्हणम्। कृष्ण कलय ननु कोऽहमिति स्फुटमापदां पदमनात्मवेदिता॥'[७] में साम्य है।

पार्वतीपरिणय के 'धवलारुणमेचकैरपाङ्गैरपि रामा रचयन्ति रङ्गवल्लीः। कुचयोर्युगलेन पूर्णकुम्भात्पुनरुक्तानिव कुर्वते मृगाक्ष्यः॥'[८] तथा अमरुशतक के 'दीर्घा वन्दनमालिका विरचिता दृष्ट्यैव नेन्दीवरैः, पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो नो कुन्दजात्यादिभिः। दत्तः स्वेदमुचा पयोधरयुगेनार्घ्यो न कुम्भाम्भसा, स्वैरेवावयवैः प्रियस्य विशतस्तन्व्या कृतं मङ्गलम्॥'[९] में साम्य है।

पार्वतीपरिणय के 'अचार्मणानामपि दूरमक्ष्णामकर्तृकाणां वचसामभूमिम्।'[१०] तथा अनर्घराघव के 'तत्पश्यन्ति च धाम नाभिपततो यच्चार्मणे चक्षुषी'[११] में साम्य है।

बाण के रस-परिपाक, वर्णनाचातुर्य आदि का दर्शन पार्वतीपरिणय में नहीं होता। अच्छे नाटकों में कथानक के विकास, संवाद की सजीवता तथा परिस्थितियों की नूतन उद्भावनाओं की जैसी झाँकी दिखायी पड़ती है, वैसी पार्वतीपरिणय में नहीं। यदि पार्वतीपरिणय बाण-विरचित होता, तो उसमें अवश्य परिपुष्ट विषय-योजना तथा जीवन के विविध पहलुओं का वैचित्र्य प्राप्त होता।

---

१. कुमारसम्भव ५।४१
२. पार्वतीपरिणय, अंक ४, पृ० ३१।
३. कुमारसम्भव ४।४९
४. पार्वतीपरिणय ४।१६
५. कुमारसम्भव ५।८६
६. पार्वतीपरिणय, अंक २, पृ० १५।
७. शिशुपालवध १५।२२
८. पार्वतीपरिणय ५।४
९. अमरुशतक, श्लोक ४०।
१०. पार्वतीपरिणय ५।२५
११. अनर्घराघव, पृ० ७८।

इस प्रकार अनेक दृष्टियों से विचार करने पर पार्वतीपरिणय बाण की कृति नहीं सिद्ध होता।

पार्वतीपरिणय वामनभट्टबाण (१५ वीं शताब्दी ई०) की रचना है। ये बाणभट्ट से भिन्न हैं। इन्होंने शृङ्गारभूषण, वेमभूपालचरित, पार्वतीपरिणय आदि की रचना की थी।[१] इन रचनाओं की भाषा-शैली में साम्य है। वेमभूपालचरित के प्रारम्भिक श्लोक से ज्ञात होता है कि वामनबाण वत्स-कुल में उत्पन्न हुए थे।[२] यही बात पार्वती-परिणय की प्रस्तावना के श्लोक से भी ज्ञात होती है।

त० गणपतिशास्त्री, डा० ए० बी० कीथ आदि भी पार्वतीपरिणय को वामनभट्ट-बाण की रचना मानते हैं, बाणभट्ट की रचना नहीं।[३]

११—रत्नावली

मम्मट-कृत काव्यप्रकाश में **'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्'**[४] पाठ मिलता है। टीकाकारों ने निर्देश किया है कि धावक ने हर्ष के नाम से रत्नावली की रचना करके बहुत धन प्राप्त किया।[५] हाल महोदय लिखते हैं कि काव्यप्रकाश के टीकाकार शितिकण्ठ काव्यप्रकाशनिदर्शन नामक अपनी टीका में धावक के स्थान पर बाण पाठ मानते हैं।[६] शितिकण्ठ की टीका के आधार पर हाल का अनुमान है कि शायद बाण ने रत्नावली की रचना की थी।[७]

हाल वासवदत्ता की प्रस्तावना में लिखते हैं कि रत्नावली का श्लोक **'द्वीपाद्...'** आदि हर्षचरित के पञ्चम उच्छ्वास में प्राप्त होता है। उनका कथन है कि एक प्रसिद्ध

---

१. नलाभ्युदय, भूमिका, पृ० १।

२. बाणादन्ये कवयः काणाः खलु सरसगद्यसरणीषु।
इति जगति रूढमयशो वामनबाणोऽपमार्ष्टि वत्सकुलः॥

वेमभूपालचरित, पृ० २।

३. नलाभ्युदय, भूमिका, पृ० १।
कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेव शास्त्री), पृ० ३७३। र० व० कृष्णमाचार्य : 'वामनभट्टबाण :' थर्ड आल इण्डिया ओरियन्टल कान्फ्रेन्स, मद्रास (१६२४ ई०), पृ० ६८।

४. काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, पृ० ७।

५. Hall's Preface to the Vāsavadattā, p. 16, note.

६. ibid., p. 16, note.

७. ibid., pp. 15 and 16, note.
डा० बूलर भी रत्नावली को बाण की कृति मानते हैं—
G. Bühler : 'On the Authorship of Ratnāvalī, IA, Vol. II (for 1873).

कवि दूसरे कवि के भावों तथा श्लोकों की चोरी नहीं करता, अतः हर्षचरित के रचयिता वाण रत्नावली के भी रचयिता है।[1]

यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि हाल द्वारा निर्दिष्ट श्लोक हर्षचरित में प्राप्त ही नहीं होता,[2] तो दोनों एक कवि की रचनाएं कैसे मानी जायें ?

काव्यप्रकाशनिदर्शन में धावक के स्थान पर वाण पाठ मिलने से कोई प्रवल प्रमाण नहीं उपस्थित हो जाता। काव्यप्रकाश की कारिका का अर्थ समझ लेने से समस्या का समाधान हो जाता है। वाण या धावक पाठ मिलने से वाण या धावक का कर्तृत्व सिद्ध नहीं हो जाता। काव्यप्रकाश की कारिका इस प्रकार है—

'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥'[3]

काव्य-रचना के अनेक प्रयोजनों में से एक प्रयोजन है—अर्थ (धन) के लिए काव्य-रचना करना। टीकाकारों ने लिखा है कि हर्ष के नाम से रत्नावली की रचना करके धावक ने धन प्राप्त किया था।

यद्यपि ऐसा भी होता है कि कोई कवि किसी महापुरुष के नाम से काव्य-रचना करता है और तदर्थ उससे धन प्राप्त करता है, किन्तु लोक में यह भी देखा जाता है कि जब कोई कवि अच्छी रचना करता है, तब उसे अर्थोपलब्धि होती है। अतः कुछ कवि यश आदि के लिए काव्य-रचना करते हैं और कुछ धन-प्राप्ति के लिए। यहाँ **'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्'** या **'श्रीहर्षादेर्बाणादीनामिव धनम्'** का यही तात्पर्य है कि धावक या वाण ने अपनी रचनाओं से हर्ष को प्रसन्न किया होगा और उनसे धन प्राप्त किया होगा।

'वाण' पाठ मान लेने पर भी वाण रत्नावली के कर्त्ता नहीं सिद्ध हो सकते। वाण के ऊपर हर्ष की कृपादृष्टि रहती थी। वे हर्ष के प्रेम, विस्रम्भ, द्रविण आदि के भाजन वन गये थे। वाण स्वयं इस वात को हर्षचरित में प्रकट करते हैं—**'यावदस्य स्वयमेव गृहीतस्वभावः पृथिवीपतिः प्रसादवानभूत्। अविशच्च पुनरपि नरपतिभवनम्। स्वल्पैरेव चाहोभिः परमप्रीतेन प्रसादजन्मनो मानस्य प्रेम्णो विस्रम्भस्य द्रविणस्य नर्मणः प्रभावस्य च परां कोटिमनीयत नरेन्द्रेणेति।'**[4]

---

१. Hall's Preface to the Vāsavadattā, p. 15, note.

२. रत्नावली (१।६) का श्लोक इस प्रकार है—

'द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्।
आनीय झटिति घटयति विधिरप्यभिमतमभिमुखीभूतः॥'

हर्षचरित (६।४२) में निम्नलिखित श्लोक प्राप्त होता है—

'द्वीपोपगीतगुणमपि समुपार्जितरत्नराशिसारमपि।
पोतं पवन इव विधिः पुरुषमकाण्डे निपातयति॥'

३. काव्यप्रकाश १।२

४. हर्ष० २।३७

अभिनन्द-कृत रामचरित के **'हालेनोत्तमपूजया कविवृषः श्रीपालितो लालितः ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीताः शकारातिना। श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलं सद्यः सत्क्रिययाभिनन्दमपि च श्रीहारवर्षोऽग्रहीत् ।।'**[1] श्लोक से तथा रुय्यक-कृत व्यक्तिविवेकव्याख्यान में प्राप्त **'हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां श्रीहर्षेण यदर्पितानि गुणिने बाणाय कुत्राद्य तत्। या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरुट्टङ्किताः कीर्तयस्तत् कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ्‌ मन्ये परिम्लानताम् ।।'**[2] श्लोक से प्रकट होता है कि श्रीहर्ष ने बाण के काव्यकौशल से प्रसन्न होकर उन्हें धन दिया था।

बाण बहुत स्वाभिमानी थे। वे नश्वर रूप्य-खण्डों पर अपनी रचना नहीं बेच सकते थे। उन्होंने लक्ष्मी की अत्यधिक निन्दा की है। उनकी रचनाओं के अध्ययन से हम उनके अनुभाव से पूर्णतः परिचित हो जाते हैं। जब उन्हें हर्ष के भाई कृष्ण का पत्र प्राप्त होता है, तब विचार करने लगते हैं कि हर्ष से मिलने के लिए जाना चाहिए या नहीं। वे लिखते हैं—**"कष्टा च सेवा। विषमं भृत्यत्वम्।"**[3] हर्ष के **'महानयं भुजङ्गः'**[4] कहने पर बाण ने जो उत्तर दिया है,[5] वह उनके स्वाभिमान को पुष्ट करता है। हर्षचरित के उल्लेख **'सत्स्वपि पितृपितामहोपात्तेषु ब्राह्मणजनोचितेषु विभवेषु'**[6] से प्रकट होता है कि बाण समृद्धिशाली थे। अतः बाण के स्वाभिमान और समृद्धि को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने रत्नावली की रचना नहीं की।

जो लोग यह कहते हैं कि बाण ने धन-प्राप्ति के लिए हर्ष के नाम से रत्नावली की रचना की, उनसे यह पूछा जा सकता है कि महाकवि ने हर्ष-चरित या कादम्बरी को बेच कर धन क्यों नहीं प्राप्त किया? हर्षचरित और कादम्बरी तो उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। उनको बेचने से तो अधिक धन मिल सकता था।

रत्नावली के उद्धरण अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। कहीं भी हर्ष के कर्त्तृत्व के विषय में सन्देह नहीं किया गया है। रत्नावली के अनेक श्लोक हर्ष के नाम से भी उद्धृत किये गये हैं।

दामोदर गुप्त ने कुट्टनीमत में रत्नावली नाटिका के अभिनय की चर्चा की है।[7]

---

१. रामचरित, अध्याय ३३, पृ० २९६।

२. रुय्यक : व्यक्तिविवेकव्याख्यान, द्वितीय विमर्श।

३. हर्ष० २।२५

४. वही, २।३६

५. वही, २।३६

६. वही, १।१९

७. इह तु कदाचित् किंचिद् वृत्तिनिरोधाभिशंकया निरुत्साहाः।
रत्नावल्यामेता विदधति करपादविक्षेपम् ।। —कुट्टनीमत, श्लो० ८०१।
अंके जातसमाप्तौ गीतातोद्यध्वनौ च विश्रान्ते।
प्रेक्षणकगुणग्रहणं नृपसूनुः प्रववृते कर्तुम् ।। —वही, श्लो० ९२९।

रत्नावली के श्लोक ध्वन्यालोक में उद्धृत किये गये हैं।[1] दशरूपक में भी रत्नावली आदि के उद्धरण मिलते हैं।[2] क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में रत्नावली के कई श्लोक उद्धृत किये हैं और उनके रचयिता के रूप में हर्ष का उल्लेख किया है।[3] कविकण्ठाभरण

---

१. परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयत-
स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम्।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः
कृशाङ्ग्याः सन्तापं वदति बिसिनीपत्रशयनम्॥

ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत, पृ० १४३।

(यह रत्नावली के द्वितीय अंक का १३ वां श्लोक है।)

"अवसरे गृहीतिर्यथा–

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-
दायासं श्वसनोद्गमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः।
अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं
पश्यन् कोपविपाटलद्युतिमुखं देव्याः करिष्याम्यहम्॥"

वही, द्वितीय उद्योत, पृ० २२६।

(यह रत्नावली के द्वितीय अंक का चतुर्थ श्लोक है।)

२. "यथा रत्नावल्याम्–
यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया।
प्रत्यायनामयमतीव सरोरुहिण्याः सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति॥"

दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ० ८।

"यथा नागानन्दे–

जीमूतवाहनः

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति।
तृप्तिं न पश्यामि तवैव तावत्किं भक्षणात्त्वं विरतो गरुत्मन्॥"

वही, द्वितीय प्रकाश, पृ० ७६।

रत्नावली के अन्य उद्धरणों के लिए द्रष्टव्य भोलाशंकर व्यास द्वारा सम्पादित दशरूपक के ६, १२, १४, १५, १७, १८ आदि पृष्ठ।

३. "यथा श्रीहर्षस्य–

विश्रान्तविग्रहकथो रतिमाञ्जनस्य
चित्ते वसन् प्रियवसन्तक एव साक्षात्।
पर्युत्सुको निजमहोत्सवदर्शनाय
वत्सेश्वरः कुसुमचाप इवाभ्युपैति॥"

काव्यमाला, प्रथम गुच्छक, औचित्यविचारचर्चा, पृ० १२३।

में भी हर्ष के नाम से रत्नावली का श्लोक उद्धृत किया गया है।[१] क्षेमेन्द्र द्वारा हर्ष के नाम से उद्धृत रत्नावली के श्लोकों से रत्नावली हर्ष की कृति सिद्ध होती है।

मयूरशतक की भावबोधिनी नामक टीका के कर्त्ता मधुसूदन रत्नावली को हर्ष-विरचित मानते हैं।[२]

रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द में अनेक दृष्टियों से साम्य है।

'अद्याहमिन्द्रोत्सवे सबहुमानमाहूय नानादिग्देशागतेन राज्ञः श्रीहर्षदेवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहेनोक्तो यथा अस्मत्स्वामिना श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालंकृता रत्नावली नाम नाटिका कृता। सा चास्माभिः श्रोत्रपरम्परया श्रुता न तु प्रयोगतो दृष्टा। तत्तस्यैव राज्ञः सकलजनहृदयाह्लादिनो बहुमानादस्मासु चानुग्रहबुद्ध्या यथावत्प्रयोगेण

"भयानके यथा श्रीहर्षस्य—

कण्ठे कृत्तावशेषं कनकमयमधः शृंखलादाम कर्ष—
न्क्रान्त्वा द्वाराणि हेलाचलचरणरणत्किङ्किणीचक्रवालः।
दत्तातङ्कोऽङ्गनानामनुसृतसरणिः संभ्रमादश्वपालैः।
प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः॥

अपि च।

नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणनाभावादकृत्वा त्रपा—
मन्तः कञ्चुकिकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामनः।
पर्यन्ताश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्नः किरातैः कृतं
कुब्जा नीचतयैव यान्ति शनकैरात्मेक्षणाशङ्किनः॥"

काव्यमाला, प्रथम गुच्छक, औचित्यविचारचर्चा, पृ० १२८-२९।

('कण्ठे कृत्तावशेषं' श्लोक रत्नावली के द्वितीय अंक का दूसरा श्लोक है और 'नष्टं वर्षवरैः' श्लोक रत्नावली के द्वितीय अंक का तीसरा श्लोक है।)

इनके अतिरिक्त हर्ष के नाम से 'परिम्लानं...बिसिनीपत्रशयनम्॥' (काव्यमाला, प्र० गु०, औचित्यविचारचर्चा, पृ० ११७-११८) तथा 'उद्यामोत्कलिकां...करिष्याम्यहम्॥' (काव्यमाला, प्र० गु०, औचित्यविचारचर्चा, पृ० १२४) श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं।

१. "इन्द्रजालपरिचयो यथा श्रीहर्षस्य—

एष ब्रह्मा सरोजे रजनिकरकलाशेखरः शंकरोऽयं
दोर्भिर्दैत्यान्तकोऽसौ सधनुरसिगदाचक्रचिह्नैश्चतुर्भिः।
एषोऽप्यैरावणस्थस्त्रिदशपतिरमी देवि देवास्तथान्ये
नृत्यन्तो व्योम्नि चैताश्चलचरणरणन्नूपुरा दिव्यनार्यः॥"

काव्यमाला, चतुर्थ गुच्छक, कविकण्ठाभरण, पञ्चम सन्धि।

(यह रत्नावली के चतुर्थ अंक का ११ वाँ श्लोक है।)

२. रत्नावली नाटिका : कृष्णराव जोगेलकर-कृत प्रस्तावना, पृ० ५।

त्वया नाटयितव्येति । तद्यावदिदानीं नेपथ्यरचनां कृत्वा यथाभिलषितं सम्पादयामि । (परिक्रम्य अवलोक्य च ।) अये आर्वाजतानि सकलसामाजिकानां मनांसीति मे निश्चयः ।'[१]— यह ग्रंश तीनों रचनाम्रों में प्रायः समान है ।

'श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुण-ग्राहिणी लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम् । वस्त्वैकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं किं पुनर्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ॥'[२] श्लोक तीनों रचनाम्रों में प्राप्त होता है ।

'अन्तःपुराणां विहितव्यवस्थः पदे पदेऽहं स्खलितानि रक्षन् । जरातुरः सम्प्रति दण्डनीत्या सर्वं नृपस्यानुकरोमि वृत्तम् ।'[३] तथा 'व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना दशविधनाप्यत्र लब्धाधुना, विस्पष्टो द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नस्त्रिधायं लयः । गोपुच्छप्रमुखाः क्रमेण यतयस्तिस्रोऽपि सम्पादितास्तत्त्वौघानुगताश्च वाद्यविधयः सम्यक् त्रयो र्दाशताः ॥'[४] श्लोक प्रियर्दाशका ग्रौर नागानन्द में मिलते हैं ।

रचना-विधान की दृष्टि से रत्नावली ग्रौर प्रियर्दाशका में ग्रधिक साम्य है । दोनों 'नाटिका' हैं । दोनों में चार-चार ग्रंक हैं । नान्दी में शिव ग्रौर पार्वती की स्तुति दोनों रचनाग्रों में की गयी है । दोनों में वत्सराज के प्रणय-व्यापार का चित्रण हुग्रा है । दोनों में नायिकाएँ वासवदत्ता द्वारा राजा को समर्पित की जाती हैं ।[५]

रत्नावली ग्रौर नागानन्द में ग्रनेक स्थलों पर भाव की समानता प्राप्त होती है । यहाँ कुछ समान भाव वाले ग्रंश उद्धृत किये जा रहे हैं—

रत्नावली — 'राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः
सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः ।'[६]

नागानन्द — 'न्याय्ये वर्त्मनि योजिताः प्रकृतयः सन्तः सुखं स्थापिता
नीतो बन्धुजनस्तथात्मसमतां राज्येऽपि रक्षा कृता ।'[७]

रत्नावली — 'भगवन् कुसुमायुध निर्जितसकलसुरासुरो भूत्वा स्त्रीजनं प्रहरन् कथं न लज्जसे ।'[८]

---

१. रत्नावली, प्रथम अंक, पृ० ७-९ ।
प्रियर्दाशका, प्रथम अंक, पृ० २-३; नागानन्द, प्रथम अंक, पृ० १-२ ।

२. रत्नावली १।५; प्रियर्दाशका १।३; नागानन्द १।३ (नागानन्द में 'वत्सराजचरितं' के स्थान पर 'बोधिसत्त्वचरितं' पाठ है ।)

३. प्रियर्दाशका ३।३; नागानन्द ४।१

४. प्रियर्दाशका ३।१०; नागानन्द १।१४

५. नागानन्द, करमरकर की भूमिका, पृ० ४ ।

६. रत्नावली १।९

७. नागानन्द १।७

८. रत्नावली, द्वितीय अंक, पृ० ५७-५८ ।

नागानन्द – 'भगवन् कुसुमायुध येन त्वं रूपशोभया निर्जितोऽसि तस्य त्वया न किमपि कृतम् । मम पुनरनपराद्धाया अत्यबलेति कृत्वा प्रहरन्न लज्जसे ।'[१]

रत्नावली – 'भो वयस्य प्रच्छादयेतं चित्रफलकम् ।'[२]

नागानन्द – 'भो वयस्य प्रच्छादयानेन कदलीपत्रेणेमां चित्रगतां कन्यकाम् ।'[३]

रत्नावली – 'प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता ।'[४]

नागानन्द – 'दृष्टा दृष्टिमधो ददाति कुरुते नालापमाभाषिता ।'[५]

प्रियदर्शिका और नागानन्द में भी भाव-साम्य मिलता है––

प्रियदर्शिका– 'तत्तावदहं त्वरितं दीर्घिकायां स्नात्वा ।'[६]

नागानन्द – 'तद्यावदहमपि दीर्घिकायां स्नात्वा ।'[७]

प्रियदर्शिका– 'पूर्णास्ते मनोरथाः ।'[८]

नागानन्द – 'संपूर्णा मनोरथाः प्रियवयस्यस्य ।'[९]

प्रियदर्शिका– 'निर्दोषदर्शना कन्यका खल्वियम् ।'[१०]

नागानन्द – 'कन्यका हि निर्दोषदर्शना भवन्ति ।'[११]

प्रियदर्शिका– 'कस्मै तावदेतं वृत्तान्तं निवेद्य सह्यवेदनमिव दुःखं करिष्यामि ।'[१२]

नागानन्द – 'आवेदय ममात्मीयं पुत्रदुःखं सुदुःसहम् ।
मयि संक्रान्तमेतत्ते येन सह्यं भविष्यति ।।'[१३]

रत्नावली आदि रचनाओं में जो साम्य दिखाया गया है, उससे प्रकट होता है कि ये तीनों एक ही कवि की रचनाएँ हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिंग अपने यात्रा-विवरण

---

१. नागानन्द, द्वितीय अंक, पृ० १७।
२. रत्नावली, द्वितीय अंक, पृ० ६४।
३. नागानन्द, द्वितीय अंक, पृ० २६।
४. रत्नावली ३।६
५. नागानन्द ३।४
६. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक, पृ० २२।
७. नागानन्द, तृतीय अंक, पृ० ४१।
८. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक, पृ० २८।
९. नागानन्द, द्वितीय अंक, पृ० ३१।
१०. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक, पृ० ३६।
११. नागानन्द, प्रथम अंक, पृ० ८।
१२. प्रियदर्शिका, तृतीय अंक, पृ० ३७।
१३. नागानन्द ५।६

में नागानन्द को हर्ष की कृति मानता है।[1] नागानन्द और रत्नावली में भाव की दृष्टि से अत्यधिक साम्य है, अतः रत्नावली के भी रचयिता हर्ष ही हैं।

सम्राट् हर्ष कवि भी थे। अनेक स्थलों पर उनके काव्य-कौशल की प्रशंसा की गयी है। जयदेव प्रसन्नराघव नाटक में हर्ष की प्रशंसा करते हैं।[2] सोड्ढल उदयसुन्दरी-कथा में हर्ष को वाणी का हर्ष कहते हैं।[3] बाण स्वयं हर्ष के काव्य-नैपुण्य की प्रशंसा करते हैं।[4]

उपर्युक्त प्रमाणों से यह निश्चित हो जाता है कि रत्नावली हर्ष की कृति है, बाण या धावक की नहीं। हर्ष महान् सम्राट् एवं सरस्वती के आराधक थे। बाण या धावक से रत्नावली की रचना कराकर प्रचारित करना उनके लिए निन्दनीय बात थी। अतएव हाल आदि का यह कथन कि हर्ष ने बाण या धावक से रत्नावली की रचना कराकर अपने नाम से प्रचारित किया, निराधार है और हर्ष के अनुभाव को कलंकित करता है।

आख्यायिका तथा कथा

हर्षचरित आख्यायिका तथा कादम्बरी कथा के निकष पर

हर्षचरित आख्यायिका माना जाता है और कादम्बरी कथा। यहाँ आख्यायिका और कथा की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है और निरूपित किया गया है कि हर्षचरित आख्यायिका है और कादम्बरी कथा।

सर्वप्रथम भामह अपने काव्यालंकार में आख्यायिका का लक्षण प्रस्तुत करते हैं—'जिसके शब्द, अर्थ तथा समास अक्लिष्ट तथा श्रव्य हों, जिसका विषय उदात्त हो और जो उच्छ्वासों से युक्त हो, ऐसी गद्य से युक्त संस्कृत की रचना को आख्यायिका कहते हैं। उसमें नायक अपने घटित चरित्र को स्वयं कहता है और समय-समय पर होने वाली घटनाओं के सूचक वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द प्रयुक्त किये जाते हैं। कवि के अभिप्राय

---

१. "King Śilāditya versified the story of the Bodhisattva Jīmūta-vāhana (Ch. Cloud-borne), who surrendered himself in place of Nāga—This version was set to music (Lit. String and pipe). He had it performed by a band accompanied by dançing and acting, and thus popularised it in his time.'

I–Tsing : A Record of the Buddhist Religion (Tr. by J. Takakusu), pp. 163-164.

२. प्रसन्नराघव १।२२

३. उदयसुन्दरीकथा, पृ० २।

४. 'सम्भाषणेषु परित्यक्तमपि मधु वर्षन्तम्, काव्यकथास्वपीतमप्यमृतमुद्वमन्तम्।' हर्ष० २।३२

विशिष्ट कथनों से अङ्कित तथा कन्याहरण, सङ्ग्राम, वियोग तथा उदय से समन्वित होती है।"[1]

भामह के विवेचन से आख्यायिका की अधोलिखित विशेषताएँ प्रकट होती हैं—

१. संस्कृत-गद्य में हो।

२. शब्द, अर्थ और पद-संघटना सरल और श्रव्य हों।

३. विषय उदात्त हो।

४. कथानक उच्छ्वासों में विभक्त हो।

५. नायक अपना वृत्तान्त स्वयं कहे।

६. भावी घटनाओं को सूचित करने के लिए समय-समय पर वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग हो।

७. कवि के अभिप्राय-विशिष्ट कथनों से चिह्नित हो।[2]

८. कन्याहरण, संग्राम, वियोग, अभ्युदय आदि से समन्वित हो।

हर्षचरित की रचना गद्य में हुई है। उसका विषय उदात्त है और कथानक उच्छ्वासों में विभक्त हुआ है। इसमें नायक (हर्ष) अपना वृत्तान्त नहीं कहता। बाण हर्ष के वृत्तान्त का उपस्थापन करते हैं। हर्षचरित में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग हुआ है और वे भावी घटना की सूचना भी देते हैं।[3] हर्षचरित अभिप्राय-विशिष्ट कथनों से चिह्नित नहीं है। भामह के लक्षणों को ध्यान में रखकर विवेचन करने से प्रकट होता है कि उनके द्वारा उपन्यस्त कतिपय विशेषताएँ हर्षचरित में अवश्य उपलब्ध होती हैं।

भामह के अनुसार कथा की अधोलिखित विशेषताएँ हैं[4]—

---

१. संस्कृतानुकूलश्रव्यशब्दार्थपदवृत्तिना।
गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाख्यायिका मता॥
वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च॥
कवेरभिप्रायकृतैः कथनैः कैश्चिदङ्किता।
कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयान्विता॥ —भामहः : काव्यालंकार १।२५-२७

२. कवि के अभिप्राय-विशिष्ट कथन का तात्पर्य यह है कि कवि सर्ग की समाप्ति को सूचित करने के लिए विशेष शब्द का प्रयोग करे; जैसे भारवि ने सर्ग की समाप्ति वाले छन्द में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग किया है और माघ ने श्री शब्द का।
See De : Some Problems of Sanskrit Poetics, p. 67, footnote.

३. हर्ष० १।७, ४।४, ५।२५

४. न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि।
संस्कृतासंस्कृता चेष्टा कथापभ्रंशभाक् तथा॥
अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते।
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः॥—भामह : काव्यालङ्कार १।२८-२९

१. वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द न हों ।
२. उच्छ्वासों में विभाजन न हो ।
३. संस्कृत में या असंस्कृत अर्थात् प्राकृत या अपभ्रंश में रचित हो ।
४. नायक अपने चरित का वर्णन स्वयं न करे, अपितु कोई दूसरा करे, क्योंकि कुलीन व्यक्ति अपने गुण का वर्णन स्वयं कैसे कर सकता है ।

कादम्बरी में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ है और उच्छ्वासों में विभाजन भी नहीं हुआ है । कादम्बरी की रचना संस्कृत में हुई है । इसका नायक चन्द्रापीड है । वह अपने चरित का वर्णन स्वयं नहीं करता । भामह द्वारा निरूपित विशेषताएँ कादम्बरी में प्राप्त होती हैं ।

भामह का आख्यायिका तथा कथा का विवेचन स्थूल है । कोई रचना संस्कृत में हो या प्राकृत में हो, वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग हो या न हो, विभाजन उच्छ्वासों में हो या न हो, इनका कोई बहुत महत्त्व नहीं है । हाँ, भामह की एक बात कुछ महत्त्व की है और वह है—आख्यायिका में नायक के द्वारा स्वचेष्टित का वर्णन और कथा में किसी अन्य के द्वारा नायक के चरित का वर्णन । यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है कि यदि नायक आख्यायिका में अपने चरित का वर्णन करे और कथा में कोई दूसरा नायक के चरित का वर्णन करे, तो क्या अन्तर पड़ जायगा ? इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है । आख्यायिका उपलब्ध वृत्तान्त वाली होती है, अतः उसमें नायक द्वारा आत्मश्लाघा की उपस्थापना का सन्देह नहीं किया जा सकता और कथा कवि-कल्पित होती है, अतः यदि उसमें नायक द्वारा स्वचरित के वर्णन का विधान हो, तो आत्मश्लाघा के लिए पर्याप्त अवकाश मिल सकता है ।[1]

दण्डी भामह द्वारा निर्दिष्ट आख्यायिका और कथा के भेद को तात्त्विक नहीं मानते । उनका निरूपण अधोलिखित है[2]—

---

१. De : Some Problems of Sanskrit Poetics, p. 66, footnote.

२. अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा ।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल ॥
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा ।
स्वगुणाविष्क्रियादोषो नात्र भूतार्थशंसिनः ॥
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात् ।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग् वा भेदलक्षणम् ॥
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वं च भेदकम् ।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत् प्रसङ्गे न कथास्वपि ॥
आर्यादिवत् प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः ।
भेदश्च दृष्टो लाभादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः ॥

१. नायक अपने चरित का वर्णन स्वयं करे या कोई दूसरा, यह भेद संगत नहीं है। नायक का उद्देश्य स्वगुण का प्रथन नहीं होता, अपितु उसका उद्देश्य अपने जीवन में घटित वृत्तान्त का वर्णन करना होता है। अतः यह कथन कि नायक अपना गुण स्वयं कहे, तो दोषी होगा, ठीक नहीं। इस नियम का पालन भी सर्वत्र नहीं होता। ऐसी भी आख्यायिकाएँ हैं, जिनमें नायक अपना वृत्तान्त स्वयं नहीं कहता।
२. आख्यायिका में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग हो, कथा में नहीं, यह भी समीचीन नहीं। कथा में आर्या आदि छन्द रहते ही हैं, तो वक्त्र अथवा अपरवक्त्र छन्द के न रहने से क्या भेद उपस्थित हो जायगा? अतः छन्दों के आधार पर कल्पित भेद भी युक्तियुक्त नहीं।
३. आख्यायिका का विभाजन उच्छ्वासों में हो, यह भेद भी महत्त्वपूर्ण नहीं। कथानक को उच्छ्वास या लम्भ में विभक्त करने से क्या विशेषता आ सकती है?
४. आख्यायिका में कन्याहरण, संग्राम, वियोग, उदय आदि आवश्यक माने जाते हैं, कथा में नहीं, यह भी ठीक नहीं। महाकाव्यों में कन्याहरण, संग्राम आदि वर्णित होते ही हैं, तो कथा में क्यों न वर्णित हों?
५. जब आख्यायिका में कवि के अभिप्राय-विशिष्ट चिह्नों का प्रयोग हो सकता है, तो कथा में अथवा काव्य के किसी अन्य प्रकार में प्रयोग किया जा सकता है।

दण्डी की दृष्टि में आख्यायिका और कथा में भेद नहीं है। वे इन्हें एकजातीय मानते हैं। इनमें केवल नाम का भेद है।[1] भामह के विवेचन से यह ज्ञात होता है कि उनके समय में आख्यायिका और कथा के स्वरूप में भेद माना जाता था और यह भेद कुछ विशेषताओं पर आधारित था। दण्डी के समय में इनके भेद के विषय में अनियमितता थी, अतः उन्होंने इन्हें एकजातीय मान लिया है।

वामन ने इस प्रश्न को अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझा। उन्होंने निर्देश किया है कि काव्य के अन्य भेदों के विषय में अन्य ग्रन्थों से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।[2]

कन्याहरणसङ्ग्रामविप्रलम्भोदयादयः।
सर्गबन्धसमा एव नैते वैशेषिका गुणाः॥
कविभावकृतं चिह्नमन्यत्रापि न दुष्यति।
मुखमिष्टार्थसंसिद्धौ किं हि न स्यात् कृतात्मनाम्॥—काव्यादर्श १।२३-२७, २६-३०।

१. तत् कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः॥　　——वही, १।२८

२. 'ततोऽन्यभेदक्लृप्तिः'।　——काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति १।३।३२
इसकी वृत्ति इस प्रकार है——
'ततो दशरूपकादन्येषां भेदानां क्लृप्तिः कल्पनमिति। दशरूपकस्यैव हीदं सर्वविलसितम्। यच्च कथाख्यायिकं महाकाव्यमिति। तल्लक्षणञ्च नातीव हृदयङ्गममित्युपेक्षितमस्माभिः। तदन्यतो ग्राह्यम्।'

अग्निपुराण के लेखक ने वाण के ग्रन्थों को ध्यान में रख कर लक्षण प्रस्तुत किया है। अग्निपुराण में आख्यायिका का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया गया है—

'आख्यायिका में कर्त्ता के वंश की गद्य में सविस्तर प्रशंसा होनी चाहिए। कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ तथा अन्य विपत्तियों का प्रकरण हो; रीतियों, वृत्तियों तथा प्रवृत्तियों का दीप्तरूप में प्रस्तुतीकरण हो; उच्छ्वासों में विभाग हो तथा चूर्णक गद्य का प्रयोग हो। वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होना चाहिए।'[1]

हर्षचरित में वाण ने अपने वंश का वर्णन किया है। अनेक स्थलों पर विपत्तियों का भी प्रस्तुतीकरण हुआ है। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु, यशोमती का अग्नि में जलना, राज्यवर्धन की हत्या आदि विपत्तियों का समुल्लेख उपलब्ध होता है। रीतियों, वृत्तियों आदि का भी सुन्दर सन्निवेश हुआ है। हर्षचरित उच्छ्वासों में विभक्त है। इसमें बीच-बीच में चूर्णक गद्य का प्रयोग हुआ है तथा वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

कथा का लक्षण अधोलिखित है—

'कवि के वंश की श्लोकों में प्रशंसा होनी चाहिए। मुख्य कथा के अवतार के लिए अवान्तर कथा की सर्जना होनी चाहिए। परिच्छेद नहीं होते, किन्तु कभी-कभी लम्भकों में विभाजन होता है। प्रत्येक गर्भ में चतुष्पदी छन्दों की योजना होनी चाहिए।'[2]

कादम्बरी के प्रारम्भ में वाण श्लोकों में अपने वंश की प्रशंसा करते हैं। मुख्य कथा, जो चन्द्रापीड और कादम्बरी से सम्बद्ध है, बाद में आती है। उसके अवतार के लिए शूद्रक की योजना की गयी है। वैशम्पायन नामक शुक शूद्रक की सभा में आकर जाबालि द्वारा कही हुई कथा कहता है। कादम्बरी का विभाजन परिच्छेदों में नहीं हुआ है।

अग्निपुराण में निरूपित कथा का लक्षण कादम्बरी के विषय में प्रायः घटित होता है।

---

१. कर्तृवंशप्रशंसा स्याद् यत्र गद्येन विस्तरात्।
कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भविपत्तयः॥
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः।
उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र या चूर्णकोत्तरा॥
वक्त्रं वापरवक्त्रं वा यत्र साख्यायिका स्मृता।

अग्निपुराण ३३७।१३-१५

२. श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात् कविर्यत्र प्रशंसति॥
मुख्यस्यार्थावताराय भवेद्यत्र कथान्तरम्।
परिच्छेदो न यत्र स्याद् भवेद्वा लम्भकैः क्वचित्॥
सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयाच्चतुष्पदीम्।

वही, ३३७।१५-१७

अग्निपुराण के लक्षण में कर्तृवंश-प्रशंसा और कथान्तर की योजना का विशेष महत्त्व है। भामह ने इनका उल्लेख नहीं किया है। अग्निपुराण में कदाचित् बाण के विशेष प्रभाव से ही ये विशेषक तत्त्व माने गये हैं।

रुद्रट बाण से निश्चित ही प्रभावित हैं, अतएव उन्होंने हर्षचरित और कादम्बरी को ही ध्यान में रखकर लक्षणों का निबन्धन किया है। रुद्रट के अनुसार आख्यायिका की अधोलिखित विशेषताएँ हैं—

'पहले देवों और गुरुओं के प्रति नमस्कार हो और प्राचीन कवियों की प्रशंसा हो। कवि रचना करने में अपनी असमर्थता व्यक्त करे। वह यह प्रकट करे कि किसी विशेष राजा के प्रति भक्ति या किसी अन्य व्यक्ति के गुणों के प्रति आसक्ति अथवा किसी अन्य कारण से ग्रन्थ-रचना में उसकी प्रवृत्ति हो रही है। कवि कथा की ही भाँति आख्यायिका की रचना गद्य में करे और अपना तथा अपने वंश का वर्णन गद्य में करे। उसमें उच्छ्वासों की योजना होनी चाहिए। प्रथम उच्छ्वास के अतिरिक्त अन्य उच्छ्वासों के आरम्भ में प्रस्तुत अर्थ को सूचित करने के लिए सामान्य अर्थ का निर्देश करने वाले, श्लेष-युक्त दो-दो आर्या छन्दों का प्रयोग होना चाहिए।'[1]

बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भ में पहले शिव को और बाद में पार्वती को नमस्कार किया है।[2] इसके बाद उन्होंने कवियों की प्रशंसा की है। वे कहते हैं कि यद्यपि मैं काव्य-रचना करने में असमर्थ हूँ, तथापि राजा हर्ष के प्रति मेरी भक्ति काव्य-रचना करने के लिए प्रेरित कर रही है।[3] हर्षचरित की रचना गद्य में हुई है और बाण ने अपना और अपने वंश का वर्णन गद्य में किया है। हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में विभक्त है और प्रथम उच्छ्वास को छोड़कर अन्य उच्छ्वासों के प्रारम्भ में प्रायः आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है। ये श्लिष्ट हैं।

रुद्रट द्वारा निरूपित विशेषताओं का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है

---

१. पूर्ववदेव नमस्कृतदेवगुरुर्नोत्सहेत् स्थितेष्वेषु।
काव्यं कर्तुमिति कवीन्द्रान् शंसेदाख्यायिकायां तु॥
तदनु नृपे वा भक्तिं परगुणसंकीर्तनेऽथवा व्यसनम्।
अन्यद्वा तत्करणे कारणमक्लिष्टमभिदध्यात्॥
अथ तेन कथैव यथा रचनीयाख्यायिकापि गद्येन।
निजवंशं स्वं चास्यामभिदध्यान्न त्वगद्येन॥
कुर्यादत्रोच्छ्वासान् सर्गवदेषां मुखेष्वनाद्यानाम्।
द्वे द्वे चार्ये श्लिष्टे सामान्यार्थे तदर्थाय॥
रुद्रट : काव्यालंकार (सत्यदेव चौधरी द्वारा सम्पादित), १६।२४-२७

२. हर्ष० १।१

३. 'तथापि नृपतेर्भक्त्या......जिह्वाप्लवनचापलम्॥'
वही, १।३

कि उन्होंने हर्षचरित को आख्यायिका का आदर्श मानकर लक्षण प्रस्तुत किया है। काव्यालङ्कार के टीकाकार नमिसाधु हर्षचरित को आख्यायिका मानते हैं।[१]

रुद्रट के अनुसार कथा में अधोलिखित बातें आवश्यक हैं—

'श्लोकों में इष्ट देवताओं और गुरुओं के प्रति नमस्कार की योजना हो तथा कवि कर्तृरूप में अपना और अपने कुल का संक्षिप्त वर्णन करे। सानुप्रास तथा लघ्वक्षर गद्य में कथा के शरीर की रचना करनी चाहिए और पुर-वर्णन प्रभृति की योजना होनी चाहिए। प्रारम्भ में कथान्तर की योजना की जानी चाहिए। यह योजना इस प्रकार हो कि प्रक्रान्त कथा शीघ्र ही अवतीर्ण हो जाय। कन्यालाभ की योजना हो तथा शृङ्गाररस पूर्णतः विन्यस्त हो। संस्कृत में कथा की रचना गद्य में होनी चाहिए और अन्य भाषाओं में पद्य में।'[२]

कादम्बरी के प्रथम श्लोक में त्रिगुणात्मा परमात्मा को नमस्कार किया गया है। द्वितीय श्लोक में शिव तथा तृतीय श्लोक में विष्णु की स्तुति की गयी है। बाण चतुर्थ श्लोक में अपने गुरु को नमस्कार करते हैं और दसवें श्लोक से लेकर उन्नीसवें श्लोक तक अपने वंश का वर्णन करते हैं। अनुप्रासमय गद्य में कादम्बरी की रचना हुई है तथा पुर-वर्णन आदि की भी योजना हुई है। कादम्बरी में चन्द्रापीड को कादम्बरी की प्राप्ति होती है। शृङ्गाररस का तो अत्यन्त सुन्दर विनिवेश हुआ है। कादम्बरी की रचना संस्कृत-गद्य में हुई है।

रुद्रट के लक्षण के आधार पर विवेचन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कादम्बरी कथा है। काव्यालङ्कार के टीकाकार नमिसाधु कादम्बरी को कथा के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं।[३]

सङ्घटना-विवेचन के प्रसङ्ग में आनन्दवर्धन आख्यायिका तथा कथा का उल्लेख करते हैं।[४] वे कहते हैं कि आख्यायिका में अधिकता से मध्यमसमासयुक्त या दीर्घसमास-

---

१. रुद्रट : काव्यालंकार (निर्णयसागर प्रेस) १६।२६ पर नमिसाधु की टीका।

२. श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरून् नमस्कृत्य।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात् स्वं च कर्तृतया॥
सानुप्रासेन ततो भूयो लघ्वक्षरेण गद्येन।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णकप्रभृतीन्॥
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपञ्चितं सम्यक्।
लघु तावत्संधानं प्रक्रान्तकथावताराय॥
कन्यालाभफलां वा सम्यग् विन्यस्तसकलशृङ्गाराम्।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन॥
रुद्रट : काव्यालंकार (सत्यदेव चौधरी द्वारा सम्पादित) १६।२०-२४

३. रुद्रट : काव्यालंकार (निर्णयसागर प्रेस) १६।२२ पर नमिसाधु की टीका।

४. 'पर्यायबन्धः परिकथा खण्डकथासकलकथे सर्गबन्धोऽभिनेयार्थमाख्यायिकाकथे इत्येवमादयः।' —ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, पृ० ३२३।

युक्त सङ्घटना होती है, क्योंकि गद्य में छायावत्ता (काव्य-सौन्दर्य) विकटबन्ध से आती है। कथा में विकटबन्ध का प्राचुर्य होने पर भी रस-बन्ध में कहे हुए औचित्य का अनुसरण करना चाहिए।[1]

अभिनवगुप्त का कथन है कि आख्यायिका उच्छ्वास, वक्त्र, अपरवक्त्र आदि से युक्त होती है और कथा इनसे रहित।[2]

हेमचन्द्र काव्यानुशासन में आख्यायिका का लक्षण प्रस्तुत करते हैं।[3] उनके अनुसार आख्यायिका की अधोलिखित विशेषताएँ हैं—

१. नायक अपनी कथा स्वयं कहता है।

२. वक्त्र, अपरवक्त्र आदि छन्दों का प्रयोग होता है, जो आने वाली घटनाओं की सूचना देते हैं।

३. अध्यायों का विभाजन उच्छ्वासों में होता है।

४. रचना संस्कृत में होती है।

५. आख्यायिका गद्य में लिखी जाती है, किन्तु बीच-बीच में प्रविरल पद्यों के निबन्धन में कोई दोष नहीं।

हेमचन्द्र का कथन है कि धीरप्रशान्त नायक का गाम्भीर्य के कारण अपने गुणों का वर्णन सम्भव नहीं, इसलिए आख्यायिका में धीरोद्धत आदि नायक अपनी कथा कहते हैं, जिसमें कन्याहरण, संग्राम, समागम तथा अभ्युदय का वर्णन होता है।

आख्यायिका के उदाहरण के रूप में हर्षचरित प्रस्तुत किया गया है।

---

१. 'आख्यायिकायां तु भूम्ना मध्यमसमासदीर्घसमासे एव सङ्घटने। गद्यस्य विकटबन्धाश्रयेण छायावत्त्वात्। तत्र च तस्य प्रकृष्यमाणत्वात्। कथायां तु विकटबन्धप्राचुर्येऽपि गद्यस्य रसबन्धोक्तमौचित्यमनुसर्तव्यम्।'

ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, पृ० ३२६-३२७।

२. 'आख्यायिकोच्छ्वासादिना वक्त्रापरवक्त्रादिना च युक्ता। कथा तद्विरहिता।'

वही, लोचन, पृ० ३२४।

३. 'नायकख्यातस्ववृत्ता भाव्यर्थशंसिवक्त्रादिः सोच्छ्वासा संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका। धीरप्रशान्तस्य गाम्भीर्यगुणोत्कर्षात् स्वयं स्वगुणोपवर्णनं न संभवतीत्यर्थाद्यस्यां धीरोद्धतादिना नायकेन स्वकीयवृत्तं सदाचाररूपं चेष्टितं कन्यापहारसंग्रामसमागमाभ्युदयभूषितं मित्रादि वा व्याख्यायते, अनागतार्थशंसीनि च वक्त्रापरवक्त्रार्यादीनि यत्र बध्यन्ते, यत्र चावान्तरप्रकरणसमाप्तावुच्छ्वासा बध्यन्ते, सा संस्कृतभाषानिबद्धा अपादः पदसंतानो गद्यं तेन युक्ता। युक्तग्रहणादन्तरान्तराप्रविरलपद्यनिबन्धेऽप्यदुष्टा आख्यायिका। यथा—हर्षचरितादि।'

काव्यानुशासन, अध्याय ८, पृ० ४०५-४०६।

हेमचन्द्र ने कथा की अधोलिखित विशेषताएँ[1] उपनिबद्ध की हैं—

१. कथा में धीरप्रशान्त नायक होता है।

२. उसके वृत्त का वर्णन अन्य द्वारा या कवि द्वारा किया जाता है।

३. कथा की रचना गद्य या पद्य में की जाती है।

४. कथा किसी भाषा में लिखी जा सकती है। कोई संस्कृत में, कोई प्राकृत में, कोई मागधी में, कोई शूरसेनी में, कोई पैशाची में और कोई अपभ्रंश में निबद्ध की जाती है।

कथा के उदाहरण के रूप में कादम्बरी प्रस्तुत की गयी है।

विद्यानाथ प्रतापरुद्रयशोभूषण में आख्यायिका की विशेषता[2] बताते हैं। उनके अनुसार आख्यायिका में वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होना चाहिए और विभाजन उच्छ्वासों में होना चाहिए। वे हर्षचरित को आख्यायिका के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं।[3]

कुमारस्वामी प्रतापरुद्रयशोभूषण की रत्नापण नामक टीका में आख्यायिका और कथा के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए अभिनवगुप्त का लक्षण उद्धृत करते हैं और दण्डी का निष्कर्ष भी प्रस्तुत करते हैं।[4]

विश्वनाथ आख्यायिका के सम्बन्ध में कहते हैं—

'आख्यायिका कथा की भाँति गद्य का एक प्रकार है। इसमें कवि के वंश का अनुकीर्तन होता है और कहीं-कहीं पर अन्य कवियों की भी चर्चा होती है। यत्र-तत्र

---

१. 'धीरप्रशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा।
आख्यायिकावन्न स्वचरितव्यावर्णकोऽपि तु धीरशान्तो नायकः। तस्य तु वृत्तमन्येन कविना वा यत्र वर्ण्यते, सा च काचिद् गद्यमयी। यथा—कादम्बरी। काचित् पद्यमयी। यथा लीलावती। यावत् सर्वभाषा काचित् संस्कृतेन काचित् प्राकृतेन काचिन्मागध्या काचिच्छूरसेन्या काचित्पैशाच्या काचिदपभ्रंशेन बध्यते सा कथा।'
काव्यानुशासन, अध्याय ८, पृ० ४०६।

२. वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वं च भेदकम्।
वर्ण्यते यत्र काव्यज्ञैरसावाख्यायिका मता॥
प्रतापरुद्रयशोभूषण, पृ० ९६।

३. 'यत्र वक्त्रापरवक्त्रनामानौ वृत्तविशेषौ वर्ण्येते सोच्छ्वासपरिच्छिन्नाख्यायिका हर्षचरितादि।'
वही, पृ० ९७।

४. 'उच्छ्वासः सर्गादिरेव परिच्छेदभेदः। भेदकमिति। कथाया इति शेषः। तदुक्तमभिनवगुप्ताचार्यैः—'आख्यायिकोच्छ्वासादिना वक्त्रापरवक्त्रादिना युक्ता। कथा तु तद्विरहिता' इति। दण्डिना पुनरुभयोर्नाममात्रभेदो न जातिभेद इत्युपपादितम्। 'तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता' इत्यादिना।'
वही, रत्नापण टीका, पृ० ९६-९७।

पद्य भी रहते हैं। कथांशों का विभाग आश्वासों में किया जाता है। आर्या, वक्त्र तथा अपरवक्त्र में से किसी एक के द्वारा आश्वास के प्रारम्भ में, किसी अन्य विषय के बहाने, वर्णनीय विषय की सूचना दी जाती है।'[१]

उदाहरण के रूप में हर्षचरित का उल्लेख किया गया है।[२]

विश्वनाथ के अनुसार कथा में सरस इतिवृत्त होता है। कहीं-कहीं आर्या, वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है। प्रारम्भ में पद्यों द्वारा नमस्कारात्मक मंगल किया जाता है तथा खल-निन्दा, सज्जन-प्रशंसा आदि का भी उपन्यास होता है।[३]

कथा के उदाहरण के रूप में कादम्बरी प्रस्तुत की गयी है।[४]

उपर्युक्त विवेचन से आख्यायिका और कथा का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है और आचार्यों के प्रमाणभूत निर्देशों के आलोक में देखने से निश्चित हो जाता है कि हर्षचरित आख्यायिका है और कादम्बरी कथा।

हर्षचरित तथा कादम्बरी की तुलना

हर्षचरित और कादम्बरी दोनों बाण की कृतियाँ हैं। विषय-भेद होने पर भी दोनों में अनेक दृष्टियों से समानता है। शैली तथा भाषा के विचार से ये रचनाएँ एक-दूसरे के समीप हैं। जिस प्रकार हर्षचरित में दीर्घ समासों तथा बड़े-बड़े वाक्यों का प्रयोग मिलता है, उसी प्रकार कादम्बरी में भी प्राप्त होता है। हर्षचरित की भाषा में वह प्रवाह नहीं है, जो कादम्बरी की भाषा में है। कादम्बरी में वाक्यों की योजना हर्षचरित की अपेक्षा अधिक मनोरम एवं स्वाभाविक है। भाषा की दृष्टि से हर्षचरित कादम्बरी की तुलना में अधिक क्लिष्ट है और भाषा-सौष्ठव तथा रस-परिपाक की दृष्टि से कादम्बरी हर्षचरित से उत्कृष्ट है। प्रेम-निरूपण, प्रकृति-वर्णन और पात्रों के चित्रण की दृष्टि से दोनों रचनाओं में पर्याप्त-साम्य है। हाँ, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि

---

१. आख्यायिका कथावत् स्यात्कवेर्वंशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनाञ्च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित्॥
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्॥
अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम्।
साहित्यदर्पण ६।३३४-३३६

२. वही, परिच्छेद ६, पृ० २२७।

३. कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्॥
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्॥
वही ६।३३२-३३३

४. वही, परिच्छेद ६, पृ० २२६।

हर्षचरित की अपेक्षा कादम्बरी में प्रकृति और मानव-सौन्दर्य का चित्रण अधिक कमनीय हुआ है। दोनों रचनाओं में घटनाओं की योजनाएँ समान धरातल पर विद्यमान हैं। हर्षचरित में मालती सरस्वती से दधीच की कामपीडित अवस्था का वर्णन करती है।[1] कादम्बरी में कपिञ्जल पुण्डरीक के प्राण की रक्षा करने के लिए महाश्वेता से याचना करता है।[2] पुष्पभूति, प्रभाकरवर्धन, यशोमती आदि के चित्रण एवं शूद्रक, तारापीड, विलासवती आदि के चित्रण में साम्य है। स्वप्न की योजना भी दोनों ग्रन्थों में समान रूप से हुई है।[3] हर्षचरित में दुर्वासा का शाप, सरस्वती का भूतल पर अवतीर्ण होना और पुत्रोत्पत्ति के बाद ब्रह्मलोक जाना, भैरवाचार्य की विद्याधरत्व-प्राप्ति आदि प्रसंग पाठक को विस्मित कर देते हैं। कादम्बरी में शुक, पुण्डरीक, इन्द्रायुध आदिके वर्णन विस्मय की सृष्टि करते हैं।

हर्षचरित में चण्डिकाकानन का प्रसङ्ग आया है।[4] कादम्बरी में भी चण्डिका का वर्णन उपलब्ध होता है।[5]

बाण की शिव-विषयक भक्ति का दर्शन दोनों ग्रन्थों में होता है।[6]

इनके अतिरिक्त दोनों ग्रन्थों में भाव-साम्य प्राप्त होता है। हर्षचरित तथा कादम्बरी के अधोलिखित उद्धरणों से इसका स्पष्टीकरण हो जायगा—

हर्ष० (१।१) —'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥'

काद० (पृ० ४) —'हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव॥'

हर्ष० (१।६) —'पुराकृते कर्मणि बलवति शुभेऽशुभे वा फलकृति तिष्ठति।'

काद० (पृ० १२४)—'जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि।'

हर्ष० (१।८) —'अनेकनाकनायकनिकायकामिनीकुचकलशविलुलितविग्रहाम्।'

काद० (पृ० १००)—'यौवनमदमत्तमालवीकुचकलशलुलितसलिलया।'

हर्ष० (१।१२) —'ततो न विमाननीयोऽयं नः प्रथमः प्रणयः कुतूहलस्य।'

काद० (पृ० ३६५)—'न खलु महाभागेन मनसापि कार्यः कादम्बर्याः प्रथमप्रणयप्रसर-भङ्गः।'

हर्ष० (२।२१) —'शुकसारिकारब्धाध्ययनदीयमानोपाध्यायविश्रान्तिसुखानि।'

---

१. हर्ष० १।१५-१६
२. काद०, पृ० २८३-२८४।
३. हर्ष० ४।३-४; काद०, पृ० १३०।
४. हर्ष० २।२६
५. काद०, पृ० २९२-२९८।
६. हर्ष० २।२५; काद०, पृ० २।

काद० (पृ० ५)–'जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः ।
निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः ॥'

हर्ष० (२।२२) –'शिक्षितक्षपणकवृत्तय इव वनमयूरपिच्छचयानुच्चिन्वन्तः ।'

काद० (पृ० ६१)–'क्षपणकैरिव मयूरपिच्छधारिभिः ।'

हर्ष० (२।२७) –'कुनृपतिसम्पर्ककलङ्ककालीं कालेयीं स्थितिम् ।'

काद० (पृ० ६)–'कुनृपतिसहस्रसम्पर्ककलङ्कमिव क्षालयन्ती ।'

हर्ष० (३।४६) –'कृतभस्मरेखापरिहारपरिकरे ।'

काद० (पृ० ७८)–'विक्षिप्तभस्मलेखाकृतमुनिजनभोजनभूमिपरिहारम् ।'

हर्ष० (३।५०) –'पातालतलवासिषु विघ्नाय दानवेष्विवोत्तिष्ठत्सु ।'

काद० (पृ० ५८)–'अवदारितरसातलोद्भूतमिव दानवलोकम् ।'

हर्ष० (३।५१) –'प्रलयमहावराहदंष्ट्राविवरमिव दर्शयन्ती ।'

काद० (पृ० ४०)–'प्रलयवेलेव महावराहदंष्ट्रासमुत्खातधरणिमण्डला ।'

हर्ष० (४।२) 'सकललोकार्चितचरणा त्रयीव धर्मस्य ।'

काद० (पृ० १६३)–'त्रय्यैव सुप्रतिष्ठितचरणया ।'

हर्ष० (४।३) –'यास्य वक्षसि नरकजितो लक्ष्मीरिव ललास ।'

काद० (पृ० २१)–'उरःस्थलनिवाससंक्रान्तनारायणदेहप्रभाश्यामलिताम् ।'

हर्ष० (४।३) –'कुङ्कुमपङ्कानुलिप्ते मण्डलके पवित्रपद्मरागपात्रीनिहितेन स्वहृदयेनेव
सूर्यानुरक्तेन रक्तकमलषण्डेनार्चां ददौ ।'

काद० (पृ० ७५)–'प्रत्यग्रभग्नैरुन्मुखो रक्तारविन्दैर्नलिनीपत्रपुटेन भगवते सवित्रे
दत्वार्घमुदतिष्ठत् ।'

हर्ष० (४।३) –'परिणतप्रायायां तु श्यामायाम् ।'

काद० (पृ० १३०)–'क्षीणभूयिष्ठायां रजन्याम् ।'

हर्ष० (४।४) –'पूर्णा नो मनोरथाः ।'

काद० (पृ० १३०) –'संपन्नाः सुचिरादस्माकं प्रजानां च मनोरथाः ।'

वही (पृ० १५३)–'पूर्णा नो मनोरथाः ।'

हर्ष० (४।५) –'श्यामायमानचारुचूचुकचूलिकौ ।'

काद० (पृ० १३३) –'श्यामायमानपयोधरमुरवीम् ।'

हर्ष० (४।७) –'कलिकालस्य बान्धवकुलानीवाकुलान्यधावन्त ।'

काद० (पृ० ५८)–'कलिकालबन्धुवर्गमिवैकत्र संगतम् ।'

हर्ष० (४।६) 'उत्तमाङ्गनिहितरक्षासर्षपे ।'

काद० (पृ० १२६)–'निहितरक्षाघृतबिन्दुनि तालुनि विन्यस्तगौरसर्षपोन्मिश्रभूतिलेशः ।'

हर्ष० (४।६) –'हाटकबद्धविकटव्याघ्रनखपङ्क्तिमण्डितग्रीवके ।'

काद० (पृ० ४०)–'बालग्रीवेव व्याघ्रनखपङ्क्तिमण्डिता ।'

हर्ष० (४।६) –'मन्त्र इव सचिवमण्डलेन रक्ष्यमाणे ।'

कादं० (पृ० ७४)—'निगूढमन्त्रसाधनक्षपितविग्रहः ।'
हर्ष० (४।१३) 'पिष्टपञ्चाङ्गुलमण्ड्यमानोलूखलमुसलशिलाद्युपकरणम् ।'
कादं० (पृ० ८२)—'आलवालदत्तपिष्टपञ्चाङ्गुलस्य ।'
हर्ष० (४।१८) —'शयनशिरोभागस्थितेन...निद्राकलशेन राजतेन विराजमानम् ।'
कादं० (पृ० १३६)—'शयनशिरोभागविन्यस्तधवलनिद्रामङ्गलकलशम् ।'
हर्ष० (५।२७) —'आकुलचरणचलत्तुलाकोटिक्वणितवाचालिताभिः ।'
कादं० (पृ० १७४)—'पदे पदे रणद्भिस्तुलाकोटिवलयैः ।'
हर्ष० (५।३३) —'वध्नातु वैधव्यवेणीं वरमनुष्यता ।'
कादं० (पृ० ४२)—'...कलशयोनिपरिपीतसागरमार्गानुगतयेव वद्धवेणिकया गोदावर्या परिगतमाश्रमपदमासीत् ।'
हर्ष० (६।४२) —'ग्रहीष्यसि सकलपृथ्वीप्रतिप्रलयोत्पातमहाधूमकेतुम् ।'
कादं० (पृ० ८) —'उत्पातकेतुरहितजनस्य ।'
हर्ष० (७।५७) —'अर्जुनबाहुदण्डसहस्रसम्पिण्डितोन्मुक्तमिव सहस्रधा प्रवर्तमानं प्रवाहं नर्मदायाः ।'
कादं० (पृ० ५७)—'अर्जुनभुजदण्डसहस्रविप्रकीर्णमिव नर्मदाप्रवाहम् ।'
हर्ष० (७।६१) —'परिणतपाटलपटोलत्विषि च तरुणहारीतहरिन्ति क्षीरक्षारीणि च पूगानां पल्लवलम्बीनि सरसानि फलानि ।'
कादं० (पृ० ३७५)—'मरकतहरिन्ति व्यपनीतत्वञ्चि चारुमञ्जरीभाञ्जि क्षीरीणि पूगीफलानि ।'
हर्ष० (७।६५) —'त्रिशङ्कोरिवोभयलोकभ्रष्टस्य नक्तन्दिवमर्वाक्शिरसस्तिष्ठतः ।'
कादं० (पृ० १६)—'त्रिशङ्कोरिव कुपितशतमखहुंकारनिपातिता ।'

———

तृतीय अध्याय

बाणभट्ट की कृतियों का कथानक

हर्षचरित का कथानक

प्रथम उच्छ्वास

प्रथम श्लोक में बाण शिव की वन्दना करते हैं और द्वितीय में उमा की। इसके बाद महाभारत के रचयिता सर्वज्ञ व्यास की वन्दना करते हैं। कुकवियों और सुकवियों की चर्चा करने के बाद प्रादेशिक शैलियों की विशेषताओं का उल्लेख करते हैं। आख्यायिकाकारों की वन्दना करते हैं और वासवदत्ता, भट्टारहरिचन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास और बृहत्कथा की प्रशंसा करते हैं। इसके बाद हर्षवर्धन की जय की आशंसा करते हैं। तत्पश्चात् कथा प्रारम्भ करते हैं।

एक समय ब्रह्मा पद्मासन पर बैठे हुए थे और इन्द्र आदि देवों से घिरे हुए थे। प्रजापति और महर्षि उनकी सेवा कर रहे थे। वेदों का उच्चारण हो रहा था और मन्त्रों की व्याख्या की जा रही थी। शास्त्र के सम्बन्ध में मतभेद होने के कारण विवाद होने लगा। अत्रि के पुत्र दुर्वासा ने उपमन्यु नामक मुनि के साथ कलह करते हुए स्वरभंग कर दिया। इस पर सरस्वती हँस पड़ी। दुर्वासा ने कमण्डलु के जल से आचमन करके शापजल ले लिया। इस पर सावित्री दुर्वासा को दुरात्मा, अनात्मज्ञ, मुनिखेट आदि कहती हुई शाप देने के लिए आसन छोड़कर खड़ी हो गयी। अत्रि के रोकने पर भी दुर्वासा ने सरस्वती को मर्त्यलोक में जाने के लिए शाप दे दिया। सावित्री प्रतिशाप देने के लिए उद्यत थी, किन्तु सरस्वती ने उसे रोका। ब्रह्मा ने दुर्वासा के इस आचरण की निन्दा की और सरस्वती से कहा—पुत्रि, विषाद मत करो। सावित्री तुम्हारे साथ जायेगी। तुम्हारा शाप पुत्र होने की अवधि तक रहेगा। यह कह कर ब्रह्मा आह्निक करने के लिए उठ खड़े हुए। सरस्वती मुख नीचे किये हुए सावित्री के साथ घर चली गयी। सावित्री ने दुःखित सरस्वती को समझाया।

दूसरे दिन सरस्वती ब्रह्मा की प्रदक्षिणा करके सावित्री के साथ ब्रह्मलोक से निकली। वह मन्दाकिनी का अनुसरण करती हुई मर्त्यलोक में उतरी। आकाश से ही उसने हिरण्यवाह नामक महानद को, जिसे लोग शोण कहते हैं, देखा। उसके पश्चिमी तट पर शिलातल से युक्त लतामण्डप में ठहरी और पल्लवों की शय्या बनाकर उस पर उसने शयन किया। इस प्रकार वह समय बिताने लगी।

एक दिन प्रातःकाल उसने एक सहस्र पदातियों को देखा। उनमें अठारह वर्ष का एक सुन्दर युवक था। उसके साथ एक पुरुष था। युवक पदातियों के मुख से दोनों

कन्याओं के विषय में सुनकर लतामण्डप के समीप आया। परिजनों को रोककर वह युवक दूसरे पुरुष के साथ पैदल ही सरस्वती और सावित्री के पास आया।

सरस्वती के साथ सावित्री ने उन दोनों को आसन आदि प्रदान करके सत्कार किया। उन दोनों के बैठ जाने पर सावित्री ने दूसरे पुरुष से उस युवक का परिचय पूछा। उसने युवक के विषय में कहा—इनका नाम दधीच है। इनके पिता का नाम च्यवन तथा माता का नाम सुकन्या है। इनका जन्म नाना (शर्यात) के घर पर हुआ और अब तक वहीं रहे। पितामह शर्यात ने अब इन्हें पिता के पास भेजा है। मेरा नाम विकुक्षि है और मैं इनका सेवक हूँ।

विकुक्षि ने भी सावित्री से परिचय पूछा। सावित्री ने कहा कि हम लोग अधिक समय तक यहाँ रहना चाहती हैं। परिचय होने से सब कुछ प्रकट हो जायगा। दधीच ने कहा—आर्य, आराधना से आर्या प्रसन्न होंगी। अब हम लोग पिता के पास चलें।

घोड़े पर चढ़कर जाते हुए उस युवक को सरस्वती ने निश्चल कनीनिकाओं वाले नेत्रों से देखा। शोण को पारकर दधीच शीघ्र ही पिता के आश्रम में पहुँच गया। उसके चले जाने पर सरस्वती उधर ही दीर्घकाल तक देखती रही।

दधीच की रूपसम्पत्ति का स्मरण कर सरस्वती का हृदय बार-बार विस्मित हुआ। उसके दर्शन की उत्कण्ठा प्रबल होने लगी। उसकी दृष्टि अवशा-सी उसी दिशा की ओर जाने लगी। इस प्रकार वह काम से अत्यधिक पीड़ित हुई।

कुछ दिनों के बाद विकुक्षि आया। उसने कहा कि दधीच का शरीर क्षीण होता जा रहा है। मालती नामक दूती शीघ्र ही आकर समाचार बतायेगी।

दूसरे दिन मालती आयी। उसने शिर झुकाकर प्रणाम किया। उसने अतिपेशल वचनों से सरस्वती और सावित्री के हृदय को आकृष्ट कर लिया। जब मध्याह्न के समय सावित्री शोण में स्नान करने के लिए चली गयी, तब उसने सरस्वती से दधीच के प्रेम की बात कही। सरस्वती ने उसे स्वीकार कर लिया। दोनों का सुन्दर मिलन हुआ और एक वर्ष का समय एक दिन की भाँति व्यतीत हो गया।

दैवयोग से सरस्वती ने गर्भधारण किया। उससे सारस्वत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पितामह के आदेश से वह सावित्री के साथ पुनः ब्रह्मलोक को चली गयी। इससे दधीच अत्यन्त दुःखित हुआ और भार्गववंश में उत्पन्न ब्राह्मण की पत्नी अक्षमाला को पुत्र के संवर्धन का भार सौंपकर तपस्या के लिए वन में चला गया। अक्षमाला को भी उसी समय पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी। उसने सारस्वत और अपने पुत्र वत्स—दोनों का समान रूप से पालन-पोषण किया।

सारस्वत ने वत्स को सभी विद्याएँ सिखा दीं और प्रीतिकूट नामक निवास बना दिया। स्वयं तपस्या करने के लिए पिता के समीप चला गया।

वत्स के कुल में बहुत समय के बाद कुबेर पैदा हुए। उनके चार पुत्र हुए—अच्युत, ईशान, हर तथा पाशुपत। पाशुपत के अर्थपति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके एकादश

पुत्र हुए—भृगु, हंस, शुचि, कवि, महीदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, त्र्यक्ष, अहिदत्त और विश्वरूप। चित्रभानु और राजदेवी से बाण उत्पन्न हुए। दैवयोग से बाण के बाल्यकाल में ही उनकी माता का देहान्त हो गया। इसके बाद पिता ने बाण का पालन-पोषण किया।

बाण की अवस्था जब चौदह वर्ष की थी और उनके उपनयन आदि क्रिया-कलाप कर दिये गये थे, तब उनके पिता की भी मृत्यु हो गयी। शोक के वेग के कारण बाण कुछ दिनों तक अपने घर पर ही रहे। इसके बाद वे अनेक मित्रों के साथ घूमने के लिए निकल पड़े।

राजकुलों में जाकर और विदग्धमण्डलों में सम्मिलित होकर बाण ने विशेष अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया। बहुत समय के बाद बाण अपने घर को लौट आये। उनके बन्धुओं ने उनका अभिनन्दन किया।

द्वितीय उच्छ्वास

एक बार ग्रीष्मकाल में अपराह्ण समय में बाण के पारशव भाई चन्द्रसेन ने आकर कहा—महाराजाधिराज हर्ष के भाई कृष्ण के द्वारा भेजा हुआ दूत आया है और द्वार पर खड़ा है। बाण ने दूत को बुलाया। लेखहारक ने आकर एक पत्र अर्पित किया। पत्र में लिखा था—मेखलक से सन्देश सुनकर शीघ्र चले आइए। परिजनों को हटाकर बाण ने सन्देश पूछा। मेखलक ने कहा कि चक्रवर्ती हर्ष से लोगों ने आपकी निन्दा की है और उन्होंने भी आपको उसी प्रकार समझ लिया है। कृष्ण दूर रहने पर भी आपको जानते हैं। उन्होंने हर्ष से आपके गुणों के विषय में कहा है। उन्होंने कहा है कि आप आने में विलम्ब न करें। सन्देश सुनकर बाण ने मेखलक के विश्राम का प्रबन्ध किया।

दिन के अस्त हो जाने पर बाण अपनी शय्या पर आकर सोचने लगे—क्या करूँ? राजा ने मुझे अन्य रूप में समझ लिया है। राजसेवा निकृष्ट है। भृत्यकार्य विषम है। परिचय भी नहीं है। तथापि अवश्य जाना चाहिए। भगवान् शिव कल्याण करेंगे।

बाण प्रातःकाल अनेक शुभकृत्यों का सम्पादन करके प्रीतिकूट से निकले। पहले दिन चण्डिकाकानन पार करके मल्लकूट नामक ग्राम में रुके। भ्राता जगत्पति ने उनकी सपर्या की। दूसरे दिन गंगा को पार करके यष्टिग्रहक नामक गाँव में रात्रि व्यतीत की। तीसरे दिन अजिरवती के समीप स्थित स्कन्धावार में पहुँचे तथा राजभवन के पास ही ठहरे।

बाण स्नान और भोजन के बाद विश्राम करके मेखलक के साथ हर्ष को देखने के लिए निकले। उन्होंने वारणेन्द्र दर्पशात को देखा। इसके बाद उन्होंने चक्रवर्ती श्रीहर्षदेव का दर्शन किया। हर्ष ने बाण को देखकर कहा—क्या यह वही बाण है? दौवारिक ने कहा—वही है। फिर राजा ने पीछे बैठे हुए मालवराज के पुत्र से कहा—यह बहुत बड़ा भुजंग है। बाण ने कहा—मैं सोम पीने वाले वात्स्यायनों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे उपनयन आदि संस्कार यथाकाल सम्पन्न किये गये। मैंने अंगों के साथ

वेदों का सम्यक् अध्ययन किया है। तो मुझमें क्या भुजंगता है? दोनों लोकों की अविरोधिनी चपलताओं से मेरा शैशव शून्य नहीं था। मैं इसका अपलाप नहीं करता। इससे मेरा हृदय पश्चात्ताप-सा करता है। इस समय भगवान् बुद्ध और मनु की भाँति दण्डधारी देव के शासन करने पर कौन अविनय का अभिनय कर सकता है? मनुष्यों की बात जाने दीजिए; पशु-पक्षी भी आपसे डरते हैं।

यद्यपि देव हर्ष ने बाण पर अनुग्रह नहीं किया, तथापि उनके हृदय में राजा के प्रति श्रद्धा घर कर गयी। शिविर से निकल कर वे मित्रों तथा बान्धवों के घर ठहरे। राजा उनके स्वभाव से परिचित हो गये और उनसे प्रसन्न हो गये। उन्होंने पुनः राजभवन में प्रवेश किया। कुछ दिनों में राजा ने उन्हें प्रेम, विश्वास, मान, द्रविण आदि की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

तृतीय उच्छ्वास

कुछ समय के बाद बाण बन्धुओं को देखने के लिए प्रीतिकूट पहुँचे। वहाँ उनका बहुत सम्मान हुआ। मध्याह्न के समय उठकर उन्होंने स्नान आदि कृत्यों का सम्पादन किया। उनके भोजन कर लेने पर उनके बन्धु उन्हें घेर कर बैठ गये। इसी समय पुस्तक-वाचक सुदृष्टि आया और श्रोताओं के चित्त को आकृष्ट करता हुआ वायुपुराण पढ़ने लगा। सुदृष्टि के श्रुतिसुभग पाठ करने पर बन्दी सूचीबाण ने दो आर्याएँ पढ़ीं। उनको सुनकर बाण के चचेरे भाई गणपति, अधिपति, तारापति तथा श्यामल एक दूसरे को देखने लगे। श्यामल ने कहा—तात बाण, ययाति, पुरूरवा, नहुष, मान्धाता आदि राजाओं में दोष थे, पर राजा हर्ष कलंक-रहित हैं। उनके विषय में बहुत-सी आश्चर्य-युक्त बातें सुनायी पड़ती हैं। उनके बड़े-बड़े समारम्भ हैं। अतएव पुण्यराशि सुगृहीत-नामधेय हर्ष का चरित वंशक्रम से सुनना चाहते हैं। आप कहें, जिससे भार्गववंश राजर्षि के चरित-श्रवण से शुचितर हो जाय।

बाण ने हँसकर कहा—आर्य, आप लोगों ने युक्तियुक्त नहीं कहा। हर्ष के सम्पूर्ण चरित का वर्णन करना अतिदुष्कर है। यदि आप लोग एक अंश को सुनना चाहते हों, तो मैं उद्यत हूँ। अब दिन परिणतप्राय है। कल निवेदन करूँगा।

दूसरे दिन बाण ने हर्ष के चरित का वर्णन प्रारम्भ किया।

श्रीकण्ठ नामक एक जनपद है। वहाँ कलि का कोई प्रभाव नहीं है। उसके अन्तर्गत स्थाण्वीश्वर नामक प्रदेश है। वहाँ पुष्पभूति नामक राजा हुआ। वह पराक्रमी, तेजस्वी और प्रज्ञावान् था।

एक दिन प्रतीहारी ने आकर राजा से कहा—देव, द्वार पर परिव्राजक आया है। वह कह रहा है कि भैरवाचार्य के आदेश के अनुसार देव के समीप आया हूँ। इसे सुनकर राजा ने उसे बुलाया। शीघ्र ही उस परिव्राजक ने प्रवेश किया। राजा ने उसका समुचित समादर किया। उसके बैठ जाने पर राजा ने पूछा—भैरवाचार्य कहाँ हैं? उसने निवेदन किया कि भैरवाचार्य नगर के समीप सरस्वती के तटवर्ती वन में

विद्यमान एक शून्यायतन में हैं। उसने पुनः 'वे अपने आशीर्वचन द्वारा आपको सम्मानित करते हैं' कहकर भैरवाचार्य द्वारा भेजे गये चाँदी के पाँच कमल अर्पित किये। राजा ने अतिसौजन्य के कारण किसी-किसी प्रकार उन कमलों को स्वीकार किया। 'कल भगवान् का दर्शन करूँगा' कहकर राजा ने संन्यासी को विदा किया।

दूसरे दिन भैरवाचार्य को देखने के लिए राजा ने प्रस्थान किया। राजा भैरवाचार्य के दर्शन से अत्यधिक प्रसन्न हुए। दीर्घकाल तक उनसे वार्ता करके घर लौट आये।

भैरवाचार्य भी राजा को देखने के लिए आये। राजा ने अन्तःपुर, परिजन तथा कोष सहित अपने को उनके स्वागत में अर्पित कर दिया। उन्होंने हँस कर कहा—'तात, कहाँ विभव और कहाँ वन में रहने वाले हम लोग! आप लोग ही भूति के भाजन हैं। कुछ समय तक रुककर वे चले गये।

एक बार परिव्राजक राजा के पास आया और भैरवाचार्य द्वारा भेजी गयी अट्टहास नामक तलवार उन्हें अर्पित की। राजा ने उसे स्वीकार कर लिया। तलवार पाताल स्वामी नामक ब्राह्मण के द्वारा ब्रह्मराक्षस के हाथ से छीनी गयी थी।

एक समय भैरवाचार्य ने एकान्त में राजा से कहा—तात, मुझे वेताल-साधना करनी है। आप सहायता करने में समर्थ हैं। टीटिभ, पातालस्वामी और कर्णताल आपकी सहायता करेंगे। राजा ने कहा—भगवन्, शिष्यजनोचित आदेश से मैं परम अनुगृहीत हूँ। भैरवाचार्य ने संकेत किया—आगामी कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में इस वेला में महाश्मशान के समीपवर्ती शून्यायतन में शस्त्र धारण करके हमसे मिलें।

निर्धारित समय पर राजा साधना-भूमि में पहुँचे। उन्होंने भस्म से पूरे गये (अंकित) महामण्डल के बीच भैरवाचार्य को स्थित देखा। पातालस्वामी पूर्व दिशा में बैठा। कर्णताल तथा परिव्राजक क्रमशः उत्तर तथा पश्चिम में बैठे। राजा ने दक्षिण दिशा अलंकृत की। अर्धरात्रि के समय के बीत जाने पर मण्डल से थोड़ी दूर पर उत्तर की ओर पृथ्वी फट गयी। उससे नील कमल की भाँति श्यामल पुरुष निकल आया। उसने कहा—अरे विद्याधरी की कामना करने वाले, क्या यह विद्या का गर्व है या सहायकों का मद है, जो इस जन को बलि दिये बिना सिद्धि चाहते हो? मैं श्रीकण्ठ नाम का नाग हूँ। इस दुष्ट राजा के साथ दुर्नय का फल भोगो। इस प्रकार कहकर टीटिभ आदि को उसने प्रहार से गिरा दिया। राजा ने इस प्रकार का अधिक्षेप नहीं सुना था। उन्होंने नाग को ललकारा। राजा ने थोड़ी ही देर में उसे भूमि पर गिरा दिया। जब शिर काटने के लिए उन्होंने तलवार उठायी, तब उसका यज्ञोपवीत दिखायी पड़ा। इस पर राजा ने उसे छोड़ दिया। इसके बाद लक्ष्मी को देखा। लक्ष्मी ने राजा से कहा—मैं तुम्हारे शौर्य से प्रसन्न हूँ। वर की याचना करो। राजा ने भैरवाचार्य की सिद्धि की याचना की। लक्ष्मी ने 'एवमस्तु' कहकर पुनः कहा—तुमसे महान् राजवंश का प्रवर्तन होगा। उसमें हर्ष नामक चक्रवर्ती उत्पन्न होगा। इसके बाद लक्ष्मी अन्तर्हित हो गयी। राजा लक्ष्मी के वचन से अत्यन्त प्रसन्न हुए।

भैरवाचार्य को विद्याधरत्व की प्राप्ति हुई। उन्होंने राजा से कहा—यदि आप मुझे किसी कार्य के सम्पादन के योग्य समझें, तो कहें। राजा ने कहा—आपकी सिद्धि से ही मेरा कृत्य समाप्त हो गया। आप अभीप्सित स्थान में जायँ। भैरवाचार्य अपनी सिद्धि के अनुकूल स्थान में चले गये। श्रीकण्ठ भी 'राजन्, पराक्रम से वश में किये गये विनम्र इस जन को आदेश देकर अनुगृहीत कीजिएगा' कहकर भूविवर में प्रविष्ट हो गया। राजा ने तीनों सहायकों के साथ नगर में प्रवेश किया। कुछ दिनों के बाद परिव्राजक वन में चला गया। पातालस्वामी और कर्णताल राजा के शौर्य से प्रभावित होकर उनकी सेवा करने लगे।

चतुर्थ उच्छ्वास

पुष्पभूति से एक राजवंश प्रवर्तित हुआ, जिसमें अनेक प्रसिद्ध नृपति हुए। उसी में हूणहरिणकेसरी राजाधिराज प्रभाकरवर्धन उत्पन्न हुए। यशोमती उनकी पत्नी थीं। राजा आदित्यभक्त थे। वे नित्य सूर्य की पूजा करते थे और दिन में तीन बार 'आदित्यहृदय' मन्त्र का जप करते थे। एक बार रात्रि के अन्तिम प्रहर में देवी यशोमती चिल्लाती हुई जाग पड़ीं। राजा भी तत्क्षण जाग उठे। जब उन्होंने दिशाओं में दृष्टि डालते हुए कुछ नहीं देखा, तो भय का कारण पूछा। यशोमती ने कहा–आर्यपुत्र, मैंने स्वप्न में सूर्य के मण्डल से निकल कर एक कन्या से अनुगत होते हुए पृथ्वी पर अवतीर्ण दो कुमारों को देखा। वे मेरे उदर को शस्त्र से विदीर्ण कर प्रवेश करने लगे। राजा ने देवी से कहा कि शीघ्र ही तीन सन्ततियाँ आपको आनन्दित करेंगी। यशोमती राजा के वचन से अत्यधिक प्रसन्न हुईं।

कुछ समय के बाद राज्यवर्धन पैदा हुए। उनके बाद हर्षवर्धन उत्पन्न हुए। हर्षवर्धन जिस समय पैदा हुए थे, उस समय सभी ग्रह उच्चस्थान में स्थित थे। ज्योतिषियों ने बताया कि हर्ष चक्रवर्तियों में अग्रगण्य होंगे और सभी यज्ञों का प्रवर्तन करेंगे।

जब हर्षवर्धन धात्री की अंगुलियों को पकड़कर डग भरने लगे और राज्यवर्धन का छठा वर्ष लगा, तब देवी यशोमती ने राज्यश्री को गर्भ में धारण किया। जैसे मेना ने गौरी को उत्पन्न किया था, उसी प्रकार देवी ने राज्यश्री को जन्म दिया।

देवी यशोमती के भाई ने भण्डि नामक अपने पुत्र को, जिसकी अवस्था आठ वर्ष की थी, कुमारों के अनुचर के रूप में भेजा।

राज्यवर्धन और हर्षवर्धन थोड़े ही समय में द्वीपान्तरों में प्रसिद्ध हो गये। राजा ने कुमारगुप्त और माधवगुप्त नामक मालव-कुमारों को मित्र के रूप में उन दोनों के साथ कर दिया। वे दोनों राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के निरन्तर पार्श्ववर्ती हुए।

राजा ने राज्यश्री का विवाह मौखरिवंश के राजा अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा के साथ कर दिया। विवाहोत्सव अत्यन्त प्रमोद के साथ मनाया गया।

पञ्चम उच्छ्वास

एक समय राजा ने हूणों को नष्ट करने के लिए राज्यवर्धन को उत्तरापथ की ओर भेजा। हर्ष ने उनका कुछ प्रयाणों तक अनुगमन किया। जब राज्यवर्धन उत्तर की ओर चले गये, तब हर्ष आखेट के लिए पीछे रुक गये। एक रात्रि में उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक सिंह दावाग्नि में जल रहा है और उसी दावाग्नि में बच्चों को डालकर सिंही भी कूद रही है। जागने पर हर्ष की बायीं आँख बार-बार फड़कने लगी और अंगों में अकस्मात् कम्पन होने लगा। उसी दिन कुरङ्गक प्रभाकरवर्धन की बीमारी का समाचार लेकर हर्ष के समीप आया। उससे पिता के महान् दाहज्वर की बात सुनकर हर्ष शीघ्र ही चल पड़े। मार्ग में उन्हें अनेक दुर्निमित्त हुए। स्कन्धावार में पहुँच कर वे घोड़े से उतरे। उस समय उन्हें सुषेण नामक वैद्य-कुमार दिखायी पड़ा। उससे उन्हें ज्ञात हुआ कि राजा की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। भवन में प्रविष्ट होकर उन्होंने राजा को देखा। उस समय उनका हृदय भय से आक्रान्त हो गया। राजा ने अतिस्नेह के कारण शयन से किसी प्रकार उठकर हर्ष का आलिंगन किया। पिता के बहुत कहने पर हर्ष ने भोजन किया।

हर्ष ने रसायन नामक वैद्यकुमार से पिता की अवस्था के विषय में पूछा। उसने कहा—देव, कल प्रातःकाल निवेदन करूँगा। दूसरे दिन हर्ष ने सुना कि रसायन अग्नि में प्रविष्ट हो गया। यशोमती ने राजा के मरण के पहले ही स्वयं अग्नि में प्रवेश करने का निश्चय कर लिया। हर्ष ने माता को बहुत रोका, किन्तु वे अपने निश्चय पर अटल रहीं। यशोमती ने अग्नि में प्रवेश किया और राजा ने भी सन्ध्या के समय आँखें मूंद लीं। हर्षवर्धन राजा की मृत्यु से अत्यधिक सन्तप्त हुए। राजा के सम्बन्ध में अनेक प्रकार से चिन्तन करते हुए भाई के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

षष्ठ उच्छ्वास

राज्यवर्धन शीघ्र ही लौटे। वे शोकमग्न थे और अत्यन्त कृश हो गये थे। हर्षवर्धन को देखकर वे गला फाड़फाड़कर रोने लगे। यह दृश्य बहुत ही मर्मस्पर्शी था। राज्यवर्धन ने राज्य को छोड़कर वन में जाने की इच्छा व्यक्त की और हर्ष से स्वीकार करने के लिए प्रार्थना की। हर्ष ने कहा—मैं चुपचाप आर्य का अनुगमन करूँगा।

इसी बीच राज्यश्री का संवादक नामक अतिपरिचित परिचारक रोता हुआ आया। उसने सूचना दी कि मालवराज ने ग्रहवर्मा की हत्या कर दी और राज्यश्री को कारागार में डाल दिया है। राज्यवर्धन ने हर्ष को राज्य संभालने के लिए आदेश देकर मालवराज को विनष्ट करने के हेतु प्रयाण किया। उनके साथ भण्डि और दश हजार घुड़सवार थे।

जब हर्षवर्धन सभामण्डप में बैठे थे, उस समय राज्यवर्धन का विश्वास-पात्र कुन्तल आया। उसके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उसने बताया कि राज्यवर्धन ने सरलता से मालवराज की सेना को जीत लिया था, किन्तु गौडाधिप ने विश्वासघात

करके उन्हें मार डाला। यह सुनकर महातेजस्वी हर्ष प्रज्वलित हो उठे। सेनापति सिंहनाद ने गौडाधिप तथा अन्य शत्रु-नृपतियों का समुन्मूलन करने के लिए हर्ष को प्रेरित किया। हर्ष ने गौडाधिप को विनष्ट करने तथा एकच्छत्र राज्य स्थापित करने की प्रतिज्ञा की। गजाध्यक्ष स्कन्दगुप्त ने निवेदन किया कि संसार में किस प्रकार आचरण करना चाहिए। उसने अनेक राजाओं की विपत्तियों के उदाहरण प्रस्तुत किये। जिस समय प्रतिज्ञा करके दिग्विजय करने के लिए हर्ष ने आदेश दिया, उस समय शत्रुओं के घर अनेक अपशकुन हुए।

सप्तम उच्छ्वास

कुछ दिनों के बाद मौहूर्तिकों द्वारा निर्दिष्ट लग्न में हर्ष ने विजय करने के लिए प्रस्थान किया। एक समय राजा बाह्यास्थानमण्डप में आसन पर आसीन थे। उस समय प्रतीहारी ने आकर निवेदन किया कि प्राग्ज्योतिषेश्वर कुमार द्वारा भेजा हुआ हंसवेग नामक दूत आया है। हर्ष ने उसे बुलाया। दूत ने आकर आभोग नामक आतपत्र उन्हें अर्पित किया। उसने हर्ष से कुमार का सन्देश भी कहा—प्राग्ज्योतिषेश्वर आपके साथ उसी प्रकार की मित्रता चाहते हैं, जिस प्रकार दशरथ की इन्द्र के साथ और धनञ्जय की कृष्ण के साथ थी। हर्ष ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होंने प्रातःकाल प्रभूत उपहार देकर दूत के साथ हंसवेग को विदा किया।

कुछ समय के बाद भण्डि कुछ कुलपुत्रों के साथ राजद्वार पर आया और घोड़े से उतरकर राजमन्दिर के भीतर गया। दूर से ही आक्रन्दन करता हुआ वह हर्ष के चरणों पर गिर पड़ा। हर्ष ने उसे उठाकर गले से लगाया और बहुत देर तक रोते रहे। भण्डि ने सूचना दी कि देव राज्यवर्धन के दिवंगत हो जाने पर गुप्त ने कुशस्थल (कान्यकुब्ज) पर अधिकार कर लिया और राज्यश्री कारागार से निकलकर परिवार-सहित विन्ध्याटवी में चली गयी हैं। उनका पता लगाने के लिए बहुत से आदमी भेजे गये, किन्तु वे अभी तक नहीं लौटे। हर्ष ने स्वयं राज्यश्री को खोजने का निश्चय किया और भण्डि को सेना लेकर गौड की ओर चलने का आदेश दिया। दूसरे दिन उषःकाल में हर्ष ने राज्यवर्धन द्वारा जीती गयी मालवराज की सेना देखी। सेना में बहुत-से हाथी और घोड़े थे। हर्ष ने बालव्यजन, सिंहासन, शयनासन आदि सामग्रियाँ देखीं। दूसरे दिन बहन को ढूंढ़ने के लिए चल पड़े और कुछ ही प्रयाणकों के बाद विन्ध्याटवी में पहुँच गये। प्रवेश करते ही उन्होंने एक गाँव देखा।

अष्टम उच्छ्वास

हर्षवर्धन कई दिन तक वन में घूमते रहे। एक दिन आटविक सामन्त शरभकेतु का पुत्र व्याघ्रकेतु एक शबर युवक को लेकर हर्ष के पास आया। शबर युवक का नाम निर्घात था। हर्ष ने उससे पूछा—तुम इस प्रदेश को जानते हो। क्या सेनापति या उसके किसी अनुजीवी ने किसी सुन्दर स्त्री को इधर देखा है। निर्घात ने निवेदन किया—

इस प्रकार की नारी तो नहीं दिखाई पड़ी, किन्तु शीघ्र ही अन्वेषण करने का प्रयत्न होगा। यहाँ से एक कोस की दूरी पर दिवाकरमित्र नामक भिक्षु गिरिनदी के किनारे पर रहते हैं। शायद वे समाचार जानते हों। हर्ष ने भिक्षु के स्थान का मार्ग पूछा। शबर ने मार्ग बताया। मार्ग में अनेक वस्तुओं को देखते हुए हर्ष दिवाकरमित्र के आश्रम में पहुँचे। उन्होंने वहाँ तपश्चर्या के तत्त्व दिवाकरमित्र को देखा। स्थान अनेक सम्प्रदायों के आचार्यों से मण्डित था। दिवाकरमित्र ने हर्ष का वहुत सम्मान किया। हर्ष द्वारा राज्यश्री के विषय में पूछे जाने पर दिवाकरमित्र ने कहा—धीमन्, इस प्रकार का वृत्तान्त अभी तक हमें नहीं प्राप्त हुआ है। उसी समय एक भिक्षु ने आकर दिवाकरमित्र से कहा—भगवन्, प्रवल व्यसन से अभिभूत एक स्त्री अग्नि में प्रवेश करने जा रही है। हर्ष, दिवाकरमित्र आदि उस स्थान पर पहुँचे। हर्ष ने अग्नि में प्रवेश करने के लिए उद्यत राज्यश्री को देखा। उन्होंने मूर्च्छा के कारण बन्द नेत्रों वाली राज्यश्री के ललाट को हाथ से पकड़ लिया। भाई और बहन के मिलन का यह दृश्य अत्यन्त करुणामय था।

दिवाकरमित्र ने हर्ष को मन्दाकिनी नामक एकावली दी। राज्यश्री ने काषाय ग्रहण करने के लिए हर्ष से आज्ञा माँगी। इसे सुनकर हर्ष चुप रहे। इस पर आचार्य दिवाकरमित्र ने वहुत ही सुन्दर उपदेश दिया। उनके चुप हो जाने पर हर्ष ने कहा कि जव तक मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर लूँ और पिता की मृत्यु से दुःखित प्रजा को आश्वस्त न कर लूँ, तव तक राज्यश्री मेरे समीप रहे और आप धार्मिक कथाओं और उपदेशों से इसे प्रतिवोधित करते रहें। जब मैं अपना कार्य पूरा कर लूँगा, तव यह मेरे साथ काषाय ग्रहण करेगी। दिवाकरमित्र ने अपनी स्वीकृति दे दी। राजा ने वह रात वहीं व्यतीत की। प्रातःकाल वसन, अलंकार आदि देकर निर्घात को विदा किया और बहन को लेकर आचार्य के साथ गंगा के तट पर स्थित शिविर को लौट आये। सूर्य अस्त हो गया और आकाश में चन्द्रमा दिखायी पड़ने लगा।

कादम्बरी का कथानक

वाणभट्ट कादम्बरी का प्रारम्भ अजन्मा परमात्मा के प्रति नमस्कार से करते हैं। इसके वाद शिव की चरण-रज की वन्दना करते हैं। तदनन्तर विष्णु की वन्दना करके अपने गुरु भत्सु के चरणों को नमस्कार करते हैं। अव दुर्जनों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा करते हैं। इसके वाद अभिनव वधू से कथा की तुलना करते हुए सुन्दर कथा के लिए अपेक्षित तत्त्वों का वर्णन करते हैं। तत्पश्चात् वात्स्यायन वंश में उत्पन्न कुबेर की चर्चा करते हैं और उनके वैदुष्य का उल्लेख करते हैं। अव अर्थपति और अपने पिता चित्रभानु की महिमा का निरूपण करते हैं। अन्त में अपना उल्लेख करते हैं। इसके वाद वाण कथा प्रारम्भ करते हैं।

शूद्रक नामक अत्यधिक प्रतापी राजा था। वह यज्ञों का कर्त्ता, शास्त्रों का आदर्श, कलाओं का उत्पत्तिस्थल, गुणों का आश्रयस्थान, गोष्ठियों का प्रवर्तक तथा रसिकों का आश्रय था। वेत्रवती नदी से परिगत विदिशा नामक नगरी उसकी राजधानी थी।

प्रवुद्ध अमात्यों से वह घिरा रहता था। लावण्ययुक्त और हृदय को आकृष्ट करने वाली स्त्रियों के रहने पर भी संगीत, काव्य-प्रवन्ध-रचना, मृगया-व्यापार आदि के द्वारा वह मनोविनोद करता था।

एक दिन प्रातःकाल प्रतीहारी ने आकर राजा से निवेदन किया कि एक चाण्डाल-कन्यका पिंजड़े में एक तोता लेकर आयी है। वह द्वार पर खड़ी है और देव का दर्शन करना चाहती है। राजा ने उसे बुलाने की आज्ञा दी। चाण्डालकन्यका ने प्रवेश करते समय दूर से ही राजा को देखा और उसका ध्यान आकृष्ट करने के लिए वेणुलता से सभाकुट्टिम का एक वार ताड़न किया। राजा उसे देखकर अत्यन्त विस्मित हो गया। उसके पीछे एक चाण्डाल-वालक था, जो पिंजड़ा लिए हुए था। उसके आगे एक मातंग था, जिसके केश श्वेत हो गये थे। वह कन्यका अतीव सुन्दर थी, उसका लावण्य अक्षत था। चाण्डालकन्यका ने राजा को प्रणाम किया। इसके वाद शुक को लेकर कुछ आगे वढ़कर उस मातंग ने राजा से निवेदन किया—'देव, यह शुक सभी शास्त्रों के तात्पर्य को समझता है, राजनीति के प्रयोग में कुशल है, सुभापितों का अध्येता तथा स्वयं उनकी रचना करने वाला है। यह वैशम्पायन शुक समस्त भूतल का रत्न है। आप इसे स्वीकार करें। ' यह कहकर राजा के सामने पिंजड़ा रखकर दूर हट गया। विहंगराज ने अपने दाहिने चरण को उठाकर अतिस्पष्ट वाणी में जयशब्द का उच्चारण किया और राजा के विषय में एक आर्या पढ़ी।

राजा आर्या सुनकर अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न हुए। मध्याह्न के समय वे चाण्डालकन्या को विश्राम करने के लिए और ताम्वूलकरंक-वाहिनी को वैशम्पायन को भीतर ले जाने के लिए स्वयं आदेश देकर राजपुत्रों के साथ घर के भीतर चले गये। उन्होंने स्नान किया और सूर्य को जलाञ्जलि देकर पशुपति की पूजा की। इसके वाद उन्होंने भोजन किया। तदनन्तर वे आस्थान-मण्डप में गये। उन्होंने प्रतीहारी को अन्तःपुर से वैशम्पायन को ले आने के लिए आदेश दिया। वैशम्पायन के आने पर उन्होंने कथा कहने के लिए कहा। वैशम्पायन ने सोचकर कहा—देव, यह कथा वड़ी लम्वी है। यदि कुतूहल है, तो सुनिए।

शुक द्वारा कही हुई कथा

वृक्षों से शोभित विन्ध्य नामक वनस्थली है। वहाँ एक आश्रम था, जहाँ अगस्त्य, लोपामुद्रा और दृढदस्यु रहते थे। वहाँ भगवान् राम ने भी सीता और लक्ष्मण के साथ कुछ काल तक निवास किया था। उस आश्रम के समीप ही पम्पा नामक सरोवर है। पम्पा सरोवर के पश्चिमी तट पर एक अतिविशाल सेमर का वृक्ष था। उस वृक्ष पर अनेक पक्षी घोंसला बनाकर रहते थे। मेरे पिता एक जीर्ण कोटर में मेरी माता के साथ रहते थे। उनकी वृद्धावस्था में मैं ही एकमात्र पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रसव-वेदना से अभिभूत मेरी माता परलोक चली गयी। वृद्ध पिता ने मेरा पालन-पोषण किया।

एक दिन प्रातःकाल मृगया-कोलाहल की ध्वनि सुनायी पड़ी। उसे सुनकर मैं काँपने लगा और भय से विह्वल होकर समीपस्थित पिता के शिथिल पंखों के भीतर घुस गया। मृगयासक्त लोगों के कोलाहल ने कानन को क्षुब्ध कर दिया। करिणियों के चीत्कार से, धनुषों के निनाद से, कुत्तों के शब्द से वह अरण्य काँप-सा उठा। कुछ समय के बाद मृगया-कलकल शान्त हो गया। उस समय मेरा भय कुछ कम हो गया। जब मैं पिता की गोद से थोड़ा बाहर निकल कर देखने लगा, तब शबरों की सेना दिखायी पड़ी। वह वन को अन्धकारित कर रही थी। उसके मध्य में मातंग नामक सेनापति था। उसका नाम मुझे बाद में ज्ञात हुआ। सेनापति ने शाल्मली वृक्ष की छाया में विश्राम किया। थोड़े समय के बाद वह चला गया। शबरों की सेना में एक वृद्ध शबर था। वह कुछ देर तक उस वृक्ष के नीचे रुका रहा। सेनापति के ओझल हो जाने पर वह वृक्ष पर चढ़ गया और शुक-शावकों को मार-मार कर भूमि पर गिराने लगा। पिता ने स्नेहवश मुझे अपने पंखों से आच्छादित कर लिया। वह पापी एक शाखा से दूसरी शाखा पर चढ़ता हुआ मेरे कोटर के द्वार पर आया। उसने पिता जी को मार डाला। मैं पंखों के बीच छिप गया था, अतएव वह मुझे न देख सका। उसने मृत पिता को भूतल पर गिरा दिया। मैं भी चुपचाप उनकी गोद में छिपा हुआ उन्हीं के साथ भूमि पर गिरा। पुण्य के अवशिष्ट रहने के कारण मैं सूखे पत्तों पर गिरा। शबर के नीचे उतरने के पहले ही मैं समीप के तमाल वृक्ष की जड़ में घुस गया। वह शबर भूमि पर उतरा और भूमि पर पड़े हुए शुक-शिशुओं को लेकर उसी ओर चला गया, जिस ओर सेनापति गया था। मुझे जीवन की आशा मिली। सभी अङ्गों को सन्तप्त करने वाली पिपासा ने मुझे परवश कर दिया। मैं अपनी कन्धरा को कुछ उठाकर चकित दृष्टि से देखता हुआ तृण के भी हिलने पर उस पापी के लौट आने की उत्प्रेक्षा करता हुआ उस तमालवृक्ष की जड़ से निकलकर जल के समीप जाने का प्रयत्न करने लगा। मैं बार-बार मुख के बल गिर पड़ता था और दीर्घ साँस ले रहा था। उस समय मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ—अत्यन्त कष्टकारक अवस्था में भी प्राणी जीवन के प्रति निरपेक्ष नहीं होता। इस संसार में सभी प्राणियों के लिए जीवन के अतिरिक्त कोई भी वस्तु अभिमततर नहीं है। मैं अत्यधिक अकृतज्ञ हूँ, अतिनिष्ठुर हूँ, अकरुण हूँ, जो पिता जी के मर जाने पर भी साँस ले रहा हूँ। मेरे प्राण अतिकृपण हैं, जो उपकारी पिता का अनुगमन नहीं कर रहे हैं।

उस समय सूर्य तप रहा था। मेरे अङ्ग प्रवल पिपासा के कारण अवसन्न थे, अतः चलने में अत्यन्त असमर्थ थे। उस समय जावालि के पुत्र हारीत उस कमलसरोवर में स्नान करने के लिए आये। उस अवस्था में मुझे देखकर उन्हें दया आयी। उन्होंने समीपवर्ती ऋषिकुमार को मुझे सरोवर के समीप ले चलने के लिए आदेश दिया। सरोवर के तट पर पहुँच कर उन्होंने अपने कमण्डलु और दण्ड को एक ओर रख दिया और मुझे जल की कुछ बूँदें पिलायीं। उससे मुझमें चेतना का सञ्चार हुआ। स्नान करने के बाद वे मुझे लेकर तपोवन में चले गये। मैंने अत्यन्त रमणीय आश्रम को देखा।

वहाँ मैंने जाबालि ऋषि को देखा। उनकी तपस्या के प्रभाव से मैं अत्यन्त विस्मित हो गया। आश्रम में शान्ति का साम्राज्य था। ऋषि विद्याओं के अगार और पुण्य की राशि थे। मुझे एक अशोक वृक्ष की छाया में रखकर हारीत ने पिता के चरणों को पकड़ कर अभिवादन किया और पिता के समीपवर्ती कुशासन पर बैठ गये। मुझे देखकर मुनियों ने हारीत से मेरे विषय में पूछा। उन्होंने कहा कि जब मैं स्नान करने के लिए गया था, तब कमलिनी सरोवर के तट पर स्थित वृक्ष के घोंसले से गिरे हुए आतपक्लान्त इस शुकशिशु को देखा। दूर से गिरने के कारण इसका शरीर व्याकुल था। इसको इसके घोंसले में न रख सका, अतः लेता आया। जब तक पंखे न निकल आयें और उड़ने में समर्थ न हो जाय, तब तक आश्रम के किसी तरुकोटर में रहे और मुनियों द्वारा लाये गये नीवारकणों से तथा फलों के रस से सम्पुष्ट होता हुआ जीवन धारण करे। अनाथों का परिपालन हमारा धर्म है। पंखों के निकल आने पर जहाँ इसकी इच्छा होगी, वहाँ चला जायगा अथवा परिचय हो जाने से यहीं रहेगा। मेरे विषय में इस प्रकार के आलाप को सुनकर भगवान् जाबालि को कुतूहल हुआ। उन्होंने अपनी कन्धरा को थोड़ा आवर्जित करके अतिप्रशान्त दृष्टि से देर तक मुझे देख कर कहा—अपने ही अविनय का फल भोग रहा है।' यह सुनकर ऋषियों को कुतूहल हुआ। उन्होंने जाबालि से मेरे पूर्वजन्म के विषय में कहने के लिए प्रार्थना की। महामुनि जाबालि ने कहा—यह आश्चर्यमय कथा बड़ी लम्बी है। दिन थोड़ा अवशिष्ट है। मेरे स्नान का समय समीप है। आप लोग भी उठें और दैनिक कृत्य करें। अपराह्ण समय में जब आप लोग फलाहार करने के पश्चात् विश्वस्त होकर बैठेंगे, तब इसके विषय में निवेदन करूँगा। मेरे कहने पर इसे पूर्वजन्म के वृत्तान्त का पूर्णतः स्मरण हो जायगा। यह कहकर जाबालि ने ऋषियों के साथ स्नान आदि दैनिक कृत्य का सम्पादन किया। उसी समय दिन ढल गया। जब आधा पहर रात बीत गयी, तब हारीत मुझे लेकर मुनियों के साथ पिता के पास गये। उन्होंने पिता से मेरे विषय में कहने के लिए निवेदन किया। जाबालि ने कहा—यदि कुतूहल है, तो सुनिए।

जाबालि द्वारा कही हुई कथा

अवन्ती में उज्जयिनी नाम की नगरी थी। वह सिप्रा से घिरी थी। उसमें ऊँचे-ऊँचे प्रासाद थे। वह समृद्धि से परिपूर्ण थी। वहाँ तारापीड नामक राजा राज्य करता था। वह बहुत प्रतापी था। उसके सामने सभी राजा अपना किरीट झुका देते थे। राजा तारापीड का मन्त्री शुकनास था। वह नीतिशास्त्र के प्रयोग में कुशल तथा सभी शास्त्रों में पारंगत था। वह धैर्य का धाम, सत्य का सेतु, आचारों का आचार्य था।

राजा ने शुकनास को राज्य का भार सौंप कर चिरकाल तक यौवन के सुख का अनुभव किया। जैसे-जैसे उसका यौवन वीतता जाता था और कोई सन्तान न होती थी, वैसे-वैसे उसका सन्ताप बढ़ता जाता था।

विलासवती उसकी प्रधान महिषी थी। एक दिन राजा जब विलासवती के पास

पहुँचा, तो वह रो रही थी। राजा ने उससे रोने का कारण पूछा, किन्तु उसने कुछ भी उत्तर न दिया। तब राजा ने परिजनों से पूछा। इस पर रानी की ताम्बूलकरङ्कवाहिनी मकरिका ने राजा से कहा कि पुत्र न उत्पन्न होने के कारण रानी सन्तप्त हैं। महारानी चतुर्दशी के दिन महाकाल की अर्चना करने के लिए गयी थीं। वहाँ महाभारत की कथा हो रही थी। उन्होंने सुना कि पुत्रहीन लोगों को शुभ लोक नहीं मिलते। मुहूर्त भर रुक कर दीर्घ तथा उष्ण श्वास लेकर राजा ने कहा—देवि दैवाधीन वस्तु के विषय में क्या किया जा सकता है। जो मनुष्यों की शक्ति में है, वह सब करो। गुरुओं के प्रति अधिक भक्ति बढ़ाओ, देवों की पूजा करो, ऋषिजनों की सपर्या करो। यदि यत्नपूर्वक ऋषियों की आराधना की जाय, तो वे दुर्लभ वर प्रदान करते हैं।

विलासवती राजा के कथन के अनुसार ब्राह्मण-पूजा, गुरुजन-सपर्या आदि में लग गयी। एक बार राजा ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न में विलासवती के मुख में चन्द्रमा को प्रविष्ट होते देखा। जागने पर उसने शुकनास को बुलाकर स्वप्न की चर्चा की। शुकनास ने कहा—स्वामी शीघ्र ही पुत्र का मुखकमल देखेंगे। मैंने भी स्वप्न में देखा कि मनोरमा की गोद में एक ब्राह्मण पुण्डरीक रख रहा है। मन्त्री शुकनास के साथ भवन में जाकर राजा ने दोनों स्वप्नों से विलासवती को आनन्दित किया।

कतिपय दिवसों के बाद देवी विलासवती ने गर्भ धारण किया। कुलवर्धना नामक दासी ने इस वृत्तान्त को राजा से कहा। राजा इस वृत्तान्त से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसके अवयव मानो अमृतरस से सिक्त हो गये। उचित समय पर राजा के पुत्र हुआ। उसके बाद शुकनास को भी पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। राजा ने अपने पुत्र का नाम चन्द्रापीड रखा और शुकनास ने अपने पुत्र का नाम वैशम्पायन। चन्द्रापीड के चूडाकरण आदि संस्कार क्रमशः सम्पन्न किये गये। जब उसकी शैशवावस्था व्यतीत हो गयी, तब राजा ने उसके शिक्षण के लिए एक विद्यामन्दिर का निर्माण कराया। तदनन्तर अखिल विद्याओं में पारंगत होने के लिए राजा ने वैशम्पायन के साथ चन्द्रापीड को आचार्यों को सौंप दिया।

चन्द्रापीड शीघ्र ही सभी विद्याओं में पारंगत हो गया। पद, वाक्य, प्रमाण, धर्मशास्त्र आदि में उसे अत्यधिक कुशलता प्राप्त हो गयी। महाप्राणता को छोड़कर अन्य सभी कलाओं में वैशम्पायन ने चन्द्रापीड का अनुगमन किया। सहक्रीडन और सहसंवर्धन के कारण वैशम्पायन चन्द्रापीड का विस्रम्भस्थानीय मित्र हो गया।

अध्ययन के समाप्त हो जाने पर चन्द्रापीड को विद्यामन्दिर से ले आने के लिए राजा ने बलाहक नामक सेनापति को भेजा। राजा ने उसके साथ इन्द्रायुध नामक घोड़े को भेजा था। घोड़े को देखकर चन्द्रापीड विस्मित हो गया। चन्द्रापीड उस घोड़े पर चढ़ कर वैशम्पायन के साथ नगर में आया। उसे देखकर नगरवासी प्रफुल्लित हो उठे। राजद्वार पर पहुँच कर चन्द्रापीड तुरङ्ग से उतर पड़ा। इसके बाद अपने पिता और माता का दर्शन किया। राजकुल से निकल कर वह मन्त्री शुकनास से मिला।

इसके बाद वह पिता द्वारा पहले से ही निर्धारित अपने भवन में गया। रात्रि में वह अपने पिता और माता से पुनः मिला। उसने रात्रि अपने भवन में व्यतीत की।

विलासवती ने कुलूतेश्वर की पुत्री पत्रलेखा को ताम्बूलकरंकवाहिनी के रूप में उसे अर्पित किया। धीरे-धीरे पत्रलेखा चन्द्रापीड की कृपापात्र बन गयी।

कुछ समय के बीतने पर तारापीड ने चन्द्रापीड के यौवराज्याभिषेक का निश्चय किया। शुकनास ने चन्द्रापीड को राजनीति का उपदेश दिया। शुभ दिन में चन्द्रापीड का यौवराज्याभिषेक हुआ। इसके बाद चन्द्रापीड दिग्विजय यात्रा के लिए निकल पड़ा। तीन वर्षों में उसने समस्त जगतीतल को अपने अधीन कर लिया। वसुधा की प्रदक्षिणा करके भ्रमण करते हुए उसने किरातों के निवासस्थान सुवर्णपुर को जीत लिया। वहाँ वह अपनी सेना के विश्राम के लिए कुछ दिनों तक रुक गया।

एक दिन चन्द्रापीड ने किन्नर-मिथुन को देखा। कुतूहलवश उसने दूर तक पीछा किया। वह मुहूर्त-भर में पन्द्रह योजन तक चला गया। उसके देखते ही वह किन्नर-मिथुन पर्वत के शिखर पर चढ़ गया। इसके बाद घोड़े को मोड़कर जलाशय की खोज करता हुआ वह अच्छोद-सरोवर पर जा पहुँचा। जलाशय में स्नान करके बाहर निकला और कमलिनीपत्रों का बिछौना बिछा कर विश्राम करने लगा। उस समय उसे संगीत की ध्वनि सुनायी पड़ी। ध्वनि का अनुसरण करता हुआ वह शिव मन्दिर के पास पहुँचा। उसने वहाँ एक कन्या देखी। वह अत्यन्त सुन्दर थी। समीप का प्रदेश उसके तेज:पुञ्ज से प्रकाशित हो रहा था।

वह वीणा बजाकर शिव की स्तुति कर रही थी। चन्द्रापीड घोड़े से उतर गया। उसने घोड़े को वृक्ष की शाखा में बाँध दिया। मन्दिर में जाकर उसने भक्ति से शिव को प्रणाम किया और निर्निमेष नेत्रों से दिव्यकन्या को देखने लगा। वह उसकी रूप-सम्पत्ति को देखकर विस्मित हो गया। उस कन्यका से उसके विषय में पूछने की इच्छा से गीत की समाप्ति के अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ रुका रहा। गीत के समाप्त हो जाने पर चन्द्रापीड को देखकर उस दिव्यकन्यका ने चन्द्रापीड से आतिथ्य स्वीकार करने के लिए कहा। चन्द्रापीड ने उसका आतिथ्य स्वीकार कर लिया। उन दोनों ने फलाहार किया। जब वह कन्या शिलातल पर विश्रब्ध होकर बैठी, तब चन्द्रापीड ने सविनय उससे उसका वृत्तान्त पूछा। वह मुहूर्त्त भर चुप रही और फिर रोने लगी। चन्द्रापीड मुख धोने के लिए झरने से जल ले आया। नेत्रों को धोकर तथा वल्कल-प्रान्त से मुँह पोंछकर वह धीरे-धीरे बोली।

महाश्वेता द्वारा कही हुई कथा

अप्सराओं के चौदह कुल हैं। उनमें दो कुल गन्धर्वों के हैं—एक दक्ष की कन्या मुनि से तथा दूसरा दक्ष की कन्या अरिष्टा से उत्पन्न हुआ है। मुनि का पुत्र चित्ररथ अधिक गुणी हुआ। द्वितीय गन्धर्व कुल में अरिष्टा के छः पुत्रों में श्रेष्ठ हंस नामक गन्धर्व हुआ। चन्द्रमा से उत्पन्न अप्सराओं के कुल में गौरी नाम की कन्या उत्पन्न हुई। हंस

ने गौरी से विवाह किया। मैं उनकी पुत्री हूँ। मैं अपनी माता के साथ एक दिन इस अच्छोदसरोवर में स्नान करने के लिए आयी। विचरण करते हुए मैंने तीव्र सुगन्ध का अनुभव किया। उससे आकृष्ट होकर जब मैं आगे बढ़ी, तो दो मुनि-कुमारों को देखा। उनमें से एक के कान में कुसुममञ्जरी थी। मैं समझ गयी कि सुगन्ध कुसुममञ्जरी की ही थी। उस मुनिकुमार की सुन्दरता ने मुझे अत्यधिक प्रभावित कर दिया। मैंने उसे प्रणाम किया। अनङ्ग ने उसे भी चञ्चल कर दिया। मैंने मुनिकुमार के सहचर से मुनिकुमार तथा कुसुममञ्जरी के विषय में पूछा।

उसने कहा—श्वेतकेतु नामक मुनि हैं। एक दिन वे देवपूजन के निमित्त कमलपुष्प का चयन करने के लिए गंगा के जल में उतरे। उतरते समय उन्हें सहस्रदल-युक्त पुण्डरीक पर बैठी हुई लक्ष्मी ने देखा। उनको देखते ही लक्ष्मी का मन काम के वेग से विकृत हो गया। आलोकनमात्र से ही उन्हें सुरत-समागम का सुख मिला और वे जिस पुण्डरीक पर बैठी थीं, उसी पर बीजपात हो गया। उससे कुमार उत्पन्न हुआ। उसे उत्संग में लेकर लक्ष्मी श्वेतकेतु के पास पहुँची और 'भगवन्, यह आपका पुत्र है, इसे ग्रहण कीजिए' कहकर उसे श्वेतकेतु को समर्पित कर दिया। श्वेतकेतु ने पुत्र का नाम पुण्डरीक रखा। नन्दनवनदेवी ने पुण्डरीक को पारिजातकुसुम की मञ्जरी दी। वह मञ्जरी पुण्डरीक के कान में विराजमान है। उसकी गन्ध फैल रही है। मित्र के इस प्रकार कहने पर पुण्डरीक ने मञ्जरी को मेरे कान में पहना दिया। मेरे कपोल के संस्पर्श से उसकी अँगुलियाँ काँपने लगीं और उसके करतल से अक्षमाला गिर पड़ी। वह भूमि पर पहुँच नहीं पायी थी कि मैंने उसे पकड़ लिया और अपने कण्ठ में डाल लिया। उसी समय छत्रग्राहिणी ने आकर मुझसे कहा कि अब घर चलने का समय हो रहा है, अतः स्नान कर लीजिए। मैं अत्यधिक कठिनता से अपनी दृष्टि उधर से हटाकर स्नान करने के लिए चल पड़ी। उस समय प्रणय-कोप प्रकट करते हुए उस द्वितीय मुनिकुमार ने कहा—मित्र पुण्डरीक, यह आपके अनुरूप नहीं है। यह क्षुद्रजनों का मार्ग है। आप प्राकृत जन की भाँति विकल होते हुए अपने को रोकते क्यों नहीं? करतल से गिरी हुई अक्षमाला का भी आपको ज्ञान न रहा। इस अनार्य-कन्या द्वारा आकृष्ट किये जाते हुए अपने हृदय को रोकिए। उसके ऐसा कहने पर पुण्डरीक लज्जित हुआ। उसने मुझसे अपनी अक्षमाला माँगी। मैंने अपने कण्ठ से एकावली उतार कर उसे अर्पित कर दी। इसके बाद स्नान करके मैं किसी प्रकार घर आयी।

मेरी ताम्बूलकरंकवाहिनी तरलिका ने मुझे पुण्डरीक का पत्र दिया। उसे पढ़कर मैं अत्यधिक आनन्दित हुई।

सूर्यास्त के समय छत्रग्राहिणी ने आकर कहा कि उन दोनों ऋषिकुमारों में से एक द्वार पर खड़ा है और अक्षमाला माँग रहा है। मैंने उसे भीतर ले आने के लिए कञ्चुकी को आदेश दिया। भीतर आकर मुनिकुमार कपिञ्जल ने बताया कि पुण्डरीक काम-पीडित है और उसकी अवस्था शोचनीय हो गयी है। उस समय मेरी माता मुझे देखने

के लिए आयीं और कपिञ्जल उठकर चला गया। जब माता जी मेरे पास से चली गयीं, तब मैंने तरलिका से बात की और पुण्डरीक से मिलने के लिए चल पड़ी। ज्योंही मैं चली, त्योंही मेरी दाहिनी आँख फड़कने लगी। जब मैं पुण्डरीक के स्थान के समीप पहुँची, तब मैंने कपिञ्जल के रोने की ध्वनि सुनी। समीप पहुँचकर मैंने देखा कि पुण्डरीक मर चुका है। उस समय मैंने बहुत विलाप किया। इतना कहकर महाश्वेता मूच्छित हो गयी। चन्द्रापीड ने उसे संभाला। जब महाश्वेता को चेतना आयी, तो चन्द्रापीड ने उससे कथा न कहने के लिए निवेदन किया। महाश्वेता ने कहा—'महाभाग, जब उस दारुण रात्रि में मेरा प्राण न निकला, तो अब नहीं निकलेगा।'

महाश्वेता ने पुनः कथा प्रारम्भ की। उसने बताया कि मैंने तरलिका से चिता बनाने के लिए कहा। उसी समय चन्द्रमण्डल से निकल कर एक दिव्याकृति पुरुष नीचे आया और पुण्डरीक का मृत शरीर लेकर आकाश में चला गया। उसने कहा—वत्से महाश्वेते, प्राण का परित्याग न करना। पुण्डरीक के साथ पुनः तुम्हारा मिलन होगा। पुण्डरीक भी उस दिव्य पुरुष का पीछा करता हुआ आकाश में उड़ गया। मैंने वहीं रहकर तपस्या करने का निश्चय किया। चन्द्रापीड ने महाश्वेता से कहा कि एक प्रेमी के प्रति जो कुछ किया जा सकता है, उसे आपने किया। आपको अनुमरण का विचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह क्षुद्रों का मार्ग है, मोह का विलास है, अज्ञान की पद्धति है। अनुमरण से न तो मरे हुए का कोई लाभ होता है और न तो मरनेवाले का ही। पृथा, उत्तरा, दुःशला आदि ने भी अनुमरण के मार्ग का अनुसरण नहीं किया। इस प्रकार महाश्वेता को उन्होंने समझाया। इसी समय सूर्य अस्त हो गया। कुछ समय के बाद चन्द्रापीड ने महाश्वेता से पूछा कि तरलिका कहाँ है? महाश्वेता ने निवेदन किया—महाभाग, अप्सराओं का जो कुल अमृत से उत्पन्न हुआ, उसी में मदिरा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। उसका विवाह गन्धर्व चित्ररथ के साथ हुआ। उनसे कादम्बरी नामक कन्या पैदा हुई। वह बाल्यावस्था से ही मेरी सखी हो गयी। जब उसने मेरा वृत्तान्त सुना, तो निश्चय कर लिया कि जब तक महाश्वेता शोकावस्था में रहेगी, तब तक मैं विवाह नहीं करूँगी। गन्धर्व चित्ररथ ने क्षीरोद नामक कञ्चुकी से कहला भेजा—वत्से महाश्वेते, एक तो तुम्हारे ही दुःख से हम लोगों का हृदय जल रहा है, दूसरी ओर कादम्बरी का निश्चय हमें सन्तप्त कर रहा है। कादम्बरी को समझाने में तुम्हीं समर्थ हो। मैंने भी तरलिका के हाथ कादम्बरी के पास सन्देश भेजा है।

दूसरे दिन तरलिका वीणावादक केयूरक के साथ लौटी। केयूरक ने कादम्बरी का निश्चय महाश्वेता को बता दिया। महाश्वेता ने कहा तुम जाओ। मैं स्वयं आकर जो उचित होगा, वह करूँगी। जब केयूरक चला गया, तब महाश्वेता ने चन्द्रापीड से कहा—राजपुत्र, यदि कष्ट न हो, तो हेमकूट चलकर मेरी सखी कादम्बरी को देखकर लौट आइए। चन्द्रापीड ने स्वीकार कर लिया। चन्द्रापीड महाश्वेता के साथ हेमकूट पहुँचा। महाश्वेता ने कादम्बरी को चन्द्रापीड का परिचय दिया। कादम्बरी ने उसका

बहुत सम्मान किया। चन्द्रापीड और कादम्बरी प्रथम दर्शन में ही एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हो गये।

महाश्वेता कादम्बरी की माता और पिता को देखने के लिए गयी और चन्द्रापीड क्रीडापर्वतस्थ मणिमन्दिर में गया। कादम्बरी ने चन्द्रापीड के पास उपहार-स्वरूप एक हार भेजा। वह प्रभा की वर्षा कर रहा था। कादम्बरी के घर पर कुछ दिनों तक रुककर चन्द्रापीड महाश्वेता के आश्रम में लौट आया। वहाँ इन्द्रायुध के खुर-चिह्नों का अनुसरण करके आये हुए अपने स्कन्धावार को देखा। वैशम्पायन तथा पत्नलेखा के साथ महाश्वेता, कादम्बरी, मदलेखा, तमालिका तथा केयूरक के विषय में चर्चा करते हुए उसने दिन व्यतीत किया। दूसरे दिन प्रतीहार के साथ प्रविष्ट होते हुए उसने केयूरक को देखा। केयूरक ने चन्द्रापीड को शेष नामक हार अर्पित किया। यह चन्द्रापीड की विस्मृति के कारण शय्या पर ही छूट गया था। केयूरक ने कामपीडित कादम्बरी की दशा का वर्णन किया। चन्द्रापीड पत्नलेखा के साथ पुनः हेमकूट पहुँचा। वह कादम्बरी से मिला। पत्नलेखा को कादम्बरी के घर पर छोड़कर स्कन्धावार को लौट आया। वहाँ उसे पिता द्वारा भेजा हुआ लेखहारक मिला। उसने चन्द्रापीड को एक पत्न दिया। चन्द्रापीड ने पत्न स्वयं पढ़ा। तारापीड ने उसे घर पर बुलाया था। शुकनास द्वारा प्रेषित पत्न में भी यही बात लिखी थी। उसी अवसर पर वैशम्पायन ने भी दो पत्न दिये, जिनमें उक्त पत्नों का ही विषय था। चन्द्रापीड ने बलाहक के पुत्न मेघनाद को आदेश दिया—आप पत्नलेखा के साथ आयें, केयूरक निश्चित ही उसे लेकर यहाँ तक आयेगा। उसने कादम्बरी और महाश्वेता को भी सन्देश भेजा। उसने वैशम्पायन को सेना के साथ धीरे-धीरे आने के लिए कहा और स्वयं घोड़े पर चढ़कर अश्वारोहियों के साथ चल पड़ा। सायंकाल वह एक चण्डिकायतन के समीप पहुँचा। वहाँ एक द्रविडधार्मिक रहता था। वह रात्नि में वहीं रुका। प्रातःकाल वहाँ से चल पड़ा और सुन्दर प्रदेशों में रुकता हुआ कुछ ही दिनों में उज्जयिनी पहुँच गया।

तारापीड ने भुजाओं को फैलाकर उसका गाढालिंगन किया। इसके बाद वह विलासवती के भवन में गया। वहाँ दिग्विजय-सम्बन्धी कथाओं की चर्चा करता हुआ कुछ समय तक रुककर शुकनास को देखने के लिए गया। वैशम्पायन का कुशल बताकर तथा मनोरमा से मिलकर विलासवती के भवन में गया। उसने वहाँ स्नान आदि क्रियाएँ सम्पादित कीं। अपराह्ण में अपने भवन में गया।

कुछ दिनों के बाद पत्नलेखा आयी। चन्द्रापीड ने उससे कादम्बरी और महाश्वेता के विषय में पूछा। उसने कादम्बरी की कामजनित व्यथा का वर्णन किया और यह भी कहा कि मैंने कादम्बरी से निवेदन किया है—'देवि, मैं शपथ लेती हूँ। आप मुझे सन्देश देकर भेजें और मैं आपके प्रिय को ले आऊँ।'

भूषणभट्ट द्वारा लिखित उत्तरार्ध

चन्द्रापीड ने तत्नलेखा की बात स्वीकार कर ली। पत्नलेखा के वचन को सुनकर

वह उत्कण्ठित हो उठा। कुछ दिनों के बाद केयूरक आया और उसने कादम्बरी की अत्यधिक प्रवृद्ध काम-जनित पीड़ा का वर्णन किया। चन्द्रापीड सोचने लगा कि मैं हेमकूट जाने का प्रस्ताव पिता जी के सामने कैसे प्रस्तुत करूँ? उसे वैशम्पायन की अनुपस्थिति सताने लगी, क्योंकि यदि वह समीप में होता, तो उचित सलाह देता।

प्रातःकाल चन्द्रापीड ने सुना कि सेना दशपुर तक आ पहुँची है। उसने केयूरक और पत्रलेखा को कादम्बरी के पास चलने के लिए कहा। उसने मेघनाद को बुलाकर कहा—मेघनाद, जहाँ पत्रलेखा को लाने के लिए मैंने तुम्हें छोड़ा था, उसी स्थान तक पत्रलेखा को लेकर केयूरक के साथ चलो। मैं भी वैशम्पायन से मिलकर तुम्हारे पीछे ही अश्वसेना के साथ आ रहा हूँ। तारापीड चन्द्रापीड के विवाह के विषय में सोचने लगा। चन्द्रापीड ने विचार किया कि यदि इस समय वैशम्पायन आ जाय तो कादम्बरी के साथ मेरा विवाह सम्भव हो सके।

चन्द्रापीड वैशम्पायन से मिलने के लिए चल पड़ा। जब वह स्कन्धावार में पहुँचा और उसे ज्ञात हुआ कि वैशम्पायन नहीं है, तो अत्यन्त विकल हो उठा। पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि वैशम्पायन अच्छोदसरोवर में स्नान करने और शिव की पूजा करने के लिए गया था। उस स्थान को देखकर वैशम्पायन की अनिर्वचनीय स्थिति हो गयी। लोगों के समझाने पर भी वह वहाँ से लौटने के लिए उद्यत न हुआ। उसने अपने साथियों से कहा कि आप लौट जायँ। तीन दिन तक उसके साथियों ने उसकी प्रतीक्षा की। अन्त में भोजन आदि का प्रबन्ध करके और परिजनों को सेवा के लिए नियुक्त करके वे चले आये। इससे चन्द्रापीड अत्यन्त दुःखित हुआ और समझ न सका कि वैशम्पायन ने ऐसा क्यों किया। चन्द्रापीड ने पहले विचार किया कि मैं सीधे वैशम्पायन को खोजने के लिए जाऊँ। किन्तु अन्त में उसने निश्चय किया कि पहले मैं उज्जयिनी लौटकर यह सूचित कर दूँ, तदनन्तर वैशम्पायन को खोजने के लिए निकलूँ। यह विचार कर वह चल पड़ा और अपनी सेना के साथ उज्जयिनी में पहुँच गया।

चन्द्रापीड शुकनास के घर पर गया। उस समय उसकी माता और उसके पिता शुकनास के घर पर थे। वैशम्पायन का समाचार सुनकर तारापीड ने कहा—वत्स चन्द्रापीड, मुझे संशय होता है कि इस विषय में तुम्हारा भी दोष है। इस पर शुकनास ने कहा—महाराज, यदि चन्द्रमा में ऊष्मा आ जाय, अग्नि में शीतलता आ जाय, महासागर सूख जाय, तो युवराज में भी दोष आ सकता है। इस विषय में कृतघ्न, मित्रद्रोही वैशम्पायन का ही दोष है, गुणी तथा उदारचरित चन्द्रापीड का नहीं। चन्द्रापीड ने वैशम्पायन को खोजने के लिए आज्ञा माँगी। तारापीड ने उसे आज्ञा दे दी। चन्द्रापीड वैशम्पायन को खोजने के लिए निकल पड़ा।

मार्ग बहुत लम्बा था। वह आधा मार्ग ही पार कर सका था कि वर्षा ऋतु आ गयी। इससे उसे कठिनाई हुई। उसे मार्ग में मेघनाद मिला। चन्द्रापीड ने उससे वैशम्पायन के विषय में पूछा। मेघनाद ने कहा—'देव, जब आपके पहुँचने में देर हुई,

तब पत्रलेखा और केयूरक ने कहा—वर्षाकाल का आरम्भ देखकर कदाचित् तारापीड, विलासवती तथा शुकनास युवराज को आने की अनुमति न दें। इस स्थान पर तुम्हें अकेले नहीं रुकना चाहिए। अब हम लोग प्रायः पहुँच गये हैं। ऐसा कह कर पत्रलेखा और केयूरक ने जहाँ से अच्छोदसरोवर तीन प्रयाण दूर था, यहीं से मुझे लौटा दिया। मेघनाद ने चन्द्रापीड से यह भी कहा कि यदि कोई अन्तराय नहीं उपस्थित हुआ होगा, तो पत्रलेखा पहुँच गयी होगी।

इसके बाद चन्द्रापीड अच्छोदसरोवर के तट पर पहुँचा। वहाँ उसे वैशम्पायन नहीं दिखायी पड़ा। तब उसने महाश्वेता से उसके विषय में पूछने का निश्चय किया। जब चन्द्रापीड ने महाश्वेता को देखा, तो उसकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। चन्द्रापीड के पूछने पर महाश्वेता ने कहा—जब मैं गन्धर्वलोक से लौटी, तो मैंने यहाँ एक ब्राह्मण युवक को देखा। वह मुझसे अनेक प्रकार से प्रेम की बातें करने लगा। मेरे रोकने पर भी दुष्ट मदन के दोष से अथवा अनर्थ की भवितव्यता से उसने अनुबन्ध नहीं छोड़ा। तब मैंने उसे शुकयोनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। वह कटे हुए वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर पड़ा। उसके मर जाने पर रोने वाले सेवकों से मैंने सुना कि वह आपका मित्र था। ऐसा कहकर वह रोने लगी। यह सुनकर चन्द्रापीड का हृदय विदीर्ण हो गया और वह मर गया। तरलिका और चन्द्रापीड के परिजन विलाप करने लगे।

उसी समय कादम्बरी महाश्वेता के आश्रम पर आयी। चन्द्रापीड की दशा देखकर वह अत्यन्त व्याकुल हो गयी। उसने मरने का निश्चय कर लिया। उसी समय चन्द्रापीड के शरीर से एक ज्योति निकली और बाद में आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'वत्से महाश्वेते, तुम्हारे प्रियतम के साथ तुम्हारा समागम अवश्य होगा। चन्द्रापीड का शरीर तेजोमय और अविनाशी है। कादम्बरी के करस्पर्श से वह पुष्ट होगा। उसे न अग्नि में जलाना, न पानी में डालना और न फेंकना। जब तक समागम न हो, तब तक यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करना। यह सुनकर सब विस्मित हो गये। पत्रलेखा ने इन्द्रायुध घोड़े को परिवर्द्धक (साईस) के हाथ से छीन लिया और उसे लेकर अच्छोदसरोवर में कूद पड़ी। कुछ देर बाद अच्छोदसरोवर से कपिञ्जल निकला। उसने महाश्वेता से कहा— मैं उस दिव्य पुरुष का, जो पुण्डरीक का शरीर लिए हुए जा रहा था, पीछा करता हुआ चन्द्रलोक पहुँचा। उस पुरुष ने कहा कि मैं चन्द्रमा हूँ। मुझे पुण्डरीक ने शाप दे दिया कि तुम इस भारतवर्ष में बार-बार जन्म लेकर अपनी प्रिया के समागम का सुख प्राप्त किये बिना ही हृदय की तीव्र वेदना का अनुभव करके जीवन छोड़ोगे। मैंने भी उसे प्रतिशाप दे डाला कि अपने दोष के कारण तुम्हें भी मर्त्यलोक में मेरे ही समान दुःख-सुख का भोग करना पड़ेगा। तुम श्वेतकेतु से यह वृत्तान्त कह दो।

जब मैं वहाँ से आ रहा था, तब आकाश में एक क्रोधी वैमानिक का मुझसे लंघन हो गया। उसने मुझे घोड़ा हो जाने का शाप दे डाला। जब मैंने उससे शाप का संवरण

करने की प्रार्थना की, तो उसने कहा—तुम जिसका वाहन बनोगे, उसकी मृत्यु हो जाने पर जब तुम स्नान करोगे, तब तुम्हारा शाप समाप्त हो जायगा। उसने पुनः मुझसे कहा—'चन्द्रदेव तारापीड के पुत्र के रूप में जन्म लेंगे। तुम्हारा मित्र पुण्डरीक भी तारापीड के मन्त्री शुकनास का पुत्र होगा। तुम राजा के चन्द्रात्मक पुत्र का वाहन बनोगे। उसके वचन के समाप्त होने पर मैं नीचे महोदधि में जा गिरा और घोड़ा बन कर बाहर निकला। घोड़ा हो जाने पर भी मेरी चेतना लुप्त नहीं हुई। इसलिए किन्नरमिथुन का पीछा करते हुए चन्द्रापीड को लेकर मैं यहाँ तक आया था। आपने जिसे शापाग्नि में जला दिया, वह मेरे मित्र पुण्डरीक का अवतार था।' यह सुनकर महाश्वेता विलाप करने लगी। कपिञ्जल ने महाश्वेता को परिबोध दिया।

कादम्बरी ने पत्रलेखा के विषय में पूछा। कपिञ्जल ने कहा—मैं उसका कोई वृत्तान्त नहीं जानता। मैं यह जानने के लिए श्वेतकेतु के पास जा रहा हूँ कि चन्द्रापीड और वैशम्पायन का जन्म कहाँ हुआ है और पत्रलेखा का क्या हुआ? यह कहता हुआ वह आकाश में उड़ गया।

कादम्बरी ने मदलेखा से कहा—शाप की समाप्ति-पर्यन्त चन्द्रापीड के शरीर की रक्षा मुझे करनी होगी। तुम जाकर पिता और माता को इस अद्भुत वृत्तान्त की सूचना दे दो। वर्षाकाल के समाप्त हो जाने पर मेघनाद ने आकर कादम्बरी से कहा—महाराज तारापीड ने चन्द्रापीड का वृत्तान्त जानने के लिए दूत भेजे हैं। उनसे क्या कहा जाय? कादम्बरी ने दूतों के साथ चन्द्रापीड के बालमित्र त्वरितक को भेज दिया। उज्जयिनी जाकर उसने सारा वृत्तान्त कह दिया। वृत्तान्त जानकर राजा तारापीड अपने परिजनों के साथ अच्छोदसरोवर के तट पर जा पहुँचे। वे चन्द्रापीड के शरीर को देखकर आश्वस्त हुए।

इतना कहकर जाबालि ने कहा—शुकनास का पुत्र वैशम्पायन ही महाश्वेता के शाप के कारण शुक हो गया है। यह वही शुक है। यह सुनकर शुक को पूर्वजन्म की बातें याद आ गयीं। शुक ने मुनि से प्रार्थना की—भगवन्, चन्द्रापीड के जन्म के वृत्तान्त को भी बताने की कृपा कीजिए, जिससे उनके साथ रहते हुए मुझे पक्षियोनि में उत्पन्न होने के दुःख का अनुभव न हो सके। महर्षि जाबालि क्रुद्ध होकर बोले—तू पहले उड़ने के योग्य हो जा, तब पूछ लेना।

कुतूहल उत्पन्न होने के कारण हारीत ने पूछा—तात, मैं अत्यधिक विस्मित हूँ। मुनिवंश में उत्पन्न होकर भी यह इतना कामुक कैसे हुआ और दिव्यलोक में जन्म लेकर भी स्वल्प आयु वाला क्यों हुआ? जाबालि ने कहा—वत्स, यह केवल अल्पबलयुक्त स्त्री के वीर्य से उत्पन्न हुआ था, अतः कामुक और क्षीण आयु वाला हुआ।

जाबालि ने यहीं कथा समाप्त कर दी।

कपिञ्जल मुझे खोजता हुआ जाबालि के आश्रम में आया। उसने मुझ से कहा कि तुम्हारे पिता कुशलपूर्वक हैं और तुम्हारे कल्याण के हेतु अनुष्ठान कर रहे हैं। उनका

आदेश है कि जब तक कर्म समाप्त न हो जाय, तब तक तुम मुनि के चरणों के समीप रहो। यह कहकर कपिञ्जल आकाश में उड़ गया।

जब मैं उड़ने के योग्य हो गया, तब एक दिन उत्तर दिशा की ओर उड़ा। मार्ग में मुझे एक व्याध ने जाल में फँसा लिया। उसने मुझे एक चाण्डाल-कन्या को सौंप दिया। चाण्डालकन्या ने मुझे काठ के पिंजड़े में बन्द कर दिया। कुछ समय के व्यतीत होने पर मैं तरुण हो गया। एक दिन प्रातःकाल जब मेरे नेत्र खुले, तो मैंने अपने को सोने के पिंजड़े में बन्द पाया। उसके बाद मैं श्रीमान् के चरणों के समीप लाया गया।

यहीं शुक द्वारा कही हुई कथा समाप्त होती है।

शुक की बात सुनकर शूद्रक की उत्सुकता बढ़ी। उन्होंने चाण्डालकन्या को बुलवाया। उसने राजा से कहा—भुवनभूषण, आपने इस दुर्मति के और अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुन ही लिया। मैं इसकी माता लक्ष्मी हूँ। अब इसके पिता का अनुष्ठान समाप्त हो गया है और इसके शाप के अवसान का समय है। शाप के समाप्त हो जाने पर आप और यह दोनों सुखपूर्वक साथ-साथ रह सकेंगे, इस विचार से ही इसे लेकर आपके समीप आयी हूँ। अतः अब दोनों प्रियजन के समागम का सुख भोगें। यह कहकर वह आकाश में उड़ गयी।

उसके वचन को सुनकर शूद्रक को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया।

उधर महाश्वेता के आश्रम में वसन्तकाल उपस्थित हो गया। कादम्बरी ने चन्द्रापीड के शरीर को अलंकृत किया और उसका आलिंगन किया। कादम्बरी के आलिंगन से चन्द्रापीड जीवित हो उठा। उसी समय पुण्डरीक कपिञ्जल के साथ गगन-मण्डल से भूमि पर उतरा। इस दृश्य को देखकर तारापीड, विलासवती, शुकनास आदि आनन्दविभोर हो उठे। उस अवसर पर चित्ररथ और हंस भी वहाँ आ गये। कादम्बरी का चन्द्रापीड के साथ और महाश्वेता का पुण्डरीक के साथ विवाह हुआ। अब दोनों सुखपूर्वक रहने लगे।

कथासरित्सागर की कथा

कादम्बरी की कथा के सदृश कथा कथासरित्सागर[१] और बृहत्कथामञ्जरी[२] में प्राप्त होती है। बाण ने पात्रों के नामों में परिवर्तन किया है और अपनी कल्पना के पुट से कथा के अनेक पटलों को सम्भूषित किया है। यहाँ कथासरित्सागर में प्राप्त कथा दी जा रही है—

प्राचीनकाल में काञ्चनपुरी नामक नगरी थी। वहाँ सुमना नामक राजा राज्य करता था। एक बार सभा में विराजमान राजा से प्रतीहार ने आकर कहा—देव, मुक्ता-लता नामक निषादाधिप-कन्यका अपने भाई वीरप्रभ के साथ एक पञ्जरस्थ शुक को

१. सोमदेव : कथासरित्सागर, दशम लम्बक, तृतीय तरंग।
२. क्षेमेन्द्र : बृहत्कथामञ्जरी १६।१८३-२४८

लेकर आयी है और द्वार पर खड़ी है। वह आपका दर्शन करना चाहती है। राजा के 'प्रवेश करे' ऐसा कहने पर प्रतीहार के निदेश से उस भिल्लकन्या ने नृपास्थानप्राङ्गण में प्रवेश किया। उसका सौन्दर्य दिव्य था। उसने राजा को प्रणाम करके इस प्रकार विज्ञापित किया—

देव, यह शास्त्रगञ्ज नामक शुक चारों वेदों का ज्ञाता है, सभी कलाओं और विद्याओं में विचक्षण है। मैं महाराज के लिए उपयुक्त समझ कर इसे लेकर यहाँ आयी हूँ। इसे स्वीकार करें। इस प्रकार भिल्लकन्या द्वारा समर्पित शुक को द्वारपाल ने कौतुकवश राजा के सामने प्रस्तुत कर दिया। तब उस शुक ने एक श्लोक पढ़ा। उसके बाद उसने फिर कहना प्रारम्भ किया—कहिए, किस शास्त्र से कौन-सा प्रमेय कहूँ। यह सुनकर राजा विस्मित हुए। तब मन्त्री ने कहा—

हे प्रभो, मालूम पड़ता है कि यह पूर्वकाल का कोई ऋषि है, जो शाप के कारण शुक हो गया है। धर्म के प्रभाव से पहले अधीत शास्त्रों का स्मरण कर रहा है। इस प्रकार मन्त्री के कहने पर राजा ने उस शुक से कहा—हे भद्र, मुझे कौतुक है। शुक की अवस्था में तुम्हें शास्त्रों का ज्ञान कैसे हुआ? तुम कौन हो? अपना पूर्ण वृत्तान्त कहो। तब शुक ने आँसू बहाकर कहा—देव, यद्यपि मेरा वृत्तान्त कहने योग्य नहीं है, फिर भी आपकी आज्ञा से कहता हूँ।

राजन्, हिमालय के पास रोहिणी का एक वृक्ष है। उसमें कोटर बनाकर एक शुक एक शुकी के साथ रहता था। उनसे मैं पैदा हुआ। मेरे पैदा होते ही मेरी माता मर गयीं। उसके बाद मेरे वृद्ध पिता निकटस्थ शुकों द्वारा लाये गये, खाने से अवशिष्ट फलों को स्वयं खाते थे और मुझे भी खिलाते थे। एक समय वहाँ भिल्लों की भयंकर सेना आखेट के लिए आयी। आखेट-भूमि में वे दिन-भर विनाश-लीला करते रहे। सायंकाल एक वृद्ध शवर, जिसे आमिष नहीं मिला था, मेरे आवास के वृक्ष के समीप आया। वह उस वृक्ष पर चढ़कर पक्षियों को मार-मार कर गिराने लगा। उसको देखकर मैं भय से पिता के पंखों के बीच घुस गया। इतने में उसने घोंसले से मेरे पिता को खींच कर ग्रीवा दबा कर मारकर भूमि पर फेंक दिया। मैं पिता के साथ गिरकर उनके पंखों से निकलकर घास तथा पत्तों में धीरे से घुस गया। इसके बाद वह भिल्ल भूमि पर उतरा। कुछ पक्षियों को तो उसने अग्नि में भूनकर खा लिया और दूसरों को लेकर अपनी पल्ली को चला गया।

उसके चले जाने पर मेरा भय शान्त हो गया और मैंने किसी प्रकार रात बितायी। प्रातःकाल सूर्य के उदित होने पर तृषार्त मैं निकटवर्ती पद्मसरोवर के तट पर चला गया। वहाँ मैंने स्नान किये हुए, सरोवर के तट पर स्थित मरीचि नामक मुनि को देखा। उन्होंने मुझे देखकर मेरे मुख में पानी की बूंदें डालीं और मुझे दोने में रखकर घर ले गये। वहाँ कुलपति पुलस्त्य मुझे देखकर हँस पड़े। अन्य मुनियों के पूछने पर उन्होंने कहा—दैनिक कृत्य समाप्त करके इसकी कथा आप लोगों से कहूँगा। सुनने से इसे पूर्वजन्म का स्मरण

हो जायगा। नित्य-कृत्य करके वे मुनि अन्य मुनियों से अभ्यर्थित होने पर इस प्रकार वर्णन करने लगे—

रत्नाकर नामक नगर में ज्योतिष्प्रभ नामक राजा था। उसकी तीव्र तपस्या से तुष्ट महादेव की कृपा से उसकी रानी हर्षवती के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। रानी ने स्वप्न में चन्द्रमा को अपने मुख में प्रविष्ट होते देखा था, इसलिए राजा ने उसका नाम सोमप्रभ रखा। जब सोमप्रभ युवावस्था को प्राप्त हुआ, तब राजा ने उसे भार-वहन में समर्थ, शूर तथा प्रजा का प्रिय जान कर युवराज के पद पर अधिष्ठित कर दिया और प्रभाकर नामक मन्त्री के तनय प्रियंकर को उसका मन्त्री बना दिया। उस समय दिव्य घोड़े को लेकर मातलि आकाश से उतरा और सोमप्रभ के समीप आकर 'आप इन्द्र के मित्र विद्याधर थे और इस समय यहाँ भूमि पर अवतीर्ण हुए हैं। इसलिए इन्द्र ने उच्चैः श्रवा के पुत्र आशुश्रवा नामक तुरगोत्तम को आपके पास भेजा है। इस पर चढ़ने पर आपको कोई शत्रु नहीं जीत सकेगा।' ऐसा कहकर उसे सोमप्रभ को देकर वह आकाश में चला गया। सोमप्रभ ने वह दिन उत्सवपूर्वक व्यतीत किया। दूसरे दिन उसने पिता से कहा—

तात, अविजिगीपुता क्षत्रियों का धर्म नहीं, अतः मुझे दिग्विजय के लिए आज्ञा दीजिए। पिता ने प्रसन्न होकर समर्थन किया और उसके दिग्विजय की तैयारी की। तब पिता को प्रणाम करके इन्द्र के घोड़े पर अधिरूढ़ होकर सोमप्रभ ने शुभ मुहूर्त में दिग्विजय के लिए प्रयाण किया। उसने उस अश्व-रत्न के प्रभाव से चारों दिशाओं के राजाओं को जीत लिया। दिग्विजय कार्य सम्पादित करके हिमालय के समीपस्थ स्थान में सेनासहित डेरा डाला और वहाँ से मृगया के लिए वन में गया। दैवयोग से वहाँ सुन्दर रत्नों से अलंकृत एक किन्नर को देखा और उसे पकड़ने के लिए अपना घोड़ा दौड़ाया। वह किन्नर गिरि-गुहा में प्रविष्ट होकर अदृश्य हो गया। घोड़े पर चढ़ा हुआ सोमप्रभ बहुत दूर तक चला गया। इसी समय भगवान् भास्कर भी अस्त हो गये। सोमप्रभ थक गया था। उसने किसी प्रकार एक बड़े सरोवर को देखा। उसके तट पर रात बिताने की इच्छा से अश्व से उतरा। घोड़े को घास और जल लाकर दिया और स्वयं फल और जल ग्रहण करके विश्राम करने लगा। उसी समय उसने गीत की ध्वनि सुनी। उस ध्वनि का अनुसरण करते हुए उसने थोड़ी दूर जाकर शिवलिंग के आगे गाती हुई एक दिव्य कन्यका को देखा। उसने विस्मय-पूर्वक विचार किया कि यह कन्या कौन है? उदार आकृतिवाले उसको देखकर कन्यका के 'तुम कौन हो? इस दुर्गम भूमि में कैसे आये हो?' ऐसा पूछनेपर सोमप्रभ ने अपना सारा वृत्तान्त कहकर कन्या से पूछा— तुम कौन हो? वन में कैसे रहती हो? कन्या ने कहा—हे महाभाग, यदि कुतूहल है, तो सुनिए—

हिमाद्रि के कटक पर काञ्चनाभ नामक पुर है। वहाँ पद्मकूट नामक विद्याधरों का राजा है। उसकी हेमप्रभा देवी से उत्पन्न मैं मनोरथप्रभा नामक तनया हूँ। मैं विद्या के प्रभाव से द्वीपों में, पर्वतों में, वनों में और उपवनों में प्रतिदिन क्रीड़ा करके पिता के

ग्राहार के समय घर ग्रा जाया करती थी। एक समय मैं विहार करती हुई इस सरोवर के तट पर ग्रायी। उस समय एक मुनि-पुत्र को ग्रपने मित्र के साथ देखा। उसकी शोभा से ग्राकृष्ट हो मैं उसके पास गयी। उसने भी भावभरी दृष्टि से मेरा स्वागत किया। मेरे वैठ जाने पर दोनों के ग्राशय को जाननेवाली मेरी सखी ने उसके मित्र से पूछा—हे महानुभाव, तुम कौन हो? उसने कहा—सखि, यहाँ से थोड़ी दूर पर दीधितिमान् नामक मुनि रहते थे। वे किसी समय इस सरोवर में स्नान करने के लिए ग्राये। उस समय ग्रायी हुई लक्ष्मी ने उन्हें देखा। लक्ष्मी ने मन से उस मुनि की कामना की। इससे मानसपुत्र उत्पन्न हुग्रा। उस बालक को मुनि को समर्पित करके श्री ग्रन्तर्हित हो गयी। मुनि ने भी ग्रनायास प्राप्त उस पुत्र को प्रसन्न होकर ग्रहण किया। उसका नाम रश्मिमान् रखा ग्रौर उसको सभी विद्याएँ सिखायीं। ये वही मुनिकुमार रश्मिमान् हैं। तत्पश्चात् उसके पूछने पर मेरी सखी ने मेरा नाम ग्रौर वंश बताया। जब मैं मुनि-पुत्र के साथ वैठी थी, तव घर से ग्राकर मेरी दूसरी सखी ने कहा—हे मुग्धे, उठो। ग्राहार-भूमि में तुम्हारे पिता तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सुनकर 'शीघ्र ग्राऊँगी' ऐसा कह कर मुनि-पुत्र को वैठा कर डरती हुई पिता के समीप चली गयी। भोजन करके ज्योंही मैं बाहर निकली, त्योंही मेरी सखी ने ग्राकर कहा—हे सखि, मुनि-पुत्र का मित्र ग्राया है। उसने मुझसे कहा—रश्मिमान् ने मुझे पिता द्वारा दी हुई व्योमगामिनी विद्या देकर मनोरथप्रभा के पास भेजा है ग्रौर कहा है कि मनोरथप्रभा द्वारा मेरी ऐसी दशा कर दी गयी है कि उस प्राणेश्वरी के विना क्षणभर भी जीवन धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। यह सुनकर मुनि-पुत्र के मित्र ग्रौर ग्रपनी सखी के साथ मैं यहाँ ग्रायी। मेरे पहुँचने के पहले ही मुनि-पुत्र ने चन्द्र के उदय होनेपर मेरे वियोग के कारण प्राण त्याग दिया था। उसे मृत देखकर मैंने उसके कलेवर के साथ ग्रनल में प्रवेश करने की इच्छा की। उसी समय तेजःपुञ्ज-युक्त पुरुष ग्राकाश से उतर कर उसके शरीर को लेकर चला गया। इसके वाद जव मैं ग्रकेली ही भस्म होने के लिए उद्यत हुई, तव यह ग्राकाश-वाणी सुनायी पड़ी—मनोरथप्रभे, ऐसा मत करो। कुछ काल के बाद इस मुनि-पुत्र के साथ तुम्हारा समागम होगा। यह सुनकर समागम की इच्छा से महादेव की ग्रर्चना में तत्पर हूँ। मुनि-पुत्र का मित्र कहीं चला गया।

इस प्रकार कहने वाली विद्याधरी से सोमप्रभ ने कहा—तुम ग्रकेली क्यों हो? तुम्हारी सखी कहाँ गयी? कन्यका ने उत्तर दिया—विद्याधरों के स्वामी सिंहविक्रम की मकरन्दिका नामक सुन्दर कन्या है। वह मेरी सखी प्राण के समान है। वह मेरे दुःख से दुःखित है। उसने ग्रपनी सखी को मेरा समाचार जानने के लिए भेजा था। मैंने भी ग्रपनी सखी को उसी के साथ भेज दिया है। इसलिए इस समय ग्रकेली हूँ। वह इस प्रकार कह रही थी कि ग्राकाश से उसकी सखी उतरी। उसने सखी से मकरन्दिका का समाचार जानकर सोमप्रभ के लिए पर्णशय्या विछवायी ग्रौर घोड़े के लिए घास डलवा दी। वे सब वहीं रात बिताकर प्रातः काल उठे ग्रौर ग्राकाश से उतर कर ग्राये हुए देवजय नामक विद्याधर को देखा। मनोरथप्रभा को प्रणाम करके विद्याधर ने कहा—हे मनो-

रथप्रभे, राजा सिंहविक्रम ने तुमसे कहा है कि जब तक तुम्हारे पति का निश्चय नहीं हो जाता, तब तक स्नेह के कारण मकरन्दिका विवाह नहीं करना चाहती । इसलिए आकर समझाओ, जिससे वह विवाह के लिए तैयार हो जाय । यह सुनकर सखी के प्रति स्नेह के कारण उसके पास जाने के लिए वह उद्यत हुई । राजा सोमप्रभ ने उससे कहा—हे अनघे, मैं विद्याधरों का लोक देखना चाहता हूँ, अतः मुझे ले चलो । घोड़े को घास डाल दी जायेगी और यहीं रहेगा । यह सुनकर 'ठीक है' कहकर सोमप्रभ, देवजय और अपनी सखी के साथ वहाँ गयी ।

वहाँ मकरन्दिका ने मनोरथप्रभा का सत्कार किया और सोमप्रभ को देखकर 'ये कौन हैं ?' ऐसा पूछा । सोमप्रभ का वृत्तान्त सुनकर मकरन्दिका उस पर आसक्त हो गयी । सोमप्रभ भी रूपवती लक्ष्मी के समान उस पर मन से आसक्त होकर सोचने लगा—वह कौन सुकृती होगा, जो इसका वर होगा । इसके बाद कथालाप के प्रसंग में मनोरथप्रभा ने मकरन्दिका से विवाह न करने का कारण पूछा । मकरन्दिका ने कहा—जब तक तुम वर का वरण नहीं करती हो, तब तक मैं कैसे विवाह की इच्छा करूँ ? तुम मुझे मेरे शरीर से भी अधिक प्रिय हो । मनोरथप्रभा ने कहा—मुग्धे, मैंने वर चुन लिया है और उसके संगम की प्रतीक्षा करती हुई रुकी हूँ । मकरन्दिका ने कहा—तो मैं तुम्हारे वचन का पालन करूँगी । फिर मनोरथप्रभा ने उसके चित्त को जानकर कहा—सखि, सोमप्रभ पृथिवी का भ्रमण करके तुम्हारे अतिथि हुए हैं । हे सुन्दरि, तुम इनका अतिथि-सत्कार करो । यह सुनकर मकरन्दिका ने कहा—मैंने शरीर-समेत सभी वस्तुएँ इनको अर्पित कर दी हैं । इच्छानुसार स्वीकार करें । उसके इन वचनों से उसकी प्रीति को जानकर मनोरथप्रभा ने सिंहविक्रम से कहकर विवाह का निश्चय कर दिया ।

सोमप्रभ ने प्रसन्न होकर मनोरथप्रभा से कहा—इस समय मैं तुम्हारे आश्रम में जा रहा हूँ । वहाँ कदाचित् मुझे खोजती हुई मेरी सेना आये और मुझे न पाकर अहित की आशंका करती हुई लौट न जाय । इसलिए वहाँ जाकर सैन्य-वृत्तान्त को जानकर और फिर लौटकर मकरन्दिका के साथ विवाह करूँगा । यह सुनकर 'अच्छा है' कहकर वह सोमप्रभ और देवजय के साथ अपने आश्रम में आयी ।

उस समय सोमप्रभ को खोजता हुआ प्रियंकर नामक मन्त्री वहाँ आया । उससे सोमप्रभ ज्योंही अपना वृत्तान्त कह रहा था, त्योंही पिता के समीप से 'शीघ्र आओ' ऐसा सन्देश लेकर दूत आया । वह सैन्य लेकर अपने नगर को चला गया । 'पिता को देखकर मैं शीघ्र ही चला आऊँगा' इस प्रकार मनोरथप्रभा और देवजय से भी कहा । इसके बाद देवजय ने जाकर सारा वृत्तान्त मकरन्दिका से कहा । मकरन्दिका इतनी विरहातुर हुई कि उसका मन न उद्यान में, न गीत में, न सखियों में और न पक्षियों की विनोद-युक्त वाणी में ही लग सका । आभूषण आदि की तो बात ही क्या, उसने आहार भी नहीं ग्रहण किया । माता-पिता के समझाने पर भी धैर्य नहीं धारण किया । बिसिनी-पत्रों की शय्या को छोड़कर उन्मादयुक्त-सी इधर-उधर घूमने लगी । समझाने पर भी जब उसने माता-पिता की बातों को नहीं माना, तब उन्होंने उसे शाप दे दिया—तुम इस शरीर से

अपनी जाति को भूलकर निषादों के मध्य में रहोगी। इस प्रकार शप्त मकरन्दिका निषादों के मध्य में जाकर निषाद-कन्या बन गयी। उसके माता-पिता भी उसके शोक से सन्तप्त होकर मर गये। वह विद्याधरेन्द्र सिंहविक्रम पहले सभी शास्त्रों का ज्ञाता मुनि हुआ और फिर किसी अवशिष्ट अपुण्य के प्रभाव से शुक हुआ तथा उसकी माता अरण्य की शूकरी हुई। यह वही शुक है और अपनी तपस्या के बल से पढ़े हुए विषयों को जान रहा है। इसकी विचित्र कर्मगति को देखकर मुझे हँसी आयी। इस कथा को राजसभा में कहकर यह मुक्त हो जायगा। सोमप्रभ का, इसकी मकरन्दिका नामक कन्या से, जो निषादी हो गयी है, मिलन होगा। मनोरथप्रभा को इस समय राजा बना हुआ मुनि-सुत रश्मिमान् पति-रूप में मिलेगा। सोमप्रभ भी पिता से मिलकर और फिर आश्रम में जाकर मकरन्दिका को पाने के लिए शिव की आराधना कर रहा है।

इस प्रकार यह कथा कहकर मुनि पुलस्त्य चुप हो गये। हर्ष तथा शोक से युक्त मैंने अपनी जाति का स्मरण किया। मुनि मरीचि ने मुझे पालकर बड़ा किया। पंखों के निकल आनेपर पक्षियों की स्वाभाविक चपलता के कारण इधर-उधर भ्रमण करता हुआ तथा विद्या के आश्चर्य का प्रकटन करता हुआ निषाद के हाथ में पड़ा और क्रम से आपके पास पहुँचा। इस समय पक्षि-योनि में उत्पन्न होने वाले मेरे दुष्कृत क्षीण हो गये हैं। सभा में विचित्र-वाणी-युक्त विद्वान् शुक के इस प्रकार कथा कहने पर राजा सुमना अत्यधिक विस्मित हुआ।

इसी बीच तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने सोमप्रभ से कहा—राजन्, उठो, सुमना राजा के पास जाओ। शाप के कारण मकरन्दिका मुक्तालता नामक निषादी हुई है। वह इस समय शुक बने हुए अपने पिता को लेकर वहीं गयी है। तुमको देखकर उसे अपनी जाति का स्मरण हो जायगा। तब उसका शाप छूट जायगा। तदनन्तर तुम दोनों का मिलन होगा। इस प्रकार सोमप्रभ से कहकर कृपालु भगवान् ने मनोरथप्रभा से कहा—रश्मिमान् नामक मुनि-पुत्र, जो तुम्हारा अभीष्ट वर था, सुमना नामक राजा हुआ है। तुम उसके यहाँ जाओ। तुमको देखकर उसे शीघ्र ही अपनी जाति का स्मरण हो जायगा। इस प्रकार शिव से स्वप्न में पृथक्-पृथक् आदिष्ट हुए वे दोनों राजा सुमना की सभा में आये। वहाँ सोमप्रभ को देखकर मकरन्दिका को अपनी जाति का स्मरण हो गया। अपने दिव्य शरीर को प्राप्तकर मकरन्दिका सोमप्रभ के गले से लिपट गयी। सोमप्रभ भी शिव की कृपा से प्राप्त मकरन्दिका का आलिंगन करके कृतकृत्य हो गया। राजा सुमना ने भी मनोरथप्रभा को देखकर, अपनी जाति का स्मरणकर, आकाश से गिरे हुए अपने शरीर में प्रवेश किया। मुनि-पुत्र रश्मिमान् भी अपनी कान्ता मनोरथप्रभा के साथ आश्रम में गया। सोमप्रभ राजा भी मकरन्दिका को लेकर अपने नगर को चला गया। शुक भी अपने शरीर को छोड़कर तप से अर्जित अपने स्थान को चला गया।

कथासरित्सागर की कथा तथा कादम्बरी की कथा की तुलना

कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामञ्जरी—ये दोनों गुणाढ्य-कृत बृहत्कथा के

संक्षिप्त रूप हैं। बाण ने कादम्बरी का कथानक सम्भवतः बृहत्कथा से लिया है। यहाँ कथा सरित्सागर की कथा तथा कादम्बरी की कथा का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

बाण ने नामों में जो परिवर्तन किया है, वह इस प्रकार है—

कथासरित्सागर	कादम्बरी
काञ्चनपुरी	विदिशा
सुमना	शूद्रक
मुक्तालता	बाण ने नाम नहीं दिया है। केवल चाण्डालकन्या लिखा है।
शास्त्रगञ्ज (तोता)	वैशम्पायन
हिमालय	विन्ध्याटवी
रोहिणी (वृक्ष)	शाल्मली
पद्मसरोवर (नाम नहीं दिया गया है।)	पम्पासरोवर
मरीचि	हारीत
पुलस्त्य	जावालि
रत्नाकर	उज्जयिनी
ज्योतिष्प्रभ	तारापीड
हर्षवती	विलासवती
सोमप्रभ	चन्द्रापीड
प्रभाकर	शुकनास
प्रियंकर	वैशम्पायन
आशुश्रवा	इन्द्रायुध
पद्मकूट	हंस
हेमप्रभा	गौरी
मनोरथप्रभा	महाश्वेता
दीधितिमान्	श्वेतकेतु
रश्मिमान्	पुण्डरीक
सिंहविक्रम	चित्ररथ
मकरन्दिका	कादम्बरी
देवजय	केयूरक

बाण ने अन्य पात्रों की भी योजना की है, जो कथा के प्रवाह को बढ़ाने में सहायक होते हैं। वे हैं—पत्रलेखा, तरलिका, तमालिका, कुलवर्धना, कैलास, बलाहक आदि। राजाओं के पास सेनापति, कञ्चुकी आदि होते हैं। बाण ने अन्य पात्रों की योजना इसीलिए की है।

कथासरित्सागर में जब राजा सुमना शुक को देखता है, तब विस्मय प्रकट करता है। इस पर मन्त्री कहता है—कोई मुनि शाप के कारण तोता हो गया है। कादम्बरी में इस प्रकार नहीं कहा गया है। ऐसा कहने पर उत्सुकता समाप्त हो जाती है। कहानी में उत्सुकता की निरन्तर वृद्धि होनी चाहिए। यदि पहले ही कोई बात प्रकट कर दी जाय, तो सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। कथासरित्सागर में जब राजा सुमना शुक से उसकी कथा पूछता है, तब वह कहता है—राजन्, यद्यपि मेरा वृत्तान्त कहने योग्य नहीं है, तथापि कहता हूँ। यहाँ कथा के रहस्य की ओर पहले ही संकेत प्राप्त हो जाता है। इसका प्रकटन तो अन्त में वर्णन द्वारा होना चाहिए। कादम्बरी में राजा के पूछने पर वैशम्पायन कहता है—'देव ! महतीयं कथा। यदि कौतुकमाकर्ण्यताम्।'[1] इस कथन से श्रोता कथा को सुनने के लिए समुत्सुक हो जाता है। इससे प्रकट होता है कि कथा श्रवणार्ह है।

कथासरित्सागर में शुक शबर के पक्षियों को भून करके खाकर चले जाने पर निर्भय तो हो जाता है, किन्तु रात्रि दुःख में व्यतीत करता है। प्रातःकाल प्यास से व्याकुल होकर पद्मसर तक जाता है। बाण ने घटना का समय बदल दिया है। कादम्बरी में शबरों की सेना शाल्मली वृक्ष के पास पूर्वाह्ण के समय आती है। शबर सेनापति मातङ्ग के वर्णन से यह स्थल बहुत आकर्षक हो गया है। बाण ने स्थल को पहचाना है और शुक का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। शुक के अंग प्रबल पिपासा के कारण अवसन्न हो जाते हैं। वह चलने में असमर्थ हो जाता है। उस समय हारीत उसको उस अवस्था में देखकर दयार्द्र हो जाते हैं। वे समीपवर्ती ऋषिकुमार को शुक को सरोवर के समीप ले चलने का आदेश देते हैं। हारीत शुक को जल की बूंदें पिलाते हैं। इस प्रसंग में हिंसक की क्रूरता, ऋषि की दयालुता तथा प्राणी का जीवन के प्रति मोह—ये सब एक स्थान पर देखे जा सकते हैं।

कथासरित्सागर में मातलि के घोड़ा लेकर आकाश से उतरने का प्रसंग आया है। मातलि सोमप्रभ से कहता है कि इन्द्र ने आशुश्रवा नामक घोड़े को आपके पास भेजा है। बाण ने इस प्रसंग का निर्वाह अन्य रूप से किया है। इन्द्रायुध पुण्डरीक के मित्र कपिञ्जल का अवतार है। वह अन्त में अच्छोदसरोवर में कूद कर अपना रूप प्राप्त कर लेता है। इन्द्रायुध चन्द्रापीड का घोड़ा है। वैशम्पायन चन्द्रापीड का मित्र है। पुण्डरीक वैशम्पायन के रूप में अवतीर्ण हुआ है। अतः पुण्डरीक के अवतार वैशम्पायन के मित्र चन्द्रापीड के पास इन्द्रायुध का रहना बहुत साभिप्राय है। बाण को इन्द्रायुध के निर्वाह में बड़ी सफलता मिली है।

कथासरित्सागर में मनोरथप्रभा तथा रश्मिमान् एक दूसरे से बात नहीं करते। मनोरथप्रभा की सखी रश्मिमान् के मित्र से उसका परिचय पूछती है। मुनि-पुत्र का मित्र अपना तथा रश्मिमान् का परिचय देता है। वह मनोरथप्रभा की सखी से मनोरथ-प्रभा के विषय में पूछता है। इस वार्तालाप के प्रसंग से मनोरथप्रभा तथा रश्मिमान्

१. काद०, पृ० ३७।

एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। बाण ने प्रसंग को अत्यन्त सुन्दर बना दिया है। पहले उन्होंने महाश्वेता की यौवनावस्था का अत्यधिक प्रभावशाली वर्णन किया। इसके बाद मधुभास के कामोद्दीपक पदार्थों की वर्णना की। तदनन्तर मुनिकुमार तथा पारिजात-मञ्जरी का रसपेशल दृश्य अंकित किया। कुसुममञ्जरी की कल्पना बाण की निजी कल्पना है। महाश्वेता कपिञ्जल से पुण्डरीक तथा कुसुममञ्जरी के विषय में पूछती है। जब कपिञ्जल पारिजातमञ्जरी की उपलब्धि की चर्चा समाप्त करता है, तब पुण्डरीक कहता है—हे कुतूहलिनि ! यदि आपको इसकी सुगन्धि अच्छी लगती हो, तो इसे ग्रहण करें। इतना कहकर पुण्डरीक महाश्वेता के कान में मञ्जरी पहना देता है। महाश्वेता के कपोल के स्पर्श से पुण्डरीक की अँगुलियाँ काँपने लगती हैं और अक्षमाला हाथ से गिर पड़ती है। वह भूमि पर गिरने नहीं पायी थी कि महाश्वेता ने उसे पकड़ लिया और अपने गले में पहन लिया। इसी समय छत्रग्राहिणी आकर कहती है—भर्तृ-दारिके ! महारानी स्नान कर चुकीं। घर चलने का समय हो रहा है, अतः स्नान कर लीजिए। इसके बाद महाश्वेता किसी-किसी प्रकार वहाँ से चलती है। इधर कपिञ्जल पुण्डरीक की धैर्यच्युति को देखकर उसे समझाता है। पुण्डरीक महाश्वेता से कहता है—चञ्चले ! इस अक्षमाला को दिये विना एक पग भी आगे मत जाना। महाश्वेता गले से अक्षमाला उतार कर दे देती है और स्नान करने के लिए चली जाती है। वह स्नान करके किसी-किसी प्रकार घर आती है। उधर पुण्डरीक कपिञ्जल से छिपकर तरलिका से महाश्वेता के विषय में पूछता है और उसके हाथ महाश्वेता के पास एक प्रेमपत्र भेजता है। कपिञ्जल पुण्डरीक से विना कुछ कहे महाश्वेता के घर जाता है और पुण्डरीक की कामदशा का वर्णन करता है तथा पुण्डरीक के प्राण की रक्षा करने के लिए प्रार्थना करता है। रात्रि में महाश्वेता पुण्डरीक से मिलने के लिए जाती है, किन्तु उसके पहुँचने के पहले ही पुण्डरीक मर जाता है। उस स्थान पर पहुँच कर महाश्वेता विलाप करती है।

बाण ने महाश्वेता के प्रसंग को बड़ा आकर्षक बना दिया है। कुसुममञ्जरी, अक्षमाला, प्रेमपात्र आदि की कल्पना से कथा की प्रभा दीप्त हो उठी है। कपिञ्जल द्वारा काम की भर्त्सना तथा काम की अनेक दशाओं की विच्छित्ति से कथा का अंश नर्तन-सा कर रहा है। कथासरित्सागर में रश्मिमान् अपने मित्र को मनोरथप्रभा के घर भेजता है, जबकि कादम्बरी में कपिञ्जल पुण्डरीक से विना कुछकहे ही महाश्वेता के घर जाता है। बाण की योजना औचित्य-युक्त तथा कमनीय है।

जब मनोरथप्रभा मकरन्दिका को देखने के लिए जाने की बात कहती है, तब सोमप्रभ कहता है कि मैं भी चलना चाहता हूँ। कादम्बरी में ऐसा नहीं है। वहाँ तो महाश्वेता स्वयं चलने के लिए कहती है। प्रेरणा महाश्वेता की ओर से है। बाण ने कादम्बरी में चन्द्रापीड के अनुभाव को अधिक गौरवशाली बना दिया है। वह कादम्बरी का नायक है, अतः उसका तदनुरूप निर्वाह भी होना चाहिए।

कथासरित्सागर में मनोरथप्रभा सोमप्रभ तथा मकरन्दिका के विवाह का निश्चय करती है। बाण पहले नायक और नायिका की काम-जनित स्थितियों का वर्णन करते हैं। कादम्बरी तथा चन्द्रापीड के समागम का बड़ा भव्य चित्र खींचा गया है। महाश्वेता पुण्डरीक के मर जाने पर स्वयं मरने का संकल्प करती है। कादम्बरी भी चन्द्रापीड को मृत देखकर उसी प्रकार संकल्प करती है। आकाशवाणी महाश्वेता और कादम्बरी को उस संकल्प से रोकती है। दोनों का अपने प्रेमियों से मिलन भी समान रूप से होता है। इस प्रकार बाण महाश्वेता और कादम्बरी के तथा पुण्डरीक और चन्द्रापीड के चरित्रों को समान आधार पर चित्रित करते हैं।

कथासरित्सागर में मकरन्दिका सोमप्रभ के विरह में व्याकुल हो जाती है और उन्मत्त होकर इधर-उधर घूमने लगती है। उसके माता-पिता उसे समझाते हैं, किन्तु वह धैर्य नहीं धारण करती। इस पर उसके माता-पिता उसे शाप दे देते हैं—तू इसी शरीर से अपनी जाति को भूल कर निषादों के मध्य में रहेगी। माता-पिता द्वारा इस प्रकार का शाप समीचीन नहीं प्रतीत होता। बाण ने इसे परिवर्तित कर दिया है। कथासरित्सागर में मकरन्दिका का पिता मरकर शास्त्रों का ज्ञाता ऋषि होता है और फिर किसी शाप से तोता हो जाता है। कादम्बरी में कादम्बरी के पिता को जन्म नहीं लेना पड़ा है।

कथासरित्सागर की कथा में यह तो प्राप्त होता है कि मकरन्दिका का पिता शास्त्रों का ज्ञाता ऋषि हुआ तथा उसकी माता वन की शूकरी हुई, परन्तु इसका कोई आधार स्पष्ट नहीं किया गया, जिससे कथा का पूर्वापर-सम्बन्ध निखर उठे और कोई उलझन न रह जाय।

बाण ने शाप की योजना अन्य प्रकार से की है। वैशम्पायन महाश्वेता से प्रेम करना चाहता है। महाश्वेता वैशम्पायन को शुक होने का शाप दे देती है। इससे महाश्वेता के चरित्र तथा पुण्डरीक के प्रति उसके प्रेम की पवित्रता प्रकट होती है। वैशम्पायन का महाश्वेता के प्रति आकृष्ट होना स्वाभाविक है, क्योंकि वह पुण्डरीक का अवतार है। पूर्वजन्म के संस्कार बलवान् होते हैं और वे मनुष्य को प्रभावित करते हैं। चाण्डाल-कन्या पुण्डरीक की माता लक्ष्मी है। वह अपने पुत्र की रक्षा के लिए अवतीर्ण होती है। बाण का यह परिवर्तन समीचीन तथा कमनीय है।

कथासरित्सागर में महादेव सोमप्रभ को सुमना राजा के पास जाने के लिए आज्ञा देते हैं और कहते हैं कि वहाँ तुम्हें मकरन्दिका मिलेगी। वे मनोरथप्रभा से भी कहते हैं कि तुम्हारा प्रिय रश्मिमान् सुमना नामक राजा हुआ है। तुम वहाँ जाओ। बाण ने अन्य रूप से समागम की योजना की है। कादम्बरी में चन्द्रापीड वैशम्पायन को खोजने के लिए महाश्वेता के आश्रम में जाता है। उसे वहाँ ज्ञात होता है कि महाश्वेता ने वैशम्पायन को पक्षी हो जाने का शाप दे दिया है। इस पर चन्द्रापीड का हृदय विदीर्ण हो जाता है। पत्रलेखा से चन्द्रापीड के आने का समाचार सुनकर कादम्बरी महाश्वेता

के आश्रम में पहुँचती है। वह मरने के लिए उद्यत होती है। उसी समय आकाशवाणी होती है—कादम्बरी ! चन्द्रापीड से तुम्हारा मिलन होगा। इसी समय पत्रलेखा इन्द्रायुध के साथ अच्छोदसरोवर में कूद पड़ती है। उस सरोवर से कपिञ्जल निकलता है। वह महाश्वेता से कहता है कि आपने जिसको शापाग्नि में जला दिया, वह मेरे मित्र पुण्डरीक का अवतार था। जावालि के कथा समाप्त करने पर शुक को पूर्वजन्म का स्मरण हो जाता है। वह अपने मित्र पुण्डरीक से मिलने के लिए चलता है, किन्तु चाण्डाल-कन्या के हाथों में पड़ जाता है। चाण्डालकन्या उसे शूद्रक की सभा में लाती है। कथा सुनने पर शूद्रक को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो जाता है। शूद्रक अपना शरीर छोड़ देता है। उधर चन्द्रापीड जीवित हो उठता है। उसी समय पुण्डरीक भी आकाश से उतरता है। कादम्वरी तथा चन्द्रापीड का और महाश्वेता तथा पुण्डरीक का सुन्दर समागम होता है। वाण ने कथा को यह मोड़ देकर अधिक विस्मयोत्पादक वना दिया है।

कथासरित्सागर में एक ओर प्रेमी (सोमप्रभ) अपनी प्रेमिका (मकरन्दिका) की प्राप्ति के लिए आराधना करता है और दूसरी ओर प्रेमिका (मनोरथप्रभा) अपने प्रेमी (रश्मिमान्) को प्राप्त करने के लिए आराधना करती है। कादम्बरी में दोनों प्रेमिकाएँ ही अपने प्रेमियों को प्राप्त करने के लिए समाराधन में लगी हैं। पुण्डरीक की मृत्यु के बाद महाश्वेता की तपश्चर्या का जो वर्णन किया गया है, वह कादम्बरी को अधिक स्पृहणीय वनाता है। कथासरित्सागर में हिमालय के प्रदेशों तथा विद्याधरों की योजना की गयी है, जबकि कादम्वरी में दक्षिण के प्रदेशों, गन्धर्वों और अप्सराओं की योजना हुई है। कथासरित्सागर में एक ही किन्नर का वर्णन हुआ है, किन्तु कादम्बरी में किन्नर-मिथुन का प्रसंग प्रस्तुत किया गया है। कथासरित्सागर में दो जन्मों की योजना हुई है, जब कि कादम्बरी में तीन जन्मों की कथा निवद्ध की गयी है। वाण ने पात्रों को स्वर्ग की धरा पर अधिष्ठित कर दिया है। पुण्डरीक, कपिञ्जल, चन्द्रापीड आदि इस लोक के पात्र नहीं। उनमें दैवी दीप्ति है। चन्द्रापीड का शरीर मरने पर भी देदीप्यमान है। इसका रहस्य है कि वह इस लोक से सम्वद्ध नहीं। कवि कल्पना के लोक में विचरण करता हुआ ऐसे पात्रों का चित्रण करता है, जिनके कारण हम कथा के अन्त तक निर्निमेष दर्शनीय और स्वप्नवत् विस्मयोत्पादक कथा की विभावना करते रहते हैं।

कादम्वरी के घर पर शुक और सारिका की कल्पना सुन्दर है। इससे प्रेम की भावना का समुद्रेक हुआ है। कादम्बरी और चन्द्रापीड को एक दूसरे के समीप आने की प्रेरणा मिली है। इस अवसर पर चन्द्रापीड की उक्ति और भी सुन्दर वन पड़ी है। वाण ने चन्द्रापीड से कुछ कहलाकर वातावरण की गम्भीरता को समाप्त कर दिया है तथा वड़ी सरसता ला दी है।

शुकनासोपदेश तथा द्रविडधार्मिक की कल्पना महत्त्वपूर्ण है। ये दोनों प्रसंग कादम्वरी-कथा को अधिक महनीय वना देते हैं। द्रविडधार्मिक के प्रसंग में कवि ने हास्य का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है। इससे पाठक को वड़ी शान्ति मिलती है। वाण यह

जानते हैं कि एक प्रकार के वर्णन से पाठक का मन ऊब जायगा, अतः अनेक स्थलों पर अनेक प्रकार के वर्णनों का संनिवेश करते हैं।

कवि ने काव्य-सौन्दर्य की समुज्ज्वल प्रभा से अपनी कथा का अलंकरण किया है। उसने कथासरित्सागर की कथा के विभिन्न पटलों को नवीन विधाओं से आभूषित करके प्रसंगानुकूल परिवर्तन भी किये हैं। मानव-जीवन के गूढ़ रहस्यों का भी अंकन हुआ है। कथा को आकर्षक बनाने के लिए अभिनव प्रसंगों का विन्यास किया गया है।

कादम्बरी-कथा का वैशिष्ट्य

कादम्बरी का प्रारम्भ बड़ी सजधज से होता है। शूद्रक नामक एक राजा थे। उनका वर्णन अत्यधिक सुन्दर है। **'आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः पाकशासन इवापरः'**[1] द्वारा पाठक का मन पहले ही आकृष्ट कर लिया जाता है। कथा के प्रारम्भ में आकर्षण की प्रतिष्ठा की महती आवश्यकता है। शूद्रक के ऐश्वर्य के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि कथा में महत्त्वपूर्ण घटना की चर्चा होने वाली है। इसके बाद चाण्डाल-कन्यका का वर्णन आता है। उसके सौन्दर्य का उपस्थापन अत्यन्त कमनीयता से किया गया है।[2] चाण्डालकन्या के वर्णन के द्वारा उत्सुकता के वातावरण का निर्माण किया गया है। शूद्रक तथा चाण्डालकन्या के चित्रण पाठक के मन को अत्यन्त प्रभावित करते हैं।[3] शुक का वर्णन कथा की गति में नितान्त सहायक है। जब शुक बोलने लगता है, तब उत्सुकता बढ़ती है। यहाँ कई प्रश्न उठते हैं—तोता कैसे बोल रहा है? चाण्डाल-कन्या के हाथ में कैसे पड़ा? चाण्डालकन्या शूद्रक के पास क्यों आयी? अब पाठक इनका समाधान ढूंढ़ने के लिए उत्सुक हो जाता है। कहानी की विशेषता तभी मानी जायगी, जब आरम्भ में ही पाठक पूरी कथा सुनने के लिए उतावला हो जाय। बाण ने प्रारम्भ में ही ऐसी योजना की है, जिससे पाठक अन्त तक कथा को समुत्सुक चित्त से सुनता रहता है।[4]

शुक बड़ी कुशलता से कथा कहता है। वह निश्चित ही कोई बात कहेगा, ऐसा आभास होने लगता है। थोड़ी दूर चल कर कथा का सूत्र जाबालि के हाथ में चला जाता है।

कथा का नायक शूद्रक पूरी कथा सुनता है। कवि ने नायक को पहले ही उपस्थित कर दिया है, पर उसके वास्तविक स्वरूप को इस प्रकार छिपाया है कि हम यह नहीं जान पाते कि शूद्रक कथा का नायक है। हम जिससे सबसे पहले मिलते हैं, वही कथा का सर्वस्व है। वही रहस्य है, जिसको जानने का हम प्रयत्न करते हैं। हम भटकते-फिरते हैं नायक की खोज में, किन्तु वह हमारे पास है। जब तक हम उसे पहचान नहीं लेते,

---

१. काद०, पृ० ७।
२. Krishna Chaitanya: A New History of Sanskrit Literature, p. 389.
३., ४. Kale's Introduction to the Kādambarī, p. 37.

तब तक कथा के रहस्य का भी उद्घाटन नहीं हो पाता। कैसी अपूर्व सृष्टि है कवि की ! कैसा अविरल प्रवाह है विस्मय-प्लावित कादम्बरी-कथा का !

कादम्बरी में एक कथा दूसरी कथा में संनिविष्ट की गयी है। कथा कहनेवाला पात्र अपनी कथा तो कहता ही है, दूसरे के द्वारा कही हुई कथा भी कहता है। कई पात्रों के द्वारा कही हुई कथाओं के अन्तस्तल में विद्यमान अमृतायमान रस का आस्वादन करके ही तृप्त हो सकते हैं। कादम्बरी कथा के एक अंश में चिदानन्द नहीं, उसकी समष्टि की महती प्रतिबिम्ब-लीला में ही उल्लास है, मादकता है। कथा का पटल एक के बाद एक खुलता है।

कथा अधिकांश रूप में जाबालि के द्वारा कही जाती है। वे अपनी प्रज्ञा से सब कुछ जानते हैं। वे उदासीन हैं, अतएव विषय का समुचित उपस्थापन करते हैं। कहानी में अद्भुत तत्त्वों का संनिवेश किया गया है। इस दृष्टि से जाबालि द्वारा कथा का वर्णन, शुक द्वारा शूद्रक के सम्मुख उसका प्रस्तुतीकरण आदि महत्त्वपूर्ण हैं। महाश्वेता अपनी कथा कहती है। उसके मन में जो द्वन्द्व उत्पन्न होता है, उसका मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। अपनी कथा कहने में जो निष्पक्षता होनी चाहिए, उसका पूर्णतः निर्वाह महाश्वेता के प्रसंग में प्राप्त होता है। महाश्वेता अपने जीवन की घटना का सच्चा विवरण उपस्थित करती है। वह अपने यौवन की तरलता, पुण्डरीक के प्रति आकर्षण तथा अभिसरण का वर्णन करती है। इस वर्णन में मानवजीवन की दुर्बलताओं का सुन्दर अंकन हुआ है। काम का ऐसा प्रबल वेग है कि वह पुण्डरीक जैसे तपस्वि-कुमार को भी अपना अनुचर बना लेता है। कवि ने यहाँ काम-विषयक समस्या उपस्थित कर दी है। काम के कारण जीवन में अनेक प्रकार से परिवर्तन होते हैं। इसका सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है।

बाण कथा का ढाँचा तैयार करते हैं तथा उसे काव्य की विशेष विच्छित्ति से सजाते हैं। उसमें विशाल चित्रपट पर जीवन का स्पष्ट चित्र अंकित किया गया है। इस सज्जा के कारण कादम्बरी अपूर्व सृष्टि हो गयी है। यदि उसमें काव्यत्व न होता, कल्पना का शृङ्गार न होता, तो वह कथामात्र रह जाती। बाण के समय भाषा और वर्णन-प्रक्रिया का अत्यधिक महत्त्व था। उस युग का श्रोता भाषा और भाव के सौन्दर्य तथा वर्णन की पराकाष्ठा पर मुग्ध हो जाता था। भाषा के गौरव की रक्षा की गयी है। भाषा आगे-आगे चलती है, कथांश अनुचर की भाँति पीछे-पीछे चलता है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कथन है—'संस्कृत-भाषा का उन्होंने अनुचरों से घिरे सम्राट् की भाँति प्रस्थान कराया है और कथा को पीछे-पीछे प्रच्छन्न भाव से छत्रधर की भाँति छोड़ दिया है। भाषा की राजमर्यादा बढ़ाने के लिए कथा का भी कुछ प्रयोजन है, इसीसे उसका आश्रय लिया गया है, नहीं तो उसकी ओर किसी की दृष्टि भी नहीं है।'[१]

बाण ने कथा को विस्तृत किया है और कथा में कथा का संनिवेश किया है। इससे

---

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर : प्राचीन साहित्य (अनु० रामदहिन मिश्र), पृ० ७६।

कादम्बरी-कथा का सौन्दर्य नष्ट नहीं हुआ है। इसके द्वारा बाण ने अनेक समस्याओं और भावभूमियों की प्रतिष्ठा करके उनके समाधान की ओर संकेत किया है। भारतीय मानव की प्रकृति कथा को शान्त चित्त से सुनने की रही है। वह बीच-बीच में अनेक प्रसंगों का श्रवण करता हुआ कथा-समाप्ति के विन्दु का दर्शन करता है। बीच-बीच में उपन्यस्त वर्णन जीवन, समाज आदि की प्रभविष्णु रेखा खींच देते हैं। वे हमारे उन्नयन के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। जो अपने चित्त को वश में नहीं कर सकता, वह काव्यानन्द को प्राप्त नहीं कर सकता। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कथा के मर्म का सुन्दर विश्लेषण किया है—'भगवद्गीता के माहात्म्य को सभी मानते हैं, पर जब कुरुक्षेत्र के ऐसा घमासान युद्ध सिर पर हो, तब शान्त होकर समस्त भगवद्गीता सुनना भारतवर्ष को छोड़ संसार के किसी देश में सम्भव नहीं। हम इस बात को मानते हैं कि किष्किन्धा और सुन्दरकाण्ड में रोचकता की कमी नहीं है, फिर भी जब राक्षस सीता को हरण करके ले गया, तब कथाभाग के ऊपर इन काण्डों की सृष्टि कर डालने की बात सहिष्णु भारतवर्ष ही सह सकता है; वही उसे क्षमा की दृष्टि से देख सकता है। वह उसे क्यों क्षमा करता है? इसका कारण यह है कि उसे कथा का अन्तभाग-परिणामांश सुनने की उत्सुकता नहीं है। सोचते-विचारते पूछते-जाँचते और इधर-उधर देखते-भालते भारतवर्ष सात प्रकाण्डकाण्ड और अठारह विशाल पर्वों को शान्त चित्त से धीरे-धीरे श्रवण करने को निरन्तर लालायित रहता है।'[1]

बाण वैषम्य-प्रदर्शन के महत्त्व को समझते हैं।[2] एक ओर शुकों के निर्दोष जीवन तथा जाबालि के आश्रम के शान्तिमय वातावरण का वर्णन समलंकृत हुआ है, तो दूसरी ओर शूद्रक तथा तारापीड के ऐश्वर्य की झाँकी प्रस्तुत की गयी है। एक ओर शबरों की क्रूरता की कहानी प्रस्तुत है, तो दूसरी ओर हारीत की करुणा तरंगित हो रही है। इस प्रकार के वैषम्य के द्वारा कथा में गति आ गयी है और वह रोचक हो गयी है।

कादम्बरी-कथा में परिहास का पुट विद्यमान है। द्रविडधार्मिक के वर्णन में यह देखा जा सकता है। कहानी के अलंकरण में ऐसे विन्यास बहुत आवश्यक हैं।

बाण प्रायः इस बात को ध्यान में रखते हैं कि किस प्रकार की भाषा अथवा शैली की योजना किस अवसर पर की जाय। वे पहले बड़े-बड़े समस्त पदों तथा वाक्यों का प्रयोग करते हैं। उस समय वे प्रतिपाद्य का संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं। यहाँ पाठक समाहित चित्त से ही विषय को ग्रहण कर सकता है। इसके बाद छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं। पाठक को शान्ति प्रदान करने के लिए ऐसी योजना करते हैं।

बाण समय तथा परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए वर्णनों को विस्तृत एवं संक्षिप्त करते हैं। मातंग सेनापति, जाबालि, कादम्बरी आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। कादम्बरी-कथा में संक्षिप्त कथन भी प्राप्त होते हैं। ऐसे स्थलों पर छोटे-छोटे कथनों के

---

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर: प्राचीन साहित्य (अनु० रामदहिन मिश्र), पृ० ७०।
२. कीथ: संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु० मंगलदेव शास्त्री), पृ० ३८४।

द्वारा बहुत-सी बातें प्रकट हो जाती हैं—'प्रथमं प्राचीम्, ततस्त्रिशङ्कुतिलकाम्, ततो वरुणलाञ्छनाम्, अनन्तरं च सप्तर्षिताराशबलां दिशं जिग्ये। वर्षत्रयेण चात्मीकृताशेषद्वीपान्तरं सकलमेव चतुरुदधिखातवलयपरिखाप्रमाणं बभ्राम महीमण्डलम्।'[1]

कादम्बरी-कथा में अनेक मोड़ प्राप्त होते हैं। शूद्रक की सभा में चाण्डालकन्या का आगमन, वैशम्पायन शुक द्वारा कथा का प्रारम्भ, विन्ध्याटवी-वर्णन, जाबालि द्वारा शुक की कथा का प्रारम्भ आदि कथामोड़ों के द्वारा कवि ने नयी गति का सञ्चार किया है, विराट् वैभव के उपादानों का सञ्चय किया है, कथांशों को आनन्दद्रव से सींचा है। पाठक कथा-सृति के आह्लादक पड़ावों पर रुकता है, वहाँ की छवि को देखकर तृप्त होता है, सृष्टि के सूत्रों को निरखकर कण-कण में व्याप्त सत्ता की अपार महिमा की मीमांसा करता है। जैसे जीवन के मोड़ोंपर भिन्न-भिन्न पक्षों की अवतारणा होती है, उसी प्रकार कथामोड़ों पर नयी अभिव्यक्ति, आकर्षक प्रतान, ललित विन्यास तथा मादक प्रसङ्गों के अनेक पक्ष देखे जा सकते हैं।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने कादम्बरी की कथावस्तु की तुलना सुघटित देव-प्रासाद से की है। बाण के युग के देवप्रासादों में मुखमण्डप, रंगमण्डप, अन्तरालमण्डप तथा गर्भगृह होते थे। देव का दर्शन करने वाला व्यक्ति मुखमण्डप, रंगमण्डप तथा अन्तराल-मण्डप से होता हुआ गर्भगृह में पहुँचता था। वहीं पर उसे देव का दर्शन होता था। कादम्बरी-कथा के भी चार भाग हैं। शूद्रक से लेकर जाबालि-आश्रम तक का वर्णन कादम्बरी-प्रासाद का मुखमण्डप है। उज्जयिनी के वर्णन से लेकर चन्द्रापीड की दिग्विजय-यात्रा तक का वर्णन रंगमण्डप है। इससे आगे अच्छोदसरोवर तक का वर्णन अन्तराल-मण्डप है। यहीं चन्द्रापीड कादम्बरी के विषय में सुनता है। वहाँ से वह महाश्वेता के साथ हेमकूट जाता है और कादम्बरी का दर्शन करता है। हेमकूट ही कादम्बरी-प्रासाद का गर्भगृह है।[2]

वस्तुविन्यास की दृष्टि से कहानी के तीन अंग होते हैं—आरम्भ, मध्य तथा अन्त। कादम्बरी में इनका सुन्दर निर्वाह किया गया है। आरम्भ में इस प्रकार की योजना की जानी चाहिए, जिससे पाठक आकृष्ट हो जाय और कथा को पढ़ने के लिए उत्सुक हो जाय। कादम्बरी में चाण्डाल-कन्या, शुक तथा मातंग सेनापति के वर्णन पाठक को तत्क्षण आकृष्ट करने वाले हैं। मध्यभाग में समस्या का विस्तर निरूपित होना चाहिए। कादम्बरी के मध्यभाग में महाश्वेता-वृत्तान्त तथा चन्द्रापीड और कादम्बरी के मिलन के प्रसंग आते हैं। इनमें समस्या का प्रतान देखा जा सकता है। यहाँ अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता है तथा विपत्ति-जनित परिस्थितियाँ उपन्यस्त की गयी हैं। कहानी के अन्त में लक्ष्य की प्राप्ति दिखायी जाती है। कादम्बरी में महाश्वेता तथा पुण्डरीक और कादम्बरी तथा चन्द्रापीड का मिलन लक्ष्य है। यही कादम्बरी-कथा का अन्त है।

---

१. काद०, पृ० २२५।

२. वासुदेवशरण अग्रवाल : कादम्बरी (एक सांस्कृतिक अध्ययन), भूमिका, पृ० ४।

भारतीय मनीषी विषय को रहस्यमय बनाता है और उसमें अनेक प्रक्रियाओं, रूपों तथा प्रकारों की सर्जना करता है। कथा को सामान्य ढंग से कहने में उसे आनन्द की अनुभूति नहीं होती; उसमें वह सौन्दर्य का दर्शन नहीं कर पाता। कादम्बरी-कथा में अनेक पटल हैं। उनमें निगूढ़ रहस्य की मीमांसा करनी है। कादम्बरी-कथा का प्रासाद इतना मनोरम है कि उसके कक्षों को देखकर हम अत्यन्त आह्लादित होते हैं। जिस प्रकार किसी विचित्र प्रासाद का पुनः-पुनः अवलोकन करने से भी उसके स्वरूप का पूर्ण ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार कादम्बरी के विविध कक्षों के अनवरत पर्यालोचन से भी उनकी भङ्गी पूर्णतः स्फुट नहीं हो पाती।

यह कहा जाता है कि कादम्बरी में कादम्बरी बहुत देर में पाठक के सम्मुख आती है।[१] यह कथन सत्य है। इसमें एक मुख्य बात है, जिसको समझ लेने पर इसका समाधान हो जाता है। बाण द्वारा सुनियोजित कथाविधि अत्यन्त मार्मिक है। यदि उसे परिवर्तित करके रख दिया जाय, तो सारा सौष्ठव समाप्त हो जायगा। कथा परिवर्तित करके रखी जा सकती है। परिवर्तन करने पर उज्जयिनी के वर्णन से कथा प्रारम्भ होगी। शूद्रक का वर्णन अन्त में होगा। कादम्बरी-कथा को इस रूप में निबद्ध करने से उसमें उत्सुकता को उत्पन्न करने की वह शक्ति नहीं रह जाती, जो विद्यमान रूप में है।

———

१. Dasgupta and De : A History of Sanskrit Literature, Vol. I. p. 230.

चतुर्थ अध्याय

बाणभट्ट के पात्र

हर्षचरित में चित्रित पात्र

हर्षवर्धन

हर्षवर्धन भारत के महान् सम्राट् थे। वे लेखक, गुणग्राही और विद्वान् थे। यद्यपि बौद्ध धर्म के प्रति उनका अधिक झुकाव था, किन्तु अन्य धर्मोंका भी आदर करते थे। उनमें सहिष्णुता थी और प्रत्येक वस्तु को परखने की कला थी। उनके पैदा होने पर तारक नामक ज्योतिषी ने कहा था कि मान्धाता इसी लग्न में उत्पन्न हुए थे।[1]

हर्षचरित में हर्ष का विपत्तिमय जीवन चित्रित हुआ है। उनके सामने एक के बाद एक कठिनाई आती रही है और उन्होंने धैर्यपूर्वक सामना किया है। जब राज्यवर्धन अकेले मालवराज के विनाश के लिए उद्यत होते हैं और हर्ष से प्रजा का पालन करने के लिए कहते हैं, तो हर्षवर्धन कहते हैं—

'कमिव दोषं पश्यत्वार्यो ममानुगमनेन। यदि बाल इति नितरां तर्हि न परित्याज्योऽस्मि, रक्षणीय इति भवद्भुजपञ्जरं रक्षास्थानम्, अशक्त इति क्व परीक्षितोऽस्मि, संवर्धनीय इति वियोगस्तनूकरोति, अक्लेशसह इति स्त्रीपक्षे निक्षिप्तोऽस्मि, सुखमनुभवत्विति त्वयैव सह तत्प्रयाति, महानध्वनः क्लेश इति विरहोऽविषह्यतरः. . .न बाह्यः सहायो महत इति व्यतिरिक्तमेव मां गणयसि, प्रलघुपरिकरः प्रयामीति पादरजसि कोऽतिभारः, द्वयोर्गमनमसांप्रतमिति मामनुगृहाण गमनाज्ञया, कातरो भ्रातृस्नेह इति सदृशो दोषः।'[2]

हर्ष के वचन हृदय का स्पर्श कर रहे हैं। यहाँ ममता, मर्यादा उदारता आदि की धारा वह रही है। हर्ष घर पर नहीं रहना चाहते। वे मालवराज के विनाश के लिए उद्यत भाई का अनुगमन करना चाहते हैं। हर्ष की इच्छा है कि राज्यवर्धन घर पर रहें। वे कुल की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते।

बाण हर्ष के सद्गुणों का वर्णन करते हैं। हर्ष जितेन्द्रिय, क्षमावान् और परम सुहृद् हैं। उनके सभी अवयवों में शुभ लक्षण विद्यमान हैं। उनमें कान्ति है, वे कृतयुग के कारण हैं, करुणा के एकागार हैं। उनका अनुभाव गम्भीर, प्रसन्न, रमणीय तथा कौतुकोत्पादक है। वे पुण्यात्मा और चक्रवर्ती हैं।[3]

---

१. हर्ष० ४।६

२. वही, ६।४२

३. वही, २।३५

बाण हर्ष को देखकर अत्यन्त प्रभावित होते हैं। वे राजा के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हैं—'अतिदक्षिणः खलु देवो हर्षो यदेवमनेकबालचरितचापलोचितकौलीन-कोपितोऽपि मनसा स्निह्यत्येव मयि। यद्यहमक्षिगतः स्याम्, न मे दर्शनेन प्रसादं कुर्यात्। इच्छति तु मां गुणवन्तम्। उपदिशन्ति हि विनयमनुरूपप्रतिपत्त्युपपादनेन वाचा विनापि भर्तव्यानां स्वामिनः।'[1] हर्षवर्धन अत्यधिक उदार हैं। यद्यपि बाण का शैशव चपलता से युक्त रहा है, तथापि उन्होंने बाण को दर्शन दिया।

राज्यवर्धन की मृत्यु का समाचार सुनकर हर्षवर्धन क्रुद्ध हो उठते हैं। वे पृथ्वी को गौडों से रहित करने की प्रतिज्ञा करते हैं। इससे उनकी वीरता प्रकट होती है।

जब हंसवेग प्राग्ज्योतिषेश्वर कुमार का समाचार लेकर आता है और हर्ष से कहता है कि कुमार आपसे मित्रता करना चाहते हैं, तब हर्ष अत्यधिक समीचीन वचन कहते हैं—'हंसवेग, उस प्रकार के महात्मा, महाभिजन, पुण्यराशि, गुणियों में श्रेष्ठ, परोक्षसुहृद् कुमार के स्नेह करने पर मुझ-जैसे का मन स्वप्न में भी अन्यथा कैसे प्रवर्तित हो सकता है? तीक्ष्ण तेज वाले सूर्य की समस्त संसार को संतप्त करने में पटु किरणें तीनों लोकों को आनन्दित करने वाले कमलाकर में पहुँच कर शीतल हो जाती हैं। कुमार के अनेक गुणों से खरीदे गये हम मित्रता के अधिकारी कैसे? सज्जनों की मधुरता के कारण ही दशों दिशाएँ उनकी अवैतनिक दासी हो जाती हैं। अत्यन्त निर्मल और उन्नत स्वभाव के कारण चन्द्रमा की सदृशता प्राप्त करने वाले कुमुद को विकसित करने के लिए किसने चन्द्रमा से कहा? कुमार का संकल्प श्रेष्ठ है।[2] हर्ष मित्रता चाहते हैं। वे धन के लोभी नहीं हैं। यहाँ हर्ष के चरित्र का नितान्त समुज्ज्वल अंकन हुआ है।

जब हर्ष सुनते हैं कि राज्यश्री विन्ध्याटवी में चली गयी है, तब वे तत्क्षण उसको खोजने के लिए निकल पड़ते हैं। इससे बहन के प्रति उनका स्नेह व्यक्त होता है।

हर्ष गुणग्राही थे। उन्होंने बाण का अत्यधिक सम्मान किया था। बाण ने हर्ष के गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। हर्ष गुणों के निधान थे और बाण में काव्यपटुता थी, अतएव हर्ष के गुणों से बाण का काव्य-कौशल प्रस्फुटित हुआ और बाण के काव्यालोक से हर्ष का जीवन प्रकाशित हो उठा।

राज्यवर्धन

राज्यवर्धन का चरित्र अत्यन्त निर्मल है। वे वीर और आज्ञाकारी हैं। वे जब कवच धारण करने के योग्य हो जाते हैं, तब प्रभाकरवर्धन हूणों को नष्ट करने के लिए भेजते हैं। पिता की मृत्यु से वे व्याकुल हो जाते हैं और हर्षवर्धन से राज्य का भार ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करते हैं। इसी समय ग्रहवर्मा की हत्या का समाचार मिलता है। अब राज्यवर्धन के क्रोध की प्रदीप्त ज्वाला विकराल रूप धारण कर लेती है। उनकी

१. हर्ष० २।३७
२. वही, ७।६४

भ्रुकुटि चढ़ जाती है, दाहिना हाथ कृपाण की ओर बढ़ता है और कपोलों पर रोष-राग दिखायी पड़ता है।[१]

यद्यपि राज्यवर्धन मालवराज की सेना को पराजित करते हैं, किन्तु गौडाधिप उनके साथ विश्वासघात करके उन्हें मार डालता है। यहीं उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती है।

प्रभाकरवर्धन

प्रभाकरवर्धन हर्ष के पिता थे। वे सूर्य के भक्त थे। उन्होंने सिन्धु, गुर्जर, गान्धार, मालव और लाट को जीता था। पुत्र-प्राप्ति के लिए वे आदित्यहृदय मन्त्र का जप करते थे। प्रभाकरवर्धन मालवराज के कुमारगुप्त और माधवगुप्त नामक पुत्रों को अपने पुत्रों की ही भाँति समझते थे। वे उनको अपने शरीर से भिन्न नहीं मानते थे।

प्रभाकरवर्धन में पुत्र के प्रति अगाध स्नेह है। वे रोग-ग्रस्त होकर शय्या पर पड़े हुए हैं। हर्षवर्धन को आते देखकर 'आओ, आओ' कहते हुए शय्या से उठने लगते हैं। उस समय उनके स्नेह की पराकाष्ठा दृष्टिगत होती है। पुत्र का आलिंगन करते ही उन्हें अपार आनन्द मिलता है।

प्रभाकरवर्धन उदार पति, पराक्रमी राजा और स्नेही पिता हैं। वे गुणों के प्रशंसक हैं।[२]

पुष्पभूति

पुष्पभूति हर्ष के पूर्वज हैं। वे पराक्रमी और निर्भीक हैं। श्रीकण्ठ नाग के ललकारने पर वे कहते हैं—'**अरे काकोदर काक, मयि स्थिते राजहंसे न जिह्रेषि बलिं याचितुम्। अमीभिः किं वा परुषभाषितैः। भुजे वीर्यं निवसति सताम्, न वाचि।**'[१] पुष्पभूति शास्त्र-निर्दिष्ट मार्ग का अनुगमन करते हैं। नाग का शिर काटने के लिए जब तलवार उठाते हैं, तब उसके शरीर पर यज्ञोपवीत देखकर उसे छोड़ देते हैं।

भैरवाचार्य शैव थे। पुष्पभूति उनका बहुत आदर करते थे। उनकी वेतालसाधना में पुष्पभूति ने सहायता की। जब लक्ष्मी ने पुष्पभूति से वर माँगने के लिए कहा, तब

---

१. हर्ष० ६।४१

२. "To the royal qualities of this king—his valour and heroism, his appreciation of merit, his sturdy and handsome frame—touching references are made by queen Yaśovatī in her parting address to prince Harṣa in their posthumous reminiscences of their departed Sire."
U.N. Ghoshal : 'Character-sketches in Bāṇa's Harshacharita', Indian Culture, Vol. IX (July 1942-June 1943), p. 2.

३. हर्ष० ३।५२

उन्होंने भैरवाचार्य की सिद्धि की याचना की। इससे उनके परोपकार की महिमा व्यक्त होती है। भैरवाचार्य से भी उन्होंने कुछ नहीं लिया। उनकी उदारता, परोपकार तथा शिव-भक्ति के ही कारण हर्ष का जन्म हुआ।

बाण

बाण हर्षचरित के प्रारम्भ में अपना चित्रण करते हैं। वे कहीं भी वस्तु-स्थिति को छिपाते नहीं। यदि हर्षचरित के दो भाग माने जायँ, तो प्रथम भाग के नायक बाण ही होंगे। बाण विद्वानों के कुल में पैदा हुए थे। बाल्यावस्था में ही उनकी माता की मृत्यु हो गयी। पिता ने उनका पालन-पोषण किया। जब बाण चौदह वर्ष के थे, तब उनके पिता भी मर गये। अब बाण इत्वर (घुमक्कड़) हो गये। उनके अनेक मित्र थे। वे अपने मित्रों के साथ देशाटन करने के लिए निकले। उन्होंने संसार का अनुभव अनेक दृष्टियों से किया। इसीलिए उनकी कृतियों में अनेक प्रकार की भावनाएँ, कल्पनाएँ और प्रवृत्तियाँ स्थान पा सकी हैं। उन्होंने राजकुल, गुरुकुल, गोष्ठी और विदग्धमण्डलों के सम्पर्क से ज्ञान की राशि संचित की थी।

यद्यपि बाण का जीवन चपलता से युक्त था, किन्तु बाद में उन्होंने अपने वंश के अनुकूल परम्परा के आधार पर ही अपने जीवन का निर्माण किया। बाण में नम्रता थी और स्वाभिमान भी। उनमें ब्राह्मणत्व पूर्णतः विद्यमान था। लोभ उन्हें आकृष्ट नहीं करता। वे कर्मचारियों की भाँति चाटुकार नहीं हैं। वे सत्य को प्रकट करना अपना धर्म समझते हैं।

भैरवाचार्य

भैरवाचार्य शैव हैं। वे ज्ञानी हैं। वे वेतालसाधना के द्वारा सिद्धि प्राप्त करते हैं। यद्यपि वे विद्वान् हैं, तथापि उनमें विद्वत्ता का गर्व नहीं है। राजा से विनम्रता-पूर्वक कहते हैं—

'दुर्गृहीतानि कतिचिद् विद्यन्ते विद्याक्षराणि। भगवच्छिवभट्टारकपादसेवया समुपार्जिता कियत्यपि सन्निहिता पुण्यकणिका। स्वीक्रियतां यदत्रोपयोगार्हम्।'[1]

भैरवाचार्य में स्नेह है। उनमें मानवीय करुणा है। सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् जब जाने लगते हैं, तब अश्रुबिन्दुओं से युक्त नेत्रों से राजा को देखते हैं और कहते हैं—**'ब्रवीमि—यामीति न स्नेहसदृशम्। त्वदीयाः प्राणा इति पुनरुक्तम्। गृह्यतामिदं शरीरकमिति व्यतिरेकेणार्थकरणम्।'**[2]

यशोमती

यशोमती हर्ष की माता हैं। वे अपने पति प्रभाकरवर्धन में सदैव अनुरक्त हैं। उनमें पातिव्रत्य का तेज पूर्णतः प्रकाशित हो रहा है। पति के मरने के पहले ही वे अपना

१. हर्ष० ३।४८
२. वही, ३।५४

शरीर भस्मसात् कर देना चाहती हैं। उन्होंने अपना जीवन सम्मानपूर्वक व्यतीत किया है। पति-मरण के पश्चात् वे गर्हित जीवन नहीं व्यतीत करना चाहतीं। हर्ष के समझाने पर भी वे कहती हैं—'अपि च पुत्रक, पुरुषान्तरविलोकनव्यसनिनी राज्योपकरणमकरुणा वा नास्मि लक्ष्मीः क्षमा वा। कुलकलत्रमस्मि चारित्रमात्रधना धर्मधवले कुले जाता। किं विस्मृतोऽसि मां समरशतशौण्डस्य पुरुषप्रकाण्डस्य केशरिण इव केशरिणीं गृहिणीम्। वीरजा वीरजाया वीरजननी च मादृशी पराक्रमक्रीता कथमन्यथा कुर्यात्।'[१] यशोमती वीर की कन्या हैं, वीर की पत्नी हैं और वीर पुत्रों की माता हैं। उनका चरित्र निर्मल रहा है। वे धर्मधवल कुल में उत्पन्न हुई हैं। वे यश, अनुराग, मान, वीरता और चरित्र की प्रतिमा हैं और उनमें निवास करती हैं अनेक दैवी सम्पत्तियाँ।

वे पति के मरने के पहले अग्निदेव की पावन शिखाओं में अपना पार्थिव शरीर अर्पित कर अविनश्वर कीर्ति का सञ्चय करती हैं।

सरस्वती और सावित्री

सरस्वती और सावित्री—दोनों देवियों को भूतल पर लाकर बाण ने भूतल को देवत्व से सम्पन्न दिखाया है। सरस्वती वाणी की अधिष्ठात्री देवी है। उसमें कुछ चपलता है, अतः दुर्वासा के स्वरभंग पर हँसती है। उसमें अत्यधिक सहिष्णुता है। जब दुर्वासा शाप देते हैं, तब भी वह मौन रहती है और प्रतिशाप देने के लिए उद्यत सावित्री को रोकती है। ब्रह्मा सरस्वती से कहते हैं कि तुम्हारा शाप पुत्रमुखावलोकन की अवधि तक रहेगा और सावित्री तुम्हारा मनोविनोद करेगी। सावित्री में प्रगल्भता है। वह शून्यहृदया सरस्वती को समझाती है।

सावित्री के साथ सरस्वती ब्रह्मलोक से पृथ्वी पर आती है और शोण के तट पर निवास करती है। दधीच को पहली बार देखते ही सरस्वती आकृष्ट हो जाती है और मालती के आने पर अपने हृदय की बात कहती है। दधीच और सरस्वती के मिलन से एक पुत्र उत्पन्न होता है। सरस्वती का शाप समाप्त हो जाता है। सावित्री अभिन्न-हृदया सखी है। वह सदैव सरस्वती के सुख का ध्यान रखती है।

कादम्बरी में चित्रित पात्र

चन्द्रापीड

कादम्बरी का नायक चन्द्रापीड है। वह धीरोदात्त नायक है। धीरोदात्त का लक्षण इस प्रकार किया गया है—'आत्मश्लाघा से रहित, क्षमायुक्त, अतिगम्भीर, महासत्त्व (हर्ष, विषाद आदि से अनभिभूत स्वभाव वाला), स्थिरप्रकृति, विनय से प्रच्छन्न गर्व वाला तथा दृढ़ व्रत वाला धीरोदात्त कहा जाता है।'[२]

---

१. हर्ष० ५।३०

२. अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः॥ —साहित्यदर्पण ३।३२

चन्द्रापीड चन्द्रमा का अवतार है। वह सुन्दर, बुद्धिमान् और पराक्रमी है। बाल्यावस्था में उसने अनेक शास्त्रों और विद्याओं का अध्ययन किया। व्याकरण, मीमांसा, तर्कशास्त्र, राजनीति, व्यायामविद्या, नृत्यशास्त्र, चित्रकर्म, वास्तुविद्या, आयुर्वेद, कथा, नाटक, आख्यायिका, काव्य आदि में उसने कुशलता प्राप्त की।[१]

वह धैर्यशाली है—'**अहो बालस्यापि सतः कठोरस्येव ते महद्धैर्यम्**।'[२] उसमें गुरुजनों के प्रति असाधारण भक्ति है। शुकनास के उपदेश से वह प्रभावित होता है—'**उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभिरुपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलंकृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मुहूर्तं स्थित्वा स्वभवनमाजगाम**।'[३]

वह बड़े लोगों का सम्मान करता है। शुकनास के सम्मुख वह भूमि पर बैठता है। परिजनों का भी वह आदर करता है। इन्द्रायुध घोड़े को देखकर वह विस्मित हो जाता है। उसके पास जाकर मन-ही-मन कहता है—'महात्मन् अश्व, तुम जो भी हो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। आरोहण की धृष्टता को क्षमा करना। अज्ञात देवता भी अनुचित अनादर के भाजन हो जाते हैं।'[४]

जब महाश्वेता उससे हेमकूट तक चलने के लिए कहती है, तब वह स्वीकार कर लेता है। वह सदैव दूसरे की इच्छाओं का ध्यान रखता है। क्षमा, गम्भीरता आदि ने उसे अलंकृत कर दिया है।

वह परिहास-कुशल है। कालिन्दी नामक सारिका परिहास नामक शुक को दुर्विनीत कहती है। मदलेखा चन्द्रापीड से कहती है कि कादम्बरी ने कालिन्दी का परिहास नामक शुक के साथ विवाह कर दिया। आज जब से कालिन्दी ने परिहास को कादम्बरी की ताम्बूलकरंकवाहिनी तमालिका के साथ एकान्त में कुछ बात करते देख लिया है, तब से न बात करती है, न छूती है, न उसे देखती है और हम लोगों के समझाने पर भी प्रसन्न नहीं होती।[५]

इस पर चन्द्रापीड कहता है—यह (कालिन्दी) बहुत धैर्य-शालिनी है। तभी तो इसने न विष का आस्वादन किया, न यह आग में जली और न इसने अनशन किया। इससे बढ़कर नारियों के अपमान की बात और नहीं हो सकती। यदि शुक के इस प्रकार के अपराध पर भी यह अनुनय से मान जाय और इसके साथ रहे, तो इसे धिक्कार है।[६] कितने सुन्दर व्यंग्य-भरे वचन हैं!

---

१. काद०, पृ० १४९-१५०।
२. वही, पृ० १८२।
३. वही, पृ० २०९।
४. वही, पृ० १५९।
५. वही, पृ० ३५२।
६. वही, पृ० ३५३।

चन्द्रापीड मित्रता के पवित्र सम्बन्ध का निर्वाह करता है। वैशम्पायन और महाश्वेता के प्रति उसकी मैत्री अत्यधिक प्रगाढ़ है।

चन्द्रापीड सच्चा प्रेमी है। कादम्बरी की स्मृति उसके हृदय में सदा विद्यमान रहती है।

शूद्रक

शूद्रक विदिशा का राजा और चन्द्रापीड का अवतार है। सभी राजा नत होकर उसकी आज्ञा स्वीकार करते हैं। उसकी शक्ति अप्रतिहत है। उसने मन्मथ को जीत लिया है। वह यज्ञों का सम्पादन करने वाला है। वह शास्त्रों का ज्ञाता है और काव्य-प्रबन्ध की रचना में निपुण है। वह गुणग्राही है। वह वैशम्पायन द्वारा कही हुई **'स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः। चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्॥'**[१] आर्या को सुनकर विस्मित हो जाता है। वह अपने मन्त्री कुमारपालित से कहता है—**'श्रुता भवद्भिरस्य विहङ्गमस्य स्पष्टता वर्णोच्चारणे स्वरे च मधुरता।'**[२]

पुण्डरीक

पुण्डरीक श्वेतकेतु और लक्ष्मी का पुत्र है। वह अत्यन्त सुन्दर है। वह केवल स्त्रीवीर्य से उत्पन्न हुआ है, अतएव उसमें कामुकता है। महाश्वेता को देखते ही उसमें काम जागरित हो उठता है। कपिञ्जल उसे समझाता है, किन्तु वह धैर्य की सीमा को पार कर चुका है, अतः कहता है—'मित्र, अधिक कहने से क्या लाभ ? सर्वथा स्वस्थ हो। काम के सर्प के विषवेग की भाँति विषम बाणों के लक्ष्य नहीं बने हो। दूसरे को उपदेश देना सरल है। वह उपदेश के योग्य है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में हों, मन वश में हो, जो देख सकता हो, सुन सकता हो, या सुनकर उस पर विचार कर सकता हो अथवा जो यह शुभ है, यह अशुभ है, इस प्रकार विवेचन करने में समर्थ हो।'[३]

पुण्डरीक के ये वचन सत्य का स्वरूप प्रकट करते हैं। काम अपने प्रभाव से वह स्थिति उत्पन्न कर देता है, जिसमें मानव उचित अथवा अनुचित का विचार ही नहीं कर सकता। उसका अवष्टम्भ लुप्त हो जाता है और ज्ञान की धारा कुण्ठित हो जाती है।

वैशम्पायन

वैशम्पायन पुण्डरीक का अवतार है। वह राजा तारापीड के मन्त्री शुकनास का पुत्र है। चन्द्रापीड के साथ उसने सभी विद्याओं का अध्ययन किया है। वह चन्द्रापीड का सखा है। वह सदा चन्द्रापीड का अनुसरण करता है।

तारापीड

तारापीड अत्यधिक योग्य सम्राट् हैं। वे स्नेही पिता और सुन्दर पति हैं। वे धर्म के अवतार और परमेश्वर के प्रतिनिधि हैं। उन्होंने पाप-बहुल कलिकाल द्वारा

१, २. काद०, पृ० २६।
३. वही, पृ० २६०।

विचलित किये गये धर्म को पुनः स्थिर कर दिया है। वे इतने सुन्दर हैं कि लोग उन्हें दूसरा काम समझते हैं। विलासवती पुत्र न होने के कारण दुःखित है। उसने आभूषण नहीं धारण किये हैं। राजा तारापीड कहते हैं—क्या मैंने कोई अपराध किया है या मेरे किसी अनुजीवी परिजन ने ? बहुत विचार करने पर भी तुम्हारे विषय में अपना कोई स्खलन नहीं देख पा रहा हूँ। मेरा जीवन और राज्य तुम्हारे अधीन हैं। हे सुन्दरि, शोक का क्या कारण है ?'[१]

जब उन्हें ज्ञात हो जाता है कि विलासवती पुत्र के न होने से सन्तप्त है, तो कहते हैं—'देवि, दैवाधीन वस्तु के विषय में किया ही क्या जा सकता है ? अत्यधिक रुदन मत करो। हम देवों के अनुग्रह के योग्य नहीं हैं। वास्तव में हमारा हृदय पुत्र के आलिंगन रूपी अमृतमय आस्वाद के सुख का भाजन नहीं है। पूर्वजन्म में हमने अवदात कर्म नहीं किया। दूसरे जन्म में किया हुआ कर्म पुरुष को इस जन्म में फल देता है। मनुष्य जो कुछ करने में समर्थ है, उसे सम्पन्न करो।'[२]

राजा तारापीड के ये वचन कितने समीचीन हैं। उनमें कितना गाम्भीर्य और कितनी मृदुता है। उनमें स्नेह का सम्भार है और हृदय की विशालता है। तारापीड दैव के विधान से उद्विग्न नहीं होते। उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हैं।

तारापीड का चरित्र आदि से अन्त तक अत्यधिक पवित्र है। एक आदर्श भारतीय सम्राट् के सभी गुण उनमें विद्यमान हैं। वे अपने कर्त्तव्य का निर्वाह बड़ी कुशलता से करते हैं।

शुकनास

शुकनास राजा तारापीड का मन्त्री है। वह निखिल शास्त्रों का ज्ञाता है। वह नीतिशास्त्र के प्रयोग में कुशल है। बड़े-बड़े संकटों के अवसर पर भी उसकी बुद्धि अविषण्ण रहती है। वह धैर्य का धाम, मर्यादा का स्थान, सत्य का सेतु, गुणों का गुरु तथा आचारों का आचार्य है। चन्द्रापीड के यौवराज्याभिषेक के अवसर पर वह उसे जो उपदेश देता है, वह संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि बन गया है। वह परिस्थितियों को ठीक-ठीक समझता है, अतः चन्द्रापीड को दिये गये उपदेश में सकल समस्याओं के निराकरण के पथ का प्रदर्शन किया गया है।

शुकनास की दृष्टि अत्यन्त निर्मल है। उसके लिए पुत्र, मित्र, शत्रु—सब समान हैं। वह एक योग्य सम्राट् का मन्त्री होने के लिए उपयुक्त है।

जाबालि

भगवान् जाबालि महान् तपस्वी हैं। सत्याचरण में उनकी अनुरक्ति है। वे दीन, अनाथ और विपन्नों के रक्षक हैं। शुक जाबालि को देखकर विस्मित होता है और सोचने

१. काद०, पृ० १२२-१२३।
२. वही, पृ० १२४-१२५।

लगता है—'अहो, तपस्या का कैसा प्रभाव होता है। इनकी यह शान्त मूर्ति भी तपे हुए सोने की भाँति चमक रही है और स्फुरण करने वाली बिजली की भाँति नेत्र के तेज को प्रतिहत कर रही है। निरन्तर उदासीन होने पर भी अत्यधिक प्रभाव के कारण सर्वप्रथम समीप में आये हुए को भयाक्रान्त कर देती है।'[१]

वे करुणारस के प्रवाह हैं, संसारसिन्धु के सन्तरण-सेतु हैं, क्षमा रूपी जल के आधार हैं, तृष्णा रूपी लतागहन के लिए परशु हैं, सन्तोष रूपी अमृतरस के सागर हैं, सिद्धि-मार्ग के उपदेष्टा हैं, अशुभ ग्रहों के अस्ताचल हैं, शान्ति रूपी वृक्ष के मूल हैं, ज्ञानचक्र के मूलाधार हैं।[२]

महर्षि जाबालि सत्य, तपश्चर्या, सत्त्व, साधुता, मंगल तथा पुण्य के निधान हैं। उनके प्रभाव से ही आश्रम के हिंसक जीव भी शान्त हैं। उनका तेज आश्रम में फैल रहा है। वे प्राणी को देखते ही उसके जन्मान्तर की बातें जान जाते हैं। तपस्वियों के द्वारा प्रार्थना करने पर वे शुक के पूर्वजन्म की कथा कहते हैं।

हारीत

हारीत जाबालि का पुत्र है। उसमें मुनितेज विद्यमान है। सभी विद्याओं के अध्ययन से उसका चित्त निर्मल हो गया है। अतितेजस्वी होने के कारण उसका शरीर दुर्निरीक्ष्य है। उसके अवयव मानो विद्युत् से रचे गये हैं। वे भगवान् पावक की भाँति देदीप्यमान हैं। उसका ललाटपट्ट भस्म के त्रिपुण्ड्रक से अलंकृत है। वह यज्ञोपवीत, आषाढदण्ड तथा मेखला से उद्भासित हो रहा है। उसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है। मन्त्र की सिद्धि में निरत होने के कारण उसका शरीर क्षीण हो गया है।

हारीत के हृदय में अत्यधिक करुणा है। जीवों के प्रति उसके हृदय में दया की तरंगें उठती हैं। शुक की दशा देखकर उसका हृदय करुणा से आप्यायित हो उठता है। उसे अपने हाथ में लेकर जल की बूंदें पिलाता है। स्नान आदि कर लेने के बाद उसे आश्रम में ले जाता है। तरु की छाया में उसे रखकर पिता के चरणों की वन्दना करता है। उसमें विनम्रता है और गुरुजनों के प्रति आदर की भावना है।

कपिञ्जल

कपिञ्जल पुण्डरीक का मित्र है। वह सदैव मित्र के कर्त्तव्य का निर्वाह करता है। पुण्डरीक महाश्वेता को देखकर काम के शर से आहत हो जाता है। उस समय कपिञ्जल उसे समझाता है—मित्र पुण्डरीक, यह आपके अनुरूप नहीं है। यह क्षुद्रजनों का मार्ग है। तुममें आज कैसे यह अपूर्व इन्द्रियविकार उत्पन्न हो गया, जिससे यह दशा हो गयी! तुम्हारा वह धैर्य कहाँ गया? वह इन्द्रिय-विजय कहाँ गयी? वह चित्त को वश में करने वाली शक्ति कहाँ गयी? चित्त की वह शान्ति कहाँ है? कुलक्रमागत

१. काद०, पृ० ८६।
२. वही, पृ० ८६।

वह ब्रह्मचर्य कहाँ गया ? सभी विषयों के प्रति वह निरुत्सुकता क्या हुई ? गुरुओं के वे उपदेश कहाँ चले गये ?[१]

जब कपिञ्जल देखता है कि पुण्डरीक का धैर्य लुप्त हो चुका है और वह कामवेग की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है, तब वह महाश्वेता से मिलाने का प्रयत्न करता है। महाश्वेता के आने के पहले ही पुण्डरीक मर जाता है। उस समय कपिञ्जल का विलाप अत्यधिक हृदय-द्रावक है—**आः पाप दुश्चरित चन्द्र चाण्डाल, कृतार्थोऽसि। इदानीमपगतदाक्षिण्य दक्षिणानिलहतक, पूर्णास्ते मनोरथाः। कृतं यत्कर्तव्यम्। वहेदानीं यथेष्टम्। हा भगवन् श्वेतकेतो पुत्रवत्सल, न वेत्सि मुषितमात्मानम्। हा धर्म निष्परिग्रहोऽसि। हा तपः, निराश्रयमसि। हा सरस्वति, विधवासि। हा सत्य, अनाथमसि। हा सुरलोक, शून्योऽसि। सखे, प्रतिपालय माम्। अहमपि भवन्तमनुयास्यामि। न शक्नोमि भवन्तं विना क्षणमपि स्थातुमेकाकी।**[२]

कपिञ्जल शाप के कारण अश्व (इन्द्रायुध) हो जाता है। जब शाप से मुक्त होता है, तब वैशम्पायन को खोजता हुआ जाबालि के आश्रम में जाता है। वह अपने मित्र पुण्डरीक के सुख की कामना करता है।

केयूरक

केयूरक कादम्बरी का वीणावाहक है। वह सन्देश पहुँचाने में चतुर है। वह महाश्वेता से कादम्बरी का सन्देश कहता है—जबकि पति-वियोग से विधुर, व्रत के कारण क्षीण अंगोंवाली प्रियसखी अत्यधिक कष्ट का अनुभव कर रही हैं, तो मैं इसकी अवहेलना करके अपने सुख की इच्छा से कैसे विवाह कर लूं ? मुझे कैसे सुख मिलेगा ? आपके प्रेमवश मैं इस विषय में कुमारिकाओं के विरुद्ध स्वतन्त्रता का अवलम्बन करके अपयश का भाजन बनी, मैंने विनय की अवहेलना की, गुरुओं के वचनों का अतिक्रमण किया, लोकापवाद को कुछ नहीं समझा, वनिताओं के स्वाभाविक आभूषण लज्जा को छोड़ दिया, तो मैं कैसे पुनः इस विषय की ओर प्रवृत्त होऊँ ? मैं हाथ जोड़ती हूँ, प्रणाम करती हूँ, पैर पकड़ती हूँ, मुझ पर अनुग्रह कीजिए। आप यहाँ से मेरे प्राण के साथ वन में गयी हैं, अतः स्वप्न में भी इस बात को पुनः मन में न लायें।[३]

केयूरक के कहने का ढंग समीचीन है। वह कादम्बरी का विश्वासपात्र है। कादम्बरी केयूरक से चन्द्रापीड के विषय में पूछती है। केयूरक ही कादम्बरी का उपहार चन्द्रापीड के पास पहुँचाता है। वह अपने कर्तव्य का पालन करता है।

---

१. काद०, पृ० २७५।

२. वही, पृ० ३०४।

३. वही, पृ० ३२९-३३०।

कादम्बरी

कादम्बरी कन्या है। वह परकीया[1] मुग्धा[2] नायिका है। उसके चित्रण में कवि ने अपनी कल्पना का जमकर प्रयोग किया है। सौन्दर्य की पराकाष्ठा, भावनाओं की परिपक्वता, जीवन के आदर्शों की समापत्ति, लौकिक व्यवहारों के प्रति निष्ठा, मित्रता की चरम लेखा, औदार्य, स्नेह, दृढ़ता, तपश्चर्य आदि की मनोरम मूर्ति—ये सब कादम्बरी के अनुभाव के अंग हैं। जब चन्द्रापीड प्रथम बार कादम्बरी को देखता है, तब कादम्बरी का शारीरिक सौन्दर्य मुख्यरूप से उसके सामने प्रकट होता है। कादम्बरी के पार्श्व में खड़ी हुई चामरग्राहिणियाँ चमर डुला रही हैं। वे कादम्बरी के प्रभाजाल रूपी जल में तैरती-सी प्रतीत होती हैं। कादम्बरी का प्रतिबिम्ब मणिकुट्टिम पर पड़ रहा है। उसके आभूषणों के रत्नों की प्रभा चारों ओर विकीर्ण हो रही है। उसके स्तन मकरकेतु के पादपीठ हैं, उसकी भुजाएँ मृणालकाण्ड की भाँति हैं। सीमन्तचुम्बी चूडामणि का अंशुजाल फैल रहा है। कादम्बरी अपने विलासस्मित से चन्द्रमा का निर्माण कर रही है। उसके केश नितम्ब तक लटक रहे हैं।

चन्द्रापीड को देखकर कादम्बरी के मन में विकार उत्पन्न होता है। जब चन्द्रापीड को ताम्बूल देने के लिए हाथ फैलाती है, तब उसके अंग काँपने लगते हैं। उसके नेत्र आकुल हो जाते हैं, वह स्वेद के प्रवाह में डूब जाती है। उसका रत्नवलय हाथ से गिर पड़ता है, किन्तु इसका उसे भान नहीं है।

यद्यपि कादम्बरी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक महाश्वेता का पुण्डरीक से मिलन नहीं हो जाता, तब तक मैं विवाह नहीं करूँगी, किन्तु मनोभव के अमोघ बाणों से वह व्यथित हो जाती है। चन्द्रापीड प्रथम दर्शन में उसके हृदय का सम्राट् बन जाता है।

महाश्वेता कादम्बरी से कहती है—सखि, चन्द्रापीड कहाँ ठहरेंगे? कादम्बरी उत्तर देती है—'सखि महाश्वेते, आप ऐसा क्यों कहती हैं? जब से इनका दर्शन हुआ है, तब से ये शरीर के भी प्रभु हो गये हैं, परिजन और भवन का तो कहना ही क्या? जहाँ इन्हें अच्छा लगे अथवा आपको अच्छा लगे, वहाँ रहें।[3]

कादम्बरी में मर्यादा है। वह लज्जाशील है। यद्यपि वह चन्द्रापीड की ओर खिंच चुकी है, तथापि अपने इस आचरण से सन्तुष्ट नहीं—

'अगणितसर्वशङ्कया तरलहृदयतां दर्शयन्त्याद्य मया किं कृतमिदं मोहान्धया। तथाहि। अदृष्टपूर्वोऽयमिति साहसिकतया मया न शङ्कितम्। लघुहृदयां मां कलयिष्य-

---

१. परकीया दो प्रकार की होती है—परपरिणीता तथा कन्यका—
'परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा।'
साहित्यदर्पण ३।६६

२. 'प्रथमावतीर्णयौवनमदविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा॥' – वही, ३।५८

३. काद०, पृ० ३५४।

तीति निर्ह्रीकया नाकलितम्। कास्य चित्तवृत्तिरिति मया न परीक्षितम्। दर्शनानुकूलाहमस्य नेति वा तरलया न कृतो विचारक्रमः।'[1]

कादम्बरी के हृदय में अपने गुरुजनों के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा है। वह अपने मित्र के दुःख से दुःखित होती है और सुख से प्रसन्न। वह महाश्वेता का बहुत सम्मान करती है। यद्यपि पाठक कादम्बरी की प्रतीक्षा बहुत समय तक करता है और क्लान्त-सा हो जाता है, किन्तु कादम्बरी के प्रथम प्रभापुञ्ज से ही उसकी क्लान्ति दूर हो जाती है।

कादम्बरी में आकर्षण की शक्ति है, मादकता है। इस सूत्र को ध्यान में रखकर ही बाण ने उसका चित्रण किया है। कादम्बरी के चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में पीटर्सन का कथन है—

'On his representation of Kādambarī in particular Bāṇa has spent all his wealth of observation, fullness of imagery, keenness of sympathy. From the moment when for the first time her eye falls and rests on Chandrāpīḍa, this image of a maiden heart, torn by the conflicting emotions of love and virgin shame, of hope and despondency, of cherished filial duty and a newborn longing, of fear of the world's scorn and the knowledge that a world given in exchange for this will be a world well lost, takes full possession of the reader—

कादम्बरीरसभरेण समस्त एव
मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम्।'[2]

महाश्वेता

महाश्वेता तपश्चर्या की प्रतिमूर्ति है। उसका चरित्र विशुद्ध तथा भास्वर है। उसके चारों ओर उसके शरीर की प्रभा विकीर्ण हो रही है, मानो दीर्घकाल से सञ्चित तपस्या की राशि फैल रही हो। उसके समीप का प्रदेश उसकी कान्ति से आलोकित हो रहा है। वह वीणा बजाती हुई शिव की स्तुति कर रही है। मृग, वराह आदि ध्यान-मग्न होकर वीणा की ध्वनि सुन रहे हैं। वह निर्मम है, निरहंकार है, निर्मत्सर है। वह दिव्य है, अतएव उसकी अवस्था का परिमाण ज्ञात नहीं हो रहा है। चन्द्रापीड महाश्वेता के इस अलौकिक सौन्दर्य का दर्शन कर विस्मित हो उठा।

जिस प्रकार महाश्वेता का शरीर समुज्ज्वल है, उसी प्रकार उसका अन्तःकरण भी स्वच्छ है। उसमें विनम्रता की पराकाष्ठा है। चन्द्रापीड को देखकर कहती है—'अतिथि का स्वागत है। महाभाग इस स्थान पर कैसे आये? आइए। मेरा आतिथ्य

---

१. काद०, पृ० ३५५।

२. Peterson's Introduction to the Kādambarī, p. 42.

स्वीकार कीजिए।'[१] आगन्तुक के प्रति उसका हृदय कितना विशाल है! प्रथम दर्शन में ही वह चिर-परिचित-सी प्रतीत होने लगती है। जब चन्द्रापीड महाश्वेता से उसके विषय में पूछता है, तब वह रोने लगती है। यहाँ उसकी कोमलता अभिव्यक्त होती है। वह चन्द्रापीड से अपना सारा वृत्तान्त कहती है।

पुण्डरीक को देखकर वह कामपीडित होती है। वह स्तम्भित-सी, लिखित-सी, उत्कीर्ण-सी, संयत-सी, मूर्च्छित-सी हो जाती है। वह पुण्डरीक को बहुत देर तक देखती रहती है—

'तत्कालाविर्भूतेनावष्टम्भेन, अकथितशिक्षितेनानाख्येयेन, स्वसंवेद्येन केवलं न विभाव्यते किं तद्रूपसंपदा, किं मनसा, किं मनसिजेन, किमभिनवयौवनेन, किमनुरागेणैवोपदिश्यमानं, किमन्येनैव वा केनापि प्रकारेण, अहं न जानामि कथंकथमिति तमतिचिरं व्यलोकयम्।'[२]

काम पुण्डरीक को भी तरल बना देता है।

कपिञ्जल महाश्वेता के घर पर आकर पुण्डरीक की कामदशा का वर्णन करता है। महाश्वेता पुण्डरीक से मिलने के लिए निकल पड़ती है। उसके पहुँचने के पहले ही पुण्डरीक मर जाता है। महाश्वेता 'हा अम्ब, हा तात' कहती हुई विलाप करने लगती है—'हे नाथ, मेरे मनोरथ को पूर्ण कीजिए। आर्त हूँ, भक्त हूँ, अनुरक्त हूँ, अनाथ हूँ, दुःखित हूँ, काम-पीडित हूँ। कहिए, मैंने क्या अपराध किया, मैंने आपके लिए क्या नहीं किया, आपकी किस आज्ञा का पालन नहीं किया, जिससे आप कुपित हैं।'[३]

महाश्वेता पुण्डरीक के मिलन की प्रतीक्षा करती हुई तपश्चर्या करने लगती है।

महाश्वेता के चरित्र की विशिष्टता यह है कि जब वह एक बार पुण्डरीक को प्रेम का पात्र बना लेती है, तो सदैव उससे मिलने की चिन्ता करती रहती है। वैशम्पायन महाश्वेता से प्रेम करना चाहता है, किन्तु महाश्वेता उसे शुक होने का शाप दे देती है। भला वह पुण्डरीक के लिए सुरक्षित हृदय में वैशम्पायन को स्थान कैसे दे सकती है। महाश्वेता अपनी सखी कादम्बरी का हित करना चाहती है। वह चन्द्रापीड और कादम्बरी को प्रेम की ग्रन्थि में बाँधने का प्रयत्न करती है। वह चन्द्रापीड से कहती है—'राजपुत्र, हेमकूट रमणीय है, चित्ररथ की राजधानी विचित्र है, किम्पुरुष देश बहुत कुतूहलपूर्ण है, गन्धर्व लोग पेशल हैं, कादम्बरी सरलहृदया और महानुभावा है। यदि गमन को कष्टकारक न समझें, या किसी गुरुप्रयोजन की हानि न हो, या चित्त में अदृष्ट देशों को देखने का कुतूहल हो, अथवा मेरे वचन को स्वीकार करते हों, . . तो मेरी अभ्यर्थना को निष्फल न करें।'[४]

---

१. काद०, पृ० २५३।
२. वही, पृ० २६८।
३. वही, पृ० ३०८-३०९।
४. वही, पृ० ३३०-३३१।

महाश्वेता के वचन अत्यन्त ऋजु हैं। महाश्वेता में सरलता, शुचिता, त्याग, औदार्य और कान्ति का समुल्लास है। वह चन्द्रापीड और कादम्वरी—दो सीमाओं को मिलाने वाली अतिभास्वर प्रभाराजि है, जिसका चित्रण वाण ने स्पष्टता से किया है।

विलासवती

विलासवती राजा तारापीड की पत्नी है। वह पुत्र की प्राप्ति के लिए अनेक पुण्य-कर्मों का सम्पादन करती है। पुत्र के प्रति विलासवती की वड़ी ममता है। चन्द्रापीड के गुरुकुल से लौटने पर वह कहती है—'वत्स, तुम्हारे पिता का हृदय कठोर है, क्योंकि उन्होंने ऐसी त्रिभुवन-लालनीय आकृति को इतने काल तक क्लेश का भाजन बनाया। तुमने दीर्घकाल तक गुरुओं की इस यन्त्रणा को कैसे सहन किया? अहो, बालक होते हुए भी तुममें महान् धैर्य है। पुत्र, तुम्हारे हृदय ने शिशुओं के क्रीडा-कौतुक की लघुता को छोड़ दिया। अहो, गुरुजनों पर तुम्हारी असाधारण भक्ति है। जिस प्रकार पिता की कृपा से समस्त विद्याओं से युक्त तुमको देखा, उसी प्रकार शीघ्र ही अनुरूप वधुओं से युक्त देखूँगी।'[१]

विलासवती में नारी का आभूषण लज्जा है। वह आज्ञाकारिणी भार्या, स्नेहयुक्त माता तथा उदार स्वामिनी है।

पत्रलेखा

पत्रलेखा के चरित्र के सम्बन्ध में विवाद है, अतः सविस्तर विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

जव चन्द्रापीड अध्ययन समाप्त करके घर लौटा, तब एक दिन कैलास नामक कञ्चुकी उसके पास आया। उसके पीछे एक नवयौवना कन्या थी। उसके शिर पर लाल अंशुक का घूँघट था, उसके कटिप्रदेश में बहुमूल्य सुवर्णमेखला पड़ी थी। उसकी आँखें विकसित पुण्डरीक की भाँति श्वेत थीं। उसका ललाटपट्ट चन्दनरस के तिलक से अलंकृत था। उसका शरीर कोमल था। कञ्चुकी ने प्रणाम करके निवेदन किया—'कुमार, महादेवी विलासवती ने आदेश दिया है कि पहले महाराज ने कुलूत राजधानी को जीतकर कुलूतेश्वर की दुहिता पत्रलेखा को बन्दियों के साथ लाकर अन्तःपुर की परिचारिकाओं के बीच रखा था। अनाथ होने तथा राजदुहिता होने के कारण इसके प्रति मेरा स्नेह हो गया, अतः मैंने लड़की की भाँति अब तक इसका लालन एवं संवर्धन किया। अब यह तुम्हारी ताम्बूलकरङ्कवाहिनी होने के योग्य है, यह सोचकर मैं इसे तुम्हारे पास भेज रही हूँ। इसलिए आयुष्मान् इसे सामान्य परिजन की भाँति समझना, वालिका की भाँति इसका पालन करना, अपनी चित्तवृत्ति की भाँति चपलता से इसका निवारण करना, शिष्या की भाँति इसे मानना और मित्र की भाँति सभी विश्वसनीय व्यापारों में साथ रखना। दीर्घकाल से इसके प्रति मेरा स्नेह बढ़ा है, अतः मैं इसे अपनी कन्या की भाँति समझती हूँ। अत्यन्त प्रसिद्ध राजवंश में उत्पन्न हुई है, अतः ऐसे कार्यों

१. काद०, पृ० १८२।

के लिए उपयुक्त है। यह स्वयं अत्यन्त विनम्रता से कुछ ही दिनों में कुमार को निश्चित ही प्रसन्न कर लेगी। अतिचिरकाल से इसके प्रति मेरी प्रेम-प्रवृत्ति दृढ़ हो गयी है। तुम्हें इसका शील ज्ञात नहीं है, अतः सन्देश भेज रही हूँ। कल्याणभाजन तुम सर्वथा ऐसा प्रयत्न करना, जिससे यह बहुत समय तक तुम्हारी उपयुक्त परिचारिका रहे।'[1]

यह कहकर जब कैलास रुक गया, तब चन्द्रापीड ने देर तक निर्निमेष नेत्र से पत्रलेखा को देखा और 'माता ने जैसी आज्ञा दी है, वैसा ही किया जायगा' कहकर कञ्चुकी को विदा किया।

उस दिन से पत्रलेखा दिन में, रात में, सोते, बैठते, उठते, चलते छाया की भाँति राजकुमार के पास ही रहने लगी। चन्द्रापीड की भी पत्रलेखा के प्रति प्रीति बढ़ गयी। चन्द्रापीड उसे अपने हृदय से अभिन्न मानने लगा।'[2]

कादम्बरी के वर्णन से ज्ञात होता है कि पत्रलेखा चन्द्रापीड की परिचारिका थी।

कामसूत्रकार वात्स्यायन नायिका का विवेचन करते हुए घोटकमुख का विचार प्रस्तुत करते हैं—**'गणिकाया दुहिता परिचारिका वानन्यपूर्वा सप्तमीति घोटकमुखः।'**[3] घोटकमुख के अनुसार पुरुष से असंसृष्ट गणिका की दुहिता या परिचारिका भी नायिका हो सकती है। इस पर यशोधर की टीका दर्शनीय है—**'गणिकाया दुहिता अनन्यपूर्वा पुरुषेणासंसृष्टा परिचारिका वा चन्द्रापीडस्येव पत्रलेखा। तत्र पूर्वा वेश्याकन्याभासा वक्ष्यमाणपाणिग्रहणभेदाद् भिद्यते। द्वितीया कन्याप्यगृहीतपाणिर्नायकं परिचरन्ती विशिष्यते।'**[4] यशोधर के निरूपण से प्रकट होता है कि परिचारिका पत्रलेखा चन्द्रापीड की भोग्या थी।

हरिदास सिद्धान्तवागीश भी पत्रलेखा को चन्द्रापीड की भोग्या मानते हैं। पत्रलेखा चन्द्रापीड के अनुरूप अवस्था, सौन्दर्य, कुल तथा शील वाली थी। चन्द्रापीड की यौवनावस्था में सुलभ उच्छृङ्खलता को निवारित करने के लिए विलासवती ने उसे भेजा था—

'अहो परिणयात् प्राक् चन्द्रापीडस्य यौवनस्वभावसुलभोच्छृङ्खलतानिवृत्तये भङ्गीविशेषेणानुमन्यमानजनकजननीप्रेरिततया स्वानुरूपवयोरूपकुलशीलवत्तया सततसाहचर्येण नितान्तसम्भवपरतया च पत्रलेखा चन्द्रापीडस्य भोग्यैवासीदिति प्रतीयते।'[5]

यशोधर तथा हरिदास के विवेचनों से प्रकट होता है कि पत्रलेखा चन्द्रापीड की भोग्या थी।

यशोधर एवं हरिदास सिद्धान्तवागीश के विचार चिन्त्य हैं। बाणभट्ट के काव्य का अनुपम सन्देश है—प्रेम का अनाविल स्वरूप। बाण एक नायक का प्रेम एक नायिका

१. काद०, पृ० १६३-१६४।
२. वही, पृ० १६४-१६५।
३. कामसूत्र, प्रथम अधिकरण, पञ्चम अध्याय, पृ० ६७।
४. वही, पृ० ६८।
५. कादम्बरी, हरिदासकृत टीका, पृ० ३६८।

के प्रति चित्रित करते हैं। चन्द्रापीड का आकर्षण केवल कादम्बरी के प्रति चित्रित किया गया है। कादम्बरी भी जब चन्द्रापीड का वरण कर लेती है, तब उसी को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। महाश्वेता पुण्डरीक को प्राप्त करने के लिए तपश्चर्या करती है। बाण ने कादम्बरी और चन्द्रापीड के तथा महाश्वेता और पुण्डरीक के प्रेम-व्यापार का अत्यन्त कुशलता से निर्वाह किया है। कवि के निरूपण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पत्रलेखा चन्द्रापीड की केवल सखी है, भोग्या नहीं। यह चित्रण अभूतपूर्व है। बाण चन्द्रापीड और पत्रलेखा के सम्बन्ध के निरूपण में आशंका, लज्जा आदि का कहीं भी स्फुरण नहीं करते। वे मर्यादा के परम पोषक कवि हैं। उनमें मर्यादा के शैथिल्य की तन्वी रेखा भी दृष्टिगत नहीं होती। पत्रलेखा शुद्ध मन से चन्द्रापीड की सेवा करती है और चन्द्रापीड भी उसे परिचारिका ही समझता है और तदनुकूल व्यवहार करता है। यदि बाण पत्रलेखा के हृदय में चन्द्रापीड के प्रति अनुराग का अङ्कुर दिखलाते और उसे चन्द्रापीड की प्रणयिनी के रूप में चित्रित करते, तो वे प्रेम का वैसा अंकन न कर पाते, जैसा उन्होंने किया है। क्या इस परम मनोरम, नितान्त निर्मल तथा प्रगाढ परिचर्याभाव से उत्कृष्ट पत्रलेखा का और कोई स्वरूप हो सकता है?

पत्रलेखा का जितना चित्रण हुआ है, वह अत्यन्त सुन्दर है। वह युवक चन्द्रापीड के साथ रहती है, परन्तु उसके मन में कोई विकार नहीं उत्पन्न होता। संयम की कितनी पराकाष्ठा है! सेवा का कैसा वैशद्य है!

बाण के चरित्रचित्रण के रहस्य का समुचित विश्लेषण न करने के कारण ही यशोधर आदि ने पत्रलेखा को चन्द्रापीड की भोग्या माना है। वस्तुतः वह भोग्या नहीं है, केवल सखी है। यदि वह भोग्या होती, तो बाण कहीं-न-कहीं इसका संकेत करते। कादम्बरी में कहीं भी चन्द्रापीड और पत्रलेखा के प्रेम-व्यापार का संकेत नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में पत्रलेखा को भोग्या मानना उचित नहीं। बाण के प्रेमचित्रण की प्रक्रिया के आलोक में देखने पर यशोधर आदि की मान्यता ढह जाती है।

बाण ने चन्द्रापीड के प्रति पत्रलेखा के अनुराग का चित्रण नहीं किया है, इसके लिए विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर बाण को अन्धा कहते हैं और यह प्रदर्शित करते हैं कि कवि ने पत्रलेखा के प्रति अन्याय किया है—'पत्रलेखा पत्नी नहीं है, प्रणयिनी नहीं है, किंकरी भी नहीं है, वह पुरुष की सहचरी है। इस प्रकार का विचित्र सखीत्व दो समुद्रों के बीच एक बालुकामय तट के तुल्य किस प्रकार रक्षित रह सकता है? नवयौवन कुमार-कुमारी के बीच अनादि काल का जो चिरकालीन प्रबल आकर्षण चला आता है, वह इस संकीर्ण बाँध को दोनों ओर से तोड़ क्यों नहीं देगा?

किन्तु कवि ने उस अनाथ राजकन्या को इसी अप्रशस्त आश्रय में रख छोड़ा है। तिल भर भी इस सीमा से उसे किसी दिन बाहर नहीं होने दिया। हतभागिनी बन्दिनी के प्रति कवि की इसकी अपेक्षा अधिक उपेक्षा और क्या हो सकती है? केवल एक सूक्ष्म यवनिका का अन्तर रहते पर भी वह अपना स्वाभाविक स्थान ग्रहण न कर सकी।

पुरुष के हृदय के समीप सदा जाग्रत रही, पर उसमें पैठ न सकी। किसी दिन असतर्क वसन्त की हवा से इस सखीत्व भाव के परदे का एक प्रान्त भी न उड़ा !

× × × ×

यह सम्बन्ध अपूर्व मधुर है, पर इसमें नारी के अधिकार की पूर्णता नहीं है। नारी के साथ नारी का जिस प्रकार लज्जाशून्य सखी-भाव रह सकता है, उस प्रकार पुरुष के साथ नारी का अनवच्छिन्न संकोचशून्य निकटभाव रहने से कादम्बरी-काव्य की पत्रलेखा की नारी-मर्यादा के प्रति जो एक प्रकार की अवज्ञा झलकती है, वह क्या पाठकों पर आघात नहीं करती ? किसका आघात ? आशंका का नहीं, संशय का नहीं। क्योंकि कवि यदि आशंका और संशय का लेशमात्र भी स्थान रखते, तो हम समझते कि उन्होंने पत्रलेखा की नारी-मर्यादा के प्रति कुछ सम्मान दिखलाया है। यह बात तो अलग रहे, इन दोनों तरुण-तरुणी में लज्जा, आशंका और संदेह की हिलती हुई स्निग्धच्छाया तक नहीं दिखलाई पड़ती। अपने अपूर्व सम्बन्धवश पत्रलेखा ने अन्तःपुर तो त्याग ही दिया है, किन्तु स्त्री-पुरुष के परस्पर निकट होने पर स्वभावतः एक प्रकार के संकोच से, भय से, यहाँ तक कि सहास्य छल से जो अन्तःकरणवृत्ति आप ही आप लीलान्वित तथा कम्पमान होती है, इन दोनों में वह भी नहीं हुई। इसी हेतु इस अन्तःपुरविच्युता अन्तःपुरिका के लिए सदा ही क्षोभ हुआ करता है।

× × × ×

पत्रलेखा के प्रति कादम्बरी के मन में ईर्ष्या का आभासमात्र भी नहीं था। यहाँ तक कि कादम्बरी को जब विदित हुआ कि चन्द्रापीड के साथ पत्रलेखा की घनिष्ठ प्रीति है, तब वह उसे परम प्यारी सखी समझने लगी। कादम्बरी-काव्य में पत्रलेखा एक विचित्र भूखण्ड की रहने वाली है, जहाँ ईर्ष्या, संशय, संकट, वेदना कुछ भी नहीं है। वह स्वर्ग के समान निष्कण्टक है, पर उसमें स्वर्ग का अमृतविन्दु कहाँ है ?

प्रेम का उच्छ्वसित अमृत-पान उसके सम्मुख ही हो रहा है। उसकी गन्ध से भी क्या किसी दिन उसकी किसी एक भी रग का रक्त चंचल नहीं हुआ ? क्या वह चन्द्रापीड की छाया है ? राजपुत्र के उष्ण यौवन का संताप भी क्या उसे स्पर्श नहीं कर सका ? कवि ने इस प्रश्न का उत्तर देने की भी उपेक्षा की है। काव्यसृष्टि में पत्रलेखा इतनी उपेक्षिता है !

कुछ काल कादम्बरी के साथ रहकर पत्रलेखा जब संवाद लेकर चन्द्रापीड के पास लौट आयी और जब उसने मन्द मुसकान के द्वारा दूर से ही उनके प्रति प्रीतिप्रकाश करके नमस्कार किया, तब पहले से तो स्वभावतः प्रियतमा थी ही, तिस पर जब कादम्बरी के पास से प्रसाद-सौभाग्य पाकर आयी, तो और भी परम प्रियतमा हुई। इस कारण उसका यथेष्ट समादर प्रकट करने के लिए युवराज ने आसन से उठकर उसे आलिंगन किया।

चन्द्रापीड के इस आदर और आलिंगन द्वारा ही कवि ने पत्रलेखा का अनादर किया है। हम कहते हैं कि कवि अन्धे हैं। कादम्बरी और महाश्वेता की ओर ही बराबर

एकटक देखने के कारण उनकी आँखें पथरा गयी हैं। वे इस क्षुद्र बन्दिनी को देख ही नहीं सके। इसके भीतर प्रणय-तृषार्त और चिर-वंचित एक नारी-हृदय भी है, यह बात वे एकदम भूल गये हैं। बाणभट्ट की कल्पना सदा मुक्तहस्त रही, अस्थान और अपात्र में भी उसने अपनी सम्पत्ति की अजस्र वर्षा की है। केवल इस अनाथा बन्दिनी के प्रति ही उसने अपनी सारी कृपणता दिखलायी है। पक्षपाती और अन्धे होकर कवि पत्रलेखा के हृदय की निगूढ़तम बातों को बिल्कुल जानते ही नहीं। वे अपने मन में समझते हैं कि समुद्र-वेला को जहाँ तक आने की आज्ञा है, वह वहीं तक आकर ठहर गयी है, पूर्ण चन्द्रोदय में भी वह हमारी आज्ञा उल्लंघन नहीं कर सकती। कादम्बरी पढ़कर मन में यही भासित होता है कि अन्यान्य नायिकाओं की बातें जहाँ अनावश्यक बाहुल्य के साथ वर्णित हुई हैं, वहाँ पत्रलेखा की बातों का कुछ भी वर्णन नहीं हुआ।'[1]

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कथन पर भी विचार करना है। उनके विवेचन से प्रकट होता है कि बाणभट्ट अन्धे हैं, क्योंकि उन्होंने पत्रलेखा की उपेक्षा की है, उसके नारी-हृदय की अवहेलना की है। यह बात सत्य है कि पत्रलेखा का बहुत कम चित्रण हुआ है। इसका कारण है। वह एक परिचारिका है। उसका जितना सम्मान किया जा सकता है, उतना किया गया है। कवि के समक्ष उसका निरुपाधि सेवाभाव है, उसका निर्मल चरित्र है। इन्हीं का पवित्र सौरभ दिगन्त में फैल रहा है। पत्रलेखा उच्च कुल में उत्पन्न हुई है। वह अपनी सेवा से कुमार को प्रसन्न करती है और उसकी अभिन्नहृदया सखी बन जाती है। यह उसके चरित्र की उदात्तता है। कवि का मन यहीं रम रहा है, इस पावन धारा में स्नान कर रहा है। कवि पत्रलेखा के समुज्ज्वल अनुभाव के सामने नत है। पत्रलेखा के निर्मल चरित्र की एक-एक बूंद अमृत का सागर उड़ेल रही है, उसका मधुर रूप आनन्द की वर्षा कर रहा है।

प्रेम के स्वरूप के सम्बन्ध में बाण की दृष्टि अत्यन्त स्पष्ट है। वे वासना की निन्दा करते हैं। कादम्बरी में एक नायक के लिए एक ही नायिका की योजना करते हैं। चन्द्रापीड की नायिका कादम्बरी है, वही उसके लिए सर्वस्व है। यदि चन्द्रापीड की प्रेमभरी दृष्टि पत्रलेखा के सुकोमल अंगों पर पड़ती और मत्त होकर पत्रलेखा के पद-चिह्नों का अनुगमन करती, तो क्या कवि प्रेम का विशुद्ध रूप प्रकट कर सकता? यदि बाण चन्द्रापीड और पत्रलेखा को एक दूसरे की ओर आकृष्ट करते और यौवन की मादकता की प्रेरणा से दोनों को प्रणय-पाश में बाँध देते, तो वे यह सन्देश अपनी रचना के द्वारा न दे पाते कि इस लोक का मनुष्य दैवी विभूति है और वह अपनी आध्यात्मिक शक्ति से सांसारिक बन्धन को तोड़ सकता है तथा परम शान्ति एवं संयम की शीतल धारा से वासना की धधकती आग को बुझा सकता है। बाण अपने सिद्धान्त के स्पष्टीकरण में सतर्क हैं। कविवर रवीन्द्र के निरूपण के अनुसार यदि चित्रण हुआ होता, तो बाण इस सृष्टि के अलौकिक रहस्य का प्रकटन न कर पाते। चन्द्रापीड और पत्रलेखा के सम्बन्ध का चित्रण संस्कृत साहित्य की सम्पत्ति है।

---

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर : प्राचीन साहित्य (अनु० रामदहिन मिश्र), पृ० ९५-९८।

इन्द्रायुध

इन्द्रायुध, पुण्डरीक के मित्र कपिञ्जल का अवतार है। उसमें उच्चैःश्रवा के लक्षण विद्यमान हैं। चन्द्रापीड उसे देखते ही समझ जाता है कि वह दिव्य है। तुरंगम के समीप जाकर मन-ही-मन कहता है—'महात्मन् अश्व, तुम जो भी हो, तुम्हें प्रणाम है। आरोहण की धृष्टता को सर्वथा क्षमा करना। अज्ञात देवता भी अनुचित अपमान के भागी हो जाते हैं।'[1]

इन्द्रायुध का चरित्र विस्मय उत्पन्न करने वाला है। वह चन्द्रापीड को ऐसे स्थल पर पहुँचा देता है, जहाँ से कथा का स्वरूप बदल जाता है। अतः इन्द्रायुध का चरित्र कथा के विकास में नितान्त सहायक है।

वैशम्पायन शुक

पुण्डरीक मरकर वैशम्पायन होता है और पुनः महाश्वेता के शाप से ग्रस्त होकर शुक हो जाता है। पूर्वजन्म के संस्कार के कारण शुक ज्ञानवान् है। शूद्रक की सभा में वह अपनी कथा प्रभावोत्पादक रीति से कहता है।

परिहास

परिहास कादम्बरी का तोता है। वह कालिन्दी नामक सारिका का पति है। चन्द्रापीड के नर्मभाषित को सुनकर कहता है—'धूर्त राजपुत्र, यह (कालिन्दी) निपुण है। चंचल होती हुई भी यह तुमसे या अन्य से प्रतारित नहीं हो सकती। इन कूटकथाओं को यह भी जानती है। यह भी परिहास-वचनों को जानती ही है। राजकुल के सम्पर्क से इसकी भी बुद्धि चतुर है। चुप रहिए। नागरिकों की व्यंग्यभरी बातों का इस पर प्रभाव नहीं पड़ सकता। यह मञ्जुभाषिणी क्रोध और प्रसन्नता के काल, कारण, प्रमाण और विषय को जानती है।'[2]

परिहास वहुत चतुर है। वह व्यंग्योक्ति का मर्म समझता है। चन्द्रापीड के प्रति उसका उत्तर कादम्बरी के कथा-प्रवाह में सुनियोजित है।

कालिन्दी

कालिन्दी परिहास नामक शुक की पत्नी है। कालिन्दी ने परिहास को कादम्बरी की ताम्बूलकरङ्कवाहिनी तमालिका से एकान्त में बात करते देख लिया, अतः प्रणयकोप कर बैठी। वह सक्रोध कहती है—'राजपुत्री कादम्बरी, मिथ्या ही अपने को सुभग मानने वाले, मेरे पीछे पड़े हुए इस दुर्विनीत नीच पक्षी को क्यों नहीं रोकती? यदि आप इससे अपमानित की जाती हुई मेरी उपेक्षा करेंगी, तो अपना प्राण दे दूँगी।'[3]

---

१. काद०, पृ० १५६।

२. वही, पृ० ३५३।

३. वही, पृ० ३५१-३५२।

कालिन्दी न तो शुक के समीप आती है, न उससे बात करती है, न उसे छूती है, न उसे देखती है।

कालिन्दी के प्रणयकोप का निर्वाह सुन्दर रीति से किया गया है। परिहास और कालिन्दी की योजना से कादम्बरी और चन्द्रापीड के मिलन के प्रसंग में सजीवता आ गयी है। बाण ने दोनों का चित्रण बड़ी सफलता से किया है।

इनके अतिरिक्त कादम्बरी में अन्य सामान्य पात्रों की भी योजना की गयी है।

पञ्चम अध्याय

रसाभिव्यक्ति

बाण की रचनाओं में सभी रसों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ कवि की नवरसरुचिरा वाणी का समुपस्थापन किया जा रहा है।

शृङ्गार

शृङ्गार दो प्रकार का होता है—विप्रलम्भ तथा सम्भोग। बाण की रचनाओं में दोनों भेदों का चित्रण प्राप्त होता है। कादम्बरी में विप्रलम्भ का विशेष रूप से समुन्मीलन किया गया है।[1]

विप्रलम्भ

विप्रलम्भ शृङ्गार चार प्रकार का निरूपित किया गया है—पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण।[2] सौन्दर्य आदि के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका की उस दशा को पूर्वराग कहते हैं, जो समागम के पहले होती है।[3]

कादम्बरी में पूर्वानुराग का संकेत मिलता है। चन्द्रापीड जिस समय कादम्बरी को देखता है, उस समय वह केयूरक से चन्द्रापीड के विषय में पूछ रही थी—'वे कौन हैं? किसके पुत्र हैं? उनका क्या नाम है? उनका रूप किस प्रकार का है? अवस्था कितनी है? क्या कह रहे थे? आपने क्या कहा? उन्हें कितनी देर तक देखा? उनका महाश्वेता से परिचय कैसे हुआ? क्या वे यहाँ आयेंगे[4]?'

कादम्बरी के प्रश्नों से यह स्पष्ट झलकता है कि उसमें चन्द्रापीड के प्रति अनुराग उत्पन्न हो रहा है। यहाँ अनुराग श्रवण से उत्पन्न होता है।

---

१. 'शृङ्गारः प्रमुखोऽलम्भीतरे गौणत्वमाश्रिताः।
विप्रलम्भविधानेन प्रौज्ज्वल्यं प्रकटीकृतम्॥'
अमरनाथ पाण्डेय : 'महाकविश्रीबाणभट्टगौरवम्,'
गुरुकुलपत्रिका, फाल्गुन व चैत्र, २०२५, पृ० ३४६।

२. 'स च पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात्।'
साहित्यदर्पण ३।१८७

३. श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते॥
वही ३।१८८

४. काद०, पृ० ३४४।

पूर्वानुराग में पहले स्त्री के अनुराग का वर्णन कमनीय होता है।[१] उसके बाद पुरुष के अनुराग का वर्णन करना चाहिए। बाण ने कादम्बरी में पहले स्त्री के ही अनुराग का वर्णन किया है। पहले महाश्वेता पुण्डरीक को देखकर अनुरक्त होती है,[२] उसके बाद पुण्डरीक महाश्वेता को देखकर।[३] पूर्वराग तीन प्रकार का होता है—नीलीराग, कुसुम्भराग तथा मञ्जिष्ठाराग।[४] इन तीनों में महाश्वेता और पुण्डरीक तथा कादम्बरी और चन्द्रापीड का अनुराग मञ्जिष्ठाराग का कमनीय निदर्शन है। मञ्जिष्ठाराग उस अनुराग को कहते हैं, जो कभी दूर न हो और शोभित भी हो।[५] भावप्रकाशन में मञ्जिष्ठाराग ज्येष्ठ माना गया है।[६]

काम की दश अवस्थाएँ वर्णित की गयी हैं—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, सम्प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता तथा मृत्यु।[७]

बाण ने हर्षचरित में काम की कुछ अवस्थाओं का क्रमिक वर्णन किया है। सरस्वती दधीच को देखकर कामपीडित होती है। कवि उसकी काम-वेदना के वर्णन के प्रसंग में काम की अवस्थाओं का वर्णन करता है:—

अभिलाष – 'अजायत च नवपल्लव इव बालवनलतायाः कुतोऽप्यस्या अनुरागश्चेतसि।'[८]

चिन्ता – 'ततः प्रभृति सालस्येव शून्येव सनिद्रेव दिवसमनयत्।'[९]

---

१. 'आदौ वाच्यः स्त्रिया रागः पुंसः पश्चात्तदिङ्गितैः।'
साहित्यदर्पण ३।१९५

२. काद०, पृ० २६६-२६९।

३. वही, पृ० २७०।

४. 'नीली कुसुम्भं मञ्जिष्ठा पूर्वरागोऽपि च त्रिधा।'
साहित्यदर्पण ३।१९५

५. 'मञ्जिष्ठारागमाहुस्तद् यन्नापैत्यतिशोभते।'
वही ३।१९७

'अतीव शोभते यस्तु नापैति क्षालितोऽपि सन्।
स एव कविभिः सर्वैर्मञ्जिष्ठाराग उच्यते॥'
भावप्रकाशन, चतुर्थ अधिकार, पृ० ८१।

६. 'ज्येष्ठो मञ्जिष्ठारागः स्यान्नीलीरागस्तु मध्यमः।'
वही, पृ० ८१।

७. साहित्यदर्पण ३।१९०

८. हर्ष० १।१३

९. वही, १।१३

स्मृति – 'कृतसन्ध्याप्रणामा निशामुख एव निपत्य विमुक्ताङ्गी पल्लवशयने तस्थौ '।[१]

गुणकथन – 'मर्त्यलोकः खलु सर्वलोकानामुपरि, यस्मिन्नेवंविधानि सम्भवन्ति त्रिभुवनभूषणानि सकलगुणग्रामगुरूणि रत्नानि।'[२]

उद्वेग – 'मदनशरताडितायाश्च तस्या वार्तामिवोपलब्धुमरतिराजगाम।'[३]

महाश्वेता पुण्डरीक को देखकर कामपीडित होती हैं। वह कन्यकान्तःपुर में जाती है। उसे पता नहीं है कि वह यहाँ आ गयी है या नहीं, वह अकेली है या सखियों से घिरी है, वह चुप है या किसी से बात कर रही है, वह जाग रही है या सो रही है। उसमें सुख, दुःख, उत्कण्ठा, व्याधि, व्यसन, उत्सव, दिन-रात तथा सुन्दर-असुन्दर को जानने का विवेक नहीं रह गया है। वह झरोखे से उस दिशा की ओर देखती है, जिस दिशा में पुण्डरीक था। वह बार-बार पुण्डरीक का चिन्तन करती है।[४]

पुण्डरीक तो अत्यन्त कामपीडित चित्रित किया गया है। जब कपिञ्जल पुण्डरीक को एक लता-कुञ्ज में देखता है, तब पुण्डरीक चित्रित-सा, उत्कीर्ण-सा, स्तम्भित-सा, मृत-सा, प्रसुप्त-सा तथा समाधिस्थ-सा दिखायी पड़ता है। वह पाण्डुवर्ण का हो गया था, उसका अन्तःकरण सूना था। वह मौन था और निश्चल था। उसके नेत्रों से आँसू गिर रहे थे। वह उच्छ्वासों से युक्त था। वह कृश हो गया था। वह म्लान था और अपरिचित-सा प्रतीत हो रहा था।[५]

कपिञ्जल के समझाने पर वह कहता है कि मेरा ज्ञान समाप्त हो गया है, मुझमें धैर्य नहीं रह गया है, मैं सदसद् का विवेचन करने में समर्थ नहीं हूँ, मैं अपने को रोक नहीं सकता।[६]

पुण्डरीक महाश्वेता के आने के पहले ही काम-वेदना से पीड़ित होकर मर जाता है। महाश्वेता भी अग्नि में जलना चाहती है। उसी समय एक पुरुष आकाश से उतरता है और मृत पुण्डरीक को लेकर आकाश में चला जाता है। वह महाश्वेता से कहता है— 'वत्से महाश्वेते, प्राण का परित्याग न करना। पुण्डरीक के साथ तुम्हारा पुनः समागत होगा।'[७]

विश्वनाथ कविराज ने पुण्डरीक तथा महाश्वेता के वृत्तान्त को करुणविप्रलम्भ का उदाहरण माना है।[८] उनका कथन है कि नायक और नायिका में से किसी एक के

१, २, ३. हर्ष० १।१३
४. काद०, पृ० २७७।
५. वही, पृ० २८५-२८८।
६. वही, पृ० २९०-२९१।
७. वही, पृ० ३१३।
८. साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, पृ० ११३।

दिवंगत हो जाने पर जब दूसरा दुःखित होता है, तब करुणविप्रलम्भ होता है। यह तभी होता है, जब मरे हुए व्यक्ति के इसी जन्म में पुनः मिलने की आशा हो।[1]

विश्वनाथ ने पुण्डरीक और महाश्वेता के वृत्तान्त के सम्बन्ध में अपने मत के अतिरिक्त दो मत और उद्धृत किये हैं—

१. पहले प्रकार के लोग शृङ्गार तब मानते हैं, जब आकाश-वाणी हो जाती है है और महाश्वेता को मिलने की आशा हो जाती है। उसके पहले करुणरस मानते हैं।[2]

२. दूसरे प्रकार के लोगों का कथन है कि आकाशवाणी के बाद भी यहाँ करुण-विप्रलम्भ नहीं, अपितु प्रवासविप्रलम्भ शृङ्गार ही है।[3]

विश्वनाथ ने ऊपर जो द्वितीय मत उद्धृत किया है, वह दशरूपककार का मत है। दशरूपककार का कथन है—'नायक और नायिका के समीप रहने पर भी जहाँ उनका स्वभाव या रूप शाप के कारण बदल दिया जाय, वहाँ शापज प्रवास होता है। जैसे—कादम्बरी में शाप के कारण वैशम्पायन (पुण्डरीक) तथा महाश्वेता का वियोग।'[4]

दशरूपककार आकाशवाणी के पहले करुणरस मानते हैं और आकाशवाणी के बाद प्रवासविप्रलम्भ।[5] वे कहते हैं कि यदि एक व्यक्ति के मर जाने पर दूसरा विलाप करे, तो शोकभाव ही होता है, प्रवासविप्रलम्भ नहीं। आलम्बन के विद्यमान न रहने के कारण शृङ्गार नहीं माना जा सकता और मृत्यु के बाद पुनरुज्जीवित होने पर करुण नहीं।[6]

दशरूपककार के मत का खण्डन करने वाले कहते हैं कि समागम की आशा के अनन्तर भी विप्रलम्भ शृङ्गार का प्रवास नामक भेद नहीं है, क्योंकि मरणरूप विशेष दशा आ जाती है।[7]

---

१. 'यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमनायते यदैकस्तदा भवेत्करुणविप्रलम्भाख्यः॥'
साहित्यदर्पण ३।२०९।

२. 'किंचात्राकाशसरस्वतीभाषानन्तरमेव शृङ्गारः, संगमप्रत्याशया रतेरुद्भवात्। प्रथमं तु करुण एव इत्यभियुक्ता मन्यन्ते।' —वही, पृ० ११३-११४।

३. वही, पृ० ११४।

४. 'स्वरूपान्यत्वकरणाच्छापजः सन्निधावपि।
यथा कादम्बर्यां वैशम्पायनस्येति।' —दशरूपक, चतुर्थ प्रकाश, पृ० २७०।

५. 'कादम्बर्यां तु प्रथमं करुण आकाशसरस्वतीवचनादूर्ध्वं प्रवासशृङ्गार एवेन्ति।'
वही, पृ० २७०।

६. 'मृते त्वेकत्र यत्रान्यः प्रलपेच्छोक एव सः।
व्याश्रयत्वान्न शृङ्गारः, प्रत्यापन्ने तु नेतरः॥' —वही ४।६७।

७. 'यच्चात्र संगमप्रत्याशानन्तरमपि भवतो विप्रलम्भशृङ्गारस्य प्रवासाख्यो भेद एव इति केचिदाहुः, तदन्ये 'मरणरूपविशेषसम्भवात्तद्भिन्नमेव' इति मन्यते।' ४
साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, पृ० ११४।

कवि ने महाश्वेता तथा पुण्डरीक की भाँति कादम्बरी की भी कामजनित अवस्था का वर्णन किया है। वह निरन्तर रोती रहती है, मुख नीचे किये रहती है। वह इतनी चिन्ता-निमग्न है कि उसके मुख से वाणी नहीं निकलती। वह पत्रलेखा से अपनी वेदना का वर्णन करती है और कहती है कि मैं प्राण-परित्याग के द्वारा अपने कलंक का प्रक्षालन करना चाहती हूँ।[१]

सम्भोग

बाण ने सम्भोग शृङ्गार का निर्वाह बड़ी कुशलता से किया है। जिस प्रकार कालिदास ने शिव और पार्वती के सम्भोग का वर्णन किया है, उस प्रकार बाण के काव्यों में कहीं भी नहीं मिलता।[२] कवि ने सरस्वती और दधीच के सम्भोग का एक वाक्य में वर्णन किया है—**"यथा मन्मथः समाज्ञापयति, यथा यौवनमुपदिशति, यथानुरागः शिक्षयति, यथा विदग्धताध्यापयति तथा तामभिरामां राममरमयत्।"**[३] अर्थात् काम जिस प्रकार आज्ञा देता है, यौवन जिस प्रकार उपदेश देता है, अनुराग जैसी शिक्षा देता है, विदग्धता जिस प्रकार अध्यापन करती है, उसी प्रकार अभिराम सरस्वती के साथ दधीच ने रमण किया।

यहाँ कवि ने एक-एक प्रेम-व्यापार का वर्णन न करके इतनी सुन्दरता से संकेत कर दिया है कि पाठक के समक्ष सुरत-व्यापार के शत-शत विलास नर्तन करने लगते हैं। बाण के विशुद्ध शृङ्गार के चित्रण की यही विशेषता है।

ध्वन्यालोककार देवता आदि के सम्भोग-वर्णन का निषेध करते हैं—

'तस्मादभिनेयार्थेऽनभिनेयार्थे वा काव्ये यदुत्तमप्रकृते राजादेरुत्तम-प्रकृतिभिर्नायिकाभिः सह ग्राम्यसम्भोगवर्णनं तत्पित्रोः सम्भोगवर्णनमिव सुतरामसभ्यम्। तथैवोत्तम-देवतादिविषयम्।'[४]

बाण ने इस मर्यादा का अनुगमन किया है।

हास्य

'द्रविडधार्मिक' के वर्णन के प्रसंग में हास्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है—

'उस मन्दिर में एक बूढ़ा द्रविड-धार्मिक रहता था। उसके शरीर में मोटी-मोटी शिराएँ फैली थीं, मानो जले हुए स्थाणु की आशंका से गोह, गोलिका तथा गिरगिट आरूढ़ हो गये हों। उसका समस्त शरीर फोड़ों के दागों से कल्मापित था। कान के कुण्डल के स्थान पर स्थित चूडा रुद्राक्ष माला-सी लग रही थी। अम्बिका के चरणों पर गिरने से श्याम हुए ललाट पर घट्टा पड़ गया था। किसी धूर्त द्वारा दिये गये सिद्धाञ्जन को

---

१. काद०, पृ० ४०७-४०६।

२. Kane's Notes on the Harshacharita, Ucch. I, p.82.

३. हर्ष० १।१७

[४.] ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, पृ० ३३२।

लगाने से उसका एक नेत्र फूट गया था। वह दूसरे नेत्र में अञ्जन लगाने के लिए काठ की शलाका चिकनी करता रहता था। उसके दाँत बढ़ गये थे, अतः प्रतीकार के लिए वह कड़ुई लौकी का पानी लगाया करता था। किसी प्रकार अनुचित स्थान पर चोट लग जाने के कारण उसका एक हाथ सूख गया था। निरन्तर कटुवर्ति के प्रयोग से उसका तिमिर रोग बढ़ गया था। पत्थर को तोड़ने के लिए उसने वराह के दाँतों को संगृहीत कर रखा था। उसने इंगुदी के कोष में ओषधि तथा अञ्जन को सङ्गृहीत कर रखा था। उसने सुई से शिरा को सी लिया था, जिससे वायें हाथ की अँगुलियाँ कुछ छोटी हो गयी थीं। कौशेयक-कोश के आवरण से उसके पैर का अँगूठा व्रणयुक्त हो गया था। विधि-पूर्वक न निर्मित किये गये रसायन के प्रयोग से उसे असमय में ही ज्वर आ जाता था। वृद्धावस्था में भी दक्षिणापथ के राज्य को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करके दुर्गा को भी उद्विग्न करता था। किसी दुःशिक्षित श्रमण ने यह कहा था कि जिसके अमुक स्थान पर तिल रहता है, वह धन प्राप्त करता है; इसी पर वह आशा लगाये था। हरे पत्तों के रस से संयुक्त अंगार से बनी मसि से मलिन एक घोंघा उसके पास था। उसने पट्टिका पर दुर्गास्तोत्र लिख रखा था। उसने तालपत्र पर इन्द्रजाल, तन्त्र और मन्त्र की पुस्तिकाएँ लिखकर सङ्गृहीत कर रखी थीं। अलक्तक से लिखे गये उनके अक्षर धूम से मलिन हो गये थे। वृद्ध पाशुपत के उपदेश से उसने महाकाल मत लिख लिया था। वह गड़ा धन वताने की व्याधि से ग्रस्त था। उसे धातुवाद (सोना बनाना) की हवा लग गयी थी। उसे असुरविवर में प्रवेश करने के विचार का पिशाच लग गया था। यक्षों की कन्यकाओं के साथ सम्भोग करने की अभिलाषा ने उसकी बुद्धि में भ्रम उत्पन्न कर दिया था। उसने अन्तर्धान होने के मन्त्रों का सङ्ग्रह कर रखा था। वह श्रीपर्वत की सहस्रों आश्चर्यजनक वातों को जानता था। वार-वार अभिमन्त्रित करके फेंकी गयी सरसों से दौड़कर आये हुए पिशाचाविष्ट मनुष्यों ने थप्पड़ मार-मार कर उसके कान कठोर कर दिये थे। लौकी की वीणा को उलट-पुलट कर लेकर (दुर्गृहीत) वजाने से उद्वेजित पथिक उसके पास नहीं आते थे; दिनभर मच्छर की भाँति भनभनाता हुआ शिर हिलाकर कुछ गाता रहता था। अपने देश की भाषा में रचे गये भागीरथी के भक्ति-स्तोत्रों को गा-गाकर नाचता रहता था। उसने तुरगब्रह्मचर्य धारण कर रखा था, अतः अन्य देशों से आयी हुई, वहाँ टिकी हुई बूढ़ी संन्यासिनियों पर उसने अनेक वार स्त्रीवशीकरणचूर्ण का प्रयोग किया था। अतिक्रोधी होने के कारण किसी समय ठीक से न रखी गयी अष्टपुष्पिका के गिर जाने से वह क्रुद्ध हो उठता था। वह मुख को टेढ़ा करके चण्डिका का भी उपहास करता था। कभी वहाँ ठहरने से रोकने के कारण क्रुद्ध हुए पथिकों से वाहु-युद्ध होने पर गिर पड़ने के कारण उसकी पीठ भग्न हो गयी थी। कभी अपराध करके बालकों के भागने से क्रुद्ध होकर उनके पीछे दौड़ता और ठोकर लग जाने से मुँह के बल गिरने से उसका शिरःकपाल फूट जाता था और ग्रीवा टेढ़ी हो जाती थी। कभी जनपद के लोगों द्वारा नवागत धार्मिक का आदर होता देखकर ईर्ष्या के कारण आत्महत्या करने के लिए फाँसी लगाने के लिए उद्यत हो जाता था। संस्कार

न होने के कारण वह जो कुछ मन में आता था, वही करता था। खञ्ज होने के कारण धीरे-धीरे चलता था। बधिर होने के कारण संकेत से व्यवहार करता था। रतौंधी होने के कारण दिन में ही भ्रमण करता था। उसका पेट लम्बा था, अतः बहुत खाता था। अनेक बार फल गिराने से कुपित हुए वानरों ने नखों से नोच-नोच कर उसकी नाक में छेद कर दिये थे। पुष्पों को तोड़ते समय उड़े हुए सहस्रों भ्रमरों ने दंशन कर के उसके शरीर को शीर्ण कर दिया था। अनेक बार असंस्कृत शून्य देवालयों में शयन करने से काले सर्पों ने उसे डस लिया था। सैकड़ों बार श्रीफल वृक्ष के शिखर से गिरने के कारण उसका मस्तक चूर्ण हो गया था। अनेक बार भग्न देवमातृकागृह के वासी रीछों ने अपने नखों से उसके कपोलों को जर्जर कर दिया था। वसन्तोत्सव मनाने वाले लोग टूटी खाट पर बैठायी गयी वृद्ध दासी से उसका विवाह करके उसकी विडम्बना करते थे। अनेक देवतायनों में धरना देकर शयन करने से भी वह निष्फल होकर उठता था।... दण्डों के आघात से उसके शरीर में गण्डूक हो गये थे। सभी अंगों पर दीप रख कर जलाने के कारण जलने से व्रण हो गये थे।...वह क्षणभर भी काले कम्बल के टुकड़े की खोल नहीं छोड़ता था।[१]

वाण ने द्रविड-धार्मिक के वर्णन के प्रसङ्ग में रक्तध्वज[२] और चण्डिका[३] का भी वर्णन किया है। यहाँ तीन रसों—भयानक, वीभत्स तथा हास्य—की योजना की गयी है। इनका मुख्य कथावस्तु से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।[४]

यहाँ द्रविड-धार्मिक आलम्बन है। उसमें आकार, वेष तथा चेष्टा की विकृतियाँ विद्यमान हैं। चन्द्रापीड में हास्य का हसित भेद विद्यमान है।[५] स्मित तथा हसित—ये दोनों उत्तम-प्रकृति-गत होते हैं।[६] हसित उस हास को कहते हैं, जिसमें मुख, नेत्र और कपोल-स्थल विकसित हों और दाँत कुछ-कुछ दिखायी पड़े।[७]

हर्षचरित में हर्षवर्धन के जन्मोत्सव के प्रसंग में हास्य का आकर्षक चित्रण प्रस्तुत किया गया है—

---

१. काद०, पृ० ३९८-४०१।

२. वही, पृ० ३९४।

३. वही, पृ० ३९४-३९६।

४. Kāne's Notes on the Kādambarī (pp. 124–237 of Dr. Peterson's edition), p. 262.

५. 'दृष्ट्वा च कादम्बरीविरहोत्कण्ठोद्वेगदूयमानोऽपि सुचिरं जहास।'

काद०, पृ० ४०१।

६. 'स्मितहसिते ज्येष्ठानां...।'

नाट्यशास्त्र ६।५३

७. उत्फुल्लानननेत्रं तु गण्डैर्विकसितैरथ।
किञ्चिल्लक्षितदन्तं च हसितं तद्विधीयते॥

वही ६।५५

'धीरे-धीरे उत्सव का आनन्द बढ़ने लगा। कहीं नृत्य में अनभ्यस्त चिरन्तन लज्जाशील कुलपुत्रों ने नृत्य द्वारा राजा के प्रति अनुराग व्यक्त किया। कहीं भीतर ही भीतर मुस्कराते हुए राजा ने देखा कि मत्त क्षुद्रदासियाँ उनके प्रियपात्रों को खींच रही हैं। कहीं कुटनियों के गले में लगे हुए वृद्ध आर्य सामन्तों के नृत्य से राजा अत्यधिक हँस रहे थे। कहीं राजा के नेत्र-संकेत का आदेश पाकर दुष्ट दासीपुत्र सचिवों के गुप्तरत को सूचित कर रहे थे। कहीं जल भरने वाली मदमत्त दासियों से आलिंगित होते हुए वृद्ध परिव्राजकों ने लोगों को हँसा दिया। कहीं पारस्परिक स्पर्द्धा से उच्छृङ्खल विटों और नौकरों ने गालियों का युद्ध प्रारम्भ किया। कहीं राजा की स्त्रियों ने नृत्य से अनभिज्ञ अन्तःपुरपालों को बलात् नचाया, जिससे परिचारिकायें प्रमुदित हुईं।'[1]

करुण

करुणरस का मनोज्ञ परिपाक बाण की रचनाओं में उपलब्ध होता है। हर्षचरित में करुणरस का प्रवाह सतत प्रवर्तित होता रहता है। राजा प्रभाकरवर्धन की मृत्यु, ग्रहवर्मा की मृत्यु, राज्यवर्धन की मृत्यु आदि प्रसङ्गों में करुण की अभिव्यञ्जना हुई है। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु को समीप जान कर रसायन नामक वैद्यकुमार ने अग्नि में प्रवेश किया। यह सुनकर भीतरी ताप से मानो जलकर हर्षवर्धन उसी क्षण विवर्ण हो गये। उन्होंने विचार किया––कुलीन जन स्वयं विनष्ट हो जाता है, किन्तु विपत्ति में भी प्राकृत जन की भाँति दुःखद अप्रिय वचन नहीं सुनाता। अग्नि में प्रवेश करने से उसकी शोभन कुलीनता उसी प्रकार और भी उज्ज्वल हो गयी, जैसे अग्नि में तपाने से विशुद्ध जाति का सोना।[2]

हर्ष ने पुनः विचार किया—'अथवा यह स्नेह के अनुरूप ही हुआ। क्या मेरे पिता इसके पिता नहीं थे ? क्या मेरी माता इसकी माता नहीं ? या हम इसके भाई नहीं ?...वह केवल आग में गिरा, जले तो हम लोग। धन्य है पुण्यात्माओं में वह अग्रगण्य ! अपुण्यात्मा तो वह राजकुल ही है, जो उस प्रकार के कुलपुत्र से रहित हो गया। और भी, मेरे इस प्राण का क्या कार्यभार है, अथवा क्या करना अवशिष्ट है, या कौन-सा कार्य-नियोग है, जो अब भी यह निष्ठुर प्राण प्रस्थान नहीं करता। हृदय का कौन-सा अन्तराय है, जिससे वह सहस्रधा विशीर्ण नहीं हो जाता।'[3]

दुःखार्त वे राजभवन नहीं गये। शय्या पर लेटकर उन्होंने उत्तरीय से अपने को ढँक लिया।

राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन की अवस्था से सभी सन्तप्त हो उठे। इसका बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन हुआ है—

---

१. हर्ष० ४।७

२. वही, ५।२६

३. वही, ५।२६

'लोगों के गालों पर हाथ कीलित-से हो गये। लोचनों में मानों अश्रु-प्रवाह का लेप हो गया। नाकों के अग्रभागों में दृष्टियाँ मानों गड़ गयीं। रोने की ध्वनियाँ कानों में उत्कीर्ण-सी हो गयीं। जीभों पर 'हा कष्ट' के शब्द मानो सहज हो गये। मुखों में निःश्वास मानो पल्लवित हो गये। अधरों पर विलाप के पद मानो लिखित हो गये। दुःख हृदयों में मानो पुञ्जीभूत हो गये। नींद मानों उष्ण अश्रुओं के दाह से डर कर नेत्रों के भीतर नहीं आयी। हास मानो निःश्वास के पवन से उड़ा दिये जाने से विलीन हो गये। सन्ताप से मानो पूर्णतः दग्ध हुई वाणी प्रवर्तित नहीं हुई। कथाओं में भी परिहास नहीं सुनायी पड़े। पता नहीं कि गीतगोष्ठियाँ कहाँ चली गयीं। नृत्य विस्मृत हो गये। स्वप्न में भी प्रसाधन नहीं ग्रहण किये गये। उपभोगों की बात तक नहीं हुई। भोजन का नाम तक नहीं लिया गया। पानगोष्ठियाँ आकाशकुसुम हो गयीं। वन्दियों के वचन मानो अन्य लोक में चले गये। सुख मानो दूसरे युग में चला गया।'[1]

यहाँ शोक की प्रगाढ़ रेखा खींची गयी है। राजा की मृत्यु की आशंका से लोग अत्यन्त दुःखित हैं।

यशोमती की विकला नामक प्रतीहारी ने आकर निवेदन किया कि रानी ने स्वामी के जीवित रहते ही मरने का निश्चय कर लिया है।[2] यह सुनकर हर्ष का धैर्य जाता रहा। उन्होंने विचार किया—'मेरे कठिन हृदय पर कठोर पत्थर पर लोहप्रहार की भाँति दुःखाभिषङ्ग अग्नि पैदा करता है, किन्तु मुझ निर्दय के शरीर को भस्मसात् नहीं करता।'[3]

छोटे-से वाक्य में कितनी तीव्र वेदना का अभिव्यञ्जन हो रहा है।

हर्षवर्धन ने अन्तःपुर में जाकर माता के प्रलाप सुने। इससे उनके कान जलने लगे।[4]

माता ने अग्नि में प्रवेश किया। हर्षवर्धन माता के मरण से विह्वल हो गये।[5]

इसके वाद वाण ने प्रभाकरवर्धन की मृत्यु का वर्णन किया है। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु से लोगों को अपार कष्ट हुआ। हर्षवर्धन सोचते हैं—'लोगों के मार्ग भग्न हो गये। मनोरथों के भूति-स्थान अवरुद्ध हो गये। आनन्द के द्वार बन्द हो गये। सत्य-वादिता सो गयी। लोक-यात्रा लुप्त हो गयी। भुजवल विलीन हो गया। प्रियालाप जाता रहा। पौरुष के विविध विलास चले गये। समरदक्षता समाप्त हो गयी। दूसरों के गुणों के प्रति प्रीति ध्वस्त हो गयी। विश्वास-स्थान नष्ट हो गये। उत्तम कर्म निराश्रय हो गये। शास्त्र निरुपयोग हो गये। पराक्रमाभिरुचि आलम्बन-विहीन हो गयी। विशेषज्ञता कथा में ही रह गयी। लोग शक्ति को जलाञ्जलि दें। प्रजापालता संन्यास

---

१. हर्ष० ५।२६
२. वही, ५।२८
३. वही, ५।२८
४. वही, ५।२८
५. वही, ५।३१

ग्रहण करे। वरमनुष्यता वैधव्यवेणी बाँधे। राज्यश्री आश्रम का आश्रय ले। पृथ्वी धवल वस्त्र धारण करे। मनस्विता वल्कल पहने। तेजस्विता तपोवनों में तपस्या करे। वीरता चीवर धारण करे। कृतज्ञता उन्हें खोजने कहाँ जाय। विधाता महापुरुषों का निर्माण करने के लिए वैसे परमाणु कहाँ प्राप्त करेंगे। गुणों की दशों दिशाएँ सूनी हो गयीं। धर्म का संसार अन्धकारयुक्त हो गया। अब शस्त्रों से जीने वालों का जन्म निष्फल है।'[१]

यहाँ आलम्बन के गुण-कथन के द्वारा शोक प्रकाशित हुआ है। यह प्रवृत्ति बहुत कुछ अंशों में मनोवैज्ञानिक भी है।

यहाँ हर्ष की चिन्तनपरम्परा में शोक का सागर उमड़ रहा है। शोक अत्यन्त तीव्र है, अतएव विलाप आदि की भी योजना नहीं हुई है।

इसके बाद बाण ने शोकाकुल कञ्चुकियों, सन्तप्त परिजनों, दुःखित राजकुञ्जर आदि का करुणचित्रण किया है।[२]

राजा के भृत्यों, मित्रों तथा मन्त्रियों ने घर छोड़ दिया। कुछ लोग तीर्थों में रह गये। कुछ ने शलभों की भाँति अग्नि में प्रवेश किया।[३]

इस प्रकार न केवल हर्ष ही शोक-प्लावित हैं, अपितु शोक की गहरी छाया पूरे साम्राज्य पर दिखायी पड़ रही है।

छठे उच्छ्वास के प्रारम्भ में राज्यवर्धन के आगमन का वर्णन किया गया है—

'उनके अतिकृश अवयवों से भारी दुःख की सूचना मिल रही थी। उनका मांस मानो राजा के प्राण की रक्षा के लिए शोकाग्नि में हवन कर दिया गया था। वे अपने चूडामणिरहित, मलिन तथा आकुल बालों वाले शेखरशून्य शिर पर मानो आरूढ हुए शरीरधारी शोक को धारण कर रहे थे। . . .वे अतिप्रबल बाष्प-प्रवाह से मानो अभीष्ट पति के मरण से मूर्च्छित हुई पृथिवी को निरन्तर सींच रहे थे। उनके कपोल दुःख से क्षीण हो गये थे। ताम्बूल के रंग से रहित उनका अधरबिम्ब मुख से निकलती हुई अत्यधिक ऊष्ण साँसों के मार्ग में पड़ कर मानो द्रवित हो रहा था।. . .वे सिंह की भाँति महाभूभृत् के विनाश से विह्वल और आलम्बन-रहित थे। दिवस की भाँति तेजःपति के पतन से निष्प्रभ तथा श्याम हो गये थे। नन्दनवन की भाँति कल्पपादप के टूटने से छायाहीन थे। दिग्भाग के समान दिक्कुञ्जर के चले जाने से सूने थे। पर्वत की भाँति भारी वज्र के गिरने से विदीर्ण थे तथा काँप रहे थे। उन्हें कृशता ने मानो खरीद लिया था, कारुण्य ने मानो किङ्कर बना लिया था, दौर्मनस्य ने मानो दास बना लिया था, शोक ने मानो

---

१. हर्ष० ५।१३३

२. वही, ५।१३४

३. वही, ५।१३४

शिष्य बना लिया था, मनोव्यथा ने मानो अपने अधीन कर लिया था, मौन ने मानो मूक कर दिया था, पीड़ा ने मानो पीस दिया था।'[१]

यहाँ राज्यवर्धन शोक के तीव्र अभिघात से सन्तप्त चित्रित किये गये हैं। ऐसे स्थलों पर बाण अनेक विधियों से प्रसङ्ग-प्राप्त भावों को विशेष उभारने का प्रयत्न करते हैं।

राज्यवर्धन की मृत्यु के प्रसङ्ग में शोक का नितान्त कान्त उन्मीलन प्राप्त होता है। राज्यवर्धन की मृत्यु का समाचार सुनकर हर्षवर्धन क्रोध से उद्दीप्त हो उठते हैं और शोक का वेग मन्द पड़ जाता है, परन्तु एकान्त में पाकर शोक उन्हें वश में कर लेता है। उनकी साँस चलने लगती है। वे मौन होकर रुदन करते हैं।[२] वे सोचते हैं—

'आर्य के मरने पर क्या कोई मूर्ख भी मेरे जीवन की सम्भावना कर सकता है? वैसा वह ऐक्य तत्काल कहीं चला गया। दुर्दैव ने अनायास मुझे पृथक् कर दिया। दुष्ट क्रोध ने शोक को दबा रखा था, अतः निर्दय मैं मुक्तकण्ठ से देर तक रोया भी नहीं। प्राणियों की प्रीति सर्वथा मकड़ी के तन्तुओं की भाँति भङ्गुर और तुच्छ होती है। बन्धुता संसार-यात्रा तक ही रहती है, क्योंकि आर्य के स्वर्ग में चले जाने पर मैं भी दूसरे की भाँति सुख से बैठा हूँ। इस प्रकार के पारस्परिक प्रेम-बन्धन से आनन्दित हृदयों वाले सुखी भाइयों को वियुक्त करके विधाता को क्या फल मिला? आर्य के जो गुण चन्द्रमा की भाँति आह्लादित करते थे, वे ही आर्य के परलोक में चले जाने पर मुझे जला रहे हैं।'[३]

राज्यश्री का चित्रण भी करुणा की धारा प्रवाहित कर रहा है—

'शिव के शिर से गिरी हुई गङ्गा की भाँति वह पृथिवी पर आ गयी थी। वन के कुसुमों की धूलि से उसके पादपल्लव धूसरित थे। प्रभातकाल की चन्द्रमूर्ति की भाँति वह लोकान्तर का अभिलाष कर रही थी। जल के सूखने के कारण धवल और लम्बी जड़ वाली कमलिनी की भाँति अश्रुप्रवाह के कारण उसकी श्वेत और दीर्घ आँखें कदर्थित थीं और वह मलिन थी। दुःसह रवि-किरण के स्पर्श के क्लेश से बन्द हुई कुमुदिनी के समान वह दुःख-पूर्वक दिवस बिता रही थी। उसका शरीर कृश एवं पाण्डु हो गया था। वन की हथिनी की भाँति वह महाह्लद में निमग्न थी। वह घने वन में और ध्यान में प्रविष्ट थी, वह वृक्ष के नीचे और मृत्यु के मुख में थी, वह धात्री की गोद में और बहुत बड़ी विपत्ति में पड़ी हुई थी। वह स्वामी और सुख से दूर कर दी गयी थी। वह भ्रमण और जीवन से अलग हो गयी थी।...वह प्रचण्ड आतप तथा वैदग्ध्य से जल गयी थी। हाथ और मौन से उसका मुख बन्द था। प्रिय सखियों और शोक से वह गृहीत थी। उसके बन्धु और विलास नष्ट हो गये थे।...उसने आभूषण और सभी कार्य छोड़ दिये

---

१. हर्ष० ६।३६-३७

२. वही, ६।४८

३. वही, ६।४८-४९

थे। उसके वलय और मनोरथ भग्न हो गये थे। चरणों में परिचारिकाएँ और कुश के अङ्कुर लगे थे। हृदय में प्रियतम थे और वक्षःस्थल पर आँख गड़ी थी।'[1]

कवि ने राज्यश्री की कृशता, निःश्वास, दुःख, धैर्यच्युति, व्यसन, मानसी-व्यथा, अवसाद, आपत्ति, दुर्दैव, उद्वेग आदि का द्रावक चित्रण किया है।[2]

स्त्रियों के आलाप का वर्णन दृश्य को और भी विषादपूर्ण बना रहा है—

'भगवन् धर्म ! शीघ्र दौड़ो। कुलदेवते ! कहाँ हो। देवि धरणि ! दुःखित पुत्री को सान्त्वना नहीं देती हो। पुष्पभूति कुल की कुटुम्बिनी लक्ष्मी कहाँ चली गयी ? हे मुखरवंश-प्रसूत नाथ ! अनेक प्रकार की मानसिक व्यथाओं से विधुर विधवा वधू को क्यों प्रबोध नहीं दे रहे हो ? पुष्पभूति-भवन के पक्षपाती राजधर्म ! क्यों उदासीन हो गये हो ? विपत्तियों के बन्धु विन्ध्य ! तुम्हें किया गया प्रणाम व्यर्थ है। माता अटवि ! विपत्ति में पड़ी हुई इसका विलाप नहीं सुन रही हो। सूर्य ! अशरण पतिव्रता को बचाओ। प्रयत्नरक्षित कृतघ्न दुष्टचारित्र ! राजपुत्री की रक्षा नहीं कर रहे हो। बेटी के प्रति स्नेह करने वाली माता यशोमति ! दुष्ट दैव दस्यु ने तुम्हें लूट लिया। हे देव प्रतापशील ! जलने वाली पुत्री के पास क्यों नहीं आ रहे हो, अपत्य-प्रेम शिथिल हो गया। महाराज राज्यवर्धन ! दौड़ नहीं रहे हो, भगिनी के प्रति प्रेम कम हो गया। अहो ! मृत व्यक्ति निष्ठुर होते हैं। स्त्री की हत्या करने में निर्दय दुष्टपावक ! दूर चले जाओ, लज्जित नहीं होते। तात पवन ! तुम्हारी दासी हूँ। दुःखियों की पीड़ा को दूर करने वाले देव हर्ष को देवी के जलने का समाचार शीघ्र बता दो। अतिनिर्दय शोकचण्डाल ! तुम्हारी कामना पूर्ण हुई। दुःखदायी वियोगराक्षस ! तुम सन्तुष्ट हो।'[3]

बाण ने स्त्रियों के विलाप का बड़ा विस्तृत वर्णन उपन्यस्त किया है। समस्त वातावरण करुणा की तरंगों से आप्लावित है। शोक को उद्दीप्त करने वाली विविध वचन-सरणियाँ सँजोयी गयी हैं।

जब हर्षवर्धन पहुँचते हैं, तब अग्नि में प्रवेश करने के लिए उद्यत राज्यश्री को मूर्च्छित पाते हैं। मूर्च्छा से उसकी आँखें बन्द थीं। उन्होंने अपने हाथ से उसका ललाट पकड़ लिया। भाई के हाथ के स्पर्श से राज्यश्री ने अपनी आँखें खोल दीं। उस समय राज्यश्री और हर्ष ने रुदन किया।[4]

शुक-वृत्तान्त के प्रसङ्ग में भी करुण का सुन्दर अभिव्यञ्जन हुआ है। शुक के पिता की मृत्यु, शुक की असहायावस्था, शुक का जलान्वेषण के लिए प्रयास करना— इनके द्वारा करुणरस की धारा सतत प्रवाहित की गयी है।

शुक का चित्रण ध्यातव्य है—

१, २. हर्ष० ८।७०

३. वही, ८।७९

४. वही, ८।८०-८१

'एक जीर्ण कोटर में पत्नी के साथ रहते हुए वृद्धावस्था में वर्तमान पिता को किसी प्रकार विधिवश मैं ही एकमात्र पुत्र उत्पन्न हुआ। मेरे जन्म के समय अतिप्रबल प्रसव-वेदना से अभिभूत मेरी माता मर गयीं। अभीष्ट पत्नी की मृत्यु के शोक से दुःखित होते हुए भी पिता पुत्र के प्रति स्नेह के कारण शोक को भीतर ही रोककर एकाकी मेरा पालन करने लगे। पिता अधिक अवस्था के थे। उनके थोड़े-से पंखे अवशिष्ट रह गये थे। पंखों में उड़ने की शक्ति नहीं रह गयी थी। अन्य पक्षियों के घोंसलों से गिरी हुई शाल-मञ्जरियों से तण्डुल-कणों को ले लेकर तथा वृक्षमूल पर गिरे हुए और शुकों के द्वारा खण्डित किये गये फल-खण्डों को एकत्र करके परिभ्रमण करने में अशक्त वे मुझे दिया करते थे और स्वयं प्रतिदिन जो मेरे खाने से बचता था, उसे खाया करते थे।'[1]

जब वृद्ध शबर शाल्मली वृक्ष के नीचे रुक जाता है और उस पर चढ़कर शुकों को मार-मार कर भूमि पर गिरा देता है और इसके बाद वृक्ष से उतर कर शुकों को लेकर चला जाता है तथा जब वैशम्पायन शुक अपने प्राण की रक्षा करने का प्रयत्न करता है और मार्ग में सूर्य की ऊष्मा से सन्तप्त हो जाता है, तब कवि की लेखनी करुण का समुज्ज्वल समुन्मीलन करती है और समुद्भासित भावों की अवलियों का शृङ्गार करती है।

'शबर सेनापति के ओझल हो जाने पर एक वृद्ध शबर ने पक्षियों के मांस को प्राप्त करने की इच्छा से उस वृक्ष को बहुत अधिक समय तक जड़ से लेकर ऊपर तक देखा। वह मानो हम लोगों के आयुष्य का पान कर रहा था। उस शाल्मली वृक्ष पर विना यत्न के चढ़ कर उसने उड़ने में असमर्थ शुक-शावकों को पकड़ लिया और मार-मार कर गिरा दिया। असमय में ही प्राण को ले लेने वाली उस प्रतीकार-रहित विपत्ति को आयी हुई देखकर पिता अत्यधिक काँपने लगे। वे शिथिल पंखों से मुझे आच्छादित करके गोद में छिपाकर बैठ गये। वह वृद्ध शबर कोटर के द्वार पर आया और अपनी बायीं भुजा को बढ़ाकर बार-बार चोंच का प्रहार करने वाले उच्च स्वर से चीखते हुए पिता को खींच कर प्राणरहित कर दिया। छोटा शरीर होने के कारण, भय से संकुचित अङ्गों के कारण तथा आयु के अवशिष्ट रहने के कारण उनके पंखों के भीतर स्थित मुझको उसने किसी प्रकार भी नहीं देखा। मरे हुए तथा शिथिल ग्रीवा वाले उनको अधोमुख करके भूतल पर फेंक दिया। मैं भी उनके चरणों के बीच ग्रीवा को निवेशित किये हुए चुपचाप गोद में छिपा हुआ उन्हीं के साथ गिर पड़ा। पुण्य के अवशिष्ट रहने के कारण पवन के कारण एकत्र हुई, सूखे पत्तों की विशाल राशि के ऊपर गिरा, जिसके कारण मेरे अङ्ग चूर-चूर नहीं हुए।'[2]

इसके बाद शुक-शावक लुढ़कता हुआ तमाल वृक्ष की जड़ में घुस गया। दूर से गिरने के कारण उसका शरीर अत्यन्त व्यथित था। उस समय बलवती पिपासा ने

---

१. काद०, पृ० ५०-५१।

२. वही, पृ० ६५-६७।

उसे व्यथित कर दिया। कवि ने उसकी अवस्था का जो निरूपण किया है, वह अत्यधिक द्रावक है—

'इस समय तक वह पापी बहुत दूर तक चला गया होगा, यह विचार करके ग्रीवा को कुछ उठाकर भय से चकित दृष्टि से दिशाओं को देखकर तृण के खटकने पर भी वह पुनः लौट आया, इस प्रकार उस पापी की पद-पद पर सम्भावना करता हुआ उस तमाल वृक्ष की जड़ से निकलकर जल के समीप जाने का प्रयत्न करने लगा। मैं बार-बार मुख के बल गिरता था। पृथिवी पर चलने के कारण मैं व्याकुल हो गया था। अभ्यास न होने के कारण एक पद भी रखकर निरन्तर उन्मुख होकर लम्बी-लम्बी साँस लेता था। उस समय मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ—संसार की अतिकष्टकारक दशाओं में भी प्राणियों की प्रवृत्तियाँ, जीवन से पराङ्मुख नहीं होतीं। इस संसार में सभी जन्तुओं को जीवन से बढ़कर अभीष्ट और कुछ नहीं है, क्योंकि सुगृहीतनामा पिता के मरने पर भी मैं स्वस्थ इन्द्रियों से युक्त हो जीना चाहता हूँ। धिक्कार है मुझ अकरुण, अतिनिर्दय और अकृतज्ञ को। मेरा हृदय खल है। माता के मर जाने पर शोक के वेग को रोककर जन्म के दिन से लेकर वृद्ध होते हुए भी पिता ने संवर्धन के बहुत बड़े क्लेश की भी गणना न करते हुए जो मेरा पालन किया, उसको उसी क्षण भुला दिया। यह प्राण निःसन्देह अतिकृपण है, क्योंकि उपकारी पिता का भी अनुगमन नहीं कर रहा है। जीवन-तृष्णा किसे खल नहीं बना देती? मुझे जल की अभिलाषा आयासित कर रही है। सलिल-पान का मेरा विचार केवल निर्दयता है। अब भी सरोवर-तट दूर है। दिन की यह दशा अत्यधिक कष्टोत्पादक है, क्योंकि आकाश के मध्य में स्थित सूर्य प्रचण्ड धूप को किरणों से बिखेर रहा है और अधिक पिपासा उत्पन्न कर रहा है। धूप से जलती हुई धूलि के कारण भूमि दुर्गम है। अत्यधिक पिपासा से खिन्न अङ्ग चलने में समर्थ नहीं हैं। मेरा अपने ऊपर अधिकार नहीं है, मेरा हृदय बैठा जा रहा है, दृष्टि अन्धी हो रही है।'[1]

रौद्र

हर्षचरित के प्रारम्भ में सामगान करते हुए दुर्वासा का वर्णन किया गया है। उन्होंने विकृत स्वर में गान किया। इसे सुन कर देवी सरस्वती हँसने लगीं। उनको हँसती देख कर दुर्वासा की भ्रुकुटि चढ़ गयी। उनकी आँखें लाल हो गयीं। उनके शरीर पर स्वेद की बूंदें दिखायी पड़ने लगीं और हाथ की अँगुलियाँ काँपने लगीं।[2] उन्होंने 'रे पापिनी, दुर्गृहीत विद्यालव के गर्व से दुर्विदग्ध, मेरा उपहास करना चाहती हो' ऐसा कह कर कमण्डलु के जल से आचमन करके शाप देने के लिए जल ले लिया।[3]

सावित्री भी क्रुद्ध हो गयी। वह 'अरे पापी, क्रोधोपहत, दुरात्मन्, अज्ञ, अनात्मज्ञ, ब्राह्मणाधम, अधममुनि, नीच, स्वाध्यायशून्य, अपने स्खलन से लज्जित हो क्यों सुर,

१. काद०, पृ० ६९-७१।

२, ३. हर्ष० ११३

असुर, मुनि तथा मनुष्यों के द्वारा वन्दनीय तीनों लोकों की माता सरस्वती को शाप देने की अभिलाषा कर रहे हो ?' ऐसा कहती हुई आसन को छोड़ कर खड़ी हो गयी। उसके साथ मूर्तिमान् चारों वेदों ने भी क्रोध से बेंत के आसनों को छोड़ दिया।[1]

ग्रहवर्मा की मृत्यु का समाचार सुन कर राज्यवर्धन क्रुद्ध हो जाते हैं। उनकी भ्रुकुटि चढ़ जाती है। उनका हाथ काँपने लगता है। वे तलवार लेने के लिए अपना दाहिना हाथ बढ़ाते हैं। उनके कपोल लाल हो जाते हैं। वे अपना दाहिना चरण बायीं जाँघ पर रख लेते हैं और बायें पैर से मणिकुट्टिम को रगड़ने लगते हैं।[2]

जब राज्यवर्धन की मृत्यु का समाचार हर्ष को ज्ञात होता है, तब उनका शिर क्रोध में काँपने लगता है, होंठ फड़कने लगता है, नेत्र लाल हो जाते हैं, स्वेद-जल-कण दिखायी पड़ने लगते हैं। उनका आकार अत्यन्त भयंकर हो जाता है।[3]

वीर

हर्षचरित में वीररस का कमनीय सन्निवेश उपलब्ध होता है। पुष्पभूति और नाग के युद्ध के प्रसंग में युद्धवीर का दर्शन होता है—

'नाग ने हँस कर कहा—हे विद्याधरी की कामना करने वाले! क्या यह विद्या का गर्व है, या सहायता का मद है, जो इस जन को बिना बलि दिये ही मूर्ख की भाँति सिद्धि की अभिलाषा कर रहे हो? तुम्हारी यह क्या दुर्बुद्धि है? मेरे नाम से ही जिसका नाम पड़ा है, उस देश का अधिपति मैं श्रीकण्ठ नामक नाग हूँ। इतने समय तक तुम्हारे कानों में यह बात नहीं पड़ी। मेरे इच्छा न करने पर ग्रहों में क्या शक्ति है कि वे आकाश में जा सकें। यह बेचारा राजा भी अनाथ है, क्योंकि तुम्हारे जैसे नीच शैवों के द्वारा उपकरण बनाया गया है।'[4]

इस पर राजा अवज्ञासहित वचन कहते हैं—

'अरे सर्पाधम! मुझ राजहंस के रहते बलि की याचना करते हुए लज्जित नहीं होते? अथवा इन परुष वचनों से क्या? सज्जनों की भुजाओं में वीर्य रहता है, वाणी में नहीं। शस्त्र ग्रहण करो। तुम रह नहीं सकते। शस्त्र न धारण करने वालों पर प्रहार करना मेरी भुजा ने सीखा नहीं।'[5]

---

१. हर्ष० ११४

२. वही, ६।४१

३. वही, ६।४३

४. वही, ३।५२

५. वही, ३।५२

नाग ने और भी अनादरपूर्वक कहा—'आओ, शस्त्र से क्या, भुजाओं से ही तुम्हारे दर्प को चूर्ण करता हूँ।'[1]

इसके बाद दोनों में बाहु-युद्ध होता है। राजा उसे पृथ्वी पर गिरा देते हैं और शिर को काटने के लिए अट्टहास तलवार निकालते हैं। इसी समय राजा की दृष्टि उसके यज्ञोपवीत पर पड़ती है और उसे छोड़ देते हैं।[2]

हर्ष की प्रतिज्ञा में वीररस का मञ्जुल निर्वाह प्राप्त होता है। वे कहते हैं—

'ऊपर उठते हुए ग्रहों को भी मेरी भ्रूलता रोकना चाहती है। मेरा हाथ न झुकने वाले पर्वतों का भी केश पकड़ना चाहता है। हृदय तेज से दुर्विदग्ध किरणों से भी चामर पकड़वाना चाहता है। चरण मृगराजों की राजा की पदवी से क्रुद्ध होकर उनके शिरों को पदपीठ बनाना चाहता है। स्वच्छन्द लोकपालों के द्वारा स्वेच्छा से गृहीत दिशाओं के भी हरणार्थ आदेश देने के लिए अधर फड़क रहा है। फिर ऐसी दुर्घटना के घटने पर क्रोध-युक्त मन में शोक करने का अवकाश ही नहीं है। और भी, हृदय के दारुण शल्य, मुसल से मारने योग्य, जाल्म, जगन्निन्दित, गौडचाण्डाल के जीवित रहने पर दाढ़ी-मूछ वाली स्त्री की भाँति सूखे अधर वाला मैं प्रतिकार-शून्य होकर शोक से सूत्कार करने में लज्जित होता हूँ। जब तक शत्रु-सैनिकों की स्त्रियों के चञ्चल नेत्रों के जल से दुर्दिन नहीं उत्पन्न कर देता, तब तक मेरे दोनों हाथ जलाञ्जलि-दान कैसे करेंगे। गौडाधम की चिता के धूममण्डल को देखे बिना आँख में थोड़ा अश्रु-जल कैसे आ सकता है?'[3]

हर्ष प्रतिज्ञा करते हैं—

'यदि कुछ ही दिनों में धनुष की चपलता से दुर्ललित राजाओं के चरणों में रण-रण की ध्वनि करने वाली बेड़ियाँ न पहना दूँ, तो पातकी मैं घृत से धधकती अग्नि में पतंग की भाँति अपने को जला दूँगा।'[4]

भयानक

कादम्बरी में शवर-मृगया के वर्णन के प्रसंग में भयानक का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है—

'सहसा उस महावन में सभी वनचरों को डराने वाली, वेग से उड़ते हुए पक्षियों के पंखों से विस्तृत, डरे हुए हाथियों के बच्चों के चीत्कार से माँसल, कम्पित लताओं पर स्थित व्याकुल एवं मत्त भ्रमरों के गुँजार से पुष्ट, घूमते हुए उन्नत नासिकाओं वाले वन के शूकरों के घर्घर शब्दों से युक्त, पर्वत की गुहाओं में सोकर जगे हुए सिंहों के गर्जन से संवर्धित, वृक्षों को कम्पित-सी करती हुई, भगीरथ के द्वारा लायी जाती हुई गङ्गा के

१, २. हर्ष० ३।५२

३. वही, ६।४७

४. वही, ६।४७

प्रवाह के कलकल की भाँति परिपुष्ट, डरी हुई वनदेवियों के द्वारा सुनी गयी आखेट के कोलाहल की ध्वनि गूँजी।'[१]

इस कोलाहल को सुनकर शुकशावक डर जाता है और अपने पिता के पंखों के भीतर घुस जाता है।[२]

जब मृगया का कोलाहल समाप्त हो जाता है, तब शुक-शावक का भय मन्द पड़ जाता है। वह कुतूहलवश पिता की गोद से थोड़ा निकलकर ग्रीवा को फैलाकर देखता है। उस समय उसकी कनीनिकायें भय से तरल हो जाती हैं। उसे वन के मध्य से सम्मुख आती हुई शबर-सेना दिखायी पड़ती है।

'वह (शबर-सेना) सहस्रबाहु द्वारा सहस्रभुजाओं से विक्षिप्त नर्मदा-प्रवाह की भाँति थी, पवन से चलित तमाल-कानन की भाँति थी, संहाररात्रियों के एकत्र हुए प्रहर-समूह-सी थी, पृथिवी के कम्पन से संचालित अञ्जन-शिला-स्तम्भों के सम्भार-सी थी, सूर्य की किरणों से आकुल अन्धकार-पुञ्ज-सी थी, घूमते हुए यम के परिवार-सी थी। उसको देखने से ऐसा लगता था मानो रसातल को विदीर्ण करके दानवलोक ऊपर चला आया हो, मानो अशुभ कर्मों का समूह एकत्र हो गया हो, मानो दण्डकारण्य के अनेक मुनियों का शाप-समूह सञ्चरण कर रहा हो, मानो बाणों की निरन्तर वर्षा करने वाले राम के द्वारा मारी गयी खरदूषण की सेना उनके सम्बन्ध में अनिष्ट चिन्तन करने के कारण पिशाचता को प्राप्त हो गयी हो, मानो कलिकाल का बन्धुवर्ग एकत्र हो गया हो, मानो वन के महिषों का समूह स्नान के लिए निकल पड़ा हो, मानो पर्वत के शिखर पर स्थित सिंह के कर से खींचने से गिरने के कारण चूर्ण हुए कृष्ण मेघों की राशि हो, मानो समस्त मृगों के विनाश के लिए धूमकेतु उदित हो गया हो। वह सेना समस्त वन को अन्धकारित कर रही थी और अत्यन्त भय उत्पन्न कर रही थी।'[३]

शबर-सेना के वर्णन के प्रसङ्ग में कवि ने अनेक भयोत्पादक उपमानों की योजना की है। इसके बाद सेनापति मातंग और उसके साथ चलने वाले शबरों का वर्णन किया गया है।[४] इससे भी भय का सञ्चार हो रहा है।

वीभत्स

हर्षचरित का दावानल का वर्णन वीभत्स का सुन्दर उदाहरण है—

'कहीं-कहीं धूमोद्गार से उनकी रुचि मन्द पड़ गयी थी। समस्त जगत् को ग्रास की भाँति खाने वाले वे भस्म से युक्त हो गये थे। कहीं-कहीं क्षयी रोगियों की भाँति पर्वतों पर शिलाजतु का उपभोग करते थे। कहीं-कहीं सभी रसों का भोग करने से मोटे हो गये थे। कहीं-कहीं गुग्गुलु जला कर रौद्र हो गये थे। कहीं-कहीं जलती जड़ों की

१, २. काद०, पृ० ५४।

३. वही, पृ० ५७-५८।

४. वही, पृ० ५८-६३।

आग से पुष्पों-सहित शरों और मदन वृक्षों को जला कर ठूठों पर ठहरे हुए थे। ...सूखे सरोवरों में फैलकर फूटते हुए सूखे नीवार के बीजों के लावे की वृष्टि करने वाली ज्वालाओं रूपी अञ्जलियों से मानो सूर्य की अर्चना कर रहे थे। बलपूर्वक हवन में डाले जाते हुए कठोर स्थल-कच्छपों की चरबी की कच्ची गन्ध के लोभी वे मानो घृणा-रहित हो गये थे। अपने धूम को भी मानो बादल बनने के डर से निगल जाते थे। घास पर बहुत-से छोटे-छोटे कीड़ों के फूटने से उनमें मानो तिल की आहुति पड़ रही थी। सूखे सरोवरों में दाह से छाल के चटकने के कारण धवल हुए शम्बूकों और शुक्तियों के कारण वे कोढ़ियों की भाँति लग रहे थे। वनों में पिघलते मधु-कोषों से निकलती मधु की वर्षा करने से वे मानो स्वेद युक्त हो रहे थे।"[1]

यहाँ डकार, चरबी आदि की योजना से बीभत्स रस का अभिव्यञ्जन हो रहा है।

अद्भुत

कादम्बरी की कथा ही अद्भुत रसमय है। प्रारम्भ में ही शुक का वर्णन आता है। वह स्वयं आर्या पढ़ता है। राजा के पूछने पर अपना सारा वृत्तान्त बताता है। कादम्बरी के भवन में भी शुक-सारिका के वार्तालाप की योजना की गयी है। कादम्बरी के पात्र एक जन्म के बाद दूसरा जन्म ग्रहण करते हैं। पुण्डरीक वैशम्पायन के रूप में जन्म लेता है और इसके बाद शुक-योनि में आता है। चन्द्रापीड, जो चन्द्र का अवतार है, शूद्रक के रूप में उत्पन्न होता है। इन्द्रायुध घोड़ा भी आश्चर्यमय है। पत्रलेखा इन्द्रायुध घोड़े को लेकर अच्छोद सरोवर में कूद पड़ती है। कपिञ्जल ही शप्त होकर इन्द्रायुध के रूप में अवतीर्ण हुआ था। महाश्वेता की तपस्या का प्रभाव अद्भुत है। वह वृक्षों के नीचे पात्र लेकर घूमती है और उसका पात्र फल से भर जाता है। महर्षि जाबालि की तपश्चर्या का प्रभाव भी आश्चर्यमय है। शुक को देख कर वे कहते हैं—'**स्वस्यैवाविनयस्य फलमनेनानुभूयते**।'[2] वे शुक के पूर्वजन्म की कथा बताते हैं। चाण्डालकन्या का भी स्वरूप छिपा हुआ है। वह लक्ष्मी है। अपने पुत्र पुण्डरीक की रक्षा के लिए प्रयत्न करती है। कथा की योजना भी अद्भुत है।

हर्षचरित में भी कुछ अद्भुत योजनाएँ उपन्यस्त की गयी हैं। दुर्वासा से शप्त सरस्वती भूतल पर आती है और पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् चली जाती है। भैरवाचार्य सिद्धि प्राप्त करके स्वर्ग के लिए प्रस्थान करता है। हर्षवर्धन को भेंट के रूप में दिये गये छत्र का वर्णन भी इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

कादम्बरी में इन्द्रायुध का वर्णन अत्यन्त रमणीय है—

'वह बहुत ऊँचा था। उसकी पीठ को कोई पुरुष हाथ उठा करके ही छू सकता था। वह मानो सामने पड़ने वाले आकाश को पी रहा था। अतिनिष्ठुर, बार-बार

---

१. हर्ष० २।२३

२. काद०, पृ० ९२।

उदर को प्रकम्पित करने वाले, भुवन में व्याप्त हेषारव से मानो अलीक वेग से दुर्विदग्ध हुए गरुड़ का तिरस्कार कर रहा था। वेग को रोकने से क्रुद्ध होकर नासिका को फुला कर घुर्-घुर् शब्द कर रहा था, मानो अपने वेग के दर्प के कारण त्रिभुवन को लाँघना चाहता था। उसका शरीर इन्द्रधनुष का अनुकरण करने वाली श्याम, पीत, हरित एवं पाटल रेखाओं से कल्माषित था। अतः वह अनेक रंगों वाले कम्बल से आच्छादित हाथी के बच्चे की भाँति लग रहा था। कैलास-तट पर प्रहार करने के कारण धातु (गेरू) के लग जाने से श्वेत-रक्त शिव-वृषभ की भाँति लग रहा था तथा असुरों के रुधिर से लोहित हुई सटा वाले पार्वती के सिंह की भाँति लग रहा था।'[१]

'वह निरन्तर फड़कते हुए नथुने से सूत्कार कर रहा था, मानो अतिवेग से पिये हुए पवन को नासिका-विवर से निकाल रहा था। शब्दायमान लगाम के तीक्ष्ण अग्रभाग के संक्षोभ से उत्पन्न लार के फेन को उगल रहा था। उसका मुख अत्यधिक आयत तथा मांस-रहित होने के कारण उत्कीर्ण-सा प्रतीत होता था। मुख पर निहित पद्मराग मणियों की किरणें उसके कानों पर पड़ रही थीं।....उसकी ग्रीवा भास्वर सुवर्ण-शृङ्खला की लगाम से तथा लाक्षा की भाँति लाल, लम्बी और हिलती सटा से युक्त थी। वह अत्यधिक वक्र सोने की पत्रलता से भंगुर, पद-पद पर बजती हुई रत्नमालिकाओं से युक्त, बड़े-बड़े मुक्ताफलों से समन्वित लाल अश्वालङ्कार से अलङ्कृत था।'[२]

उसके खुर इन्द्रनीलमणियों से बने हुए पाद-पीठ का अनुकरण कर रहे थे। वह विशाल खुरों से वसुन्धरा को जर्जरित कर रहा था। उसकी जाँघें मानो उत्कीर्ण थीं। उसका वक्षःस्थल मानो विस्तारित किया गया था। उसका मुख मानो चिकना कर दिया गया था। उसकी कन्धरा मानो फैलायी गयी थी। उसके पार्श्वभाग मानो उत्कीर्ण थे। उसके जघन-प्रदेश मानो द्विगुणित कर दिये गये थे। वह वेग में मानो गरुड़ का प्रतिद्वन्द्वी था। वह मानो पवन का तीनों लोकों में सञ्चरण करने के कार्य में सहायक था। वह मानो उच्चैःश्रवा का अंशावतार था। वह वेग की शिक्षा की प्राप्ति में मानो मन का सहपाठी था। वह समस्त पृथिवी को लाँघने में समर्थ था। वह अशोक की भाँति लाल रंग का था। उसका मुख श्वेत पुण्ड्रक से अङ्कित था। उसके केसर मधु-युक्त वचापङ्क के लेप से पिङ्गल थे। वह बहुत बड़ा तथा अतितेजस्वी था। वह चलने के लिए सदा तत्पर रहता था। वह शङ्खमाला से विभूषित था। उसके कान खड़े रहते थे। वह चक्रवर्ती राजा का वाहन होने के योग्य था। वह सूर्योदय की भाँति समस्त भुवन के द्वारा पूजित होने के योग्य था।[३]

इन्द्रायुध को देख कर चन्द्रापीड विस्मित हो जाता है। वह उसे उच्चैःश्रवा

१. काद०, पृ० १५४-१५५।

२. वही, पृ० १५५-१५६।

३. वही, पृ० १५६-१५७।

से भी बढ़ कर मानता है। उसकी दृष्टि में इन्द्रायुध त्रिभुवन में दुर्लभ रत्न है। उस पर चढ़ने में चन्द्रापीड को शङ्का होती है।[1]

'अच्छोद सरोवर त्रैलोक्य लक्ष्मी के मणिदर्पण-सा था, पृथिवी देवी के स्फटिक-निर्मित भूमिगृह-सा था, सागरों के जलनिर्गमन के मार्ग-सा था, दिशाओं के निस्यन्द-सा था, गगनतल के अंशावतार-सा था। (उसको देखने से ऐसा लगता था) मानो कैलास द्रवीभूत हो गया हो, मानो हिमालय विलीन हो गया हो, मानो चन्द्र-प्रकाश रसरूप में परिणत हो गया हो, मानो शिव का अट्टहास पिघल गया हो, मानो त्रिभुवन की पुण्यराशि सरोवर के रूप में स्थित हो, मानो वैदूर्य के पर्वत जलरूप में परिणत हो गये हों, मानो शरत् के बादल द्रवीभूत होकर एकत्र हो गये हों। वह स्वच्छता में वरुण के आदर्श-सा था।...यद्यपि वह पूर्णतः भरा था, तथापि उसके भीतर की सभी वस्तुएँ दिखायी पड़ रही थीं। इससे वह रिक्त-सा लग रहा था। वायु से उठती हुई जलतरंगों के बिन्दुकणों से उत्पन्न, सर्वत्र विद्यमान सहस्रों इन्द्रधनुषों से मानो उसकी संरक्षा की जा रही थी। उसके भीतर जलचर, वन, शैल, नक्षत्र तथा ग्रह प्रतिबिम्बित हो रहे थे।...उसका जल, जल से प्रक्षालित पार्वती के कपोल से गलित लावण्य का अनुकरण करने वाले, समीपस्थ कैलास से अवतीर्ण भगवान् शिव के मज्जन-उन्मज्जन के क्षोभ से हिले हुए चूडामणिस्वरूप चन्द्रखण्ड से गिरे हुए अमृतरस से मिश्रित था।...अनेक बार ब्रह्मा के कमण्डलु में जल भरने से उसका जल पवित्र हो गया था। वहाँ बहुत बार जल में उतर कर सावित्री ने देवपूजा के लिए सहस्रों कमल तोड़े थे। वह सप्तर्षियों के सहस्रों बार स्नान करने से पवित्र हो गया था। सिद्धवधुओं के द्वारा सर्वदा कल्पलता के वल्कलों को धोने से उसका जल पवित्र हो गया था। कुबेर के अन्तःपुर की कामिनियाँ वहाँ जल में क्रीडा करने के लिए आती थीं।...कहीं पर वरुण का हंस कमलवन के मकरन्द का पान कर रहा था। कहीं पर दिग्गजों के मज्जन से पुराने मृणालदण्ड जर्जरित हो गये थे। कहीं-कहीं शिव के वृषभ के सींगों के अग्रभाग से तट के शिलाखण्ड तोड़ दिये गये थे। कहीं-कहीं यम के महिष ने अपने सींगों के अग्रभाग से फेन-पिण्ड को विक्षिप्त कर दिया था। कहीं-कहीं ऐरावत के मुसल की भाँति दाँतों से कुमुद-खण्ड तोड़ दिये गये थे।'[2]

कादम्बरी के हिमगृह के वर्णन में भी अद्भुत रस का निदर्शन प्राप्त होता है—

'वहाँ चन्दन-पंक की वेदियाँ बनी थीं। श्वेत कमल की कलिकाओं से बनी घण्टियाँ लटकी थीं। खिले हुए सिन्दुवार पुष्पों की मञ्जरियों के चामर लटके हुए थे। मल्लिका की कलियों के बड़े-बड़े हार लटके हुए थे। लवंग-पल्लवों से युक्त चन्दन की मालिकायें बाँधी गयी थीं। कुमुदमाला की ध्वजाएँ फहरा रही थीं। मृणाल के बेंतों को हाथ में लिये हुए, सुन्दर पुष्पों के आभूषण धारण किये हुए वसन्तलक्ष्मी की प्रतिमा प्रतीत होने वाली द्वार-पालिकायें वहाँ खड़ी थीं।...गृहनदिकाओं के दोनों तटों पर तमालपल्लवों

१. काद०, पृ० १५७-१५८।

२. वही, पृ० २३१-२३४।

की वनपंक्तियाँ थीं। वे कुमुदधूलि रूपी बालुकापुलिन से युक्त थीं। उनमें चन्दनरस की धारा वह रही थी। कहीं पर निचुल-मञ्जरियों के बने लाल चामरों वाले, जल से आर्द्र वितान के नीचे सिन्दूरयुक्त कुट्टिम पर लाल कमलों की शय्या बिछायी जा रही थी। कहीं पर स्पर्श से अनुमेय रम्यभित्तियों वाले स्फटिकनिर्मित भवन इलायची के रस से सींचे जा रहे थे। कहीं पर शिरीष-केसर के शाद्वल वाले, मृणाल-निर्मित धारागृहों के शिखरों पर जलधाराओं के कणों से धूसरित यन्त्रमयूर आरोपित किये जा रहे थे। कहीं पर आम के रस से सिक्त जामुन के पत्तों से आच्छादित आभ्यन्तर भागों वाली पर्णशालाएँ थीं। कहीं पर कृत्रिम हाथियों के बच्चे क्रीडा करके स्वर्णकमलिनियों को हिला रहे थे। ...कहीं पर इन्द्रधनुष से युक्त माया की मेघमालाएँ सञ्चारित की जा रही थीं। उनकी जलधाराएँ स्फटिक-निर्मित बलाकावलियों पर गिर रही थीं। कहीं पर किनारों पर उगे हुए यव के अंकुरों वाली, हिलती हुई तरुण मालती की कलिकाओं से दन्तुरित तरंगों वाली हरिचन्दनरस की वापिकाओं में हार शीतल किये जा रहे थे। कहीं पर मुक्ताफल के चूर्ण से बनाये गये थालों वाले, निरन्तर बड़े-बड़े जलबिन्दुओं की वर्षा करने वाले यन्त्रवृक्ष थे। कहीं पर घूमती हुई यन्त्रपक्षियों की पंक्तियाँ कम्पित पंखों से जलकणों को गिरा-गिराकर नीहार उत्पन्न कर देती थीं।"[१]

कादम्बरी में हार का वर्णन प्राप्त होता है।[२] यह भी अद्भुतरस का परिपोषण करता है।

हर्षचरित में प्रस्तुत छत्र का वर्णन अद्भुत का सुन्दर उदाहरण है—

'वरुण की भाँति जो चारों समुद्रों का अधिपति हुआ है या होने वाला है, उसी पर यह छत्र छाया के द्वारा अनुग्रह करता है, दूसरे पर नहीं। इसको अग्नि नहीं जलाती, पवन नहीं उड़ाता, जल गीला नहीं करता, धूलि मलिन नहीं करती, वृद्धावस्था जर्जर नहीं करती।'[३]

'(जब छत्र निकाला गया, तब ऐसा लगा) मानो शिव ने अट्टहास किया हो, मानो शेष का फणामण्डल रसातल से निकल आया हो, मानो क्षीरसागर आकाश में गोल होकर स्थित हो गया हो, मानो गगनाङ्गण में शरद् के बादलों की सभा बैठ गयी हो, मानो पितामह के विमान के हंस पंखों को फैला कर आकाश में विश्राम कर रहे हों, मानो अत्रि के नेत्र से निकले हुए चन्द्रमा का जन्म-दिवस दिखायी पड़ा हो, मानो नारायण की नाभि के कमल का उत्पत्ति-समय प्रत्यक्ष हुआ हो, मानो नेत्रों को चाँदनी रात देखने की तृप्ति मिली हो, मानो आकाश में मन्दाकिनी का पुलिनमण्डल प्रकट हो गया हो, मानो दिन पूर्णिमा की रात्रि के रूप में परिणत हो गया हो।'[४]

---

१. काद०, पृ० ३८०-३८२।
२. वही, पृ० ३६१-३६२।
३. हर्ष० ७।६०
४. वही, ७।६०-६१

शान्त

कादम्बरी में जाबालि का वर्णन शान्त का मनोज्ञ उदाहरण है—'ग्रहो ! तपस्या का कितना प्रभाव है ! इनकी यह शान्त मूर्ति भी तपे हुए सोने की भाँति निर्मल है ग्रौर चमकती हुई बिजली की भाँति नेत्र के तेज का प्रतिघात कर रही है। निरन्तर उदासीन रहने पर भी ग्रत्यधिक प्रभाव के कारण पहली बार ग्राये हुए व्यक्ति को भीत-सी कर देती है। सूखे नल, काश ग्रौर पुष्प पर पड़ी हुई ग्रग्नि की भाँति चञ्चल वृत्ति वाला, ग्रल्प तपस्या वाले तपस्वियों का भी तेज स्वभाव से नित्य ग्रसहिष्णु होता है, तो समस्त भुवनों के द्वारा वन्दित चरणों वाले, निरन्तर तपस्या के द्वारा नष्ट किये गये पाप वाले, करतल पर स्थित ग्राँवले की भाँति सकल जगत् को दिव्य नेत्र से देखने वाले, पाप को नष्ट करने वाले इस प्रकार के मुनियों का कहना ही क्या ? महामुनियों का नाम लेना भी पुण्य है, तो फिर दर्शन की बात ही क्या ? धन्य है यह ग्राश्रम, जहाँ ये ग्रधिपति हैं। ग्रथवा पृथिवी के ब्रह्मा इनसे ग्रधिष्ठित समस्त भुवनतल ही धन्य है। ये मुनि पुण्य के भागी हैं, जो ग्रन्य कार्यों को छोड़ कर दूसरे ब्रह्मा प्रतीत होने वाले इनके मुख को निश्चल दृष्टि से देखते हुए, पुण्यात्मक कथाग्रों को सुनते हुए रात-दिन इनकी उपासना करते हैं। सरस्वती भी धन्य है, जो इनके ग्रतिप्रसन्न, करुणाजल को प्रवाहित करने वाले, ग्रगाध गाम्भीर्य वाले मानस में निवास करती है।'[1]

'ये करुणारस के प्रवाह हैं। संसारसागर के सन्तरण सेतु हैं। क्षमारूपी जल के ग्राधार हैं। तृष्णारूपी लतावन के लिए कुठार हैं। सन्तोष रूपी ग्रमृतरस के सागर हैं। सिद्धिमार्ग के उपदेशक हैं। ग्रशुभ ग्रहों के ग्रस्ताचल हैं। शान्तिवृक्ष के मूल हैं। ज्ञानचक्र के केन्द्रस्थल हैं। धर्मध्वज को धारण करने वाले वंशदण्ड हैं। सभी विद्याग्रों में प्रवेश करने के लिए घाट हैं। लोभ रूपी समुद्र के लिए बडवानल हैं। शास्त्र रूपी रत्नों के निकषोपल हैं। ग्रासक्ति रूपी पल्लव के लिए दावानल हैं। क्रोध रूपी सर्प के महामन्त्र हैं। मोह रूपी ग्रन्धकार के लिए सूर्य हैं। नरकद्वार के ग्रर्गलाबन्ध हैं। सदाचारों के मूलगृह हैं। मंगलों के ग्रायतन, मदविकारों के ग्रपात्र, सत्पथों के प्रदर्शक, साधुता के उत्पत्तिस्थल तथा उत्साह रूपी चक्र की नेमि हैं। सत्त्वगुण के ग्राश्रय हैं। कलिकाल के विरोधी, तपस्या के कोश, सत्य के मित्र, सरलता के क्षेत्र, पुण्यसमूह के उद्गम, ईर्ष्या को ग्रवकाश न देने वाले, विपत्ति के शत्रु, ग्रनादर के ग्रस्थल, ग्रभिमान के प्रतिकूल, दीनता को ग्राश्रय न देने वाले, क्रोध के ग्रधीन न होने वाले तथा सुख की ग्रोर ग्रभिमुख नहीं होने वाले हैं।'[2]

दिवाकरमित्र के वर्णन के प्रसङ्ग में शान्तरस का सुन्दर सन्निवेश प्राप्त होता है—

'कपि भी ग्रत्यन्त विनीत होकर बुद्ध, धर्म तथा सङ्घ (त्रिशरण) की शरण

---

१. काद०, पृ० ८६-८७।

२. वही, पृ० ८९।

में रह कर चैत्य कर्म कर रहे थे। शाक्यसिद्धान्त में कुशल परमोपासक शुक भी कोश का उपदेश कर रहे थे। शिक्षापदों के उपदेश से दोषों के शान्त हो जाने से शारिकाएँ भी धर्म का निर्देश कर रही थीं। निरन्तर श्रवण करने से आलोक को प्राप्त कर उल्लू बोधिसत्त्व के जातकों को जप रहे थे। बौद्धशील के उत्पन्न हो जाने से शीतल स्वभाव वाले बाघ निरामिष होकर (दिवाकरमित्र की) उपासना कर रहे थे। मुनि के आसन के समीप अनेक केसरिशावक विश्वस्त होकर बैठे हुए थे।...वन के हरिण उनके पाद-पल्लवों को जिह्वा से चाट रहे थे, मानो शम का पान कर रहे हों। उनके बायें करतल पर बैठा हुआ पारावत-शिशु नीवार खा रहा था, मानो वे प्रिय मैत्री का प्रसादन कर रहे हों।...वे इधर-उधर चींटियों के आगे श्यामाकतण्डुल के कणों को स्वयं बिखेर रहे थे। वे लाल रंग के कोमल चीवर पट को धारण किये हुए थे।'[१]

भाव[२]

बाण के ग्रन्थों में देवविषयक, मुनिविषयक और नृपविषयक रति के उदाहरण मिलते हैं।

बाण शिव के भक्त थे। उनकी शिवविषयक रति का प्रसङ्ग अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है। कादम्बरी के प्रारम्भ में बाण शिव की स्तुति करते हैं—

'बाणासुर के मस्तक के द्वारा परिगृहीत, दशानन की चूडामणियों का चुम्बन करने वाली, सुरों तथा असुरों के स्वामियों की चूडाओं के अग्रभागों पर लगी हुई तथा भवबन्धन को नष्ट करने वाली भगवान् शङ्कर की चरण-रज की जय हो।'[३]

हर्षचरित में भैरवाचार्य के प्रति पुष्पभूति की भक्ति का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रसङ्ग में मुनिविषयक रति का सुन्दर उदाहरण मिलता है—

'सज्जनों के प्रिय शरीर आदि पर भी प्रणयी व्यक्तियों का स्वामित्व है। आपके दर्शन से मैंने अपरिमित मंगलराशि उपार्जित कर ली है। मेरा यह आगमन सफल है। मेरे यहाँ आने पर मैं गुरु के द्वारा स्पृहणीय पद पर पहुँचा दिया गया हूँ।'[४]

हर्षचरित में बाण की राजा-विषयक रति अभिव्यङ्ग्य है—

---

१. हर्ष० ८।७३

२. 'रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः।
भावः प्रोक्तः'

काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, सू० ४८।

३. काद०, पृ० २।

४. हर्ष० ३।४८

'सोऽयं सुजन्मा सुगृहीतनामा तेजसां राशिः चतुरुदधिकेदारकुटुम्बी भोक्ता ब्रह्मस्तम्भफलस्य सकलादिराजचरिराजयज्येष्ठमल्लो देवः परमेश्वरो हर्षः।.....अपि चास्य त्यागस्यार्थिनः, प्रज्ञायाः शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः, सत्त्वस्य साहसस्थानानि, उत्साहस्य व्यापाराः, कीर्तेर्दिङ्मुखानि, अनुरागस्य लोकहृदयानि, गुणगणस्य संख्या, कौशलस्य कला, न पर्याप्तो विषयः।'[१]

१. हर्ष० २।३५

षष्ठ अध्याय

अलङ्कार

वाण का अलङ्कार-प्रेम उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से प्रतिविम्वित होता है। जितने भी महत्त्वपूर्ण वर्णन प्राप्त होते हैं, उनमें अलङ्कारों का प्रयोग किया गया है। इन वर्णनों में प्रायः अनेक अलङ्कारों का प्रयोग दृष्टिगत होता है।[1] अलङ्कारों की विच्छित्ति द्वारा वर्णन-प्रक्रिया का एक नया ढाँचा सामने आता है, जो वाण के अनुभाव से पूर्णतः प्रभावित है। इस प्रकार का सौन्दर्य अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है। यह वात स्पष्ट है कि अलङ्कार वाण को आकृष्ट करते हैं, किन्तु वे अलङ्कारों की परिधि के वाहर भी विचरण करते हैं और सुन्दर गद्य का प्रतिमान प्रस्तुत करते हैं। वाण अपनी साधना की पूँजी की रक्षा करते हुए अलङ्कारों की वैचित्र्य-मण्डित वीथियों की सृष्टि करते रहते हैं। कालिदास के अलङ्कार-प्रयोग का मार्ग निराला है। अलङ्कारों का सञ्चरण तथा अवस्थान महाकवि की कृतियों में अत्यन्त स्वाभाविक तथा आह्लादक है। सुवन्धु **'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रवन्ध'**[2] के चक्कर में पड़कर रसास्वाद की स्वाभाविक प्रक्रिया के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करते हैं और कृत्रिमता का जाल फैलाते हैं। वाण का मार्ग इन दोनों के मध्य का है। वह वाण द्वारा निर्मित किया गया है। वह अपनी प्रतिभा तथा शृङ्गार के लिए प्रसिद्ध हैं, उसमें रङ्ग-रेखा का सौष्ठव है।

वाण अलङ्कारों के प्रयोग में दक्ष हैं। वे वर्णनीय वस्तु के एक-एक अवयव का उन्मीलन करते जाते हैं और आकर्षक रङ्गों के आधान से उसे सुन्दर वनाते हैं। पहले वस्तु के अवयवों के स्वरूप का वास्तविक चित्र खींचते हैं और फिर अलङ्कारों के ललित विन्यास से उसे अधिक कमनीय वनाते हैं। एक वर्णन की उपस्थापना में वे एक अलङ्कार का अनेक वार प्रयोग करते हैं। इससे एकरसता आती है और पाठक एक प्रकार की भाव-भूमि पर उतर कर लीन हो जाता है। इसके वाद दूसरे अलङ्कार का प्रयोग करते हैं। यह क्रम वढ़ता जाता है और एक ही वर्णन में विविध अलङ्कारों की छटा अपनी कोमल अभिव्यञ्जनाओं के साथ स्फुरित होने लगती है। वाण उज्जयिनी का वर्णन करते हैं।[3] यहाँ उन्होंने उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक आदि अलङ्कारों के सन्निवेश द्वारा सर्वाङ्गीण चित्र प्रस्तुत किया है। अनेक प्रसङ्गों में इसी प्रकार की योजनाएँ की गयी हैं।

---

१. हर्ष० १।१४-१५, २।२९-३१, २।३२-३५ इत्यादि।
   काद०, पृ० ७-११, ३७-४१, ७१-७४, ७६-८२ इत्यादि।

२. वासवदत्ता (जीवानन्द-संस्करण), पृ० ५।

३. काद०, पृ० ९८-१०६।

वाण के निरूपण से ज्ञात होता है कि वे स्वभावोक्ति, श्लेष, दीपक और उपमा के प्रयोग को महनीय मानते हैं।[1] इन अलङ्कारों का सुन्दर प्रयोग कवि की कृतियों में उपलब्ध होता है। कवि का मन उत्प्रेक्षा के विन्यास में विशेष रूप से रमता है। जिस प्रकार कालिदास उपमा के प्रयोग के क्षेत्र में वेजोड़ हैं, उसी प्रकार वाण उत्प्रेक्षा के निर्वाह में अद्वितीय हैं। जैसे **'उपमा कालिदासस्य'** के द्वारा कालिदास की उपमा का वैशिष्ट्य निरूपित किया जाता है, उसी प्रकार **'उत्प्रेक्षा बाणभट्टस्य'** के द्वारा बाणभट्ट की उत्प्रेक्षा की कमनीयता स्वीकार की जानी चाहिए।

जब वाण की कल्पना वन्धन तोड़ कर उड़ने लगती है, तब वे उत्प्रेक्षा का प्रयोग करते हैं। वे उत्प्रेक्षा का प्रयोग इसलिए करते हैं कि विषय की कल्पना-प्रसूत सभी रेखाएँ उभर आयें, उसके पार्श्व के सभी पदार्थ दिग्गोचर हो जायँ, उसके सम्पर्क में आने वाले विविध पदार्थों पर उसके परिणाम की छाया देखी जा सके और नाना परिप्रेक्ष्यों में उसकी गतियों, आकारों, भङ्गिमाओं आदि की विभावना की जा सके। वाण ही ऐसे कवि हैं, जिन्होंने उत्प्रेक्षालङ्कार की सीमा का दर्शन किया है और उसके विस्तृत और उन्नत प्राकार से घिरे हुए प्रासाद, उपवन, सरोवर, क्रीडा-शैल आदि का अवलोकन किया है। वाण की उत्प्रेक्षा का चारु चयन और विन्यास हृद्य है। उत्प्रेक्षा की रम्य आभा से उन्होंने अपने पात्रों को भूषित किया है। जब वाण अलौकिक सौन्दर्य, असीम क्षेत्र और रहस्यमय वस्तु का वर्णन करने लगते हैं, तब उत्प्रेक्षा का प्रयोग करते हैं। वे जानते हैं कि उत्प्रेक्षा के द्वारा वर्णनीय वस्तु के अन्तराल में निलीन अदृश्य रूप की अवतारणा की जा सकती है।

जावालि का वर्णन है। वे जटाओं से उपशोभित हैं। उनकी जटाएँ विस्तीर्ण हैं। वृद्धावस्था के कारण वे श्वेत हो गयी हैं। उनको देखने से ऐसा लगता है, मानो उन्नत धर्मपताकाएँ लहरा रही हों, मानो अमरलोक पर आरोहण करने के लिए पुण्य की रज्जुओं का संग्रह किया गया हो, मानो अत्यधिक दूर तक फैले हुए पुण्य-वृक्ष की मञ्जरियाँ हों।[2] जावालि ने कठोर तपस्या की है। उन्हें अब स्वर्ग की प्राप्ति होगी। वाण उनकी जटाओं का वर्णन करते हुए उत्प्रेक्षा का प्रयोग करते हैं। धर्मपताका, पुण्य-रज्जु आदि उपमान हैं। इनके द्वारा जावालि की तपस्या का प्रभाव प्रकट होता है।

अब वाण के ग्रन्थों से उद्धरण देकर प्रमुख अलङ्कारों के सम्बन्ध में विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—

---

१. 'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।'

हर्ष० १।१

'हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव॥'

काद०, पृ० ४।

२. काद०, पृ० ८३।

शब्दालङ्कार

पुनरुक्तवदाभास

तेन स्वभावसुरभिणा तुषारशिशिरेण रसेन ललाटिकामकल्पयम् ।'[१]

यहाँ तुषार और शिशिर शब्द पर्याय हैं, अतः आपाततः पुनरुक्ति की प्रतीति हो रही है, किन्तु विचार करने से 'तुषार की भाँति शीतल' अर्थ ज्ञात होता है और पुनरुक्ति दोष नहीं रह जाता, अतएव उक्त अलङ्कार है।

अनुप्रास

१. 'नृत्तोद्धूतधूर्जटिजटाटवीकुटजकुड्मलनिकरनिभे'[२] —छेकानुप्रास ।

२. 'सारसितसमदसारसम्'[३] —छेकानुप्रास ।

३. 'अनेकजलचरपतङ्गशतसंचलनचलितवाचालवीचिमालम्'[४] —छेकानुप्रास ।

४. 'अचकितचकोरचुम्बितमरिचाङ्कुरैः, चम्पकपरागपुञ्जपिञ्जरकपिञ्जलजग्धपिप्पलीफलैः, फलभरनिकरपीडितदाडिमनीडप्रसूतकलविङ्कैः'[५] । —वृत्त्यनुप्रास ।

५. 'रुद्राणी दारुणं वो द्रवयतु दुरितं दानवं दारयन्ती ।'[६]

चण्डीशतक के श्लोक ३८ (दैत्यो...हैमवत्याः ॥), ४० (नीते...लोहिताम्भः समुद्राः ॥), तथा ६६ (विद्राणे...भवानी ॥) अनुप्रास के सुन्दर उदाहरण हैं।

यमक

१. 'यत्र च दशरथवचनमनुपालयन्नुत्सृष्टराज्यो दशवदनलक्ष्मीविभ्रमविरामो रामो महामुनिमगस्त्यमनुचरन् ।'[७]

२. 'शूलं तूलं नु गाढं प्रहर हर हृषीकेश केशोऽपि वक्रः'[८] ।

३. 'शक्तो नो शत्रुभङ्गे भयपिशुन सुनासीर नासीरधूलिः'[९] ।

केरल विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हर्षचरित के संस्करण में 'विश्राम्यन्ती

---

१. काद०, पृ० २६२ ।

२. हर्ष० ११६

३, ४. काद०, पृ० ४५ ।

५. वही, पृ० २३६ ।
कादम्बरी के पृ० २३४ तथा २४० पर वृत्त्यनुप्रास के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

६. चण्डीशतक, श्लो० ७० ।

७. काद०, पृ० ४३ ।

८. चण्डीशतक, श्लो० २३ ।

९. वही, श्लो० ३४ ।

सालभञ्जिकेव समीपगतस्तम्भे तस्तम्भे'[1] पाठ मिलता है। यह भी यमक का कमनीय उदाहरण है।

श्लेष

१. 'कामे भुजङ्गता।'[2]

२. "गुरुर्वचसि, पृथुरुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुयात्रस्तेजसि, सुमन्त्रो रहसि, बुधः सदसि, अर्जुनो यशसि...दक्षः प्रजाकर्मणि।"[3]

३. 'वृत्तेऽस्मिन् महाप्रलये धरणीधारणायाधुना त्वं शेषः।'[4]

४. 'कृत्वेदृक्कर्म लज्जाजननमनशने शक्र मासून् विहासी-
र्वित्तेश स्थाणुकण्ठे जहि गदमगदस्यायमेवोपयोगः।'[5]

५. 'आस्तां मुग्धेऽर्धचन्द्रः क्षिप सुरसरितं या सपत्नी भवत्याः
क्रीडा द्वाभ्यां विमुञ्चापरमलममुनैकेन मे पाशकेन।
शूलं प्रागेव लग्नं शिरसि यदबला युध्यसेऽव्याद्विदग्धं
सोत्प्रासालापपातैरिति दनुजमुमा निर्दहन्ती दृशा वः॥'[6]

चण्डीशतक के श्लोक ८, ३०, ३४, ४६, ६२, ६५, ६६, ७० तथा ८८ श्लेष के कमनीय उदाहरण हैं।

अर्थालङ्कार

उपमा

१. 'सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे गृहे।
उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव॥'[7]

२. 'निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥'[8]

३. 'पीयूषफेनपटलपाण्डुरम्।'[9]

---

१. हर्ष०, चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० १८२।

२. हर्ष० २।३६

३. वही, ३।४४

४. वही, ६।४७

५. चण्डीशतक, श्लो० २१।

६. वही, श्लो० २७।

७. हर्ष० १।१

८. वही, १।२

९. वही, १।३

४. 'दीर्घरक्तनालनेत्रामुत्पलिनीमिव सरसी, हंसमधुरस्वरां शरदमिव प्रावृट्, कुसुमसुकुमारावयवां वनराजिमिव मधुश्रीः, महाकनकावदातां वसुधारामिव द्यौः. . .प्रसूतवती दुहितरम् ।'[१]

—मालोपमा ।

५. 'हिरण्यगर्भो भुवनाण्डकादिव क्षपाकरः क्षीरमहार्णवादिव ।
अभूत् सुपर्णो विनतोदरादिव द्विजन्मनामर्थपतिः पतिस्ततः ॥'[२]

—मालोपमा ।

६. 'हर इव जितमन्मथः, गुह इवाप्रतिहतशक्तिः, कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डलः, जलधिरिव लक्ष्मीप्रसूतिः, गङ्गाप्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्तः, रविरिव प्रतिदिवसोपजायमानोदयः, मेरुरिव सकलोपजीव्यमानपादच्छायः, दिग्गज इवानवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतकरः ।'[३]

७. 'निर्दयश्रमच्छिन्नहारविगलितमुक्ताफलप्रकरानुकारिणीभिः ।'[४]

८. 'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम् ।'[५]

—मालोपमा ।

९. 'दूरस्थस्यापि कमलिनीव सवितुः सागरवेलेव चन्द्रमसः मयूरीव जलधरस्य तस्यैवाभिमुखी ।'[६] —मालोपमा ।

कादम्वरी के पृष्ठ ३८-४१, १०२-१०४, १५६-१५७, १७५-१७८, तथा २५०-२५१ पर उपमा के कमनीय उदाहरण उपलव्ध होते हैं ।

उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षा वाण का प्रिय अलङ्कार है । उनकी रचनाओं में अनेक स्थलों पर इसकी छटा देखी जा सकती है । यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

१. कमललोभनिलीनैरलिभिरिव वृतावुद्धर्तुं नाशकच्चरणौ । मृणाललोभेन च चरणनखमयूखलग्नैर्भवनहंसैरिव सञ्चार्यमाणा मन्दमन्दं बभ्राम ।'[७]

२. 'मदमपि मदयन्त्य इव, रागमपि रञ्जयन्त्य इव, आनन्दमपि आनन्दयन्त्य इव, नृत्यमपि नर्तयमाना इव, उत्सवमप्युत्सुकयन्त्य इव ।'[८] —क्रियोत्प्रेक्षा ।

---

१. हर्ष० ४।१०
२. काद०, पृ० ५ ।
३. वही, पृ० ८ ।
४. वही, पृ० ३१ ।
५. वही, पृ० २६० ।
६. वही, पृ० २७८ ।
७. हर्ष० ४।५
८. वही ४।८

३. 'सहसा सम्पादयता मनोरथप्रार्थितानि वस्तूनि ।
दैवेनापि क्रियते भव्यानां पूर्वसेवेव ॥'[1]

४. 'प्रलयकालविघट्टिताष्टदिग्भागसंधिबन्धं गगनतलमिव भुवि निपतितम् ।'[2]
—द्रव्योत्प्रेक्षा ।

५. 'अवगाहप्रस्थितमिव वनमहिषयूथम्, अचलशिखरस्थितकेसरिकराकृष्टिपतन-विशीर्णमिव कालाभ्रपटलम्'[3] —जात्युत्प्रेक्षा ।

६. 'तरलितदुकूलवल्कलोऽयं चाश्रमलताकुसुमसुरभिपरिमलो मन्दमन्दचारी सशङ्क इवास्य समीपमुपसर्पति गन्धवाहः ।'[4] —गुणोत्प्रेक्षा ।

७. 'अत्यन्तमुत्फुल्ललोचना हि कुलवर्धना दृश्यते । देवस्यापीदं प्रियवचनश्रवण-कुतूहलादिव'[5] —हेतूत्प्रेक्षा ।

चण्डीशतक के श्लोक १, २२ तथा ४० उत्प्रेक्षा के सुन्दर उदाहरण हैं ।

ससन्देह

'किं खलु भगवानोषधिपतिरकाण्ड एव शीतांशुरुदितो भवेत्, उत यन्त्रविक्षेपवि-शीर्यमाणपाण्डुरधारासहस्राणि धारागृहाणि मुक्तानि, आहोस्विदनिलविप्रकीर्यमाणसीकर-धवलितभुवनाम्बरसिन्धुः कुतूहलाद्धरातलमवतीर्णा' इति ।'[6]

हार की प्रभा को देखने पर चन्द्रापीड के मन में सन्देह होता है—क्या असमय में भगवान् चन्द्रमा का उदय हो गया ? या यन्त्र द्वारा सहस्रों श्वेत जलधाराएँ विकीर्ण की गयीं ? या पवन द्वारा विक्षिप्त सीकरों से भुवन को धवलित करने वाली मन्दाकिनी भूतल पर उतर आयी ?

यहाँ वर्णन संशय में ही समाप्त हो रहा है, अतः शुद्ध सन्देह है ।

रूपक

कतिपय उदाहरण अधोलिखित हैं—

१. 'नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे ।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे ॥'[7]

२. 'दुष्टगौडभुजङ्गजग्धजीविते च राज्यवर्धने वृत्तेऽस्मिन् महाप्रलये धरणीधारणा-याधुना त्वं शेषः ।'[8]

---

१. हर्ष० ८।७०
२. काद०, पृ० ४४ ।
३. वही, पृ० ५८ ।
४. वही, पृ० ८८ ।
५. वही, पृ० १३४-१३५ ।
६. वही, पृ० ३६०-३६१ ।
७. हर्ष० १।१
८. वही, ६।४७

३. 'धृतधनुषि बाहुशालिनि शैला न नमन्ति यत्तदाश्चर्यम् । रिपुसंज्ञकेषु गणना कैव वराकेषु काकेषु ॥'[१]

४. 'उदयशैलो मित्रमण्डलस्य, उत्पातकेतुरहितजनस्य ।'[२]

५. 'गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे ।'[३]

६. 'अहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः. . .राज्यविषविकार-तन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः ।'[४]

अपह्नुति

१. 'यत्त्रिभुवनाद्भुतरूपसम्भारं भगवन्तं कुसुमायुधमुत्पाद्य तदाकारातिरिक्तरूपा-तिशयराशिरयमपरो मुनिर्मायामयो मकरकेतुरुत्पादितः ।'[५]

पुण्डरीक के सम्बन्ध में कहा गया है कि विधाता ने मुनिमायामय (मुनिवेषधारी) दूसरे काम को उत्पन्न किया है । यहाँ 'मुनिमायामय' कथन के द्वारा प्रकृत का प्रतिषेध किया गया है ।

२. 'सितातपत्रापदेशेन शशिनेर्ष्यया निवार्यमाणरविकिरणस्पर्शा सुचिरं तत्रैव स्थितवती ।'[६]

यहाँ श्वेत छत्र का अपह्नव करके चन्द्र की स्थापना की गयी है ।

समासोक्ति

१. 'प्रवातुमारब्धे प्रबुध्यमानकमलिनीनिःश्वाससुरभौ वनदेवताकुचांशुकापहरण-परिहासस्वेदिनीव सावश्यायशीकरे ।'[७]

यहाँ वायु पर भुजङ्ग (जार) के व्यवहार का आरोप किया गया है, अतः उक्त अलङ्कार है ।

२. 'एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति ।'[८]

यहाँ प्रस्तुत लक्ष्मी के कार्यों से अप्रस्तुत पिशाची की प्रतीति हो रही है ।

निदर्शना

१. 'उपसिंहासनमाकुलं कालरात्रिविधूयमानवृजिनवेणीबन्धविभ्रमं बिभ्राणं बभ्राम भ्रामरं पटलम् ।'[९]

---

१. हर्ष० ७।५३
२. काद०, पृ० ८ ।
३. वही, पृ० ५१ ।
४. वही, पृ० १९८ ।
५. वही, पृ० २६६ ।
६. वही, पृ० ३७७ ।
७. हर्ष० ३।५४-५५
८. काद०, पृ० २०२ ।
९. हर्ष० ५।२७

दूसरे के विभ्रम को दूसरा नहीं धारण कर सकता, अतः 'भ्रमरवृन्द वेणीबन्ध के विभ्रम की भाँति विभ्रम को धारण कर रहा है' ऐसी उपमा की परिकल्पना की गयी है।

२. 'ईषद्विघटितदलपुटपाटलमुखानां कमलमुकुलानां श्रियमुद्वहतः।'[1]

३. 'विन्ध्याटवीकेशपाशश्रियमुद्वहतः।'[2]

४. 'स खलु धर्मबुद्ध्या विषलतां सिञ्चति, कुवलयमालेति निस्त्रिंशलतामालिङ्गति, कृष्णागुरुधूमलेखेति कृष्णसर्पमवगूहति, रत्नमिति ज्वलन्तमङ्गारं स्पृशति, मृणालमिति दुष्टवारणदन्तमुसलमुन्मूलयति, मूढो विषयोपभोगेष्वनिष्टानुबन्धिषु यः सुखबुद्धिमारोपयति।'[3]

'विषयोपभोगों में सुखबुद्धि का आरोप करना धर्म समझ कर विषलता का सेवन करने, कुवलयमाला समझ कर खड्गलता का आलिंगन करने, काले अगुरु की धूमलेखा समझ कर कृष्ण सर्प का अवगूहन करने, रत्न समझ कर जलते हुए अङ्गार का स्पर्श करने तथा मृणाल समझ कर दुष्ट हाथी के दाँत को उखाड़ने के समान है' इस प्रकार सादृश्य में वाक्य का पर्यवसान हो रहा है।

यह मालानिदर्शना का उदाहरण है।[4]

अप्रस्तुतप्रशंसा

१. 'करिकलभ विमुञ्च लोलतां चर विनयव्रतमानताननः।
मृगपतिनखकोटिभङ्गुरो गुरुरुपरि क्षमते न तेऽङ्कुशः॥'[5]

यहाँ अप्रस्तुत कलभ के वर्णन से प्रस्तुत बाण की प्रतीति हो रही है, अतः उक्त अलङ्कार है।

२. 'न त्वाश्वेवास्तमुपगतवत्यपि त्रिभुवनचूडामणौ सवितरि वेधसादिष्टः सत्पथशत्रोरन्धकारस्य निग्रहाय ग्रहषण्डविहारैकहरिणाधिपः शशी।'[6]

यहाँ सूर्य के अस्त हो जाने के बाद चन्द्र द्वारा तिमिर का विध्वंस अप्रस्तुत है। इससे राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद हर्ष द्वारा गौडाधिप के विनाश की प्रतीति हो रही है।

---

१. काद०, पृ० ६६।

२. वही, पृ० ६८।

३. वही, पृ० २८९-२९०।

४. 'वस्तुतोऽनिष्टजनकेषु विषयोपभोगेषु सुखजनकतया ज्ञानारोपणं धर्मभ्रमेण विषलतावनसेचनमिव परिणामे भयङ्करदुःखजनकमित्थं सर्वत्र भावः। अत्र उक्तप्रकारं बिम्बप्रतिबिम्बभावारोपणं विना वाक्यार्थसम्बन्धासम्भवात् मालारूपो निदर्शनालङ्कारः।'

काद०, हरिदाससिद्धान्तवागीश-कृत टीका, प० ५९०।

५. हर्ष० २।३६

६. वही, ६।४४

३. 'विनयविधायिनि भग्नेऽपि चाङ्कुशे विद्यत एव व्यालवारणस्य विनयाय सकलमत्तमातङ्गकुम्भस्थलस्थिरशिरोभागभिदुरः खरतरः केसरिनखरः ।'[1]

अतिशयोक्ति

१. 'तदपि मुनिगीतिमतिपृथु तदपि जगद्व्यापि पावनं तदपि ।
हर्षचरितादभिन्नं प्रतिभाति हि पुराणमिदम् ॥'[2]

यहाँ पुराण से हर्षचरित का भेद होने पर भी अभेद का कथन किया गया है, अतः उक्त अलङ्कार है।

२. 'पूगीलतादोलाधिरूढवनदेवतैः ।'[3]

यद्यपि वनदेवियाँ पूगीलता की दोलाओं पर अधिरूढ नहीं हैं, तथापि दोलायें वनदेवियों से अधिष्ठित कही गयी हैं, अतः असम्बन्ध में सम्वन्ध के कथन के कारण अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

३. 'स्वप्रभासमुदयोपहतगर्भगृहप्रदीपप्रभम् ।'[4]

यद्यपि चन्द्रापीड की प्रभा द्वारा गृह के प्रदीपों की प्रभा उपहत नहीं हो रही है, तथापि कथन किया गया है, अतः उक्त अलङ्कार है।

४. 'चरणविकुट्टनक्वणितनूपुरसहस्रमुखरितदिगन्तरेण ।'[5]

दृष्टान्त

१. 'नासौ तपस्वी जानात्येवं यथाभिचारा इव विप्रकृताः सद्यः सकलकुलप्रलयमुपाहरन्ति मनस्विनः । जलेऽपि ज्वलन्ति ताडितास्तेजस्विनः ।'[6]

यहाँ सधर्म मनस्वी और तेजस्वी का विम्वप्रतिविम्वभाव प्रतीत हो रहा है।

२. 'न ह्यल्पीयसा शोककारणेन क्षेत्रीक्रियन्त एवंविधा मूर्तयः । न हि क्षुद्रनिर्घातपाताभिहता चलति वसुधा ।'[7]

दीपक

'स्वेच्छोपजातविषयोऽपि न याति वक्तुं
देहीति मार्गणशतैश्च ददाति दुःखम् ।
मोहात् समाक्षिपति जीवनमप्यकाण्डे
कष्टं मनोभव इवेश्वरदुर्विदग्धः ॥'[8]

---

१. हर्ष० ६।४४
२. वही, ३।३९
३. काद०, पृ० ७६
४. वही, पृ० १४४।
५. वही, पृ० १४७।
६. हर्ष० ६।४५
७. काद०, पृ० २५७।
८. हर्ष० २।२४

यहाँ प्रस्तुत अल्पबुद्धि प्रभु और अप्रस्तुत मनोभव में एक धर्म का सम्बन्ध है।

तुल्ययोगिता

१. 'पस्पर्श च हृदयेन भियमुत्तमाङ्गेन च गाम्।'[1]

यहाँ हृदय और उत्तमाङ्ग दोनों प्रस्तुत हैं। इनका एक क्रिया से सम्बन्ध है।

२. 'विद्वज्जनसम्पर्को नष्टेष्टज्ञातिदर्शनाभ्युदयः।
कस्य न सुखाय भवने भवति महारत्नलाभश्च॥'[2]

यहाँ विद्वज्जनसम्पर्क आदि का एक धर्म से सम्बन्ध होने के कारण तुल्ययोगितालङ्कार है।

३. 'दृष्ट्वा च प्रथमं रोमोद्गमः, ततो भूषणरवः, तदनु कादम्बरी समुत्तस्थौ।'[3]

यहाँ रोमोद्गम आदि का एक क्रिया से सम्बन्ध है।

४. 'यतो दृष्ट्वा चेममहमिव त्वमपि निर्माणकौशलं प्रजापतेः, निःसपत्नतां च रूपस्य, स्थानाभिनिवेशित्वं च लक्ष्म्याः सद्भर्तृतासुखं च पृथिव्याः, सुरलोकातिरिक्ततां च मर्त्यलोकस्य...अग्राम्यतां च मनुष्याणां ज्ञास्यसीति बलादानीतोऽयम्।'[4]

व्यतिरेक

१. 'भूभृदपहृतलक्ष्मीकं सागरमप्युपहसन्तौ, बलवन्तमकृतविग्रहं मारुतमपि निन्दन्तौ।'[5]

यहाँ सागर आदि की अपेक्षा राज्यवर्धन और हर्षवर्धन का वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया गया है।

२. 'सर्वग्रहाभिभवभास्वराणां हि सुभटकराणामग्रतो दिग्ग्रहणे पङ्गवः पतङ्गकराः।'[6]

यहाँ पतङ्गकर की अपेक्षा वीरकर का आधिक्य वर्णित किया गया है।

३. 'न चापि कादम्बरीमाकारानुकृतिकलयाप्यल्पीयस्या लक्ष्मीरनुगन्तुमलम्।'[7]

यहाँ लक्ष्मी की अपेक्षा कादम्बरी का वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया गया है।

विभावना

१. 'कुतश्चेदमतिनैपुण्यम्, यच्चक्षुषैवानक्षरमेवमन्तर्गतो हृदयाभिलाषः कथ्यते।'[8]

---

१. हर्ष० ५।२४
२. वही, ८।७०
३. काद०, पृ० ३४५।
४. वही, पृ० ३४६-३४७।
५. हर्ष० ४।११
६. वही, ६।४५
७. काद०, पृ० ३६४।
८. वही, पृ० २७१

२. 'अप्रकाशयञ्ज्वालावलीः संतापं जनयति, अप्रकटयन्धूमपटलमश्रु पातयति, अदर्शयन् भस्मरजोनिकरं पाण्डुतामाविर्भावयति ।'[१]

यथासंख्य

'रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे ।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥'[२]

यहाँ पहले रजोगुण का कथन हुआ है। उसका 'सर्गस्थितिनाशहेतवे' में पहले प्रयुक्त 'सर्ग' से सम्बन्ध है। उसके बाद सत्त्वगुण का कथन हुआ है। उसका अन्वय 'स्थिति' के साथ हो रहा है। तमोगुण का कथन अन्त में हुआ है। उसका अन्वय अन्त में आये हुए पद 'नाश' के साथ हो रहा है। इस प्रकार यहाँ यथासंख्य अलङ्कार है।

अर्थान्तरन्यास

१. 'नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनामेव, उपरतेऽपि सुगृहीत-नाम्नि ताते यदहमविकलेन्द्रियः पुनरेव प्राणिमि ।'[३]

यहाँ विशेष से सामान्य का समर्थन किया गया है।

२. 'अत्र त्वितर इव परिभूय ज्ञानमवगणय्य तपःप्रभावमुन्मूल्य गाम्भीर्यं मन्मथेन जडीकृतः । सर्वथा दुर्लभं यौवनमस्खलितम्' इति ।'[४]

यहाँ सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन किया गया है।

३. 'मम हि निष्कारणबान्धवं भवन्तमालोक्यैव दुःखान्धकारभाराक्रान्तेन महतः कालादुच्छ्वसितमिव चेतसा श्रावयित्वा स्ववृत्तान्तमिमं सह्यतामिव गतः शोकः । दुःखितमपि जनं रमयन्ति सज्जनसमागमाः ।'[५]

विरोधाभास

विरोधाभास के रुचिर प्रयोग बाण की कृतियों में उपलब्ध होते हैं। ये द्रष्टव्य हैं—

१. 'सन्निहितबालान्धकारा भास्वन्मूर्तिश्च, पुण्डरीकमुखी हरिणलोचना च, बाला-तपप्रभाधरा कुमुदहासिनी च, कलहंसस्वना समुन्नतपयोधरा च, कमल-कोमलकरा हिमगिरिशिला पृथुनितम्बा च, करभोरुविलम्बितगमना च, अमुक्तकुमारभावा स्निग्धतारका च' इति ।'[६]

२. 'यत्र च मातङ्गगामिन्यः शीलवत्यश्च, गौर्यो विभवरताश्च, श्यामाः पद्मरा-गिण्यश्च, धवलद्विजशुचिवदना मदिरामोदिश्वसनाश्च, चन्द्रकान्तवपुषः शिरीष-

---

१. काद०, पृ० ४१२।
२. वही, पृ० १।
३. वही, पृ० ६६।
४. वही, पृ० २८८।
५. वही, पृ० ३३१।
६. हर्ष० १।१२

कोमलाङ्ग्यश्च, अभुजङ्गगम्याः कञ्चुकिन्यश्च, पृथुकलत्रश्रियो दरिद्रमध्य-कलिताश्च, लावण्यवत्यो मधुरभाषिण्यश्च, अप्रमत्ताः प्रसन्नोज्ज्वलरागाश्च, अकौतुकाः प्रौढाश्च प्रमदाः ।'[१]

३. 'अशेषजनभोग्यतामुपनीतयाप्यसाधारणया राजलक्ष्म्या समालिङ्गितदेहम्, अपरिमितपरिवारजनमप्यद्वितीयम्, अनन्तगजतुरगसाधनमपि खड्गमात्र-सहायम्, एकदेशस्थितमपि व्याप्तभुवनमण्डलम्, आसने स्थितमपि धनुषि निषण्णम्, उत्सादितद्विषदिन्धनमपि ज्वलत्प्रतापानलम्, आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्. . .अकरमपि हस्तस्थितसकलभुवनतलं राजानमद्राक्षीत् ।'[२]

४. 'अपरिमितवहलपत्रसंचयापि सप्तपर्णशोभिता, क्रूरसत्त्वापि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम ।'[३]

५. 'अभिनवयौवनमपि क्षपितबहुदोषम्. . .राजसेवानभिज्ञम् ।'[४]

६. 'वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः. . .संनिहितनेत्रद्वयोऽपि परित्यक्तवामलोचनः ।'[५]

७. 'सुरभिविलेपनधरमपि सततादिर्भूतहव्यधूमगन्धम्. . .सदासंनिहिततरुगहनान्ध-कारम् ।'[६]

८. 'संगृहीतगारुडेनापि भुजङ्गभीरुणा. . .महासत्त्वेनापि परलोकभीरुणा ।'[७]

९. 'प्रकटाङ्गनोपभोगाप्यखण्डितचरित्रा. . .बहुप्रकृतिरपि स्थिरा ।'[८]

१०. 'संततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति. . .पुरुषोत्तमरतापि खल-जनप्रिया ।'[९]

स्वभावोक्ति

१. 'पश्चादङ्घ्रिं प्रसार्य त्रिकनतिविततं द्राघयित्वाङ्गमुच्चै-
रासज्याभुग्नकण्ठो मुखमुरसि सटां धूलिधूम्रां विधूय ।
घासग्रासाभिलाषादनवरतचलत्प्रोथतुण्डस्तुरङ्गो

---

१. हर्ष० ३।४४
२. काद०, पृ० १९-२० ।
३. वही, पृ० ४१ ।
४. वही, पृ० ६२-६३ ।
५. वही, पृ० ७४ ।
६. वही, पृ० ८० ।
७. वही, पृ० १०१-१०२ ।
८. वही, पृ० १०४ ।
९. वही, पृ० २०१ ।

मन्दं शब्दायमानो विलिखति शयनादुत्थितः क्ष्मां खुरेण ॥'[१]

२. 'कुर्वन्नाभुग्नपृष्ठो...खुरेण ॥'[२]

यहाँ अश्व की चेष्टाओं का हृदयावर्जक वर्णन किया गया है।

पुण्डरीक को प्रणाम करने के समय महाश्वेता की स्थिति का नितान्त समुज्ज्वल वर्णन किया गया है। यहाँ स्वभावोक्ति अलङ्कार की विशद छटा उद्भासित हो रही है—

३. 'अशेषजनपूजनीया चेयं जातिरिति कृत्वा तद्वदनाकृष्टदृष्टिप्रसरम्, अचलितपक्ष्ममालम्, अदृष्टभूतलम्, उल्लसितकर्णपल्लवोन्मुक्तकपोलमण्डलम्, आलोलालकलतालसत्कुसुमावतंसम्, अंसदेशदोलायितमणिकुण्डलमस्मै प्रणाममकरवम्।'[३]

व्याजस्तुति

'त्वन्मूर्तिरेवात्रोपालम्भमर्हति, या प्रथमदर्शन एव विश्रम्भमुपजनयति।'[४]

यहाँ निन्दा से स्तुति व्यक्त हो रही है।

सहोक्ति

१. 'कदा च क्षितिरेणुधूसरो मण्डयिष्यति मम हृदयेन दृष्ट्या च सह परिभ्रमन् भवनाङ्गणम्।'[५]

२. 'स च मत्कपोलस्पर्शसुखेन तरलीकृताङ्गुलिजालकात् करतलादक्षमालां लज्जया सह गलितामपि नाज्ञासीत्।'[६]

परिवृत्ति

'गृहीतमूल्येन गुणगणेन विक्रीतेन हृदयेनोपकरणीभूतास्मि।'[७]

यहाँ गुण और कादम्बरी—दोनों का विनिमय वर्णित हुआ है, अतः परिवृत्ति अलङ्कार है।

काव्यलिङ्ग

१. 'श्रुत्वा च महातेजस्वी प्रचण्डकोपपावकप्रसरपरिचीयमानशोकावेगः सहसैव प्रजज्वाल।'[८]

यहाँ पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग है।[९]

१, २. हर्ष० ३।४२

३. काद०, पृ० २६९-२७०।

४. वही, पृ० ३६२-३६३।

५. वही, पृ० १२६।

६. वही, पृ० २७४।

७. वही, पृ० ३५६।

८. हर्ष० ६।४३

९. 'प्रागेवोद्दीप्तस्य प्रचण्डशोकानलस्य पुनः सजातीयेन कोपकृशानुना सम्बन्धात् नरेन्द्रस्याकस्मिकप्रज्वलनातिशय्यप्रतिपादनेन पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम्।'
—जीवानन्द-कृत टीका, पृ० ६२६।

२. 'तात चन्द्रापीड विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति ।'[१]

'चन्द्रापीड को उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है'—इसके कारण के रूप में 'विदितवेदितव्यस्य' और 'अधीतसर्वशास्त्रस्य'—इन दो विशेषणों का अर्थ उपन्यस्त है, अतः पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग है ।

३. 'अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः ।'[२]

उदात्त

हर्षवर्धन के अलौकिक लक्षणों के वर्णन में उदात्त का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है—

'देव, श्रूयताम् । मान्धाता किलैवंविधे व्यतीपातादिसर्वदोषाभिषङ्गरहितेऽहनि सर्वेषूच्चस्थानस्थितेष्वेवं ग्रहेष्वीदृशि लग्ने भेजे जन्म । अर्वाक्ततोऽस्मिन्नन्तराले पुनरेवंविधे योगे चक्रवर्तिजनने नाजनि जगति कश्चिदपरः । सप्तानां चक्रवर्तिनामग्रणीश्चक्रवर्तिचिह्नानां महारत्नानां च भाजनं सप्तानां सागराणां पालयिता सप्ततन्तूनां सर्वेषां प्रवर्तयिता सप्तसप्तिसमः सुतोऽयं देवस्य जातः' इति ।'[३]

समुच्चय

१. 'किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाः क्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसंधानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः ।'[४]

'उन राजाओं के सभी कार्य अनुचित होते हैं'—इसके लिए अनेक कारण उपन्यस्त किये गये हैं, अतः समुच्चय अलङ्कार है ।

२. 'एषा...देवस्य सकलगन्धर्वमुकुटमणिशलाकाशिखरोल्लेखमसृणितचरणनखचक्रस्य प्रणयप्रसुप्तगन्धर्वकामिनीकपोलपत्रलतालाञ्छितभुजतरुशिखरस्य पादपीठीकृतलक्ष्मीकरकमलस्य गन्धर्वाधिपतेर्हंसस्य दुहिता महाश्वेता नाम ।'[५]

परिकर

१. 'साहमेवंविधा पापकारिणी निर्लक्षणा निर्लज्जा क्रूरा निःस्नेहा नृशंसा गर्हणीया निःप्रयोजनोत्पन्ना निःफलजीविता निरवलम्बना निःसुखा च ।'[६]

---

१. काद०, पृ० १६५ ।
२. वही, पृ० १६५ ।
३. हर्ष० ४।६
४. काद०, पृ० २०७ ।
५. वही, पृ० २७६ ।
६. वही, पृ० ३१७ ।

यहाँ महाश्वेता के लिए साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग होने के कारण उक्त अलङ्कार है।

२. 'दुःशलां च धृतराष्ट्रदुहितरं भ्रातृशतोत्सङ्गलालितामतिमनोहरे हरवरप्रदानवर्धितमहिम्नि सिन्धुराजे जयद्रथेऽर्जुनेन लोकान्तरमुपनीतेऽप्यकृतप्राणपरित्यागाम् ।'[१]

व्याजोक्ति

१. 'सखि कपिञ्जल, किं मामन्यथा संभावयसि। नाहमेवमस्या दुर्विनीतकन्यकाया मर्षयाम्यक्षमालाग्रहणापराधमिमम् ।'[२]

यहाँ काम के कारण उत्पन्न अधीरता को क्रोध के कारण उत्पन्न अधीरता के व्याज से छिपाया गया है।

२. 'अथ तस्याः कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत्, ससंभ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशोऽभवत्। निःश्वासप्रवृत्तिरेवांशुकं चलं चकार, चामरानिलो निमित्ततां ययौ। अन्तःप्रविष्टचन्द्रापीडस्पर्शलोभेनैव निपपात हृदये हस्तः, स एव करः स्तनावरणव्याजो बभूव ।'[३]

परिसंख्या

बाण ने परिसंख्या का अत्यधिक सुन्दर निर्वाह किया है। अधोलिखित उदाहरण मनोरम हैं—

१. 'अस्य विमलेषु साधुषु रत्नबुद्धिः, न शिलाशकलेषु। मुक्ताधवलेषु प्रसाधनधीः, नाभरणभारेषु। दानवत्सु कर्मसु साधनश्रद्धा, न करिकीटेषु। सर्वाग्रेसरे यशसि महाप्रीतिः, न जीवितजरत्तृणे। गृहीतकरास्वाशासु प्रसाधनताभियोगः, न निजकलत्रचर्मपुत्रिकासु। गुणवति धनुषि सहायबुद्धिः, न पिण्डोपजीविनि सेवकजने ।'[४]

यहाँ शब्द के द्वारा व्यावृत्ति हो रही है।

२. 'अस्मिंश्च राजनि यतीनां योगपट्टकाः, पुस्तकर्मणां पार्थिवविग्रहाः, षट्पदानां दानग्रहणकलहाः, वृत्तानां पादच्छेदाः, अष्टापदानां चतुरङ्गकल्पना, पन्नगानां द्विजगुरुद्वेषाः, वाक्यविदामधिकरणविचाराः ।'[५]

यहाँ व्यवच्छेद अर्थसिद्ध है।

३. 'यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता, स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, छत्रेषु

१. काद०, पृ० ३१९-३२०।
२. वही, पृ० २७६।
३. वही, पृ० ३४५।
४. हर्ष० २।२४-२५
५. वही, २।३५

कनकदण्डाः, ध्वजेषु प्रकम्पाः, गीतेषु रागविलसितानि, करिषु मदविकाराः ...सार्यक्षेषु शून्यगृहा न प्रजानामासन्। यस्य च परलोकाद्भयम्, अन्तः-पुरिकाकुन्तलेषु भङ्गः, नूपुरेषु मुखरता, विवाहेषु करग्रहणम्, अनवरतम-खाग्निधूमेनाश्रुपातः, तुरङ्गेषु कशाभिघातः, मकरध्वजे चापध्वनिरभूत्।'[१]

यहाँ पहले वाक्य में शब्दोक्त व्यवच्छेद है और दूसरे में आर्थ। विश्वनाथ कविराज का कथन है कि यदि परिसंख्या श्लेषमूलक हो, तो विशेष वैचित्र्य होता है। उन्होंने इसके उदाहरण के रूप में 'यस्मिंश्च राजनि जितजगति...' वाक्य प्रस्तुत किया है।[२]

४. 'यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु...मुखभङ्ग-विकारो जरया न धनाभिमानेन। यत्र महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायु-प्रलपितम्...मूलानामधोगतिः।'[३]

५. 'यस्मिंश्च राजनि गिरीणां विपक्षता...अक्षक्रीडासु शून्यगृहदर्शनं पृथिव्या-मासीत्।'[४]

विषम

१. 'क्वेदं वयः, क्वेयमाकृतिः, क्व चायं लावण्यातिशयः, क्वेयमिन्द्रियाणा-मुपशान्तिः।'[५]

२. 'क्वेदमतिभास्वरं धाम तेजसां तपसां च, क्व च प्राकृतजनाभिनन्दितानि मन्मथपरिस्पन्दितानि।'[६]

उपर्युक्त वाक्यों में विरूप पदार्थों की योजना के कारण विषमालङ्कार है।

स्मरण

'अधुनापि यत्र जलधरसमये गम्भीरमभिनवजलधरनिवहनिनादमाकर्ण्य भगवतो रामस्य त्रिभुवनविवरव्यापिनश्चापघोषस्य स्मरन्तः।'[७]

बादलों की ध्वनि के श्रवण से राम के धनुष की ध्वनि की स्मृति हो रही है, अतः स्मरण अलङ्कार है।

---

१. काद०, पृ० १०-११।

२. 'श्लेषमूलत्वे चास्य वैचित्र्यविशेषो यथा—
'यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराश्चापेषु गुणच्छेदाः इत्यादि।''
साहित्यदर्पण, दशम परिच्छेद, पृ० ३५८।

३. काद०, पृ० ८१-८२।

४. वही, पृ० ११२-११३।

५. वही, पृ० २५६।

६. वही, पृ० २६६।

७. वही, पृ० ४३-४४।

भ्रान्तिमान्

१. 'सिन्दूररेणुराशिभिररुणायमानबिम्बे रवावस्तमयसमयं शशङ्किरे शकुनयः ।'[१]

यद्यपि सूर्य अस्तोन्मुख नहीं है, तथापि पक्षियों को भ्रान्ति हो रही है कि सूर्य अस्त हो रहा है, अतः उक्त अलङ्कार है।

२. 'मन्दमिन्दूदयसन्देहदूयमानमानसैर्विघटितं विघटमानचञ्चुच्युतमृणालकोटिभिरासन्नकमलिनीचक्रवाकमिथुनैः ।'[२]

छत्र को देखकर चक्रवाकद्वन्द्वों को चन्द्र की भ्रान्ति हो रही है, अतः वे वियुक्त हो रहे हैं।

३. 'अत्यायतश्च यस्मिन् दशरथसुतबाणनिपातितो योजनबाहोर्बाहुरगस्त्यप्रसादेनागतनहुषाजगरकायशङ्कां चकार ऋषिगणस्य ।'[३]

यहाँ दनुकबन्ध की भुजा को देखकर नहुषाजगर के शरीर की भ्रान्ति हो रही है।

४. 'सुरगजोन्मूलितविगलदाकाशगङ्गाकमलिनीशङ्कामुत्पादयन्तः ।'[४]

तद्गुण

'आप्रपदीनेन च स्वभावसितेनापि ब्रह्मासनबन्धोत्तानचरणतलप्रभापरिष्वङ्गाल्लोहितायमानेन दुकूलपटेन प्रावृतनितम्बाम् ।'[५]

श्वेत दुकूल चरणों की प्रभा से लाल हो रहा है, अतः उक्त अलङ्कार है।

अर्थापत्ति

१. 'स्थूलबुद्धयोऽपि तादृशीं विनयच्युतिं विभावयेयुः, किमुतानुभूतमदनवृत्तान्ता महाश्वेता सकलकलाकुशलाः सख्यो वा राजकुलसंचारचतुरो वा नित्यमिङ्गितज्ञः परिजनः ।'[६]

जब स्थूल बुद्धि वाले व्यक्ति भी विनयच्युति के प्रसङ्ग को समझ जाते हैं, तो महाश्वेता आदि के सम्बन्ध में कहना ही क्या ? यहाँ दण्डापूपिका न्याय से 'मदन के वृत्तान्त को जानने वाली महाश्वेता या कलाओं में कुशल सखियाँ अथवा इङ्गित को जानने वाले परिजन जान ही जायेंगे'—ऐसे अर्थान्तर की प्रतीति हो रही है, अतः उक्त अलङ्कार है।

२. अपि च स्वयं गृहीतहृदयाय किं दीयते । जीवितेश्वराय किं प्रतिपाद्यते । प्रथमकृतागमनमहोपकारस्य का ते प्रत्युपक्रिया । दर्शनदत्तजीवितफलस्य

---

१. हर्ष० ७।५७
२. वही, ७।६१
३. कादं०, पृ० ४४।
४. वही, पृ० ४६।
५. वही, पृ० २४८।
६. वही, पृ० ३५५।

सफलमागमनं केन ते क्रियते।'[१]

यहाँ प्रत्येक वाक्य में अर्थापत्ति अलङ्कार है।

उल्लेख

१. 'निःस्नेह इति धनैरनाश्रयणीय इति दोषैर्निग्रहरुचिरितीन्द्रियैर्दुरुपसर्प इति कलिना नीयस इति व्यसनैर्भीरु रित्ययशसा दुर्ग्रहचित्तवृत्तिरिति चित्तभुवा स्त्रीपर इति सरस्वत्या षण्ढ इति परकलत्रैः...सुसहाय इति शत्रुयोधैरेक-मप्यनेकधा गृह्यमाणम्।'[२]

२. 'यस्तपोवनमिति मुनिभिः, कामायतनमिति वेश्याभिः, सङ्गीतशालेति लासकैः, यमनगरमिति शत्रुभिः, चिन्तामणिभूमिरित्यर्थिभिः, वीरक्षेत्रमिति शस्त्रोप-जीविभिः, गुरुकुलमिति विद्यार्थिभिः...महोत्सवसमाज इति चारणैः, वसुधा-रेति च विप्रैरगृह्यत।'[३]

संसृष्टि

१. 'अपनीताभरणश्च दिवसकर इव विगलितकिरणजालः चन्द्रतारकाशून्य इव गगनाभोगः।'[४]

यहाँ परस्पर निरपेक्ष दो उपमालङ्कारों की संसृष्टि है।

२. 'अनन्तरमुदपादि च स्फोटयन्निव श्रुतिपथमनेकप्रहतपटुपटहझल्लरीमृदङ्गवेणु-वीणागीतनिनादानुगम्यमानो बन्दिवृन्दकोलाहलाकुलो भुवनविवरव्यापी स्नान-शङ्खानामापूर्यमाणानामतिमुखरो ध्वनिः।'[५]

'स्फोटयन्निव' में क्रियोत्प्रेक्षा है। यद्यपि ध्वनि भुवन-विवरव्यापी नहीं है, तथापि भुवनविवरव्यापी कही गयी है, अतः असम्वन्ध में सम्वन्ध के कथन के कारण अतिशयोक्ति अलङ्कार है। यहाँ इन दोनों अलङ्कारों—उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति—की संसृष्टि है।

३. 'विद्रुते हर्षनयनजलकणनीहारिणि वियद्विहारिणि मनोहारिणि विद्याधरा-भिसारिकाजने।'[६]

यहाँ रूपक और यमक की संसृष्टि है।

सङ्कर

१. 'उरःस्थलस्थापितमणिमौक्तिकहारचन्दनचन्द्रकान्तं कृतान्तदूतदर्शनयोग्यमि-वात्मानं कुर्वाणम्।'[७]

---

१. काद०, पृ० ३६३।
२. हर्ष० २।३५
३. वही, ३।४३-४४
४. काद०, पृ० ३०।
५. वही, पृ० ३२-३३।
६. वही, पृ० ३२६-३२७।
७. हर्ष० ५।[illegible]

यहाँ काव्यलिङ्ग और उत्प्रेक्षा का सङ्कर है।

२. 'पुण्यपताकायमानया सरस्वतीरससमागमोत्कण्ठाकृतचन्दनरेखयेव भस्म-ललाटिकया बालपुलिनरेखयेव गङ्गाप्रवाहमुद्भासमानम्।'[1]

यहाँ क्यङ्गतोपमा, जात्युत्प्रेक्षा तथा श्रौतोपमा का अङ्गाङ्गि-भाव होने से सङ्कर है।

३. 'हारैरपि मुक्तात्मभिर्मदनपरवशैरिव प्रसारितकरैरालिङ्ग्यमानाम्।'[2]

यहाँ विरोधाभास और गुणोत्प्रेक्षा का एकाश्रयानुप्रवेशरूप सङ्कर है।

---

१. काद०, पृ० २६३-२६४।
२. वही, पृ० ३८५।

सप्तम अध्याय

शैली तथा भाषा

संस्कृत साहित्य में बाण की शैली तथा भाषा का अद्वितीय स्थान है। बाण ने युग की धारा का दर्शन किया और उसके अनुकूल हृद्य शैली और भाषा की योजना की। इससे उनका युग प्रकाशित हो उठा।

बाण की रचनाओं में पाञ्चाली रीति प्रमुख रूप से उद्भासित होती है।[1] राजशेखर बाण के वैशिष्ट्य का उल्लेख करते हुए कहते हैं—

'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥'[2]

राजशेखर शब्द और अर्थ के समान गुम्फन को पाञ्चाली रीति कहते हैं। उनका कथन है कि बाण की उक्तियों में पाञ्चाली रीति विद्यमान है। बाण के सम्बन्ध में राजशेखर का कथन नितान्त समीचीन प्रतीत होता है। कवि की रचनाओं में शब्द और अर्थ का सुन्दर सामञ्जस्य प्राप्त होता है। विकट वस्तुओं के वर्णन में विकट पदों का प्रयोग किया गया है और सुकुमार प्रसङ्गों की अवतारणा में सुकुमार पदावली की योजना की गयी है। निदाघ-काल के वर्णन में विकट पदों की योजना दर्शनीय है—

'सलिलस्यन्दसन्दोहसन्देहमुह्यन्महामहिषविषाणकोटिविलिख्यमानस्फुटत्स्फाटिकदृषदि, घर्ममर्मरितगर्मुति, तप्तपांशुकुकूलविकिरणकातरविकिरे, विवरशरणश्वाविधे, तटार्जुनकुररकूजाज्वरविवर्तमानोत्तानशफरशारपङ्कशेषपल्वलाम्भसि, दावजनितजगन्नीराजने, रजनीराजयक्ष्मणि, कठोरीभवति निदाघकाले, प्रतिदिशमाटीकमाना इवोषरेषु प्रपावाटकुटीपटलप्रकटलुण्ठकाः, प्रपक्वकपिकच्छूगुच्छच्छटाच्छोटनचापलैरकाण्डकण्डूला इस कर्षन्तः शर्करिलाः कर्करस्थलीः।'[3]

वसन्त-वर्णन के प्रसङ्ग में कोमल पदों की योजना हुई है—

'अशोकतरुताडनरणितरमणीयमणिनूपुरझंकारसहस्रमुखरेषु, विकसन्मुकुलपरिमलपुञ्जितालिजालमञ्जुसिञ्जितसुभगसहकारेषु, अविरलकुसुमधूलिवालुकापुलिनधवलितधरातलेषु, मधुमदविडम्बितमधुकरकदम्बकसंवाह्यमानलतादोलेषु, उत्फुल्लपल्लवलवलीलीयमानमत्तकोकिलोल्लासितमधुशीकरोद्दामदुर्दिनेषु।'[4]

---

१. A. Weber : The History of Indian Literature, P. 232.

२. जल्हण : सूक्तिमुक्तावली, पृ० ४७।

३. हर्ष० २।२२

४. काद०, पृ० २६१।

इसी प्रकार 'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम् ।'[१] में कोमल पद प्रयुक्त हुए हैं ।

बाण सर्वत्र प्रसङ्ग के अनुकूल पदों की योजना करते हैं । इससे पदों के श्रवण से प्रसङ्ग के स्वरूप का उन्मीलन होने लगता है । पाठक के मानस में शब्द और अर्थ— दोनों घुलमिल जाते हैं, दोनों का पार्थक्य समाप्त हो जाता है । बाण की दृष्टि में शब्द और अर्थ का यह मधुर मिलन अत्यन्त स्पृहणीय है । इसमें साहित्य का सर्वस्व संनिहित है । बाण ने इसकी साधना की और इसका परिपाक उनके गद्य में निखर उठा ।

बाण ने सृष्टि के विस्तार का दर्शन किया था और मानव की अनुभूतियों को समझा था । उनका भाषा पर अधिकार था और भाववीथी, कल्पनाराजि तथा चिन्तन-मनन की विविध परम्पराएँ उनका अनुगमन करती थीं । वे भाव और भाषा की भंगिमाओं से परिचित थे, इसी कारण उनके काव्यों में दोनों का समान अवस्थान नितान्त प्रभविष्णु हो उठा है । कवि ने दोनों की मर्यादा की रक्षा की है और उनके क्षेत्र-विस्तार का ध्यान रखा है । प्रकृति उनके सामने नये-नये रंगों का प्रतिमान प्रस्तुत करती थी, उनकी भाषा उसका अङ्कन करती थी; मानव अपने व्यवहार और आचार के द्वारा कुछ उलझनें, कुछ समस्याएँ और कुछ बौद्धिक व्यापार सामने लाते थे, बाण उनकी ऋजुता-वक्रता, आतप-छाया और रूप-रङ्ग का चित्र खींचते थे । कवि की भाषा और भाव सर्वत्र एक दूसरे का आलिङ्गन कर रहे हैं ।

विश्वनाथ कविराज के अनुसार गद्य के चार प्रकार हैं—मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय तथा चूर्णक । मुक्तक समास-रहित होता है, वृत्तगन्धि में गद्य के अंश रहते हैं, उत्कलिकाप्राय में दीर्घ समास तथा चूर्णक में छोटे-छोटे समास होते हैं ।[२]

बाण की रचनाओं में तीन प्रकार के गद्य प्राप्त होते हैं—मुक्तक, उत्कलिकाप्राय तथा चूर्णक । विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण में बाण के अधोलिखित गद्यांश को मुक्तक के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है—

'गुरुर्वचसि, पृथुरुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुमन्त्रो रहसि, बुधः सदसि, अर्जुनो यशसि, भीष्मो धनुषि, निषधो वपुषि, शत्रुघ्नः समरे ।'[३]

---

१. काद०, पृ० २६० ।
२. 'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च ॥
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम् ।
आद्यं समासरहितं वृत्तभागयुतं परम् ॥
अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं तुर्यं चाल्पसमासकम् ।'
साहित्यदर्पण ६।३३०-३३२
३. वही, षष्ठ परिच्छेद, पृ० २२६ ।
हर्ष० ३।४४

उत्कलिकाप्राय का अधोलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

'कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातङ्गोत्तमाङ्गमदच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभास्वरमुखे केसरिणि।'[१]

वामन ने काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति में इसे उत्कलिकाप्राय के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है।[२]

शूद्रक के वर्णन में चूर्णक शैली का दर्शन होता है—

'आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः पाकशासन इवापरः, चतुरुदधिमालामेखलाया भुवो भर्ता, प्रतापानुरागावनतसमस्तसामन्तचक्रः, चक्रवर्तिलक्षणोपेतः, चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशङ्खचक्रलाञ्छनः, हर इव जितमन्मथः, गुह इवाप्रतिहतशक्तिः, कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डलः।'[३]

शुकनासोपदेश के वर्णन में भी यही शैली प्राप्त होती है।[४]

वाण के ग्रन्थों में बड़े से बड़े वर्णन प्राप्त होते हैं और छोटे से छोटे वर्णन भी। उनके संक्षिप्त कथन चुभते हुए प्रतीत होते हैं—

'शपाम्यार्यस्यैव पादपांशुस्पर्शेन यदि परिणतैरेव वासरैः सकलचापचापलदुर्ललितनरपतिचरणरणरणायमाननिगडां निर्गौडां न करोमि मेदिनीं ततस्तनूनपाति पीतसर्पिषि पतङ्ग इव पातकी पातयाम्यात्मानम्।'[५]

वाण ने बहुत-से हृदय-स्पर्शी चित्रों का अङ्कन किया है। शुक, महाश्वेताविलाप, यशोमती और प्रभाकरवर्धन की मृत्यु तथा राज्यश्री का विलाप—ये ऐसे चित्रण हैं, जो वलात् आकृष्ट कर लेते हैं।

कभी-कभी वाण अपनी प्रतिभा के अपूर्व कौशल से पाठक को आह्लादित कर देते हैं। हर्षचरित में राज्यश्री के विलाप का चित्रण हुआ है। हर्ष के आगमन की सूचना अत्यधिक कमनीयता से उपनिवद्ध की गयी है। राज्यश्री विलाप कर रही थी। उसी समय उसके हृदय में आनन्द उत्पन्न होता है। उसके अङ्ग रोमाञ्चित हो जाते हैं। उसका वायाँ नेत्र फड़कने लगता है। क्षीरी वृक्ष पर काक शब्द करने लगता है। उत्तर की ओर घोड़ों का शब्द होता है। वृक्षों के बीच एक आतपत्र दिखायी पड़ता है। कोई हर्ष के नाम का उच्चारण करता है। तब तक हर्ष के आगमन की सूचना मिल जाती है—

'मरणसमये कस्माल्लवलिके हलहलको बलीयानानन्दमयो हृदयस्य मे। हृष्यन्त्युच्चरोमाञ्चमुञ्चि किमङ्गीकृत्याङ्गानि। वामनिके, वामेन मे स्फुरितमक्ष्णा। वृथा विरमसि वयस्य वायस वृक्षे क्षीरिणि क्षणे क्षणे क्षीणपुण्यायाः पुरः। हरिणि, हेषितमिव

---

१. हर्ष० ६।४०

२. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति १।३।२५

३. काद०, पृ० ७-८।

४. वही, पृ० १९५-२०९।

५. हर्ष० ६।४७

हयानामुत्तरतः। कस्येदमातपत्रमुच्चमत्र पादपान्तरेण प्रभावति विभाव्यते। कुरङ्गिके, केन सुगृहीतनाम्नो नाम गृहीतममृतमयमार्यस्य। देवि, दिष्ट्या वर्धसे देवस्य हर्षस्यागमनमहोत्सवेन।' इत्येतच्च श्रुत्वा सत्वरमुपससर्प। ददर्श च मुह्यन्तीमग्निप्रवेशायोद्यतां राजा राज्यश्रियम्।"[1]

यह योजना अत्यधिक प्रभावपूर्ण है। यहाँ सुन्दर नाटकीय दृश्य उपस्थित हो गया है।

जब बाण किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति या वस्तु का वर्णन करने लगते हैं, तब पहले एक लम्बे वाक्य में उसके प्रधान स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं। इसके बाद यः, यम्, येन आदि के द्वारा वाक्य प्रारम्भ करते हैं और उसके स्वरूप को और स्फुटित करते हैं। शूद्रक, तारापीड, प्रभाकरवर्धन आदि के वर्णन में कवि ने इसी प्रकार निर्वाह किया है। बाण के ग्रन्थों में केवल एक ही ऐसा स्थल है, जहाँ 'यः' से प्रसङ्ग प्रारम्भ हुआ है और इसके बाद यम्, येन, यस्मै, यस्मात्, यस्य एवं यस्मिन् क्रमशः प्रयुक्त हुए हैं।[2]

बाण भाषा का शृङ्गार करते हैं। वह उनके लिए सर्वस्व है। वे भाषा की शक्ति से परिचित हैं, अतः प्रसङ्गों के अनुकूल योजना करने में निष्णात हैं। उनकी भाषा में वह सौष्ठव है, जो कथा की विविध सरणियों, पात्रों के मनोभावों एवं व्यापारों को अलङ्कृत करता है। भाषा ही उनकी रचनाओं का सौन्दर्य है।[3]

उनकी वाक्य-रचना, समास-सङ्घटना, क्रिया, प्रत्यय आदि सुनियोजित हैं। बाण वाक्य-योजना में अत्यन्त कुशल हैं। यह प्रायः देखा जाता है कि अनेक उत्कृष्ट कवि भी वाक्यों के सौन्दर्य की ओर ध्यान नहीं देते। ऐसी स्थिति में भाव का अलङ्करण होने पर भी वाक्य का शृङ्गार नहीं हो पाता। वाक्य ही भाषा और भाव का वहन करता

---

१. हर्ष० ८।८०

२. 'यस्तमःप्रसरमलिनवपुषा...पुनरपि स्थिरीचक्रे।' —काद० पृ० १०६।
यं च...मकरकेतुममंस्त लोकः।' —वही, पृ० १०६।
'येन...सर्वदिशः।' —वही, पृ० १११।
'यस्मै च मन्ये सुरपतिरपि स्पृहयांचकार।' —वही, पृ० १११।
यस्माच्च धवलीकृतभुवनतलः...गुणगणः।' —वही, पृ० १११।
'यस्य...मुखरितभुवनमभ्रम्यत कीर्त्या।' —वही, पृ० १११।
'यस्मिश्च राजनि...पृथिव्यामासीत्।' —वही, पृ० ११२-१३।

३. "But it should not be forgotten that it is mainly by its wonderful spell of language and picturesqueness of imagery that Bana's luxuriant romances retain their hold on the imagination, and it is precisely in this that their charm lies."
Dasgupta and De[illegible] S[illegible]krit Literature, V. I., P.237.

है। सफल कवि वाक्य को सुन्दर बनाता है। वह वाक्य की गति को पहचानता है। वह निरन्तर देखता रहता है कि कहीं वाक्य की गति अवरुद्ध तो नहीं हो रही है। गति के साथ ही साथ सञ्चलन की मनोहर विधा का भी महत्त्व है। बाण ने गति और सञ्चलन की विविध विधाओं को पहचाना था, उनके सौन्दर्य-सङ्घटक उपादानों का दर्शन किया था और अपनी अनुपम साधना द्वारा उनकी सर्जना करने एवं सजाने-सँवारने का अभ्यास भी कर लिया था। उन्होंने सुन्दर वाक्यों का निर्माण किया, उन्हें लय और भङ्गिमा से सरस बनाया और कवि-मण्डल उनका अनुवर्ती बन गया; उन्होंने अपनी वाक्य-रचना से कुछ स्पष्ट किया, किञ्चित् सङ्केत किया और भावुक का हृदय तल्लीन हो गया। उनकी इस विलक्षणता का सुफल है कि परवर्ती लेखकों ने इनकी वाक्य-योजनाओं का अनुकरण किया है। उनकी कतिपय सुन्दर वाक्य-योजनाएँ यहाँ देखी जा सकती हैं—

हर्षचरित

१. 'सन्निहित बालान्धकारा भास्वन्मूर्तिश्च...।' – १।१२
२. 'बालविद्येव वैदग्ध्यस्य, कौमुदीव कान्ते...।' – १।१५
३. 'लुण्ठितेव मनोरथैः, आकृष्टेव कुतूहलेन...।' – १।१५
४. 'कामो गुरुः, चन्द्रमा जीवितेशः, मलयमरुदुच्छ्वासहेतुः, आधयोऽन्तरङ्गस्थानेषु...।' – १।१६
५. 'क्वचित् स्वच्छन्दतृणचारिणो हरिणाः, क्वचित्तरुतलविवरविर्वातिनो बभ्रवः, क्वचिज्जटावलम्बिनः कपिलाः...!' –२।२३
६. 'मित्रोपकरणमात्मा, भृत्योपकरणं प्रभुत्वम्, पण्डितोपकरणं वैदग्ध्यम्, बान्धवोपकरणं लक्ष्मीः...।' – २।२५
७. 'स्निग्धं नखेषु, परुषं रोमविषये, गुरुं मुखे...।' – २।३१
८. 'अरुणपादपल्लवेन सुगतमन्थरोरुणा...।' – २।३२
९. 'नास्य हरेरिव वृषविरोधीनि बालचरितानि, न पशुपतेरिव दक्षजनोद्वेगकारीण्यैश्वर्यविलसितानि...।' – २।३५
१०. 'अत्र बलजिता निश्चलीकृताश्चलन्तः कृतपक्षाः क्षितिभृतः। अत्र प्रजापतिना शेषभोगिमण्डलस्योपरि क्षमा कृता।' – ३।४०
११. 'यस्तपोवनमिति मुनिभिः, कामायतनमिति वेश्याभिः, सङ्गीतशालेति लासकैः, यमनगरमिति शत्रुभिः...।' – ३।४३-४४
१२. 'यत्र च प्रमदानां चक्षुरेव सहजं मुण्डमालामण्डनं भारः कुवलयदलदामानि। अलकप्रतिबिम्बान्येव कपोलतलगतान्यक्लिष्टाः श्रवणावतंसाः पुनरुक्तानि तमालकिसलयानि।' – ३।४४
१३. 'धाम धर्मस्य, तीर्थं तथ्य[illegible], कोशं क[illegible]स्य, पत्तनं पूततायाः, शालां शीलस्य, [illegible] क्षमायाः...।'

१४. 'यस्य प्रतापाग्निना भूतिः, शौर्योष्मणा सिद्धिरसिधाराजलेन वंशवृद्धिः...।'
— ४।२

१५. 'यस्मिंश्च...अङ्कुरितमिव कृतयुगेन...पलायितमिव कलिना...।'
— ४।२

१६. 'हंसमयीव गतिषु, परपुष्टमयीवालापेषु...।' — ४।२

१७. 'सपवर्त इव कुसुमराशिभिः, सधारागृह इव सीधुप्रपाभिः...।' — ४।७

१८. 'उत्क्षिप्तैर्हस्तकिसलयैः कमलिनीमय्य इव बभासिरे सृष्टयः। माणिक्येन्द्रायुधानार्माचिषा चाषपत्रमया इव चकाशिरे रविमरीचयः।' — ४।९

१९. 'सामान्योऽपि तावच्छोकः सोच्छ्वासं मरणम्, अनुपदिष्टौषधो महाव्याधिः, अभस्मीकरणोऽग्निप्रवेशः...।' — ५।२५

२०. 'आहर हारान्हरिणि, मणिदर्पणान्मे देहि देहि वैदेहि, हिमलवैर्लिम्प ललाटं लीलावति...।' — ५।२५

२१. 'ददातु जनो जलाञ्जलिमौर्जित्याय, प्रतिपद्यतां प्रव्रज्यां प्रजापालता...।'
— ५।३३

२२. 'अबोध्येन वृद्धबुद्धीनाम्, असाध्येन साधुभाषितानाम्...।' — ६।३७

२३. 'सोऽयं कुरङ्गकैः कचग्रहः केशरिणः, भेकैः करपातः कालसर्पस्य, वत्सकैर्बन्दिग्रहो व्याघ्रस्य...।' — ६।४१

कादम्बरी

२४. 'यश्च मनसि धर्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनेदन...।' —पृ० ९।

२५. 'ततस्ताः काश्चिन्मरकतकलशप्रभाश्यामायमाना नलिन्य इव मूर्तिमत्यः पत्रपुटैः, काश्चिद्र जतकलशहस्ता रजन्य इव पूर्णचन्द्रमण्डलविनिर्गतेन ज्योत्स्नाप्रवाहेण...।' —पृ० ३२।

२६. 'प्रेताधिपनगरीव सदासंनिहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, समरोद्यतपताकिनीव बाणसमारोपितशिलीमुखा विमुक्तसिंहनादा च...।'
— पृ० ३८-४०।

२७. 'किं न जितं देवेन महाराजाधिराजेन तारापीडेन यज्जेष्यसि, का दिशो न वशीकृता या वशीकरिष्यसि...।' — पृ० २२२।

२८. 'अथ तस्याः कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत्, ससंभ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशोऽभवत्। ऊरुकम्प एव गतिं रुरोध, नूपुररवाकृष्टहंसमण्डलमपयशो लेभे।'
— पृ० ३४५।

२९. 'चपले, किमिदमारब्धम्' इति निगृहीतेव लज्जया, 'गन्धर्वराजपुत्रि, कथमेतद्युक्तम्' इत्युपालब्धेव विनयेन...।' — पृ० ३५४-३५५

३०. 'अतिप्रियोऽसीति पौनरुक्त्यम्, तवाहं प्रियात्मेति जडप्रश्नः...।'
—पृ० ४१४-४१५।

समास

वाण समासों की योजना करने में वहुत कुशल हैं। जहाँ वर्णनातत्त्व की प्रधानता है, वहाँ भाषा प्रायः समास-गुम्फित है और जहाँ भावना-तत्त्व की प्रधानता है, वहाँ भाषा सरल है तथा असमस्त पदावली परिलक्षित होती है। समासों की योजना के द्वारा प्रतिपाद्य का संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया है। समस्त पदों के अभाव में हमारे सम्मुख विखरे चित्र ही उपस्थित होते हैं। जव कवि विषय के पूरे स्वरूप का उपन्यास करना चाहता है, तव कथा धीरे-धीरे चलती है और समस्त पदावली प्रयुक्त की जाती है। जव कवि कथा की वहुत-सी वातों को शीघ्र कह कर आगे वढ़ना चाहता है या भाव उमड़ पड़ते हैं, तव समासों का प्रयोग कम होता है। वाण ने प्रायः छः-सात पदों वाले समासों का प्रयोग किया है। उनकी रचनाओं में वड़े-वड़े समास भी प्राप्त होते हैं। अधोलिखित समस्त पद अवलोकनीय हैं—

१. 'जलधरजललुब्धविप्रलब्धमुग्धचातकध्वानमुखरिततमालखण्डैः' (१० पद)- कादं०, पृ० २३९-२४०।

२. 'आसन्नाश्रमागततापसक्षालितार्द्रवल्कलकषायपाटलतटजलम्' (११ पद) – कादं०, पृ० ४५-४६।

३. 'अटवीसुलभसालकुसुमस्तबकाञ्चितनवखातकूपिकोपकण्ठप्रतिष्ठितनागस्फुटानाम्' (१२ पद) – हर्षं० ७।६८

४. 'सुरासुरहेलावलयितवासुकिसमाकर्षणप्रारम्भचलितचरणभरदलितनितम्वकटकात्' (१३ पद) – कादं०, पृ० ११०।

५. 'अनवरतगलितमदमदिरामोदमुखरमधुकरजूटजटिलकरटपट्टपङ्क्लिगण्डान्।' (१३ पद) – हर्ष ७।६७

६. 'पुरश्चञ्चच्चामरकिर्मीरकार्दरङ्गचर्ममण्डलमण्डनोड्डीयमानचटुलडामरचारभटभरितभुवनान्तरैः' (१४ पद) – हर्षं० ७।५५

७. 'प्रथममध्यमोत्तमपुरुषविभक्तिस्थितानेकादेशकारकाख्यातसम्प्रदानक्रियाव्ययप्रपञ्चसुस्थितम्' (१५ पद) – कादं०, पृ० १७६।

८. 'उदयगिरिशिखरकटककुहरहरिखरनखरनिवहहेतिनिहतनिजहरिणगलितरुधिरनिचयनिचितम्' (१६ पद) – हर्षं० १।६

९. 'पृथुविकटकार्तवीर्यांसकूटकुट्टाककुठारतुण्डतष्टदुष्टक्षत्रियकण्ठकुहररुधिरकुल्याप्रणालसहस्रपूरितः' (१८ पद) – हर्षं० ८।८६

१०. 'कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातङ्गोत्तमाङ्गमदच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभास्वरमुखे' (१९ पद) – हर्षं० ६।४०

शब्द

वाण का शब्द-भाण्डार अत्यन्त विशाल है। वे कभी-कभी एक ही अर्थ को व्यक्त करने के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग करते ...

'एकं भगवतः कमलयोनेर्मनसः समुत्पन्नम्...सम्भूतम्...उद्भूतम्...प्रसूतम्...उत्थितम्...जातम्...निर्गतम्...निपतितम्...प्रवृत्तम्...निर्मितम्...समुत्पादितम्...।'[1]

अधोलिखित उद्धरण भी दर्शनीय है—

'हस्तीकृतं विहस्ततया, विषयीकृतं वैषम्येण, क्षेत्रीकृतं क्षयेण, गोचरीकृतं ग्लान्या, दष्टं दुःखासिकया, आत्मीकृतमस्वास्थ्येन, विधेयीकृतं व्याधिना, क्रोडीकृतं कालेन, लक्ष्यीकृतं दक्षिणाशया, पीतमिव पीडाभिः, जग्धमिव जागरेण, निगीर्णमिव वैवर्ण्येन, ग्रासीकृतं गात्रभङ्गेन, ह्रियमाणमिव विपद्भिः, वण्ट्यमानमिव वेदनाभिः, लुण्ठ्यमानमिव दुःखैः...।'[2]

यहाँ भी प्रायः एक ही प्रकार के भाव को व्यक्त करने के लिए विभिन्न पदों का प्रयोग किया गया है।

अधोलिखित उद्धरण में अनेक प्रकार की ध्वनियों को प्रकट करने के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है—

'मणिनूपुराणां निनादेन...झङ्कारेण...कोलाहलेन...कूजितेन...निःस्वनेन ...कलकलेन...हुंकृतेन...रणितेन सर्वतः क्षुभितमिव तदास्थानभवनमभवत्।'[3]

सावित्री दुर्वासा को डाटती हुई कहती है—

'आः पाप, क्रोधोपहत, दुरात्मन्, अज्ञ, अनात्मज्ञ, ब्रह्मबन्धो, मुनिखेट, अपसद, निराकृत।'[4]

इसी प्रकार कपिञ्जल काम, महाश्वेता तथा चन्द्रमा की निन्दा करता हुआ कहता है—

'दुरात्मन् मदनपिशाच पाप निर्घृण, किमिदमकृत्यमनुष्ठितम्। आः पापे दुष्कृतकारिणि दुर्विनीते महाश्वेते, किमनेन तेऽपकृतम्। आः पाप दुश्चरित चन्द्रचाण्डाल, कृतार्थोऽसि। इदानीमपगतदाक्षिण्य दक्षिणानिलहतक, पूर्णास्ते मनोरथाः।'[5]

इन उद्धरणों से यह प्रकट होता है कि बाण के कोश में प्रत्येक परिस्थिति का चित्रण करने के लिए शब्द विद्यमान हैं।

बाण की रचनाओं में कला आदि से सम्बद्ध ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं, जो कवि की सूक्ष्म दृष्टि के परिचायक हैं। उन्होंने अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। इन दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण कतिपय शब्द ये हैं—

हर्षचरित

योगपट्टक (१।३), मकरमुखमहाप्रणाल (१।६), शिखण्डखण्डिका (१।९), त्रिकण्टक (१।९), पुलकबन्ध (१।१४), कुक्कुटव्रत (१।१८), असिधाराधारणव्रत

---

१. काद०, पृ० २५८।
२. हर्ष० ५।२३
३. काद०, पृ० २८-३०।
४. हर्ष० १।४
५. काद०, पृ० ३०४।

(२।३२), अविसंवादी (२।३२), योगभारक (३।४६), तालावचर (४।८), यमपट्टिक (४।११), मग्नांशुक (५।३०), तनुताम्रलेखा (५।३०), कुब्जिका (५।३०), कविरुदितक (६।३६), अष्टमङ्गलक (६।४२), कुवैकटिक (६।४४), शासनवलय (७।५३), ग्रामाक्षपटलिक (७।५३), काण्डपटमण्डप (७।५४), व्याघ्रपल्ली (७।५५), बालपाश (७।५५), समायोग (७।५६), कण्टकितकर्करी (७।६८)।

कादम्बरी

कुलभवन (पृ० ८), रूप (पृ० २३), पत्रभङ्ग (पृ० ११६), उपयाचितक (पृ० १२६), विप्रश्निका (पृ० १२६), उपश्रुति (पृ० १३०), पटलक (पृ० १३७), अवतरणकमंगल (पृ० १३७), आर्यवृद्धा (पृ० १४३), अधररुचक (पृ० १४५), बुद्बुद (पृ० २००), संविभाग (पृ० २०६), कण्टक (पृ० २२५), कीर्तन (पृ० २२५), गुल्मक (पृ० २४१), दंशित (पृ० २४१), कण्ठयोग (पृ० २४६), भावना (पृ० २४६), कृतार्थता (पृ० २७३), तृणपुरुषक (पृ० ३६४), असुरविवर-प्रवेश (पृ० ३६६)।

वर्ण और मात्रा

वाण की रचनाओं में अनेक स्थलों पर वर्णों की योजना के द्वारा सौन्दर्य का आधान किया गया है। **'कौमुदीव कान्तेः, धृतिरिव धैर्यस्य, गुरुशालेव गौरवस्य, बीजभूमिरिव विनयस्य, गोष्ठीव गुणानां, मनस्वितेव महानुभावतायाः, तृप्तिरिव तारुण्यस्य'**[1] में कौमुदीव में पहले 'क' का प्रयोग हुआ है और दूसरे पद **कान्तेः** के प्रारम्भ में 'क' आया है। इसी प्रकार **धृतिरिव** आदि में भी देखा जा सकता है।

'नन्दन्नान्दीके...कूजत्काहले, शब्दायमानशङ्खे'[2] में भी उपर्यक्त रीति से सौन्दर्य का आधान किया गया है।

'भगवति भक्तिसुलभे भुवनभृति भूतभावने भवच्छिदि भवे भूयसी भक्तिरभूत्।'[3] में भी 'भ' की योजना के कारण वाक्य कमनीय हो उठा है।

इसी प्रकार **'अजम्, अजरम्, अमरगुरुम्, असुरपुररिपुम्, अपरिमितगणपतिम्, अचलदुहितृपतिम्, अखिलभुवनकृतचरणनतिम्'**[4] में सभी पदों के प्रारम्भ में 'अ' प्राप्त होता है। यहाँ वाण ने पूर्णतः विचार करके ऐसी योजना की है।

उपर्यक्त उदाहरणों में अनुप्रास अलङ्कार विद्यमान है। वह ऐसे क्रम से रखा गया है कि योजना अत्यधिक कमनीय हो गयी है, अतः वर्ण के प्रयोग का वैशिष्ट्य स्पष्ट रूप से समुद्दीपित हो रहा है।

---

१. हर्ष० १।४५
२. वही, ७।५४।
३, ४. वही ३।४५

बाण वाक्यों में सौन्दर्य लाने के लिए कहीं-कहीं समान मात्राओं का प्रयोग करते हैं। **'नवनलिनदलसम्पुटभिदि किञ्चिन्मुक्तपाटलिम्नि भगवति सहस्रमरीचिमालिनि'**[१] में चारों पदों के अन्त में इकार की मात्रा है।

अधोलिखित उद्धरण में मात्राओं का वैशिष्ट्य अवलोकनीय है—

'प्रेताधिपनगरीव सदासंनिहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, समरोद्यतपताकिनीव बाणसमारोपितशिलीमुखा विमुक्तसिंहनादा च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालङ्कृता च, कर्णीसुतकथेव संनिहितविपुलाचला शशोपगता च, कल्पान्तप्रदोषसन्ध्येव प्रनृत्तनीलकण्ठा पल्लवारुणा च, अमृतमथनवेलेव श्रीद्रुमोपशोभिता वारुणपरिगता च, प्रावृडिव घनश्यामलानेकशतह्रदालङ्कृता च, चन्द्रमूर्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, राज्यस्थितिरिव चमरमृगबालव्यजनोपशोभिता समदगजघटापरिपालिता च।'[२]

यहाँ पहले उपमान-पदों के अन्त में 'व' के पहले 'ई' का उच्चारण हो रहा है—नगरीव, पताकिनीव, कात्यायनीव। इसके बाद आये हुए उपमान-पदों में 'व' के पहले 'ए' का उच्चारण हो रहा है—कथेव, संध्येव, वेलेव। तदनन्तर जिन उपमान-पदों का प्रयोग किया गया है, उनके अन्त में 'व' के पहले 'इ' का उच्चारण उपलब्ध होता है—प्रावृडिव, चन्द्रमूर्तिरिव, राज्यस्थितिरिव।

क्रियाएँ

बाण बड़ी कुशलता से क्रियाओं का प्रयोग करते हैं। कहीं-कहीं क्रियाएँ वाक्यों के प्रारम्भ में प्रयुक्त हुई हैं—**'आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः...।'**[३]

जहाँ क्रिया की अपेक्षा कर्तृपद को प्रधानता देनी होती है, वहाँ अन्त में कर्तृपद और उसके ठीक पहले क्रियापद का प्रयोग होता है—

१. **'...चिरमुवास लक्ष्मीः।'**[४]

२. **'...तत्क्षणं रराज राजा।'**[५]

३. **'...यात्रामदादंशुमाली।'**[६]

कभी-कभी जब क्रिया वाक्य के अन्त में आती है, तब बाण दूसरा वाक्य क्रिया से प्रारम्भ करते हैं—

१. **'नरपतिस्तु...जग्राह। जगाद च...।'**[७]

२. **'गत्वा च...शिष्यमद्राक्षीत्। अप्राक्षीच्च...।'**[८]

---

१. काद०, पृ० १५।
२. वही, पृ० ३८-३९।
३. वही, पृ० ७-९।
४. वही, पृ० ९।
५. वही, पृ० ३२।
६. हर्ष० २।२१
७, ८. वही, ३।४६

३. 'प्रतिदिनमुदये...ददौ। अजपच्च...।'[१]

कुछ स्थलों पर एक लकार, एक पुरुष तथा एक वचन में अनेक क्रियाएँ प्रयुक्त हुई हैं। इससे योजना बहुत सुन्दर हो गयी है। **'उत्क्षिप्तैर्हस्तकिसलयैः कमलिनीमरय इव बभासिरे सृष्टयः।...चकाशिरे रविमरीचयः।...शिशिञ्जिरे दिशः।'**[२] में सभी धातुएँ लिट्लकार, प्रथमपुरुष और बहुवचन में प्रयुक्त हुई हैं। ये सभी आत्मनेपदी हैं।

कहीं-कहीं क्रियाओं का प्रयोग नहीं होता। ऐसे वाक्य प्रायः सूक्तियों के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं—

'कातरस्य तु शशिन इव हरिणहृदयस्य पाण्डुरपृष्ठस्य कुतो द्विरात्रमपि निश्चला लक्ष्मीः। अपरिमितयशःप्रकरवर्षी विकासी वीररसः। पुरःप्रवृत्तप्रतापप्रहताः पन्थानः पौरुषस्य।'[३]

विशेषण

कवि ने पद-पद पर विशेषणों का प्रयोग किया है। विशेषणों के प्रयोग से प्रतिपाद्य का मनोरम स्वरूप प्रस्तुत हो जाता है। दण्डकारण्य के आश्रम का वर्णन करना है। बाण कहते हैं—**'गोदावर्या परिगतमाश्रमपदमासीत्।'**[४] आश्रम वृक्षों से उपशोभित हैं—**'उपशोभित पादपैः'**[५]। अब **'पादपैः'** के विशेषण आते हैं। उनमें एक विशेषण है—**'उपरचितालवालकैः'**[६]। वृक्षों के थाले लोपामुद्रा द्वारा बनाये गये हैं—**'लोपामुद्रया स्वयमुपरचितालवालकैः'**[७]। लोपामुद्रा अगस्त्य की पत्नी हैं, अतएव बाण लिखते हैं—**'अगस्त्यस्य भार्यया लोपामुद्रया'**[८]। लोपामुद्रा ने वृक्षों का पुत्रवत् संवर्धन किया है। प्रकृति के प्रति मानव का कितना निश्छल प्रेम है। लोपामुद्रा की उपस्थिति से वृक्षों में परम चेतना तथा अनन्त सौन्दर्य का आधान होता है। लोपामुद्रा के उच्छ्वास-स्वरूप पादप किसका चित्त आकृष्ट नहीं करते? आश्रम के महत्त्व को प्रकट करने के लिए लोपामुद्रा की योजना हुई है। लोपामुद्रा के गौरव को ठीक-ठीक समझाने के लिए **'अगस्त्यस्य'** पद प्रयुक्त किया गया है, क्योंकि अगस्त्य के सम्बन्ध से लोपामुद्रा का गौरव और भी उद्भासित हो उठता है। अगस्त्य के लिए भी विशेषण प्रयुक्त हुए हैं—

'सुरपतिप्रार्थनापीतसागरसलिलस्य, मेरुमत्सराद्गगनतलप्रसारितविकटशिरः-सहस्रेण दिवसकररथगमनपथमपनेतुमभ्युद्यतेनावगणितसकलसुरवचसा विन्ध्यगिरिणाप्यनुल्लङ्घिताज्ञस्य जठरानलजीर्णवातापिदानवस्य...सुरलोकादेकहुंकारनिपातितनहुषप्रकटप्रभावस्य।'[९]

---

१. हर्ष० ४।३
२. वही, ४।९
३. वही, ६।४६
४, ५. काद०, पृ० ४२।
६, ७, ८. वही, पृ० ४२।
९. वही, पृ० ४१-४२।

अगस्त्य ने सागर के जल का पान कर लिया है। विन्ध्यगिरि ने भी उनकी आज्ञा का पालन किया है। उन्होंने वातापि दानव को जठरानल में पचा लिया है और सुरलोक से नहुष को गिरा दिया है। इन विशेषताओं वाले अगस्त्य की भार्या हैं लोपामुद्रा। उनके द्वारा वृक्षों का पोषण हुआ है। इससे वृक्षों का महत्त्व प्रकट होता है। ऐसे वृक्षों से युक्त है आश्रम। इस प्रकार आश्रम में तपश्चर्या, सेवा, स्नेह आदि का प्रकर्ष प्रकट हो रहा है। विन्ध्याटवी, हारीत, जाबालि, महाश्वेता, कादम्बरी, दधीच, हर्षवर्धन आदि के लिए अनेक विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं। वे प्रतिपाद्य के आकार-प्रकार, महत्त्व, वातावरण आदि को पूर्णतः समुन्मीलित करने में अत्यन्त सहायक हैं।

मुहावरों वाले प्रयोग

बाण की रचनाओं में मुहावरों से युक्त प्रयोग मिलते हैं—

हर्षचरित

१. 'केवलं कमलासनसेवासुखमार्द्रयति मे हृदयम्।' – १।७
२. '...शिलातलसनाथे लतामण्डपे गृहबुद्धिं बबन्ध।' – १।८
३. 'कृच्छ्रादिव च सञ्जहार दृशम्।' – १।१२
४. '...निशामुख एव निपत्य विमुक्ताङ्गी पल्लवशयने तस्थौ।' – १।१३
५. 'अस्ताभिलाषिणि च लम्बमाने सवितरि' – २।३६
६. '...पतन्निव मुखेन प्रत्यासन्नलग्नो ग्रहवर्मा।' – ४।१६
७. 'आननलग्नं विषादमुपनिन्ये'। – ५।२०
८. '...नार्हस्यतिमात्रमात्मानं शुचे दातुम्।' – ५।२४

कादम्बरी

९. '...तत्क्षणं पपात चक्षुः।' – पृ० १३४।
१०. '...चन्द्रापीडस्य पस्पर्श विस्मयं हृदयम्।' – पृ० १५७।

प्रत्यय

बाण कभी-कभी एक ही प्रत्यय वाले अनेक पदों का प्रयोग करते हैं—

'जर्जरयन्...आकम्पयन्...उत्सिञ्चन् ... रिक्तीकुर्वन्...चूर्णयन्...समीकुर्वन् ...दलयन्...पूरयन्...निम्नयन्...परिभ्रमन्...नमयन्...उन्नमयन्... आश्वासयन्... रक्षन्...उन्मूलयन्...उत्सादयन्...अभिषिञ्चन् ... समर्जयन् ... प्रतीच्छन्... गृह्णन्...आदिशन्...स्थापयन्...कुर्वन्...लेखयन्...पूजयन् ... प्रणमन् ... पालयन् ...प्रकाशयन्...आरोपयन्...उपचिन्वन्...विस्तारयन्...प्रख्यापयन्...आमृद्नन्...।'[१]

यहाँ एक प्रसङ्ग में अनेक शतृप्रत्ययान्त पदों का प्रयोग हुआ है।

'अत्र...निश्चलीकृताः...। अत्र...क्षमा...ता। अत्र पुरुषोत्तमेन...आत्मीकृता।

१. काद०, पृ० २२४-२२५।

अत्र बलिना...मुक्तो महानागः। अत्र देवेनाभिषिक्तः कुमारः। अत्र...प्रख्यापिता शक्तिः।'[१] में अनेक क्तप्रत्ययान्त पद प्रयुक्त हुए हैं।

वाण की रचनाओं में प्रत्ययों की दृष्टि से अधोलिखित प्रयोग ध्यातव्य हैं—

हर्षचरित

ब्रह्मोद्य (१।२) – क्यप्, वैवधिक (ता) (१।४) – ठक्, रोमश (१।१०) –श, सटाल (१।१४) – लच्, इत्वर (१।१६) – क्वरप्, मार्दङ्गिक (१।१६) –ठक्, आक्षिक (१।१६) – ठक्, शैलाली (१।१६) – णिनि, ऐन्द्रजालिक (१।१६) –ठक्, ज्ञातेय (१।२०) – ढक्, पुरोडाशीय (२।२१) – छ, कमण्डलव्य (२।२१) –यत्, वत्सीय (२।२१) – छ, ललाटन्तप (२।२१) – खश्, असूर्यम्पश्या (२।२१) –खश्, घस्मर (२।२३) – क्मरच्, शालेय (२।२७) – ढक्, स्तनन्धय (२।३७) – खश्,यायजूक (२।३७) – यङ-ऊक्, औष्ट्रक (३।४३) – वुञ्, भैक्ष (३।४५) –अण्, दन्तुर (ता) (३।४७) – उरच्, जञ्जपूक (४।३) – यङ – ऊक्, शाद्वल (४।१७) – ड्वलच्, वार्द्धुषिक (६।३६) – ठक्, एकविंशतिकृत्वः (६।४७) – कृत्वसुच्, मुसल्य (६।४७) – यत्, कुट्टाक (६।४८) – षाकन्, कर्मण्य (६।४६) – यत्, माषीण (७।५७) – खञ्, अभवनि (७।५८) – अनि, काष्ठिक (७।६८) – ठक्, शाकुनिक (७।६८) – ठक्, अवनाट (८।७०) – नाटच्, चाटकैर (८।७२) – ऐरक्, गौधेर (८।७२) – ढ्रक्।

कादम्बरी

कौक्षेयक (पृ० १५) – ढकञ्, सिस्नासु (पृ० ७४) – उ, अश्वीय (पृ० १६०) – छ, शुकानसवर्जम् (पृ० १८४) – णमुल्, भिदुर (पृ० १८६) – कुरच्, वात्या (पृ० १६६) – य, गुल्फद्वयस (पृ० २१७) – द्वयसच्, आप्रपदीन (पृ० २४८) – ख, कौलीन (पृ० ३०६) – अण्, उपरतकल्प (पृ० ३१२) – कल्पप्, सब्रह्मचारी (पृ० ३२३) – णिनि, स्त्रैण (पृ० ३३१) – नञ्, सुभगाभिमानी (पृ० ३५१) – णिनि, मानुष्यक (पृ० ३५८) – वुञ्, पाणविक (पृ० ३५६) – ठक्, फलिन (पृ० ३६४) – इनच्, कौशेयक (पृ० ३६८) – ढञ्।

वेबर के आक्षेप का खण्डन

वेबर का आक्षेप है कि वाण ने विशेषणों का अत्यधिक प्रयोग किया है और ऐसे वाक्यों की योजना की है, जिनमें कई पृष्ठों के बाद क्रिया के दर्शन होते हैं। उनके [अ]नुसार 'बाण का गद्य एक भारतीय जङ्गल है जिसमें यात्री तव तक आगे नहीं बढ़ सकता [ज]ब तक वह झाड़ियों को काटकर अपने लिए मार्ग नहीं बना लेता और जहाँ इसके वाद भी उसे भयानक अज्ञात शब्दों के रूप में दुष्ट जङ्गली पशुओं का सामना करना पड़ता है।'[२]

---

१. हर्ष० ३।४०

२. कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास [illegible] शास्त्री), पृ० ३८६।

वेबर का यह आक्षेप उचित नहीं है। बाण ने बड़े-बड़े वाक्यों का प्रयोग किया है और साभिप्राय विशेषणों की योजना की है। इससे उनके काव्य का शृंगार हुआ है। जब वे विषय का संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करना चाहते हैं, तब वे लम्बे-लम्बे वाक्यों की योजना करते हैं और सुन्दर विशेषणों से प्रतिपाद्य का भास्वर स्वरूप अंकित करते हैं। लम्बे वाक्यों और विशेषणों के अभाव में बिखरे चित्र ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं। बाण की रचना संस्कृत के पण्डित को आनन्द प्रदान करती है। उसे अज्ञात शब्द भी नहीं मिलते। वह बाण के गद्य का रसास्वादन करता है। जिसको संस्कृत भाषा का सामान्य ज्ञान है, जो संस्कृत भाषा की समस्त-पदावली-विशिष्ट रचना से परिचित नहीं है, उसके लिए निश्चित ही बाण का गद्य कान्तार है। बाण ने संस्कृत के मर्मज्ञ के लिए रचना की है, साधारण ज्ञान वाले व्यक्ति के लिए नहीं। भारतीय विद्वान् बाण के गद्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इसका कारण है कि उसमें उनके मस्तिष्क को तृप्ति प्रदान करने के लिए सामग्री-सम्भार पुञ्जीकृत किया गया है, उसमें उनकी कल्पना-शक्ति को समृद्ध करने के लिए अभिनव चिन्तन-धारा बह रही है और उसमें उनके पाण्डित्य के कलेवर के श्री-मण्डन के लिए प्रसाधन के अनेक उपकरण विद्यमान हैं। बाण ने अनेक प्रकार के भावों के अभिव्यञ्जन के लिए तथा ओजोगुण की सुदृढ़ समुपस्थापना के लिए शब्दों का चयन किया है। बहुत-से स्थलों पर श्लिष्ट पदों का प्रयोग किया गया है। अनेक प्रसंगों में प्रयुक्त शब्द भारतीय संस्कृति का उन्मीलन करते हैं। संस्कृतज्ञ इन शब्दों के स्वरूप को समझता है।

वेबर को गद्य का जो स्वरूप मान्य है, वह भी बाण की रचनाओं में विद्यमान है, किन्तु वह आदर्शरूप नहीं है। बाण सरल संस्कृत लिख सकते हैं और कमनीय भावों तथा कल्पनाओं के संस्पर्श से उसे अलंकृत कर सकते हैं। इस दृष्टि से कादम्बरी का अधोलिखित उद्धरण दर्शनीय है—

'अहो निष्फलमपि में तुरङ्गमुखमिथुनानुसरणमेतदालोकयतः सरः सफलतामुपगतम्। अथ परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदर्शनफलम्, आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः...। इदमपि खल्वमृतमिव सर्वेन्द्रियाह्लादनसमर्थमिति विमलतया चक्षुषः प्रीतिमुपजनयति, शिशिरतया स्पर्शसुखमुपहरति, कमलसुगन्धितया घ्राणमाप्याययति, हंसमुखरतया श्रुतिमानन्दयति, स्वादुतया रसनामाह्लादयति। नियतं चास्यैव दर्शनतृष्णया न परित्यजति भगवान् कैलासनिवासव्यसनमुमापतिः। न खलु सांप्रतमाचरति जलशयन-दोहदं देवो रथाङ्गपाणिर्यदिदममृतरससुरभिसलिलमपहाय लवणरसपरुषपयस्युदन्वति स्वपिति।'[१]

बाण की रचनाओं में ऐसे अनेक स्थल प्राप्त होते हैं, जहाँ सरल भाषा का प्रयोग हुआ है। किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस प्रकार का गद्य बाण के युग में आदर्श

१. काद०, पृ० २३४-२३५।

नहीं माना जाता था । उस समय समास-बहुल अलंकृत गद्यशैली समादृत थी । इसीलिए बाण ने समासों से युक्त तथा अलंकार-मण्डित गद्य की रचना की है । गद्य की विशेषता का निरूपण करते हुए दण्डी कहते हैं—'ओजःसमासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम् ।'[१] दण्डी के कथन से यह प्रकट होता है कि समास-बाहुल्य का गद्य में अत्यन्त महत्त्व है । बाण ने समास-बहुल पदावली का प्रयोग किया है, इसीलिए उनका गद्य समादृत हुआ है ।

जब हम संस्कृत-गद्य की विशेषताओं पर दृष्टिपात करते हुए बाण के गद्य की आलोचना करते हैं, तब हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनका गद्य प्रशंसा के योग्य है । यदि वेबर संस्कृत-गद्य की विशेषताओं को ध्यान में रखकर बाण के गद्य का अनुशीलन करते, तो वे ऐसा आक्षेप न करते ।

बाण पर ग्रीक साहित्य का प्रभाव-पीटर्सन का अनुमान चिन्त्य !

पीटर्सन ने कादम्बरी की भूमिका में निर्देश किया है कि बाण पर ग्रीक साहित्य का आंशिक प्रभाव देखा जा सकता है ।[२] उन्होंने तुलना के लिए कादम्बरी और ग्रीक साहित्य से उद्धरण प्रस्तुत किये हैं ।[३]

बाण के सम्बन्ध में पीटर्सन का अनुमान समीचीन नहीं प्रतीत होता । कभी-कभी दो लेखकों में एक का दूसरे पर प्रभाव न होने पर भी एक ही प्रकार की चिन्तन-परम्परा दृष्टिगत होती है । कादम्बरी और फेअरी क्वीन में समान भाव वाले अनेक उद्धरण देखे जा सकते हैं,[४] किंतु क्या कोई फेअरी क्वीन पर बाण का प्रभाव स्वीकार करेगा ? इसी प्रकार कादम्बरी और ग्रीक साहित्य की रचनाओं में सादृश्य उपलब्ध होने से कैसे कहा जा सकता है कि बाण पर ग्रीक साहित्य का प्रभाव है ?

---

१. काव्यादर्श १।८०

२. "I cannot here enter into any detailed examination of the discussion as to the existence and extent of Greek influence in the works of such of the Indian Mediaeval writers as have come down to us. I proceed to state very briefly reasons which appear to me to go to show that Bana was, in a fashion and to a degree which I cannot pretend to define, subject to an influence whose all-pervading power is, when we think of it, almost as much of a miracle as the spread of christianity itself."

Peterson's Introduction to the Kādambarī, p. 99.

३. ibid., pp. 101-104.

४. अमरनाथ पाण्डेय : बाणभट्ट का [illegible]दान-प्रदान. पृ० ११६-१२३ ।

बाण की कल्पना असीम थी। सादृश्य दिखलाने के लिए पीटर्सन द्वारा कादम्वरी के जो उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं, वे क्या महाकवि की कल्पना की सृष्टि नहीं हो सकते ? बाण की रचनाओं में ऐसी कल्पनाएँ मिलती हैं, जो कदाचित् अन्यत्र न मिल सकें। संस्कृत साहित्य में तो बाण की कुछ कल्पनाएँ नितान्त मौलिक हैं। जब बाण ऐसी कल्पनाओं और विवेचन-विधाओं की अभूतपूर्व सृष्टि करने में समर्थ हैं, तो वे कतिपय भाव-परम्पराओं के लिए ग्रीक साहित्य के अधमर्ण क्यों होते ? अतएव मेरा विनम्र निवेदन है कि जब तक पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध न हो जाय कि बाण ने ग्रीक साहित्य की शैली का अनुगमन किया है, तब तक सादृश्य-परक दो-चार उद्धरणों के बल पर महाकवि पर ग्रीक साहित्य के प्रभाव के सम्बन्ध में पीटर्सन का अनुमान संगत नहीं कहा जा सकता।

अष्टम अध्याय

प्रकृति-चित्रण

मानव और प्रकृति का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। मानव प्रकृति की गोद में पलता है। उसे प्रकृति की गोद में रहने से शान्ति, सन्तोष, सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है। यदि वह प्रकृति के उदार एवं कमनीय अञ्चल के बाहर है, तो वह विप्रलब्ध है, जीवन के रहस्य का दर्शन नहीं कर सकता और आध्यात्मिक चिन्तन के पावन वातावरण में विचरण नहीं कर सकता।

प्रकृति में क्षमा है, शक्ति है, शान्ति है, गम्भीरता है और उल्लास है। प्रकृति मानव को प्रेरित करती है और उसमें शक्ति का संचार करती है। वह मानव को शिक्षा देती है।[१] यदि मानव प्रकृति के सन्देशों और उद्‌बोधक रहस्यों को प्राप्त कर लेता है, तो वह एक रमणीय सत्ता के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।

भारतीय चिन्तन-परम्परा ने मानव और प्रकृति को एक दूसरे का सहचर माना है। कालिदास के काव्यों में प्रकृति और मानव का साहचर्य-सम्बन्ध चित्रित हुआ है। शकुन्तला प्रकृति-कन्या है। वह प्रकृति के वातावरण में निवास करती है। वृक्षों को सींच करके ही स्वयं जल पीती है। यद्यपि उसे आभूषण अधिक प्रिय हैं, किन्तु वृक्षों के पल्लवों को नहीं तोड़ती। जब वृक्षों में पुष्प आ जाते है, तब उसका उत्सव होता है—

'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नाऽदत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः'[२]।

जब शकुन्तला पति के घर जाने लगती हैं, तब वृक्ष उसे आभूषण प्रदान करते हैं—

'क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्‌भेदप्रतिद्वन्द्विभिः॥'[३]

---

१. "And Vital feelings of delight
Shall rear her form to stately height,
Her virgin bosom swell;
Such thoughts to Lucy I will give
While she and I together live
Here in this happy dell."

Golden Treasury, Book Fourth, 'The Education of Nature', p. 210.

२. अभिज्ञानशकुन्तल ४।९

३. वही, ४।५

प्रकृति मानव की वेदना से सन्तप्त और उसके सुख से उल्लसित भी चित्रित की गयी है। सीता को दुःखित देखकर मयूरों ने नर्तन छोड़ दिया, वृक्षों ने पुष्प गिरा दिये और हरिणियों ने मुख में लिए हुए कुशों का परित्याग कर दिया।[१]

मनुष्य प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करके सौन्दर्य-भावना का साक्षात्कार करता है। प्रकृति के दृश्य उसे उल्लास और सौन्दर्य के कान्त चित्रफलक दिखलाते हैं और उसके अन्तर्हित भावों को जागरित करते रहते हैं।

प्रकृति की महत्ता तथा उपयोगिता के कारण कवियों ने उसके चित्रण से अपने काव्यों को सँजोया। नायक-नायिका के चारों ओर प्रकृति छा गयी। कहीं उषा ने नर्तन किया, कहीं प्रभात की किरणें क्रीडा करने लगीं, कहीं अस्तोन्मुख सूर्य दिग्वधुओं को अनुरक्त करने लगा। प्रकृति काव्य के वर्णन की प्रक्रिया का अंग बन चली। अब नाना प्रसंगों में प्रकृति-चित्रण काव्य के कलेवर के श्रीवर्धन में सहायक माना जाने लगा। वैज्ञानिकों ने प्रकृति के उपयोगी पक्ष पर दृष्टि डाली[२] और कवियों ने उसके सौन्दर्यमय पक्ष का परिरम्भण किया।

अंग्रेजी साहित्य में प्रकृति का कई रूपों में चित्रण हुआ है। प्रकृति और मानव में ऐक्य है; हमारे चारों ओर फैली हुई प्रकृति रमणीय है और सूक्ष्म निरीक्षण के योग्य है; प्रकृति मानव की क्रियाओं और भावनाओं को द्योतित करने वाले उपमानों का अगार है और मानव की भाँति चेतना-युक्त है।[३]

---

१. 'नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि॥' —रघुवंश १४।६९

२. Hudson : An Introduction to the study of Literature, pp.97-98.

३. "In the study of the evolution of the love of nature from walter to Wordsworth we may perhaps mark out three stages in attitude towards the external world. The last of these stages is one based on the cosmic sense, or the recognition of the essential unity between man and nature. of this Wordsworth stands as the first adequate representative. The second stage is marked by the recognition of the world about us as beautiful and worthy of close study, but this study is detailed and external rather penetrating and suggestive. Very much of the work of the transition period is of this sort. In the first stage nature is counted of value chiefly as a storehouse of similitudes illustrative of human actions and passions. The first stage represents the use of nature most characteristic of the classical period."

M. Reynolds : The Treatment of Nature in English Poetry, pp. 27-28.

संस्कृत के कवियों ने प्रकृति को आलम्बन के रूप में, उद्दीपन के रूप में और अप्रस्तुत के रूप में चित्रित किया है। मानवीकरण का भी दर्शन होता है। जब प्रकृति आलम्बन के रूप में चित्रित की जाती है, तब वह साध्य बन जाती है। कवि की भावना उसके स्वरूप और रहस्य को चित्रित करने लगती है। ऐसी स्थिति में प्रकृति का चित्रण ही प्रधान होता है, वही कवि का लक्ष्य होता है।

संस्कृत-साहित्य में उद्दीपन के रूप में प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है। गुण, चेष्टा, अलंकृति तथा तटस्थ भेद से उद्दीपन चार प्रकार का माना गया है।[1] तटस्थ के अन्तर्गत प्रकृति के उपकरण रखे गये हैं।[2] उद्दीपन के रूप में प्रकृति का संयोग तथा वियोग-दोनों पक्षों में वर्णन हुआ है। संयोग में प्रकृति के पदार्थ आनन्दित करते हैं, किन्तु वियोग में वे मनुष्य को सन्तप्त तथा पीड़ित करने लगते हैं।

सौन्दर्य की भावना से प्रेरित होकर मनुष्य उपमानों की योजना करता है। इस परिकर में प्रकृति के पदार्थ अप्रस्तुत रूप में उपन्यस्त होते हैं।

मानवीकरण में प्रकृति के पदार्थों पर मानव-भावों का आरोप किया जाता है। हेमचन्द्र इसे रसाभास तथा भावाभास कहते हैं।[3]

बाण प्रकृति के विभिन्न रूपों को पहचानते हैं। वे पूर्णतः जानते हैं कि किस परिस्थिति में प्रकृति के किस रूप का चित्रण होना चाहिए। वे प्रकृति के आराधक हैं। उनके लिए प्रकृति के सभी अवयव पुष्ट एवं सुन्दर हैं। जहाँ कालिदास ने प्रकृति के कोमल पक्ष के तथा भवभूति ने प्रकृति के भयानक पक्ष के चित्रण में सफलता प्राप्त की है, वहाँ बाण ने प्रकृति के कोमल तथा भयानक—दोनों पक्षों का संयोजन किया है। इससे यह प्रकट होता है कि बाण प्रकृति की अन्तरात्मा की विविध भंगिमाओं के पारखी थे और जिस प्रकार नगाधिराज पूर्वसागर एवं पश्चिमसागर—दोनों को अपनी विशालता से

---

१. 'उद्दीपनं चतुर्धा स्यादालम्बनसमाश्रयम्।
गुणचेष्टालङ्कृतयस्तटस्थाश्चेति भेदतः॥'
शिङ्गभूपालः रसार्णवसुधाकर, १।१६२

२. 'तटस्थाश्चन्द्रिका धारागृहचन्द्रोदयावपि॥
कोकिलालापमाकन्दमन्दमारुतषट्पदाः।
लतामण्डपभूगेहदीर्घिकाजलदारवाः॥
प्रासादगर्भसङ्गीतक्रीडाद्रिसरिदादयः।
एवमूह्या यथाकालमुपभोगोपयोगिनः॥'
वही, १।१८७-१८९

३. 'निरिन्द्रियेषु तिर्यगादिषु चारोपाद्र[illegible]भावाभासौ।'
हेमचन्द्र [illegible] द्वितीय अध्याय, पृ० १२०।

अवगाहित करके स्थित है, उसी प्रकार बाण की प्रतिभा भी प्रकृति के दोनों छोरों का आलिंगन करती हुई सहृदयों को आप्यायित करती रहती है।

बाण प्रकृति के पदार्थों का स्वच्छन्द व्यक्तित्व चित्रित करते हैं और इसके बाद उनका पारस्परिक सम्बन्ध में भी चित्रण करते हैं। वे पात्रों की मनःस्थिति और वातावरण के अनुरूप ही प्रकृति का चित्रण करते हैं। एक स्थान का सन्ध्या-वर्णन दूसरे स्थान के सन्ध्या-वर्णन से इसलिए भिन्न है, क्योंकि कथा की स्थितियाँ भिन्न हैं। बाण कथा की स्थितियों पर विचार करके ही प्रकृति-वर्णन की उपस्थापना करते हैं।

प्रकृति घटना की स्थिति अथवा पात्र की मनःस्थिति के अनुकूल वातावरण का निर्माण करती है। 'यहाँ हाथियों द्वारा विमर्दित कमलिनी की गन्ध आ रही है, यहाँ वराहों द्वारा चबाये जाते हुए नागरमोथा के रस की गन्ध है, यहाँ हाथियों के शावकों से तोड़ी जाती हुई सल्लकी की कषाय गन्ध है, यहाँ गिरे हुए सूखे पत्तों की मर्मर ध्वनि हो रही है, यहाँ वन के भैंसों के वज्र की भाँति कठोर सींगों से विदारित बांबियों की धूलि है, यहाँ मृगों का समूह है, यहाँ वन के हाथियों का झुण्ड है, यहाँ वन के शूकरों का समुदाय है।'[१] इसके द्वारा आखेट की घटना के अनुरूप वातावरण की उपस्थापना की गयी है।

अधोलिखित उद्धरण में वियुक्त महाश्वेता की मनःस्थिति के अनुरूप प्रकृति का वातावरण समुल्लसित हो रहा है—

'वन के भैंसे की भाँति श्याम रंग वाला तथा आकाश की विस्तीर्णता को नष्ट करता हुआ रात्रि का अन्धकार कालिमा का प्रसार करने लगा। वन-पंक्तियों की नीलिमा घने अन्धकार से तिरोहित हो गयी, अतः वे गहन दिखायी पड़ने लगीं। ओस की बूंदों के कारण शीतल, लताओं तथा विटपों को हिलाता हुआ पवन बहने लगा। वन के अत्यधिक पुष्पों की गन्ध से उसके चलने का अनुमान होता था।'[२]

प्रकृति-वर्णन कथावस्तु का अंग है, अतएव वह कथासूत्र में संयोजित होकर कथा की विभिन्न स्थितियों का निखरा चित्र उपस्थित करता है। यदि प्रकृति-वर्णना की योजना न की जाय, तो कथा के बहुत-से अंशों की उद्भावना न हो सके। बाण इसे समझते हैं, अतः पात्र तथा घटना के स्वरूप को पूर्णतः अंकित करने के लिए प्रकृति के परिवेश की कल्पना करते हैं। प्रकृति की सीमा के अन्तर्गत विद्यमान प्रत्येक स्थिति के अंगों-उपांगों को ऐसी आकर्षक विच्छित्ति विनिविष्ट की जाती है, जिसके द्वारा कथा का महनीय कक्ष उद्घाटित होने लगता है। चित्रकार बाण प्रकृति के पदार्थों को संजोता चला जाता है, एक के बाद एक सुन्दर आकृति सामने आती रहती है और कथा अलंकृत होती रहती है। परिणति उल्लासमय होती है।

---

१. काद०, पृ० ५४-५५।

२. वही, पृ० ३२३।

कालिदास की प्रकृति की भाँति बाण की प्रकृति भी मानव-जीवन से प्रभावित तथा समुद्वेल्लित है। पञ्चवटी की प्रकृति भगवान् राम के वियोग में विषाद-मग्न है।[1]

बाण ने आलम्बन, उद्दीपन आदि के रूप में प्रकृति का रम्य चित्रण किया है। हर्षचरित का अधोलिखित वर्णन आलम्बन का उदाहरण है—

'मेघ विरल हो गये। चातक आतंकित हुए। कलहंस शब्द करने लगे। शरत्काल दर्दुरों से द्वेष करता है, मयूरों के मद को चुरा लेता है और हंस रूपी यात्रियों का आतिथ्य करता है। उस समय आकाश धुली तलवार की भाँति निर्मल हो गया, सूर्य भास्वर हो उठा, चन्द्रमा निर्मल हो गया। तारे तरुण हो गये, इन्द्रधनुष नष्ट होने लगे, विद्युन्मालाएँ मिटने लगीं।'[2]

महाश्वेता स्नान करने के लिए सरोवर पर जाती है। उस समय प्रकृति का उद्दीपन-रूप में वर्णन किया गया है—

'उस समय नवनलिन-वन विकसित हो रहे थे। आम की कोमल कलिकाएँ कामुकों को उत्कण्ठित कर रही थीं। कोमल मलय-पवन के आगमन से अनंग की ध्वजाओं के वस्त्र तरंगित हो रहे थे। मदमत्त कामिनियों के गण्डूप-मंद्य को प्राप्त करके बकुल पुलकित हो रहे थे। भ्रमर-समूह रूपी कलंक से कालेयक के पुष्प और कुड्मल काले हो रहे थे। अशोक के वृक्षों पर ताडन करने से सुन्दर मणिमय नूपुरों की झंकार फैल रही थी। खिले हुए मुकुलों के सौरभ के कारण पुञ्जित हुए भ्रमरों के मधुर रव से सहकार सुन्दर लग रहे थे। अविरल पुष्प-पराग रूपी सिकतातट से धरातल धवलित हो रहा था। मधुमद से विह्वल मधुकरियों से लतादोलाएँ आन्दोलित हो रही थीं। उत्फुल्ल पल्लवों वाली लवली लताओं में निलीन मत्त कोयलों द्वारा उल्लासित मधुकणों से प्रबल दुर्दिन हो रहा था।'[3]

कवि ने अप्रस्तुत-रूप में भी प्रकृति का चित्रण किया है। इस प्रकार के चित्रण में प्रकृति के पदार्थ उपमान-रूप में आते हैं। जिस समय चन्द्रापीड विद्याध्ययन के बाद नगरी में प्रविष्ट होता है, उस समय ललनाएँ उसे देखने के लिए दौड़ती हैं। कवि ने इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है—

---

१. 'आधुनापि यत्र जलधरसमये गम्भीरमभिनवजलधरनिवहनिनादमाकर्ण्य भगवतो रामस्य त्रिभुवनविवरव्यापिनश्चापघोषस्य स्मरन्तो न गृह्णन्ति शष्पकवलमजस्रमश्रुजललुलितदृष्टयो वीक्ष्य शून्या दश दिशो जराजर्जरितविषाणकोटयो जानकीसंवर्धिता जीर्णमृगाः।'

काद०, पृ० ४३-४४।

२. हर्ष० ३।३८

३. काद०, पृ० २६०-२६१।

'कुछ बायें हाथ में दर्पण लिए हुए थीं; वे उन पौर्णमासी रात्रियों की भाँति थीं, जिनमें चन्द्रमा का पूर्ण मण्डल प्रकाशित होता है। कुछ के चरण गीले अलक्तक के रस से लाल थे; वे उन पद्मलताओं की भाँति थीं, जिन्होंने प्रातःकाल के सूर्य के प्रकाश को पी लिया है। कुछ के चरण शीघ्रता से गमन करने के कारण गिरी हुई मेखलाओं से अवरुद्ध थे; वे शृंखलाओं से बद्ध होने के कारण धीरे-धीरे चलने वाली हथिनियों की भाँति लग रही थीं। कुछ इन्द्रधनुष की भाँति विविध रंगों वाले वस्त्रों को धारण किये हुए थीं; वे इन्द्रधनुष के रंगों से सुन्दर लगने वाले आकाश को धारण करने वाली वर्षाकाल की दिवसलक्ष्मियों की तरह लगती थीं।'[1]

कादम्बरी में प्रकृति के पदार्थ मानव की भावभूमि से युक्त चित्रित किये गये हैं। वैशम्पायन शुक मनुष्य की भाँति बोलता है। कादम्बरी के शुक तथा सारिका पर मनुष्यों के गुणों का आरोप किया गया है।[2]

बाण प्रकृति को मानव के बहुत समीप ला देते हैं। वनदेवी एक पात्र के रूप में चित्रित की गयी है। वह पुण्डरीक को पारिजात की मञ्जरी प्रदान करती है।[3]

बाण की प्रकृति-वर्णन की शैली में वैचित्र्य तथा सौन्दर्य का अपूर्व संश्लेष है। कवि की लेखनी के संस्पर्श से प्रकृति के पदार्थ धरातल से उठते हैं, एक दिव्य परिवेश के संयोग से अद्भुत चेतना और गौरव से मण्डित होते हैं, मानव को अपनी परिधि में लाते हैं, अपनी सत्ता और स्निग्ध छाया से आप्यायित करते हैं। बाण प्रकृति के अमित सौन्दर्य की उपस्थापना में अपनी कला का, अपनी मञ्जु शैली का, अपनी कमनीय भाषा का विनियोग करते हैं। प्रकृति की नाना भङ्गिमाएँ प्रकट होती हैं, उसके अनेक सम्पर्कों और सम्बन्धों का विशाल चित्रपट फैलता जाता है, अपार रामणीयक की अजस्र वर्षा करने वाली उसकी छवि-रश्मियों का जादू क्षण-भर में जगत् पर छा जाता है। बाण विस्मित होकर देखता है और फिर अपनी वर्णन-शैली में प्रकृति की महिमा तथा कान्ति को समेट लेता है। यही है कवि का सम्मोहन, जिससे अलौकिक काव्य-जगत् की सृष्टि हुई और अलङ्करण हुआ।

बाण के कमनीय प्रकृति-वर्णन यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

प्रभात

हर्षचरित में राजा प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद प्रभात का जो वर्णन किया गया है, वह अत्यन्त मार्मिक है—

---

१. काद०, पृ० १६२-१६३।

२. वही, पृ० ३५१-३५३।

३. वही, पृ० २७३।

'ताम्रचूड मानो शोक से मुक्तकण्ठ हो चिल्लाने लगे। पालतू मयूरों ने क्रीडाशैलों के वृक्षों के शिखरों से अपने को गिराया। पक्षी अपने निवास को छोड़कर वन में चले गये। अन्धकार तत्क्षण कम होकर विलीन हो गया। अपने तेल (आत्म-स्नेह) के कम हो जाने से दीप अभाव (निर्वाण, बुझना) की अभिलाषा करने लगे। सूर्य की किरण रूपी वल्कल से अपने को आच्छादित कर आकाश ने मानो संन्यास ले लिया। प्रातःकाल द्वारा राजा के अस्थिखण्ड की भाँति और गौरैये के कन्धे की भाँति धूसर तारिकाएँ हटाई जा रही थीं। पर्वत की धातुओं से युक्त गण्डस्थलों वाले (राजा के अस्थिखण्डों से युक्त कुम्भों को धारण करने वाले) हाथी सरोवरों, सरिताओं तथा तीर्थों की ओर चल पड़े। प्रेत को अर्पित किये जाने वाले शुद्ध भात के उज्ज्वल पिण्ड की भाँति चन्द्रमा पश्चिम सागर के तट पर गिर रहा था। उसका तेज मानो राजा की चिता की अग्नि के धूम से धूसर हो गया था। उसका चित्त मानो राजा के शोक की अग्नि से जलने से काला हो गया था। उसका शरीर मानो अन्तःपुर की समस्त प्रोषित रानियों के मुखचन्द्र के उद्वेग को देखकर भाग रहा था। पहले अस्त हुई रोहिणी की उत्कण्ठा (चिन्ता) से मानो उदास होकर वह अस्त हो गया।'[१]

हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास का अधोलिखित वर्णन अतिसंक्षिप्त, किन्तु अत्यन्त भावपूर्ण है—

'दूसरे दिन त्रिभुवनशेखर उदयाचलचूडामणि भगवान् सूर्य का उदय हुआ। उनका शरीर मानो खन-खन शब्द करने वाली तीक्ष्ण लगामों से घोड़ों के मुखों के कट जाने से निकले हुए रक्त से लाल हो रहा था। वृद्ध मुर्गे की चूडा की भाँति लाल अरुण उनके आगे था।'[२]

कादम्बरी का अधोलिखित प्रभात-वर्णन नितान्त सुन्दर है—

'प्रभात की सन्ध्या के राग से लोहित चन्द्रमा मन्दाकिनी के तट से पश्चिमी समुद्र के किनारे पर उतर रहा था। वृद्ध रङ्कु मृग के रोम की भाँति श्वेत दिङ्मण्डल विशाल होता जा रहा था। सूर्य की किरणें विस्तृत थीं और हाथी के रुधिर से रँगी हुई सिंह की सटा के रोम की भाँति लाल तथा उष्ण लाक्षातन्तु की भाँति श्वेत-रक्त थीं; वे पद्मराग मणियों की शलाकाओं से निर्मित झाड़ू प्रतीत हो रही थीं; वे आकाश रूपी वेदिका पर विद्यमान पुष्पराशि की भाँति नक्षत्रों को हटा रही थीं। उत्तर-दिशा का अवलम्बन करने वाले सप्तर्षि ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो सन्ध्या करने के लिए मानस-सरोवर के तट पर उतर रहे हों। पश्चिम समुद्र, तट पर स्थित फटी सीपियों से बिखरे हुए तथा सैकतराशि को धवल करने वाले मुक्तासमूह को धारण कर रहा था, मानो सूर्य की प्रेरणा से नक्षत्र गिर गये हों। तुषार की बूँदें पड़ रही थीं, मयूर जाग गये थे, सिंह जभाई ले रहे

---

१. हर्ष० ५।३३
२. वही, १।७

थे, हथिनियाँ मद-मत्त हाथियों को जगा रही थीं। वन पल्लवाञ्जलियों से उदयाचल के शिखर पर स्थित सूर्य को मानो लक्ष्य करके ओस से स्तिमित पराग वाली पुष्पराशि समर्पित कर रहा था। तपोवन के अग्निहोत्र की धूमलेखाएँ ऊपर उठ रही थीं। वे वन-देवियों के प्रासाद रूपी वृक्षों के शिखरों पर कपोतपंक्तियों के समान थीं तथा धर्म-पताकाओं-सी लग रही थीं। ओस-बिन्दुओं से युक्त, कमलवन को कम्पित करने वाला, वन के महिषों के पागुर के फेन-बिन्दुओं को ढोने वाला, कम्पित पल्लवों तथा लताओं को नृत्य की शिक्षा देने में निपुण, खिलते हुए कमलवन के मकरन्दकणों का वर्षण करने वाला, पुष्पों के सौरभ से भ्रमरों को तृप्त करने वाला, रात्रि की समाप्ति के कारण शीतलता से युक्त प्राभातिक पवन धीरे-धीरे वह रहा था। कमलवन को जगाने (विकसित करने) के लिए मंगलपाठ करने वाले, हाथियों के गण्डस्थलों पर दुन्दुभि-स्वरूप तथा कुमुदों के भीतर पत्रसम्पुटों के बन्द हो जाने के कारण अवरुद्ध पक्षसमूहों वाले भ्रमर हुंकार कर रहे थे। ऊसर में शयन करने के कारण वक्षःस्थल की धूसरित रोमावलियों से युक्त वन के हरिण प्रातःकाल की शीतल वायु से स्पृष्ट, उष्ण लाक्षारस से चिपकी हुई बरौनियों से युक्त प्रतीत होने वाले तथा अधूरी नींद के कारण कुटिल हुई कनीनिकाओं वाले नेत्र को धीरे-धीरे खोल रहे थे। वनचर इधर-उधर संचरण कर रहे थे। पम्पासरोवर के कलहंसों का श्रोत्रसुखद कोलाहल फैल रहा था। वन के हाथियों के कानों के फटफटाने से उत्पन्न मनोहर शब्द से मयूर नाच रहे थे। मञ्जिष्ठाराग की भाँति रक्तवर्ण की सूर्य की किरणें दिखायी पड़ रही थीं। वे हाथी के नीचे की ओर लटकने वाली चूडा वाले चमर की भाँति लग रही थीं। भगवान् सूर्य धीरे-धीरे उदित हो रहे थे। पम्पासरोवर के प्रान्तवर्ती वृक्षों के शिखरों पर संचरण करने वाला, उदयाचल के शिखर पर स्थित, नक्षत्रों को लुप्त करने वाला सूर्य का अभिनव प्रकाश वन को व्याप्त कर रहा था।'[१]

सन्ध्या

हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास का यह सन्ध्या-वर्णन अत्यन्त कमनीय है—

'इसी बीच सूर्य मानो सरस्वती के अवतरण की बात बताने के लिए मध्यलोक पर उतरा। धीरे-धीरे दिन मन्द होने लगा। कमलों के बन्द होने से सरोवर दुःखी होने लगे। मदिरा के मद से मत्त कामिनियों के क्रोध से कुटिल कटाक्ष से मानो गिराया जाता हुआ, तरुण वानर के मुख के समान लाल, लोकों का एकमात्र नेत्र सूर्य अस्ताचल के शिखर पर शीघ्रता से उतर रहा था। दिव्य आश्रम के समीप के स्थान टपकते हुए स्तनों वाली गायों की बहती दुग्धधारा से धवल हो रहे थे, मानो आसन्न चन्द्रोदय से बढ़े हुए क्षीर-सागर की लहरों से प्रक्षालित हो रहे हों। अपराह्ण में घूमने के लिए निकला हुआ चँवर-युक्त ऐरावत गंगा के तटों को स्वच्छन्दतापूर्वक खोद रहा था तथा सुवर्णतट पर प्रहार करने से उसके दाँत लाल हो गये थे। विद्याधरों की [illegible]चरती हुई अनेक अभिसारिकाओं के

१. काद०, पृ० ५१-५३।

चरणों के अलक्तक-रस से मानो लिप्त हुआ आकाश लाल हो रहा था। आकाश में चलते हुए सिद्धों द्वारा सूर्यास्त के समय अर्घ्य में डाला गया, दिशाओं को लाल करने वाला, कुसुम्भ की प्रभा वाला लाल चन्दन बह रहा था, मानो शिव को प्रणाम करने के समय आनन्दित सन्ध्या का स्वेद हो। ...सन्ध्योपासन के लिए बैठे हुए तपस्वियों की पंक्तियों से गंगा का पुलिन पवित्र हो रहा था। सन्तरण करते हुए ब्रह्मा के वाहन हंसों से गंगा की तरंगें दन्तुर हो रही थीं। जलदेवियों का आतपत्र, पक्षियों की स्त्रियों का प्रासाद, अपने ही मकरन्द के मधुर आमोद से युक्त, भ्रमरों को आनन्दित करने वाला कुमुदवन खिलने की इच्छा कर रहा था। दिवस के अन्त में मुरझाते हुए कमलों के मधु के रस के सहपान से प्रसन्न राजहंस, जो कोमल कमल-नालों से खुजलाने के लिए अपने कन्धे झुकाये हुए थे और अपने हिलते पंखों से पद्मसरोवर को वीजित कर रहे थे, सोने की अभिलाषा कर रहे थे। रात्रि के निःश्वास के समान सान्ध्य मन्द पवन तट की लताओं के पुष्पों के पराग से सरिता को धूसरित करता हुआ, सिद्धों की स्त्रियों के केश-बन्धों के मल्लिकापुष्पों की गन्ध को ग्रहण करता हुआ बहने लगा। भ्रमर संकोच के कारण ऊपर उठे उन्नत केसरों से युक्त कमलकोश की कोटर रूपी कुटी में विश्राम कर रहे थे।'[१]

प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद सन्ध्या का जो वर्णन हुआ है, वह दुःखमय वातावरण की स्पष्ट रेखा खींच रहा है—

'इस प्रकार महाराज की मृत्यु से मानो वैराग्य धारण कर शान्त वपु वाला सूर्य पर्वत-गुहा के भीतर प्रविष्ट हुआ। आतप मानो महाजनों के गिरते हुए अश्रुबिन्दुओं की वर्षा से गीला होकर शान्त हो गया। जगत् मानो रोने के कारण लाल हुए लोगों के नेत्रों की कान्ति से लाल हो गया। दिवस मानो अनेक नरपतियों के उष्ण निःश्वासों के सन्ताप से जलकर नीला हो गया। राजा का अनुगमन करने के लिए मानो निकली हुई लक्ष्मी ने कमलिनियों को छोड़ दिया। पृथिवी मानो पति के शोक से कान्ति-रहित होकर श्याम हो गयी। कुलपुत्रों की भाँति स्त्रियों को छोड़ कर दुःखित चक्रवाक करुण प्रलाप करते हुए वनान्तों का आश्रय लेने लगे। कमलों ने मानो छत्रभङ्ग (स्वामी के विनाश) के डर से कोशों को बन्द कर लिया। दिग्वधुओं के विदीर्ण हृदयों के रक्तपटल की तरह प्रतीत होती हुई लाल आभा विगलित होने लगी। क्रमशः अनुरागशेष, तेजों के अधीश सूर्य दूसरे लोक में चले गये। प्रेतपताका-सी प्रतीत होती हुई, फैली हुई प्रभूत रक्तिमा से पाटल सन्ध्या आ गयी। शव-शिबिका के अलङ्कारभूत कृष्णचामरों की भाँति दर्शन-प्रतिकूल तिमिरलेखाएँ स्फुरित होने लगीं। किसी ने काले अगुरु की चिता की भाँति काली दिशाओं वाली रात्रि बनायी।'[२]

---

१. हर्ष० ११५-६
२. वही, ५।३२

कादम्बरी में जाबालि के कथा कहने के पहले सन्ध्या का वर्णन किया गया है—

इस समय तक दिन ढल गया। स्नान करने के बाद मुनियों ने सूर्य को अर्घ देते हुए जो लाल चन्दन पृथिवी पर डाला था, उसको मानो गगन में स्थित सूर्य ने धारण किया। सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ गया और वह क्षीण हो गया, मानो सूर्य के बिम्ब पर दृष्टि लगाये हुए ऊष्मा का पान करने वाले तपस्वियों ने उसका तेज पी लिया। कपोत के चरणों के समान लाल सूर्य उदित होते हुए सप्तर्षियों के स्पर्श को मानो बचाने की इच्छा से किरणों को समेट कर आकाशमण्डल से लटक गया। पश्चिम-समुद्र में प्रतिबिम्बित होने वाला तथा कुछ-कुछ रक्तवर्ण की किरणों से युक्त सूर्यमण्डल, जल में सोते हुए मधुरिपु भगवान् विष्णु के बहती हुई मकरन्द-धारा से युक्त नाभिकमल के समान दिखायी पड़ने लगा। दिवसावसान के समय भूतल तथा कमलिनी-वनों को छोड़ कर सूर्य की किरणें पक्षियों की भाँति वृक्षों के शिखरों तथा पर्वतों की चोटियों का आश्रय लेने लगीं। सूर्य के लाल प्रकाश से संयुक्त आश्रम के वृक्ष क्षण-भर के लिए मुनियों द्वारा लटकाये गये लाल वल्कलवस्त्रों से युक्त प्रतीत होने लगे। सूर्य के अस्त हो जाने पर पश्चिम-समुद्र से उल्लसित होती हुई विद्रुमलता की भाँति पाटल सन्ध्या दिखायी पड़ी।. . .प्रसन्न मुनियों ने कहीं घूमकर दिन की समाप्ति होने पर लौट कर आती हुई, लाल पुतलियों वाली तपोवन की कपिला गाय के समान लोहितवर्ण के नक्षत्रों से युक्त पिङ्गलवर्ण की सन्ध्या को देखा। सूर्य के अस्त होने पर विरह-दुःख से विधुर, कमल-मुकुल रूपी कमण्डलु को धारण करने वाली, हंस रूपी श्वेत दुकूल को धारण करने वाली, कमलतन्तु रूपी शुभ्र यज्ञोपवीत वाली, भ्रमरमण्डल रूपी रुद्राक्षमाला को धारण करने वाली कमलिनी ने सूर्य से मिलने के लिए मानो व्रत का आचरण किया। आकाश ने नक्षत्रों को धारण किया, मानो सूर्य पश्चिम-समुद्र में गिरने के वेग से उठे हुए जलकणों को धारण कर रहा हो। उदित नक्षत्रों से युक्त आकाश सिद्धकन्याओं द्वारा सन्ध्यार्चन में बिखेरे हुए पुष्पों से मानो चितकबरा हो गया। मुनियों द्वारा प्रणाम करने के अवसर पर ऊपर फेंके गये जल से मानो धुल कर सन्ध्या की सारी रक्तिमा दूर हो गयी।[1]

कादम्बरी का अधोलिखित वर्णन भी महत्त्वपूर्ण है—

'सूर्यमण्डल किरणों को ऊपर फैलाकर नीचे गिर पड़ा, मानो गगनतल से उतरती हुई दिवसलक्ष्मी का अपनी किरणों से भरे हुए रन्ध्र वाला पद्मराग का नूपुर हो। जल-प्रवाह की भाँति सूर्य के रथ के चक्र के मार्ग का अनुसरण करता हुआ दिन का प्रकाश पश्चिम-दिशा की ओर चला गया। दिन ने नव पल्लव की भाँति लाल हथेली वाले हाथ के समान नीचे लटके हुए सूर्यबिम्ब से कमल की सारी रक्तिमा को पोंछ दिया। कमलिनी के सौरभ से आकृष्ट भ्रमरों से घिरे कण्ठों वाला चक्रवाक-मिथुन मानो कालपाशों से खींचा जाता हुआ एक दूसरे से अलग हो गया। सूर्यबिम्ब ने करपुटों से सायंकाल तक पिये हुए कमल के मकरन्द को मानो आकाश में चल[illegible] के खेद से लाल धूप के बहाने उगल

१. काद०, पृ० ९३-९५।

दिया। प्रतीची के कर्णपूर के रक्तोत्पल रूपी भगवान् सूर्य दूसरे लोक में चले गये। आकाश रूपी सरोवर की विकसित कमलिनी की भाँति सन्ध्या समुल्लसित हुई। काले अगुरु की पत्रलता की भाँति तिमिरलेखाएँ दिग्भागों में फैलने लगीं। भ्रमरों के कारण काले कुवलयवन की भाँति अन्धकार रक्तोत्पलवन की भाँति सन्ध्याराग को हटाने लगा। कमलिनियों द्वारा पिये गये आतप को निकालने के लिए अन्धकार-पल्लवों की भाँति प्रतीत होने वाले भ्रमर लाल कमलों में घुसने लगे। धीरे-धीरे रात्रि रूपी विलासिनी के मुख का कर्णपल्लव रूपी सन्ध्याराग दूर होने लगा। सायंकालिक देवपूजा के लिए दिशाओं में बलिपिण्ड रखे जाने लगे। मयूर-यष्टियों के शिखरों पर अन्धकार के व्याप्त हो जाने से मयूरों के न बैठने पर भी वे उनसे अधिष्ठित-सी प्रतीत होने लगीं। प्रासाद-लक्ष्मी के कर्णोत्पल प्रतीत होने वाले कपोत गवाक्ष-विवरों में चले गये।'[१]

कादम्बरी का अधोलिखित वर्णन भी द्रष्टव्य है—

'कमलों के जीवनेश्वर तथा समस्त भुवन-मण्डल के चक्रवर्ती भगवान् सूर्य मानो अपने हृदय में स्थित कमलिनी के प्रति अनुराग से लाल हो गये? क्रमशः दिन के बड़े होने के कारण उत्पन्न क्रोध से मानो लाल हुई कामिनियों की दृष्टियों से आकाश लाल होने लगा। वृद्ध हारीत पक्षी की भाँति हरे घोड़ों वाला सूर्य अपना प्रकाश समेटने लगा। सूर्य के वियोग से बन्द हुए पद्मों वाले कमलवन हरे होने लगे। कुमुदवन श्वेत होने लगे। दिशाओं के मुख लाल होने लगे तथा प्रदोषकाल नीला होने लगा। भगवान् सूर्य मानो दिनलक्ष्मी से पुनः मिलने की आशा से अनुरक्त किरणों के साथ अलक्ष्य हो गये। तत्काल उत्पन्न सन्ध्याराग से मानो कादम्बरी के हृदय के अनुरागसागर से जीवलोक पूर्ण हो गया। कामाग्नि से जलते हुए सहस्रों विरही-हृदयों से निकलते हुए धूम की तरह प्रतीत होने वाला, मानिनियों के अश्रुबिन्दुओं को टपकाता हुआ तरुण तमाल वृक्ष की कान्ति वाला अन्धकार फैलने लगा।'[२]

चन्द्रोदय

हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास में सन्ध्या के साथ चन्द्रोदय का वर्णन किया गया है—

'चन्द्रमा का उदय हुआ। वह लाल शरीर धारण कर रहा था, मानो उदयाचल के शिखर के कटक की गुहा में स्थित सिंह के तीक्ष्ण नखसमूह रूपी आयुध से मारे गये अपने ही हरिण के रक्त से ढका हुआ हो, मानो उदयकाल के राग को धारण करने वाला रात्रिवधू का अधर हो। उदयाचल से बहती हुई चन्द्रकान्त की जलधारा से मानो धुल कर अन्धकार नष्ट हो गया।'[३]

अष्टम उच्छ्वास के अन्त में भी चन्द्रोदय का वर्णन किया गया है—

---

१. काद०, पृ० १८६-१८७।
२. वही, पृ० ३६६-३६७।
३. हर्ष० ११६

'सन्ध्या-समय का अवसान होते ही निशा नरेन्द्र के लिए चन्द्रमा का उपहार लेकर आयी, मानो निजकुल की कीर्ति अपरिमित यश के प्यासे राजा के लिए मुक्ताशैल की शिला से बना पात्र ले आयी, मानो राज्यश्री कृतयुग का आरम्भ करने के लिए उद्यत राजा के लिए आदिराज की राज्याधिकार की राजतमुद्रा ले आयी, मानो आयति सभी द्वीपों को जीतने की इच्छा से प्रस्थान किये हुए राजा के लिए श्वेतद्वीप का दूत ले आयी।'[१]

जाबालि के कथा प्रारम्भ करने के पहले चन्द्रोदय का वर्णन किया गया है—

'उदयकाल की रक्तिमा के मिट जाने से चन्द्रमण्डल उस समय आकाश-गङ्गा में अवगाहन करने के कारण धुले हुए सिन्दूर वाले ऐरावत के कुम्भस्थल की भाँति लगने लगा। धीरे-धीरे चन्द्रमा के ऊपर चढ़ जाने पर चूने की धूलि-राशि की भाँति चन्द्रिका से जगत् धवल हो गया। नींद आ जाने के कारण अलसाई हुई कनीनिकाओं वाले, फँसी हुई बरौनियों वाले, जुगाली करने के कारण मन्थर मुखों वाले, सुख-पूर्वक बैठे हुए आश्रम के मृगों द्वारा अभिनन्दित आगमन वाला, ओस की बूँदों के कारण मन्द गति वाला, विकसित होते हुए कुमुदों की सुगन्ध से युक्त प्रदोष का समीर बहने लगा।'[२]

कादम्बरी का अधोलिखित चन्द्रोदय-वर्णन अत्यन्त सुन्दर है—

'इसके बाद पूर्व-दिशा चन्द्रमा रूपी सिंह द्वारा विदारित अन्धकार रूपी हाथी के गण्डस्थल से निकले हुए मौक्तिक-चूर्ण से मानो धवल हो गयी, उदयाचल की सिद्ध-सुन्दरियों के स्तनों से छूटे हुए चन्दनचूर्ण की राशि से मानो श्वेत हो गयी, सञ्चलित समुद्र के जल की तरंगों से युक्त पवन से उल्लासित, तटवर्ती सिकता के ऊपर उठने से मानो शुभ्र हो गयी। धीरे-धीरे चन्द्रमा के दर्शन से मन्द-मन्द हँसने वाली (रात्रि की) दन्तप्रभा-सी प्रतीत होती हुई ज्योत्स्ना ने रात्रि के मुख को अलङ्कृत किया। इसके बाद पृथिवी को छोड़कर रसातल से बाहर निकलते हुए शेष के फणामण्डल की भाँति लगने वाले चन्द्रमण्डल से रात्रि शोभित होने लगी। क्रमशः सभी जीवों को आनन्दित करने वाले, कामिनियों के वल्लभ, कुछ-कुछ परित्यक्त शैशव वाले, काम के मित्र, राग से युक्त, सुरतोत्सव के उपभोग में समर्थ, अमृतमय यौवन की भाँति उदित होते हुए चन्द्रमा से यामिनी कमनीय हो गयी।'[३]

इसके बाद त्रिभुवन रूपी प्रासाद के महाप्रणाल का अनुकरण करने वाला, सुधा-सलिल की धारा को मानो धारण करता हुआ, चन्दन-रस के निर्झरों को मानो प्रवाहित करता हुआ, अमृतसागर के प्रवाहों को मानो उगलता हुआ, श्वेत गङ्गा के सहस्रों प्रवाहों को मानो उगलता हुआ, चन्द्रमण्डल ज्योत्स्ना से भुवनान्तराल को प्लावित करने लगा। लोग मानो श्वेत द्वीप के निवास और चन्द्रलोक के दर्शन के सुख का अनुभव करने लगे।

---

१. हर्ष० ८।८६
२. काद०, पृ० ९७।
३. वही, पृ० २९७-२९८।

महावराह की दंष्ट्रा की भाँति चन्द्रमा पृथिवी को मानो क्षीरसागर से निकालने लगा। प्रत्येक भवन में स्त्रियाँ खिले हुए कुमुदों से सुगन्धित चन्दनमिश्रित जल से चन्द्रोदय के उपलक्ष्य में अर्घ्य देने लगीं। कामिनियों द्वारा भेजी गयी सहस्रों कामदूतियों से राजमार्ग व्याप्त हो गये।'[1]

महाश्वेता के आश्रम के वर्णन के प्रसङ्ग में भी चन्द्रोदय का वर्णन किया गया है—

'इसी समय शिव के जटामण्डल का चूडामणि चन्द्रमा उदित हुआ। वह लांछन के बहाने शोकाग्नि से जले हुए महाश्वेता के हृदय का मानो अनुकरण कर रहा था, मुनिकुमार की हत्या के महापातक को मानो धारण कर रहा था, चिरकाल से संलग्न, दक्ष की शापाग्नि के चिह्न को मानो प्रकट कर रहा था। वह घने भस्माङ्गराग से धवल, कृष्णमृग-चर्म से आधे ढके हुए पार्वती के वाम स्तन की भाँति था। क्रमशः आकाश रूपी महासागर का पुलिन, सातों लोकों की निद्रा का मङ्गल-कलश, कुमुदों का बन्धु, कुमुदों को विकसित करने वाला, दशों दिशाओं को धवलित करने वाला, शङ्खवत् शुभ्र, मानिनियों के मान को दूर करने वाला, शुभ्रता को फैलाता हुआ चन्द्रमा उदित हुआ। नक्षत्रों की प्रभा चन्द्रमा की किरणों से आच्छादित होने के कारण घट गयी। कैलास की चन्द्रकान्त-मणियों की शिलाओं के झरनों से जल प्रवाहित होने लगा।'[2]

ऋतु-वर्णन

संस्कृत के कवियों ने ऋतु-वर्णन को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। बाण ने भी कई ऋतुओं का सुन्दर चित्रण किया है।

ग्रीष्म

हर्षचरित में ग्रीष्म का अत्यन्त कमनीय वर्णन किया गया है। इसका संस्कृत-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

'ललाट को तपाने वाला सूर्य तपने लगा। चन्दन से धूसर असूर्यंपश्या सुन्दरियाँ दिन में सोती थीं। निद्रा से अलसाये हुए सुन्दरियों के नेत्र रत्नों के प्रकाश को भी नहीं सहते थे, कठोर ताप की तो बात ही क्या! ग्रीष्मकाल ने चक्रवाक के जोड़ों से अभि-नन्दित नदियों की भाँति चन्द्रयुक्त रात्रियों को क्षीण कर दिया। सूर्य के सन्ताप के कारण लोगों की न केवल पाटल की अभिनव और तीव्र सुगन्ध से सुरभित जल पीने की, अपितु वायु पीने की भी अभिलाषा हुई।'[3]

'धीरे-धीरे सूर्य की किरणें प्रखर होने लगीं। सरोवर सूखने लगे। स्रोत क्षीण होने लगे। निर्झर मन्द पड़ गये। झिल्लिकाएं झंकार करने लगीं। कातर कपोतोंके

१. काद०, पृ० ३००-३०१।
२. वही, पृ० ३२५-३२६।
३. हर्ष० २।२१-२२

सतत-कूजन से विश्व बधिर हो रहा था। पक्षी सांस ले रहे थे। हवा कंडों को ताड़ित कर रही थी। लताएं विरल हो रही थीं। रक्त के कुतूहल से सिंहों के बच्चे कठोर धातकी-पुष्पों के गुच्छों को चाट रहे थे। थके हाथियों की सूंड़ों से निकले जलबिन्दुओं से बड़े-बड़े पर्वतों के नितम्ब भींग रहे थे। सूर्य (के ताप) से सन्तप्त हाथियों के दीन मुखों की मदजल की कुछ शुष्क काली रेखाओं पर निःशब्द भ्रमर बैठे थे। लाल होते हुए मन्दार से सीमाएँ सिन्दूरयुक्त दिखायी पड़ रही थीं। जलधारा के सन्देह से मुग्ध वन के बड़े-बड़े भैंसे सींगों के अग्रभागों से फटते हुए स्फटिक-पत्थरों को कुरेद रहे थे। गर्मी के कारण लताएं मर्मर ध्वनि कर रही थीं। तप्त धूलि से (उत्पन्न) भूसी की आग में कुरेदने से मुर्गे डर रहे थे। श्वाविध विलों में चले गये। तट के अर्जुन वृक्षों पर (बैठे) कुरर-पक्षियों के कूजन से सन्तप्त, पीठ के बल लुढ़कती मछलियों से पंकशेष पोखरों का जल रंग-बिरंगा हो रहा था। दावाग्नि द्वारा पृथ्वी का नीराजन हो रहा था।'[१]

इसके बाद उन्मत्त पवन का वर्णन किया गया है।

पवन पनसालों, वाटों और कुटियों के छप्परों को उड़ा रहा था। वह कपिकच्छू के गुच्छों को तोड़ रहा था और पत्थरों के टुकड़ों को फेंक रहा था। मुचुकुन्द के कन्दलों को तोड़ने से पवन दन्तुर था। वह चीरियों के मुखों से निकले हुए जलकणों से सिक्त था। वह शमी-वृक्षों से युक्त मरुस्थल को लाँघ रहा था और मयूरों के पंखों को बटोर रहा था। वह करञ्ज के सूखे वीजों को उड़ा रहा था। वह सेमल की रुई से युक्त था। वह सूखे पत्तों को ढो रहा था और घास को बिखेर रहा था। पवन जौ की वालों से युक्त था। वह साही के काँटों को उड़ा रहा था। वह वन की अग्नियों की शिखाओं से युक्त था।[२]

तदनन्तर दावानल के प्रकोप का स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

दारुण दावाग्नियां चारों ओर दिखायी पड़ रही थीं। वे वृद्ध अजगरों के गम्भीर कण्ठकुहरों से निकलती साँसों से युक्त थीं। वे स्वच्छन्दतापूर्वक तृणों को जला रही थीं। कहीं-कहीं वृक्षों के नीचे विवरों में फैल रही थीं और कहीं पर जड़ों को जला रही थीं। वे पक्षियों के घोंसलों को गिरा रही थीं। कहीं-कहीं पिघलती लाख के रस से लाल हो गयी थीं। कहीं-कहीं पक्षियों के पंखे अग्नि में मिले हुए थे। कुछ स्थानों पर धूम निकल रहा था। अग्नियाँ कहीं-कहीं भस्म-युक्त थीं। वे बाँसों की चोटियों तक फैल गयी थीं। वे शिलाजतु, गुग्गुलु, शर और मदन वृक्षों को जला रही थीं। वे सूखे सरोवरों में फैल रही थीं और नीवार के बीज फूट रहे थे। अग्नि में स्थल के कछुए जल रहे थे। वे तृणों पर विद्यमान छोटे-छोटे कीड़ों को जला रही थीं। दाह के कारण घोंघे फूट रहे थे, मधु-कोष पिघल रहे थे और सूर्यकान्त-मणियाँ दीप्त हो रही थीं।[३]

---

१. हर्ष० २।२२
२. वही, २।२२
३. वही, २।२३

शरद्

तृतीय उच्छ्वास के प्रारम्भ में शरद् का वर्णन किया गया है—

'मेघ विरल हो गये। चातक आतङ्कित हुए। कलहंस शब्द करने लगे। शरत्काल दर्दुरों से द्वेष करता है, मयूरों के मद को चुरा लेता है, हंस रूपी यात्रियों का आतिथ्य करता है। आकाश धुली तलवार की भाँति निर्मल हो गया, सूर्य भास्वर हो उठा, चन्द्रमा निर्मल हो गया। तारे तरुण हो गये, इन्द्रधनुप नष्ट होने लगे, विद्युन्मालाएँ मिटने लगीं। विष्णु की निद्रा टूट गयी। जल पिघलते वैदूर्य के रंग का हो गया। घूमते हुए नीहार की भाँति लघु जलद इन्द्र को विफल करने लगे। कदम्ब संकुचित होने लगे, कुटज पुष्प-रहित हो गये, कन्दल मुकुलविहीन हो गये। कमल कोमल हो गये, इन्दीवर मकरन्द बरसाने लगे, कह्लार खिलने लगे। शेफालिका से रात्रि शीतल हो गयी। जुही की सुगन्ध फैलने लगी। खिलते हुए कुमुदों से दशों दिशाएँ सित हो गयीं। सप्तपर्ण के पराग से पवन धूसर हो गया। गुच्छों से युक्त सुन्दर बन्धूकों द्वारा असमय में ही सन्ध्या उपस्थित कर दी गयी। घोड़ों का नीराजन होने लगा, हाथी मदोद्धत हो गये, साँड़ गर्व से मत्त हो गये। कीचड़ क्षीण हो गया। अभिनव सैकत से नदी के तट पल्लवित होने लगे। पकने के कारण श्यामाक कुछ-कुछ सूख गये। प्रियंगु-मंजरियों में पराग आ गया, त्रपुस के छिलके कठोर हो गये, शरकण्डे फूलों से हँसने लगे।'[1]

वसन्त[2]

वन-प्रान्त

हर्षचरित के अष्टम उच्छ्वास में **विन्ध्य-वन** का विस्तृत वर्णन किया गया है। यहाँ उसका थोड़ा-सा अंश प्रस्तुत किया जा रहा है—

'वन में फलों से लदे वृक्ष थे। कर्णिकार कलियों से युक्त हो रहे थे। चम्पकों की अधिकता थी। कुछ वृक्ष अत्यधिक फलों से युक्त थे। नमेरु फलों से लदे थे। नील दलों वाले नलद और नारिकेल थे। हरिकेसर तथा सरल वृक्षों के परिकर थे। कुरबक-पंक्तियाँ कलिकाओं से युक्त थीं। लाल अशोक के पल्लवों के लावण्य से दशों दिशाएँ लिप्त हो रही थीं। खिले हुए केसर के पराग से दिन धूसरित हो रहा था। तिलक के पराग से भूतल सिकतिल था। हिंगु के वृक्ष हिल रहे थे। सुपारी के वृक्ष फलों से भरे थे। पुष्पों से प्रियंगु पिंगल थे। पराग से पिञ्जर मञ्जरियों पर बैठे भ्रमरों की मधुर ध्वनि लोगों को आनन्दित कर रही थी। मद से मलिन मुचुकुन्द के तनों से हाथियों के गण्ड-स्थलों के कण्डूयन की सूचना मिलती थी। उछलते हुए निःशंक चंचल कृष्णसार मृगों के शावकों से भूमि सुन्दर लगती थी। अन्धकार की भाँति काले तमाल वृक्षों ने प्रकाश को

---

१. हर्ष० ३।३८

२. इसका निरूपण इसी अध्याय में पहले हो चुका है। द्रष्टव्य पृ० १७९।

रोक रखा था। देवदारु गुच्छों से दन्तुरित थे। जम्बू और जम्बीर के वृक्षों पर तरल ताम्बूली लताएँ बिछी थीं। पुष्पों से धवल धूलिकदम्ब आकाश का चुम्बन कर रहे थे। मधुधारा से पृथ्वी सिक्त थी। परिमल से घ्राण को तृप्ति मिल रही थी।'[१]

हर्षचरित के द्वितीय उच्छ्वास में **चण्डिकाकानन** का अत्यधिक संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है।[२]

कादम्बरी में **विन्ध्याटवी** का बहुत विस्तृत वर्णन किया गया है—

'विन्ध्याटवी पूर्व-समुद्र से पश्चिम-समुद्र तक फैली हुई है। वह मध्यदेश का अलंकार है। वह मानो पृथ्वी की मेखला है। वह वन के हाथियों के मदजल के सेचन से बढ़े हुए तथा शिखर पर स्थित अत्यधिक विकसित श्वेत पुष्पों को, मानो तारों को, धारण करने वाले वृक्षों से शोभित है। वह मद के कारण सुन्दर कुरर पक्षियों द्वारा खण्डित किये जाते हुए मरिच-पल्लवों से युक्त है। वह हस्ति-शावकों की सूँड़ों द्वारा मसले गये तमालपत्रों की सुगन्ध से युक्त है। वह मद्यपान के कारण लाल हुए केरलियों के कपोलों की कोमल छवि की भाँति छवि वाले, संचरण करती हुई वनदेवियों के चरणों के अलक्तक-रस से मानो रंजित, पल्लवों से आच्छादित है। वह शुकों द्वारा खण्डित किये गये अनार के फलों के रस से आर्द्र तलों वाले, अतिचपल वानरों द्वारा हिलाये हुए कक्कोल वृक्षों से गिरे हुए पत्तों तथा फलों से युक्त, निरन्तर गिरे हुए पुष्पों के पराग से धूलिमय, पथिकों द्वारा निर्मित लवंग-पल्लवों की शय्या से युक्त, अतिकठोर नारियल, केतकी, करील तथा वकुल से घिरी हुई सीमाओं वाले, पान की लताओं से घिरे हुए सुपारी के वनों से मण्डित तथा वनलक्ष्मी के वासगृह प्रतीत होने वाले लतामण्डपों से शोभित है। वह मदोन्मत्त हाथियों के गण्डस्थलों से निकले हुए मदजल से मानो सिक्त हुए, मदगन्ध की भाँति गन्ध वाले इलायची की लताओं के वन से अन्धकारयुक्त है। वहाँ (सिंहों के) नखों के अग्रभागों में लगी हुई गजमुक्ताओं के लोभ से किरातसेनापतियों द्वारा सैकड़ों सिंह मारे जाते हैं।'[३]

विन्ध्याटवी का अवशिष्ट वर्णन संक्षित रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

विन्ध्याटवी में भैंसे हैं। वहाँ वाण तथा असन वृक्षों पर भ्रमर बैठे रहते हैं तथा सिंहों का गर्जन होता रहता है। गैंड़ों के विचरण करने के कारण वह भीषण है। वह रक्तचन्दन के वृक्षों से अलंकृत है। वह विशाल पर्वतों, शशकों तथा मयूरों से युक्त है। वहाँ बिल्व तथा वरुण के वृक्ष हैं। विन्ध्याटवी बादल की भाँति श्यामल है। वह अनेक तड़ागों से विभूषित है। वह रीछों और हरिणों से व्याप्त है। उसमें चमर मृग रहते हैं। वहाँ चन्दन तथा कस्तूरी की सुगन्ध फैलती रहती है। वह अगुरु, तिलक तथा मदन नामक वृक्षों से शोभित है। वह व्याघ्रों के नख-चिह्नों से शोभित है। वहाँ मधुमक्खियों के

१. हर्ष० ८।७१-७२
२. वही, २।२६
३. काद०, पृ० ३७-३८।

छत्ते भी दिखायी पड़ते हैं। वहाँ बड़े-बड़े शूकरों ने पृथ्वी को खोद डाला है। कहीं-कहीं हरे कुश, समिधा, पुष्प और शमी के पल्लव हैं। वह कहीं-कहीं कण्टकाकीर्ण है। अन्यत्र कोयलों का शब्द होता रहता है। कहीं-कहीं हवा के चलने पर ताड़ के वृक्षों का शब्द होता है। विन्ध्याटवी में ताल के पत्ते गिरते रहते हैं। कहीं-कहीं शरपत तथा नेत्र नामक वृक्ष हैं। वह कुछ स्थलों पर तमाल-वृक्षों के कारण श्याम है। वहाँ सैकड़ों वेतसलताओं के कारण कठिनता से प्रवेश हो सकता है। वह सैकड़ों कीचकों और सप्तपर्ण वृक्षों से शोभित है। वहाँ मुनि निवास करते हैं।[1]

कवि ने एक विशाल **शाल्मली-वृक्ष** का वर्णन किया है। उस वृक्ष पर शुक रहते थे। उसकी जड़ को पुराना अजगर आवेष्टित किये रहता था। उसके तनों में सर्पों की केंचुलें लटकती रहती थीं। वह अत्यन्त ऊँची शाखाओं से युक्त था। उस पर बहुत-सी लताएँ चढ़ी थीं। वह कण्टकों से व्याप्त था। उसकी ऊपर की शाखाएँ तूलराशि से धवल थीं। उसके कोटरों में भ्रमर स्फुरण करते रहते थे।[2]

शाल्मली-वृक्ष पर रहने वाले शुकों का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया गया है—

'उस पर शाखाओं के अग्रभागों में, कोटरों के भीतर, पल्लवों के बीच में, तनों की सन्धियों में, जीर्ण वल्कलों के विवरों में अधिक स्थान होने के कारण निःशंक होकर सहस्रों घोंसले बनाकर, दुरारोह होने के कारण विनाश के भय से रहित होकर नाना देशों से आये हुए शुक-पक्षियों के कुल रहते थे। जीर्णता के कारण थोड़े-से पत्तों से युक्त होने पर भी वह रात-दिन बैठे हुए उन पक्षियों से मानो सघन पल्लवों से श्यामल लगता था। शुक उस वृक्ष पर अपने घोंसलों में रात्रि व्यतीत कर प्रतिदिन उठकर आहार को खोजने के लिए आकाश में पंक्तियाँ बनाकर उड़ते थे। ऐसा लगता था मानो मदोन्मत्त बलराम के हल के अग्रभाग से खींची गयी यमुना आकाश में अनेक प्रवाहों में विभक्त हो गयी हो। उन शुकों को देखकर ऐरावत द्वारा उखाड़ी गयी नीचे गिरती हुई आकाश-गंगा की कमलिनियों की शंका उत्पन्न होती थी। उनके कारण ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश सूर्य के रथ के घोड़ों की प्रभा से अनुलिप्त हो गया हो। वे शुक मानो संचरण करने वाली मरकतमणि की भूमि का अनुकरण कर रहे थे। शुक-पक्षियों के कारण आकाश रूपी सरोवर में मानो शैवल-पल्लवों की राशि दिखायी पड़ रही थी। वे केले के पत्तों की भाँति पंखों को आकाश में फैलाये हुए थे, मानो सूर्य की किरणों से खिन्न हुए दिशाओं के मुखों पर पंखा झल रहे थे। वे मानो आकाश में तृणपरम्परा का निर्माण कर रहे थे, मानो आकाश को इन्द्रधनुषों से युक्त कर रहे थे।'[3]

---

१. काद०, पृ० ३८-४१।

२. वही, पृ० ४७-४८।

३. वही, पृ० ४८-४९।

वैशम्पायन शुक के पिता का मर्म-स्पर्शी वर्णन किया गया है। शुक के पिता के शरीर में वृद्धावस्था के कारण थोड़े-से पंखे अवशिष्ट थे। वे शिथिल हो गये थे और उड़ने की शक्ति उनमें नहीं रह गयी थी। उनका शरीर काँपता रहता था। उनकी चोंच कोमल शेफालिका के पुष्प की नाल की भाँति पिंजर थी तथा धान की मंजरियों को तोड़ने के कारण उसका किनारा चिकना और घिसा था तथा अग्रभाग फटा हुआ था।[१]

शून्याटवी

कादम्बरी में उज्जयिनी के मार्ग में पड़ने वाली शून्याटवी का वर्णन किया गया है। उसका संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

शून्याटवी में अत्यन्त ऊँचे तनों वाले वृक्ष थे। मालिनी लताओं के मण्डप थे। वन के हाथियों ने वृक्षों को गिरा दिया था। बड़े-बड़े वृक्षों की जड़ों में वनदुर्गा की मूर्ति उत्कीर्ण की गयी थी। पथिकों द्वारा गूदा खाकर फेंके गये आँवले पड़े थे। मुर्गों और कुत्तों के शब्द को सुनकर अनुमान होता था कि झाड़ियों में छोटा-सा गाँव होगा। उस वन-प्रदेश में शाखा-रहित कदम्ब, शाल्मली तथा पलाश के वृक्ष थे।[२]

कैलास की घाटी

कादम्बरी में कैलास की घाटी का सुन्दर वर्णन किया गया है—

'वहाँ सरल, साल तथा सल्लकी के वृक्ष थे। वे ग्रीवा उठा कर ही देखे जा सकते थे। उनमें शाखाएँ नहीं थीं, अतः अविरल होने पर भी वे विरल दिखायी पड़ रहे थे। वहाँ बालू मोटी और कपिल थी। शिलाओं की अधिकता के कारण तृणों और लताओं की अल्पता थी। वन के हाथियों के दाँतों से तोड़ी गयी मनःशिला की धूलि से भूमि कपिल हो गयी थी। टेढ़ी पाषाणभेदक-मञ्जरियों से शिलातल व्याप्त थे। गुग्गुलु-वृक्षों के निरंतर गिरते हुए द्रव से पत्थर गीले हो गये थे। शिखर से गिरे हुए शिलाजतु के रस से पत्थर चिकने हो गये थे। टंकन घोड़ों के खुरों से तोड़े गये हरिताल के चूर्ण से कैलास-तल पांसुल हो गया था। चूहों के नखों से खोदी गयी बिलों में स्वर्ण-चूर्ण बिछा हुआ था। बालू में चमरों तथा कस्तूरीमृगियों के खुरों की पंक्तियों के चिह्न बने हुए थे। कैलास-तल रंकु तथा रल्लक मृगों के गिरे बालों से व्याप्त था। विषम शिलाखण्डों पर चकोर-मिथुन विराजमान थे। तट की कंदराओं में वनमानुष के जोड़े रहते थे।'[३]

वनग्राम

हर्षचरित में विन्ध्यवन के एक ग्राम का कमनीय चित्रण किया गया है। उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

१. काद०, पृ० ५०-५१।
२. वही, पृ० ३९२-३९४।
३. वही, पृ० २२९-२३०।

वट-वृक्षों के चारों ओर गोवाट बने हुए थे। वृक्षों के झुरमुटों में चामुण्डा के मण्डप बने हुए थे। खेती कुदालों से होती थी। कृषक धान के खेत तोड़ रहे थे। श्यामाक, अलम्बुसा तथा कोकिलाक्ष की झाड़ियों से वह स्थान व्याप्त था। कूप खोदे गये थे। वे साल पुष्पों के गुच्छों से शोभित थे। यात्रियों द्वारा खाये गये जामुन की गुठलियों से समीप के स्थान रंग-बिरंगे हो रहे थे। कर्करियों, कलशियों तथा अलिञ्जरों से स्थान मण्डित था। पनसालों की शीतलता से ग्रीष्म की ऊष्मा दूर हो रही थी। कुटुम्बी लकड़ी एकत्र करने के लिए वन में जा रहे थे। तांत, तन्त्री, जाल आदि लिये हुए व्याध विचरण कर रहे थे। वे बाज, तीतर, कपिञ्जल आदि पक्षियों के पिंजड़े लिये हुए थे। गाँव की स्त्रियाँ वन के फलों से युक्त पिटकों को लेकर बेचने की चिन्ता से व्यग्र होकर समीप के गाँव की ओर जा रही थीं। ईख के खेतों से समीप के प्रदेश श्यामल हो रहे थे। गृहवाटिकाएँ उरुवूक, वचा, सूरण, शिग्रु आदि से भरी थीं। काष्ठालुक लताओं के वितान से छाया हो रही थी। कुक्कुट बोल रहे थे।[1]

ग्राम की प्रकृति

हर्षचरित में श्रीकण्ठ जनपद के वर्णन के प्रसङ्ग में ग्राम की प्रकृति का चित्रण उपलब्ध होता है—

'हलों से खेत जोते जाते हैं। हलमुखों से मृणालों के उखाड़े जाने पर मधुकर कोलाहल करते हैं, मानो हल पृथिवी के उत्कृष्ट गुणों का गान कर रहे हों। क्षीरसागर के जल को पीने वाले बादलों से मानो सींची गयी पुण्ड्र जाति की ईखों के घेरों से वह जनपद भरा है। प्रत्येक दिशा में सीमान्त अपूर्व-पर्वतों की तरह प्रतीत होने वाली, खलिहानों से विभक्त शस्यराशि से भरे रहते हैं। चारों ओर घटीयन्त्र से सींचे जाते हुए जीरे के पौधों से भूमि ढकी रहती है। धान के उपजाऊ खेतों से देश अलङ्कृत रहता है। वहाँ गेहूँ के खेत हैं, जो पकने के कारण फूटते हुए राजमाष से रंग-बिरंगे हो जाते हैं और फूटी हुई मूँग की कोशियों से भूरे हो जाते हैं। भैंसों की पीठ पर बैठे हुए, गाते हुए गोपाल गाय चराते हैं। कीट के लोभी चटक उनके पीछे-पीछे जाते हैं। गायें गले में लगे हुए घण्टों के बजने से रमणीय लगती हैं। वनों में घूमती हुई वे दूध [illegible] आती हैं।...वहाँ के स्थल कृष्णसार मृगों से रंग-बिरंगे हो जाते हैं। धवल पराग की [illegible] करने वाले केतकी-वनों की रज से वहाँ के स्थान धवल हो जाते हैं, मानो वे शिव के ऊपर छिड़की गयी भस्म से धूसर हुए शिवपुर के प्रवेशमार्ग हों। ग्राम के समीप का भू-भाग शाक-कन्दलों से श्यामल हो जाता है। वहाँ पद-पद पर ऊँटों के झुण्ड हैं। द्राक्षामण्डपों से वहाँ के निर्गमन-मार्ग लुभावने होते हैं। (द्राक्षामण्डपों के नीचे पथिक) पीलु के पल्लवों से अपने चरणों की धूलि पोंछते हैं। वे (मण्डप) करपुटों से दबाये गये मातुलुंगी के पत्तों के रस से

---

१. हर्ष० ७।६८-६९

लिप्त रहते हैं। स्वेच्छा से (पथिकों द्वारा) एकत्र किये गये कुंकुम-केसर पुष्पोपहार का काम करते हैं। वहाँ पथिक ताजे फल के रस का पान करके सुख-पूर्वक सोते हैं।'[१]

आश्रम-वर्णन

बौद्ध-आश्रम

हर्षचरित में दिवाकरमित्र के आश्रम का वर्णन किया गया है। आश्रम में दिवाकर-मित्र की तपश्चर्या का प्रभाव प्रकट हो रहा है—

'अत्यधिक विनम्र त्रिशरण-परायण कपि भी चैत्य-कर्म कर रहे थे। परमोपासक, बुद्ध के उपदेश में कुशल शुक भी कोश का उपदेश कर रहे थे। शिक्षापदों के उपदेश से दोषोपशम की प्राप्ति करके शारिकाएँ भी धर्म-देशना का निदर्शन कर रही थीं। निरन्तर श्रवण करने से प्राप्त ज्ञान से युक्त उलूक भी बोधिसत्त्व के जातकों का जप कर रहे थे। बुद्ध द्वारा उपदिष्ट शील के उत्पन्न हो जाने से शीतल स्वभाव वाले बाघ भी निरामिष होकर दिवाकरमित्र की उपासना कर रहे थे। (दिवाकरमित्र के) आसन के समीप अनेक सिंह-शावक निर्भय होकर बैठे थे, इससे वे मुनिपरमेश्वर मानो अकृत्रिम सिंहासन पर बैठे हुए थे। वन के हरिण उनके पादपल्लवों को अपनी जिह्वालताओं से चाट रहे थे, मानो शम का पान कर रहे हों। उनके वाम करतल पर बैठा हुआ कर्णोत्पल-सदृश कपोत का बच्चा नीवार खा रहा था, इससे वे प्रिय मैत्री का प्रसादन कर रहे थे।'[२]

अगस्त्य का आश्रम

कादम्बरी में अगस्त्य के आश्रम का वर्णन प्राप्त होता है—

'दण्डकारण्य के अन्तर्गत समस्त भुवन में प्रसिद्ध अगस्त्य का आश्रम था। वह मानो भगवान् धर्म का उत्पत्ति-स्थान था।...वह अगस्त्य की भार्या लोपामुद्रा द्वारा स्वयं बनाये गये थालों वाले, हाथ से जल देकर सींचने से संवर्धित वृक्षों से शोभित था।...उस आश्रम का परिसर प्र[illegible]क दिशा में तोते की भाँति हरे केले के वनों से श्यामल था।...बहुत दिनों से शून्य हो[illegible] पर भी जहाँ पर वृक्ष शाखाओं पर बैठे हुए शब्द-रहित पाण्डुवर्ण के कपोतों के कारण [illegible] लगते थे, मानो तपस्वियों के अग्निहोत्र की धूमपंक्तियों से युक्त हों।...आज भी जह[illegible] पर वर्षाकाल में नवीन बादलों के गम्भीर निनाद को सुनकर भगवान् राम के त्रिभ[illegible]न को व्याप्त करने वाले धनुष के शब्द का स्मरण करते हुए दशों दिशाओं को शून्य दे[illegible]कर निरन्तर अश्रु-प्रवाह से व्याप्त दृष्टियों वाले, वृद्धावस्था के कारण जीर्ण सींगों वाले जानकी द्वारा संवर्धित बढ़े मृग घास के कवल नहीं ग्रहण करते।'[३]

---

१. हर्ष० ३।४२

२. वही, ८।७३

३. काद०, पृ० ४१-४४।

जाबालि का आश्रम

कादम्बरी में जाबालि के आश्रम का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ उसका कुछ अंश प्रस्तुत किया जा रहा है—

'वह आश्रम पुष्पों और फलों वाले काननों से आवेष्टित था। काननों में ताल, तिलक ,तमाल, हिन्ताल और बकुल वृक्षों की बहुलता थी; नारियल के कलाप इलायची की लताओं से परिव्याप्त थे; लोध्र, लवली और लवंग के पल्लव हिलते रहते थे; आम का पराग-पुन्ज ऊपर उठता रहता था; आम के वृक्ष भ्रमरों की झंकार से मुखरित होते थे; उन्मत्त कोयलों का कोलाहल होता था। विकसित केतकी की पराग-राशि से कानन पीतरक्त हो रहे थे। काननों में वनदेवियाँ पूगीलताओं की दोलाओं पर बैठी रहती थीं। ...आश्रम समीप की दीर्घिकाओं से घिरा था। दीर्घिकाएँ तपस्वियों के सम्पर्क के कारण मानो कालुष्य-रहित हो गयी थीं। उनकी तरङ्गों में सूर्य प्रतिबिम्वित होता था, मानो तपस्वियों के दर्शन के लिए आये हुए सप्तर्षि अवगाहन कर रहे हों। रात्रियों में दीर्घिकाओं में खिले हुए कुमुदों को देखने से ऐसा लगता था, मानो ऋषियों की उपासना करने के लिए ग्रह-गण उतर आये हों। पवन के कारण झुके हुए शिखरों वाली वनलताएँ मानो आश्रम को प्रणाम करती थीं; निरन्तर पुष्पों की वर्षा करने वाले वृक्ष मानो उसकी अर्चना करते थे।...मुनियों की कुटियों के आँगन में सूखने के लिए श्यामाक (साँवाँ) फैला दिया गया था। आँवला, लवली, कर्कन्धू, केला, लकुच, आम, कटहल तथा ताल के फल एकत्र किये गये थे।...निरन्तर सुनने से याद हुए वषट्कार शब्द का उच्चारण करते हुए शुक-कुल वाचाल थे।...परिचित वानर वृद्ध और अन्धे तपस्वियों को हाथ पकड़ कर ले जाते और ले आते थे।...हरिण अपने सींगों से ऋषियों के लिए अनेक प्रकार के कन्द-मूल खोदते थे। हाथी सूँड़ों में जल भरकर वृक्षों के थाले जल से भरते थे। ऋषि-कुमार वन के शूकरों के दाँतों के बीच से कमल-कन्द खींच लेते थे। परिचित मयूर पंखों की हवा से मुनियों की होमाग्नि को सुलगाते थे।'[१]

सिद्धायतन

कादम्बरी में सिद्धायतन का वर्णन उपलब्ध होता है—

'आयतन के चारों ओर मरकत की भाँति हरे वृक्ष थे। वृ[illegible] मनोहर हारीतों के शब्द से रमणीय थे। उड़ते हुए भृङ्गराज पक्षियों के नखों से उन[illegible] परिपक्व कलिकाएँ जर्जरित हो गयी थीं। मत्त कोयलें सहकार के कोमल पल्लवों को [illegible]ा रही थीं। उन्मत्त भ्रमरों से आम्र की खिली कलिकाएँ शब्दायमान थीं। निर्भीक चकोर मरिच के अङ्कुरों को काट रहे थे। चम्पा के पराग से पीले कपिञ्जल पिप्पली के फलों को खा रहे थे। फलों के भार से झुके अनार के वृक्षों पर गौरैयों ने अण्डे दे रखे थे। क्रीड़ा करते हुए वानरों के करतलों के ताड़न से ताली वृक्ष हिल रहे थे। परस्पर कुपित कपोतों के पंखों (के

१. काद०, पृ० ७६-७९।

प्रहार) से पुष्प झड़ रहे थे। पुष्पों के पराग से रञ्जित सारिकाएँ वृक्षों के शिखरों पर बैठी थीं। सैकड़ों शुक मुख और नखाग्र से फलों को टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे। मेघजल के लोभ से आये हुए, पर बाद में वञ्चित मुग्ध चातकों की ध्वनि से तमाल-वन मुखरित हो रहे थे। हाथियों के बच्चों द्वारा पल्लवों के तोड़े जाने के कारण लवली लताएँ हिल रही थीं। नवयौवन के कारण मत्त कपोतों के पंख फड़फड़ा कर बैठने से पुष्पों के गुच्छे गिर पड़ते थे। मन्द पवन के कारण कोमल केलों के पत्ते हिल रहे थे। नारियल के वन फलों के भार से लदे हुए थे। कोमल पत्तों वाले सुपारी के वृक्ष भी थे। रोके न जाने के कारण पक्षी चोंचों से पिण्डखर्जूर के फलों को कुतर रहे थे। मद के कारण मुखर मयूरियों के मधुर शब्द से मध्यभाग शोभित था। प्रस्फुटित कलिकाओं से वृक्ष दन्तुरित थे। बीच-बीच में कैलास की नदियों से रेतीली भूमि तरङ्गित होती थी। वहाँ के वृक्ष वनदेवियों के करतल की भाँति लाल, अतएव अलक्तक-द्रव से सिक्त प्रतीत होने वाले अत्यधिक सुकुमार किसलयों को धारण कर रहे थे। ग्रन्थिपर्ण खाकर मुदित चमरियाँ बैठी थीं। कपूर तथा अगुरु वृक्षों की वहुलता थी।'[१]

शबर-मृगया

वाण ने शबर-मृगया के प्रसंग का वड़ी कुशलता से निर्वाह किया है। वे आखेट की एक-एक वात का सुन्दर तथा प्रभावोत्पादक वर्णन करते हैं। इसके द्वारा प्रकृति के अनेक सुन्दर दृश्य प्रस्तुत हो जाते हैं। पहले कोलाहल का वर्णन किया गया है—

'सहसा उस महावन में आखेट के कोलाहल की ध्वनि गूँजी। वह सभी वनचरों को संत्रस्त कर रही थी। वह वेग से उड़ते हुए पक्षियों के पंखों के शब्द से बढ़ रही थी। डरे हुए हाथियों के बच्चों के चीत्कार से संवर्धित थी। हिलती हुई लताओं पर विद्यमान आकुल और मत्त भ्रमरों के गुंजार से मांसल थी। घूमते हुए उच्च-नासिका वाले वन के शूकरों के घर्घर शब्द से युक्त थी। वह पर्वत की गुहाओं में सोकर उठे हुए सिंहों के नाद से बढ़ रही थी। वह वृक्षों को मानो कम्पित कर रही थी। वह भगीरथ द्वारा लाये गये गंगा के प्रवाह के कल[illegible]न की भाँति पुष्ट थी। उसे डरी वनदेवियाँ सुन रही थीं।'[२]

'इसके बाद वेग[illegible]र्व 'यहाँ हाथियों के यूथपति द्वारा विमर्दित कमलिनी की गन्ध आ रही है, यहाँ वराहों द्[illegible]ा चवाये जाते हुए नागरमोथा के रस की गन्ध है, यहाँ हाथियों के शावकों द्वारा तोड़ी [illegible]ती हुई सल्लकी की कसैली गन्ध है, यहाँ गिरे हुए सूखे पत्तों की मर्मर ध्वनि है, यहाँ [illegible] के भैंसों के वज्र की भाँति कठोर सींगों से विदारित वल्मीकों की धूलि है, यहाँ मृगों क[illegible] समूह है, यहाँ वन के हाथियों का झुण्ड है, यहाँ वन के शूकरों का समुदाय है, यहाँ वन [illegible] भैंसों का समूह है, यहाँ मयूरों का शब्द हो रहा है, यहाँ कपिञ्जल पक्षियों का कलकूजन हो रहा है, यहाँ कुरर पक्षियों का शब्द हो रहा है, यहाँ सिंहों के नखों से विदारित गण्डस्थलों वाले हाथियों का चीत्कार हो रहा है, यहाँ गीले कीचड़ से मलिन

१. काद०, पृ० २३९-२४०।
२. वही, पृ० ५४।

शूकरों का मार्ग है, यहाँ नवीन घास के कवल के रस से श्यामल हरिणों की जुगाली से निकली हुई फेन-राशि है, यहाँ उन्मत्त उत्तम हाथियों के गण्डस्थलों के कण्डूयन से उत्पन्न सुगन्ध से युक्त स्थान पर बैठे हुए मुखर भ्रमरों का शब्द हो रहा है, यह गिरे हुए रक्तबिन्दुओं से सिक्त सूखे पत्तों से पाटल रुरु मृग का मार्ग है, यह हाथियों के पैरों से कुचले हुए वृक्षों के पत्तों का समुदाय है, यहाँ गैंड़ों ने क्रीड़ा की है....' इस प्रकार एक-दूसरे से कहते हुए आखेट में लीन महान् जनसमुदाय का वन को क्षुब्ध करने वाला कोलाहल सुनायी पड़ा।'[1]

इसके बाद वाणों से ताड़ित सिंहों, चंचल एवं तरल कनीनिकाओं वाले हरिणों, पति-विनाश के शोक से सन्तप्त हथिनियों आदि की ध्वनियों का मञ्जुल चित्र प्रस्तुत किया गया है।[2]

सरोवर-वर्णन

पम्पा-सरोवर

पम्पा का अधोलिखित वर्णन मनोरम है—

'निरन्तर स्नान करती हुई उन्मत्त शवर-कामिनियों के कुच-कलसों से पम्पासरोवर का जल आलोड़ित था। उसमें कुमुद, कुवलय और कह्लार खिले हुए थे। विकसित कमलों के मधु-द्रव से चन्द्राकृतियाँ (चन्द्रक) बन रही थीं। भौंरों से श्वेत कमल अन्ध-कारित थे। मत्त सारस शब्द कर रहे थे। कमलों के मकरन्द को पीने के कारण मत्त कलहंस–कामिनियाँ कोलाहल कर रही थीं। अनेक जलचरों और पक्षियों के संचलन के कारण लहरें चंचल हो उठती थीं और शब्द करने लगती थीं। पवन द्वारा उल्लासित लहरों के जलकणों से दुर्दिन हो रहा था। स्नान के अवसर पर निःशंक होकर प्रविष्ट हुई, जलक्रीड़ा में अनुरक्त वनदेवियों के केश के पुष्पों से सरोवर सुगन्धित हो गया था। एक ओर प्रविष्ट हुए मुनियों के कमण्डलु भरने से उत्पन्न मधुर जलध्वनि से वह मनोहर था। खिलते हुए उत्पलों के मध्य में विचरण करने वाले, समान वर्ण के कारण शब्द से पहचानने योग्य कलहंसों से सेवित था। स्नान के लिए प्रविष्ट हुई पुलिन्दराज की स्त्रियों के स्तनों के चन्दन की धूलि से वह धवल हो गया था।'[3]

अच्छोदसरोवर

अच्छोदसरोवर के वर्णन में वाण ने सरोवर की निर्मलता का अत्यन्त भव्य चित्र प्रस्तुत किया है—

वह त्रैलोक्यलक्ष्मी के मणिमय दर्पण-सा था. . .(उसको देखने से ऐसा लगता था) मानो कैलास द्रव-रूप को प्राप्त हो गया हो, मानो हिमालय पिघल गया हो, मानो चन्द्र का

---

१. काद०, पृ० ५४-५६।
२. वही, पृ० ५६-५७।
३. वही, पृ० ४५।

प्रकाश द्रवरूप में परिणत हो गया हो, मानो शिव का अट्टहास जल बन गया हो, मानो त्रिभुवन की पुण्य-राशि सरोवर के रूप में अवस्थित हो, मानो वैदूर्य-गिरि सलिल के रूप में परिणत हो गया हो, मानो शरद् के बादलों का समूह द्रवीभूत होकर एकत्र हो गया हो। वह स्वच्छता के कारण वरुण के दर्पण-सा था। वह मानो मुनियों के चित्तों द्वारा, सज्जनों के गुणों द्वारा, हरिणों की नेत्र-प्रभा द्वारा, मुक्ताफलों की किरणों द्वारा बनाया गया हो। ऊपर तक भरे होने पर भी भीतर की सभी वस्तुओं के स्पष्टरूप से दिखायी पड़ने के कारण वह रिक्त-सा लग रहा था। पवन से उत्क्षिप्त जलतरंगों की बूँदों से उत्पन्न, चारों ओर स्थित सहस्रों इन्द्रधनुषों से वह मानो रक्षित हो रहा था। विष्णु की भाँति वह विकसित कमलों वाले उदर में प्रतिविम्व के रूप में भीतर घुसे हुए जलचर, कानन, पर्वत, नक्षत्र और ग्रहों से युक्त त्रिभुवन को धारण कर रहा था। पार्वती के जलधौत कपोल से गिरे हुए लावण्य-प्रवाह का अनुकरण करने वाले, समीपवर्ती कैलास से उतरे हुए भगवान् शिव के बार-बार मज्जन और उन्मज्जन के क्षोभ से चलायमान चूडामणि-चन्द्रखण्ड से गिरे हुए अमृतरस से उसका जल मिश्रित था। दिन में भी रात्रि की आशंका से चक्रवाक के जोड़े नीलकमल के वन को छोड़ देते थे। ब्रह्मा अनेक बार कमण्डलु में जल भरकर उसके जल को पवित्र कर चुके थे। वालखिल्य ऋषियों ने अनेक बार उसके तट पर सन्ध्यावन्दन किया था। भगवती सावित्री ने अनेक बार जल में उतर कर देवार्चन के लिए कमल के पुष्पों को तोड़ा था। सप्तर्षियों ने अनेक बार स्नान करके उसे पवित्र किया था। सिद्धवधुओं द्वारा कल्पलता के वल्कलों को सदा धोने से उसका जल पवित्र हो गया था। जल-क्रीड़ा की अभिलाषा से आयी हुई, कुवेर के अन्तःपुर की कामिनियों के काम के चाप की आकृति वाले, नितान्त गम्भीर आवर्त-युक्त नाभिमण्डलों ने उसका जल पिया था। कहीं पर वरुण के हंस कमल के मकरन्द को धारण कर रहे थे। कहीं पर दिग्गजों के अवगाहन से पुराने मृणालदण्ड जर्जर हो गये थे। कहीं पर शिव के वृषभ के सींगों के अग्रभाग से तट की शिलाएँ तोड़ दी गयी थीं। कहीं पर यम के भैंसे के सींग के अग्रभाग से सरोवर के फेनपिण्ड विक्षिप्त कर दिये गये थे। कहीं पर ऐरावत के मुसल की भाँति दाँतों से कुमुद तोड़ दिये गये थे।'[१]

इसके बाद कवि ने सरोवर के वर्णन को उपमा के प्रयोग से अत्यन्त रमणीय बना दिया है।[२]

शोणनद

हर्षचरित में शोण नामक महानद का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया गया है[३]

१. काद०, पृ० २३०-२३३।

२. वही, पृ० २३३-२३४।

३. हर्ष० १।८

आकाशगंगा

हर्षचरित में आकाशगंगा का वर्णन प्राप्त होता है—

'उसका तट वालखिल्य मुनियों से भरा था। अरुन्धती उसमें अपना वल्कल धोती थी। ऊपर उठती हुई तरंगों में चंचल और चमकीले तारे प्रतिफलित हो रहे थे। उसके तट तपस्वियों द्वारा विकीर्ण विरल तिलोदक से पुलकित थे। स्नान से पवित्र ब्रह्मा द्वारा गिराये गये पितृपिण्ड से उसका तट पाण्डुरित था। समीप में सोये हुए सप्तर्षियों की कुशशय्या से सूर्यग्रहण के सूतक के उपवास की सूचना मिल रही थी। आचमन से पवित्र हुए इन्द्र द्वारा गिराये जाते हुए शिवार्चन के पुष्पों से वह चित्रित हो रही थी। पूजा में चढ़ाई गयी मन्दार-पुष्पों की माला उसमें शिवपुर से गिराई गयी थी। वह मन्दराचल की गुहाओं के पत्थरों को अनायास ही चूर्ण-चूर्ण कर रही थी। अनेक देवाङ्गनाओं के कुच-कलशों से उसका शरीर लुलित हो रहा था। ग्राहों और पत्थरों पर गिरने से उसकी धाराएँ मुखरित हो रही थीं। सुषुम्णा से निकले हुए चन्द्रमा के अमृतकणों से उसका तीर तारकित हो रहा था। बृहस्पति के अग्निहोत्र के धूम से उसका सैकत धूसर हो रहा था। सिद्धों द्वारा विरचित वालुकामय लिङ्गो को लाँघने के भय से विद्याधर भाग रहे थे।'[1]

अशुभ की सूचना देने वाले उत्पातों से युक्त प्रकृति

बाण प्रायः प्रकृति-वर्णन में या तो आगे आने वाली घटना का संकेत कर देते हैं या बीती हुई घटना की सूचना दे देते हैं। इस प्रकार प्रकृति मानव से अप्रभावित नहीं रहती। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के पहले अशुभ को सूचित करने वाले उत्पातों का वर्णन किया गया है—

'काँपते हुए सकल कुलपर्वतों वाली पृथ्वी मानो पति के साथ जाने की इच्छा से चलायमान हुई। इसी बीच परस्पर टकराने से वाचाल लहरों वाले समुद्र मानो धन्वन्तरि का स्मरण करते हुए क्षुब्ध हो उठे। राजा के विनाश से डरी हुई दिशाओं के फैले हुए शिखाकलाप से विकट तथा कुटिल केशपाश के समान प्रतीत हो[illegible] वाले धूमकेतु ऊपर उठ आये। धूमकेतुओं से दिशाएँ विकराल हो गयीं, मानो दिक्पाल[illegible]रा प्रारब्ध आयुष्काम होम के धूम से वे काली हो गयीं। प्रभारहित, तपाये गये लोहे [illegible] घड़े की भाँति भूरे सूर्य-मण्डल में भयंकर कवन्ध दिखायी पड़ा, मानो राजा के जीवन [illegible] इच्छुक किसी ने पुरुष का उपहार दिया। जलते हुए परिवेशमण्डल से चन्द्रमा चमक[illegible]ा, मानो उसने पकड़ने की इच्छा से मुख खोलते हुए राहु के भय से अग्नि का प्राकार [illegible]ा लिया हो। अनुरक्त दिशाएँ जल उठीं, मानो राजा के प्रताप से अलंकृत होकर वे प[illegible] ही पावक में प्रविष्ट हो गयीं। रक्तविन्दुओं की वर्षा से वसुधा-वधू का शरीर लाल [illegible] गया, मानो राजा के वाद मरने के लिए उसने लाल वस्त्र से अपने को ढक लिया।'[2] इत्यादि।

---

१. हर्ष० १।७-८

२. वही, ५।२७

नवम अध्याय

प्रेम तथा सौन्दर्य का चित्रण

प्रेम

वाण प्रेम के विशुद्ध स्वरूप का चित्रण करते हैं। उनकी दृष्टि में प्रेम इतना उदात्त और समुज्ज्वल है कि मृत्यु का भी उस पर अधिकार नहीं है। मृत्यु का प्रसंग प्रस्तुत करके वाण ने इसे प्रकट कर दिया है। उन्होंने दूसरे जन्मों में नायक-नायिकाओं के मिलन की सुन्दर भूमिका उपस्थित की है। प्रेम ऐसा बन्धन है, जो अनेक जन्मों तक चलता है। कालिदास का निरूपण है—

> 'रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
> पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
> तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
> भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥'[1]

कालिदास के जननान्तर सौहृद ने वाण के मानसतल को प्रभावित किया है। इसी के आधार पर उन्होंने कादम्बरी में प्रेम के स्वरूप का चित्रण किया है। पुण्डरीक तथा महाश्वेता का प्रेम द्वारा योग होता है। प्रेम चन्द्रापीड और कादम्बरी को बाँधता है। वह दूसरे जन्मों में भी बाँधने का प्रयत्न करता है। वैशम्पायन (पुण्डरीक का अवतार) महाश्वेता को देखकर आकृष्ट होता है। पुरातन प्रेम का संस्कार बलवान् है, ऐसा प्रतीत होता है।

वाण अनियन्त्रित प्रेम के विरोधी हैं। कपिञ्जल पुण्डरीक के असंयत प्रणय की निन्दा करता है। ऐसा प्रणय केवल वेदना, दुःख तथा पीड़ा उत्पन्न करने वाला होता है। वाण ने पुण्डरीक के प्रसङ्ग का उपस्थापन करके इस तथ्य को पुष्ट कर दिया है।

वाण वाह्य सौन्दर्य के कारण उत्पन्न हुए प्रेम का समर्थन नहीं करते। महाश्वेता और कादम्बरी नायक के शारीरिक सौन्दर्य को देखकर आकृष्ट होती हैं और प्रेम करने लगती हैं, किन्तु सफल नहीं होतीं। यहाँ उनका प्रेम विशुद्ध नहीं है। यह वासना है। यह प्रेम समाज के लिए आदर्श नहीं वन सकता। इसमें चिरस्थायित्व नहीं है। कालिदास भी ऐसे प्रेम का अनुमोदन नहीं करते। पहले शकुन्तला और दुष्यन्त का प्रेम वासना-जनित था। उसका परिणाम हुआ शाप। जब वियोगाग्नि में वासना जल गयी, तब विशुद्ध प्रेम का स्वरूप निखर उठा। यही स्पृहणीय है, यही मानव का लक्ष्य है, यही पवित्रता की अविरल सन्तति है। इसके रसमय भावसागर में मज्जन करने वाला मानव दैवी

---

१. अभिज्ञानशकुन्तल ५।२

विभूति है। यह ऐसी स्थिति है, जिसका साहचर्य परम आह्लाद की सृष्टि करता है तथा जन्म-जन्म की तपस्या का फल प्रदान करता है।

वाण ने प्रेम का अनन्यत्व प्रतिपादित किया है। जो जिससे प्रेम करता है, उसके लिए उससे बढ़कर संसार में और कोई नहीं है। महाकवि की सृष्टि में एक स्त्री केवल एक पुरुष से प्रेम करती है और एक पुरुष केवल एक स्त्री से प्रेम करता है। वाण की दृष्टि में जिस पुरुष और जिस स्त्री का योग होता है, उनके प्रेम-तन्तु एक प्रकार के होते हैं। वे प्रेम-तन्तु अन्य पुरुषों और स्त्रियों में नहीं होते। यही कारण है कि यदि किसी पुरुष का किसी स्त्री के प्रति आकर्षण हो गया, तो फिर अन्य के प्रति आकर्षण नहीं होता। वाण द्वारा प्रतिपादित प्रेम का यही रहस्य है। उनकी प्रेम-विषयक कल्पना वड़ी उदात्त एवं प्रशस्त है।

वाण वासना की वड़ी निन्दा करते हैं। पुण्डरीक महाश्वेता को देखकर कामपीड़ित होता है। इस पर कपिञ्जल कहता है—'आपने जो यह प्रारम्भ किया है, क्या वह गुरुओं द्वारा उपदिष्ट है? या धर्मशास्त्रों में पढ़ा हुआ है? अथवा यह धर्मार्जन का उपाय है? या तपश्चर्या का दूसरा प्रकार है? अथवा यह स्वर्ग जाने का मार्ग है? या यह व्रत का रहस्य है? या मोक्ष-प्राप्ति की युक्ति है? अथवा व्रतानुष्ठान का अन्य भेद है? आपका मन से भी इस विषय में चिन्तन करना क्या आपके लिए उचित है? कहने और देखने के विषय में तो कहना ही क्या? क्या अप्रवुद्ध की भाँति इस दुष्ट काम द्वारा उपहासास्पद बनाये जाते हुए अपने को नहीं जान रहे हो? काम मूढ़ को ही पीड़ित करता है। साधुओं द्वारा निन्दित, प्राकृत-जनों को वहुत प्रिय इस प्रकार के विषयों में आपको क्या सुख की आशा? वह धर्म की बुद्धि से विषलता का सेचन करता है, कुवलय-गाला समझकर खड्गलता का आलिङ्गन करता है, कृष्णागुरु की धूमलेखा समझकर कृष्ण सर्प का आलिङ्गन करता है, रत्न समझकर जलते हुए अङ्गार का स्पर्श करता है, मृणाल जानकर दुष्ट हाथी के दन्तमुसल का उत्पाटम करता है, जो मूर्ख अनिष्ट विषयोपभोगों में सुख की बुद्धि का आरोप करता है।'[1]

वाण इस वात को निश्चितरूप से जानते हैं कि कामवासना किसी समय जागरित हो सकती है। मालती सरस्वती से दधीच के विषय में कहती है—'देवि, विषयों की मधुरता, इन्द्रियों की उत्सुकता, नवयौवन की उन्मादिता तथा मन की चञ्चलता को जानती ही हो। काम की दुर्निवारता तो प्रसिद्ध ही है। इसलिए मुझे उलाहना न देना।...देवि, तुमको देव ने जब से देखा है, तब से काम उनका सुहृद् है, चन्द्रमा जीवितेश है, मलयपवन उच्छ्वास का कारण है, आधियाँ अन्तरङ्ग हैं, सन्ताप परम मित्र है।'[2]

---

१. काद०, पृ० २८६-२६०।

२. हर्ष० १।१६

बाण की दृष्टि में वही प्रेम शुद्ध है, जो अकारण हुआ करता है। निष्कारण वात्सल्य ही मनुष्य द्वारा वाञ्छनीय है—'नन्वियं सा...प्रकृतिर्मर्त्यानां येषामकाण्डविसंवादिन्यः प्रीतयो न गणयन्ति निष्कारणवत्सलताम्।'[1] यही प्रेम निर्मल है, पवित्र है और आनन्द तथा शान्ति प्रदान करता है।

कवि ने प्रेम का मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रण किया है। स्त्रियों का स्वभाव कोमल होता है, अतः वे पहले नायकों के प्रति आकृष्ट होती हैं। महाश्वेता पुण्डरीक को देखकर परवश हो जाती है।[2]

प्रेम-तत्त्व मानव को भूलोक से स्वर्गलोक तक ले जाता है, असम्भव वस्तुएँ भी प्रस्तुत कर देता है। प्रेम के लोक में अद्भुत नियम और व्यवस्था है। जब कभी नियम के बन्धन टूटते हैं, व्यवस्था के तट भग्न हो जाते हैं, तब प्रेम की शक्ति नष्ट हो जाती है। बाण ने अपनी कृतियों में इस सूत्र की रसपेशल विवृति संनिविष्ट की है। अनेक परिस्थितियों के वितानों में, विभिन्न संविधानों में, मानव की उलझी समस्याओं में प्रेम की प्रतिक्रिया के सूक्ष्म अङ्कन के द्वारा बाण ने अपने काव्यधरातल की पुष्टि की है।

नायक तथा नायिका के प्रेम के अतिरिक्त बाण ने भ्रातृ-प्रेम तथा माता-पिता के स्नेह का सुन्दर चित्रण किया है। हर्षचरित में हर्षवर्धन और राज्यवर्धन के प्रेम का सुन्दर चित्र उपलब्ध होता है। राज्यवर्धन पिता की मृत्यु के बाद राज्य छोड़कर वन में जाना चाहते हैं। वे हर्ष से कहते हैं—'..गृहाण मे राज्यचिन्ताम्। त्यक्तसकलबालक्रीडेन हरिणेव दीयतामुरो लक्ष्म्यै। परित्यक्तं मया शस्त्रम्।'[3] यह सुनकर हर्ष कहते हैं—'किं वा ममानेन वृथा बहुधा विकल्पितेन। तूष्णीमेवार्यमनुगमिष्यामि। गुरुवचनातिक्रमकृतं च किल्बिषमेतत्तपोवने तप एवापास्यति।'[4] भाई के प्रति कैसा निर्मल प्रेम है! जब राज्यवर्धन राज्य का परित्याग कर वन में जाने का विचार करते हैं, तब हर्षवर्धन उनका अनुगमन करना चाहते हैं। वे भ्राता से विरहित होकर घर पर रहकर राज्य का भोग नहीं करना [illegible]हते। भाई के साथ रहने से जो आनन्द प्राप्त होगा, वह उनसे अलग रहकर चञ्चला लक्ष्मी के भोग से नहीं मिल सकेगा।

जब यह समाचा[illegible] प्राप्त होता है कि मालवराज ने ग्रहवर्मा की हत्या कर दी, तब राज्यवर्धन मालवराज [illegible] दमन करने के लिए अकेले ही जाना चाहते हैं। इस पर हर्षवर्धन कहते हैं—'आर्य को [illegible] अनुगमन करने में क्या दोष दिखायी पड़ रहा है? यदि बालक

---

१. काद०, पृ० ३६[illegible]।

२. '...इति चिन्तय[illegible]मिव मामविचारितगुणदोषविशेषो रूपैकपक्षपाती नवयौवनसुलभः कुसुमायुधः कुसुम[illegible]मयमद इव मधुकरीं परवशामकरोदुच्छ्वसितैः सह।'
वही, पृ० २६७।

३. हर्ष० ६।३९

४. वही, ६।४०

समझते हैं, तब तो निश्चित ही छोड़ने के योग्य नहीं हूँ। यदि ऐसा सोचते हैं कि रक्षा के योग्य हूँ, तब तो आपकी भुजाओं का पञ्जर ही रक्षा का स्थान है। यदि मुझे अशक्त समझते हैं, तो मेरी कहाँ परीक्षा की है ? यदि मुझे संवर्धनीय मानते हैं, तो वियोग मुझे दुबला कर देगा। यदि मुझे क्लेश सहन करने के योग्य नहीं समझते, तो मैं स्त्रीपक्ष में डाल दिया गया (स्त्री-तुल्य समझा जा रहा हूँ)। यदि 'सुख का अनुभव करो' यह कहकर छोड़ रहे हैं, तो वह तो आपके साथ चला जा रहा है। यदि 'मार्ग में महान् क्लेश है' ऐसा मानते हैं, तो विरहाग्नि अधिक दुःसह है। यदि आप चाहते हैं कि मैं स्त्री की रक्षा करूँ, तो लक्ष्मी (जो आपकी एकमात्र पत्नी है, जिसकी आप रक्षा करना चाहते हैं) आपकी तलवार में निवास करती है। यदि आप 'पीछे रहो' ऐसा कहते हैं, तो आपका प्रताप है ही। यदि आप कहें कि राजाओं का समूह शासक-विहीन हो जायगा, तो वह तो आपके गुणों से सुबद्ध है। यदि आप यह मानते हैं कि महान् व्यक्ति के लिए बाहरी सहायक की आवश्यकता नहीं, तब तो मुझे अलग समझ रहे हैं। यदि थोड़े परिकर के साथ जाना चाहते हैं, तो चरण की धूलि से क्या भार होगा। यदि दोनों का जाना अनुचित है, तो जाने की आज्ञा देकर मुझे अनुगृहीत कीजिए।'[1]

हर्ष के वचन हृदय का स्पर्श कर रहे हैं। उनका प्रत्येक वाक्य हृदय की विशालता का प्रकटन कर रहा है। हर्षवर्धन राज्यवर्धन के लिए सर्वस्व अर्पित करना चाहते हैं। राज्यवर्धन भी हर्ष के लिए सभी भोगों को छोड़ने के लिए उद्यत हैं। वे कहते हैं—'तात, इस प्रकार महान् आरम्भ करके अतितुच्छ शत्रु को क्यों बड़ा बना रहे हैं ? एक हरिण के लिए सिंहों का समूह अत्यधिक लज्जाजनक है। तृणों को नष्ट करने के लिए कितनी अग्नियाँ कवच पहनती हैं।...आप मान्धाता की भाँति दिग्विजय करने के लिए सुन्दर सुवर्ण-पत्रलताओं से अलङ्कृत धनुष धारण करेंगे, जो सभी राजाओं के विनाश का सूचक महान् धूमकेतु होगा। शत्रु-विनाश करने की मेरी जो यह दुर्निवार भूख है, उसके लिए मुझ अकेले का एक कोप-कवल क्षमा करें।'[2]

दोनों भाइयों का प्रेम राम और भरत के प्रेम का स्मरण करा रहा है। न तो राम राज्य लेना चाहते हैं और न तो भरत ही। दोनों राज्य को अत्यधिक तुच्छ समझते हैं।

हर्षचरित और कादम्बरी में वात्सल्य का अत्यधिक सुन्दर निर्वाह हुआ है।

प्रभाकरवर्धन का पुत्र-प्रेम श्लाघनीय है। वे हर्ष को देख कर शय्या से आधे शरीर से उठ कर भुजाओं को फैला कर बुलाने लगते हैं। समीप में आए हुए हर्ष को छाती से लगा लेते हैं। उस समय उन्हें ऐसा आनन्द मिलता है, मानो अमृतरस-सरोवर में डुबकी लगा रहे हों, मानो हरिचन्दनरस के प्रस्रवण में स्नान कर रहे हों, मानो हिमालय के द्रव

१. हर्ष० ६।४२
२. वही, ६।४२

से लिप्त हो रहे हों। उन्होंने अङ्गों से अङ्गों को तथा कपोल से कपोल को मिला कर पुत्र का आलिङ्गन किया। प्रभाकरवर्धन निर्निमेष नेत्रों से पुत्र को देखते रहे। उन्होंने हर्ष से कहा—'पुत्र, कृश हो गये हो।'[1] यहाँ पिता का हृदय उमड़ रहा है। उसके सामने कोई अवरोध नहीं है। प्रभाकरवर्धन हर्ष से कहते हैं—'वत्स, जानता हूँ कि तुम पितृ-प्रिय हो तथा तुम्हारा हृदय अत्यन्त मृदु है।...तुम्हारी कृशता तीक्ष्ण शस्त्र की भाँति मुझे काट रही है। मेरा सुख, राज्य, वंश, परलोक तथा प्राण तुम में स्थित हैं... तुम्हारे सदृश लोगों की पीड़ा समस्त भुवनतल को पीड़ित करती है। आप जैसे व्यक्ति अपुण्यात्माओं के वंश को नहीं अलङ्कृत करते। अनेक जन्मों में उपार्जित निर्दोष कर्म के फल हो। तुम्हारे लक्षण सूचित कर रहे हैं कि चारों समुद्रों का आधिपत्य करतलगत-सा है। तुम्हारे जीवन से ही कृतार्थ हूँ। जीवन के प्रति अभिलाष-रहित हूँ।'[2]

हर्ष के प्रति यशोमती का प्रेम दर्शनीय है—

'वत्स, नासि न प्रियो निर्गुणो वा परित्यागार्हो वा। स्तन्येनैव सह त्वया पीतं मे हृदयम्।'[3]

कादम्बरी में तारापीड के पुत्र-विषयक अभिलाप का वहुत मार्मिक वर्णन किया गया है—

'पुत्र-जन्म के महोत्सव के आनन्द में निमग्न परिजन कव मुझसे पूर्णपात्र लेंगे। कव हरिद्रा से रञ्जित वस्त्र धारण करने वाली, पुत्र से युक्त गोद वाली, उदित हुए सूर्य-मण्डल से युक्त तथा वालातप से समन्वित आकाश की भाँति देवी मुझे आनन्दित करेंगी। कव सभी ओपधियों से पिंगल तथा जटिल केशों से युक्त, रक्षाघृत-विन्दुओं से युक्त तालु पर रखी गयी श्वेत सरसों से युक्त भस्म की रेखा वाला, गोरोचना से रँगी हुई कण्ठसूत्र-ग्रन्थि वाला, उत्तान शयन करने वाला, दाँतों से रहित तथा स्मितयुक्त मुख वाला पुत्र मेरे हृदय को आनन्दित करेगा। कव गोरोचना की भाँति पीत कान्ति वाला, अन्तःपुर की स्त्रियों के हाथों को पकड़ क[illegible]चलता हुआ, सभी जनों द्वारा अभिनन्दित मङ्गल प्रदीप की भाँति (पुत्र) मेरे नेत्रों के [illegible]कान्धकार को दूर करेगा। कव पृथ्वी की धूलि से धूसर वह मेरे हृदय और दृष्टि के स[illegible]थ घूमता हुआ गृह के आँगन को अलङ्कृत करेगा। कव सिंह के शावक की भाँति घु[illegible] के वल चलता हुआ स्फटिकमणिमय भित्तियों से व्यवहित भवन के मृगशावकों को प[illegible]ने की इच्छा से इधर-उधर सञ्चरण करेगा। कव अन्तःपुरिकाओं के नूपुरों की ध्वनि [illegible] सुन कर आये हुए गृह के कलहंसों के पीछे एक प्रकोष्ठ से दूसरे प्रकोष्ठ में दौड़ता हु[illegible] सुवर्ण की मेखला की घण्टियों के शब्द का अनुसरण करके दौड़ती हुई धात्री को कष्ट [illegible]ा।'[4]

---

१. हर्ष० ५।२४

२. वही, ५।२४

३. वही, ५।३०

४. कादं०, पृ० १२[illegible]-१२७।

पुत्र को देखकर राजा तारापीड के नेत्र निमेष-रहित होने के कारण निश्चल रोमों वाले हो गये। बार-बार पोंछने पर भी आनन्द के अश्रुबिन्दु कनीनिकाओं को भिगोने लगे। राजा अत्यन्त विस्फारित स्निग्ध नेत्र से पुत्र के मुख को सस्पृह देखते हुए आनन्दित हुए और अपने को कृतकृत्य मानने लगे।[१]

विलासवती का वात्सल्य अधोलिखित पंक्तियों में झलक रहा है—

'वत्स, कठिनहृदयस्ते पिता येनेयमाकृतिरीदृशी त्रिभुवनलालनीया क्लेशमतिमहान्तमियन्तं कालं लम्भिता। कथमसि सोढवानतिदीर्घामिमां गुरुजनयन्त्रणाम्।'[२]

सौन्दर्य

बाण ने सौन्दर्य का निरूपण अतिकुशलता से किया है। सौन्दर्य के तीन प्रकार माने गये हैं—शारीरिक सौन्दर्य, बौद्धिक सौन्दर्य तथा नैतिक सौन्दर्य। वस्तु, रङ्ग, आकृति आदि का सौन्दर्य शारीरिक सौन्दर्य के अन्तर्गत आता है। सार्वलौकिक नियम, विशिष्ट सिद्धान्त, कवि, कलाकार तथा दार्शनिक में विद्यमान प्रतिभा आदि सौन्दर्यमय हैं। यह बौद्धिक सौन्दर्य कहा जाता है। तीसरा नैतिक सौन्दर्य है। इसमें स्वतन्त्रता, सद्गुण, न्याय, वीरता आदि का परिगणन होता है।[३]

---

१. काद०, पृ० १४४-१४५।

२. वही, पृ० १८२।

३. "Among sensible objects, colors, sounds, figures, movements, are capable of producing the idea and the sentiment of the beautiful. All these beauties are arranged under that species of beauty which, right or wrong is called physical beauty.

If from the world of sense we elevate ourselves to that of mind, truth, and science, we shall find these beauties more severe, but not less real. The universal laws that govern bodies, those that contain and produce long deductions, the genius that creates, in the artist, poet, or philosopher,—all these are beautiful, as well as nature herself: this is what is called intellectual beauty.

Finally, if we consider the moral world and its laws, the idea of liberty, virtue, and devotedness, here the austere justice of an Aristides, there the heroism of a Leonidas, the prodigies of charity or patriotism, we shall certainly find a third order of beauty that still surpasses the other two, to wit, moral beauty."

M. V. Cousin : Lectures on The True, The Beautiful And The Good (Tr. by O. W. Wight), pp. 143-44.

बाण शारीरिक सौन्दर्य के प्रकटन में अभिधा का आश्रय लेते हैं। जब वे किसी वस्तु का चित्रण करने लगते हैं, तब उसकी एक-एक विशेषता का उल्लेख करते हैं। पुरुषों और स्त्रियों के सौन्दर्य के निरूपण में बाण दक्ष हैं। शूद्रक, चन्द्रापीड, दधीच, हर्ष, चाण्डाल-कन्या, महाश्वेता, कादम्बरी आदि का कमनीय चित्रण प्राप्त होता है।

चाण्डालकन्या का चित्रण अत्यधिक मञ्जुल है। वह श्याम-वर्ण की थी। वह नील कंचुक धारण किये हुए थी। कंचुक गुल्फपर्यन्त लटक रहा था। उसके ऊपर रक्तांशुक का अवगुण्ठन शोभित हो रहा था। वह एक कान में दन्तपत्र धारण किये हुए थी। उसके चरण अलक्तकरस से रञ्जित थे। मेखला से उसका जघनप्रदेश घिरा हुआ था। वह मुक्ताफल का हार धारण किये हुए थी। वह चन्दनपल्लवों के अवतंस से अलङ्कृत थी।[1]

बाण की दृष्टि रङ्गों की योजना की ओर लगी रहती है। यहाँ श्याम, नील, रक्त आदि रङ्गों की योजना की गयी है। वस्त्र, आभूषण आदि के कारण अपूर्व छटा प्रस्फुटित होती है। बाण उसके अङ्कन में अधिक सफल हैं।

दधीच की रूप-सम्पत्ति हृदय को आकृष्ट करने वाली है। उसकी अवस्था अठारह वर्ष की थी। उसके ऊपर एक छाते से छाया की जा रही थी। छाता मोती की मालाओं से शोभित हो रहा था। वह अनेक रत्नों से मण्डित था तथा शङ्ख, दुग्ध और फेन की भाँति श्वेत था। दधीच मालती-पुष्पों की माला धारण किये हुए था, जो नितम्ब तक लटक रही थी। चूड़ाभरण की पद्मरागमणि की लाल किरणों से वह शोभित हो रहा था। वह बकुल-पुष्पों की मुण्डमाला धारण किये हुए था। उसके केश टेढ़े थे। उसका ललाट मानो शिव की जटा के मुकुट-स्वरूप चन्द्र के द्वितीय खण्ड से बना था। वह अपने नेत्र की दीर्घता से विकसित कुमुद, कुवलय और कमल के सरोवरों से दिशाओं को व्याप्त करने वाली शरद् ऋतु का मानो निर्माण कर रहा था। उसकी नासिका अत्यधिक सुन्दर थी। वह मुख की मुग्ध मुसकान से, जो दिशाओं को दाँतों की ज्योत्स्ना से स्नपित कर रही थी, मानो आकाश में चन्द्रालोक फैला रहा था। उसके कान में त्रिकण्टक नामक आभूषण था। उसकी भुजाएँ कस्तूरी के पङ्क से चित्रित पत्रभङ्ग से भास्वर थीं। उसका शरीर श्वेत यज्ञोपवीत से विभाजित था। उसका वक्षःस्थल कर्पूर के चूर्ण से युक्त था। वह हारीतपक्षी की भाँति हरा अधोवस्त्र धारण किये हुए था। उसके घुटने व्यायाम

---

१. '...श्यामतया भ[illegible]तो हरेरिवानुकुर्वतीम्...गुल्फावलम्बिनीलकञ्चुकेनावच्छन्नशरीराम्, उपरिरक्त[illegible]करचितावगुण्ठनाम्...एककर्णावसक्तदन्तपत्रप्रभाधवलितकपोल-मण्डलाम्...अति[illegible]हलपिण्डालक्तकरसरागपल्लवितपादपङ्कजाम्...रोमराजिलताल-वालकेन रसनाद[illegible]रा परिगतजघनाम्, अतिस्थलमुक्ताफलघटितेन शुचिना हारेण...कृतकण्ठग्रहाम्...[illegible]लयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम्...।'

कादं०, पृ० २१-२३।

करने के कारण कठोर और विकट थे। उसकी जाँघें चन्दन के स्थासक से सुन्दर लग रही थीं।[१]

दधीच के प्रसङ्ग में भी वसन और आभूषण की कमनीय योजना की गयी है। कवि ने जहाँ-जहाँ सौन्दर्य की छटा देखी है, वहाँ-वहाँ आभरण आदि की योजना करके उसे अधिक प्रस्फुटित कर दिया है।

बाण ने बालक के सौन्दर्य का वर्णन भी कमनीयता से निबद्ध किया है। चन्द्रापीड की सुकुमारता व्यक्त की गयी है।[२]

पशु-पक्षियों के चित्रण में भी बाण को सफलता मिली है।

कादम्बरी में इन्द्रायुध का वर्णन अत्यन्त प्रशस्त है। इन्द्रायुध बहुत बड़ा था। काली, पीली, हरी तथा श्वेतवर्ण की रेखाओं से उसका शरीर चित्रित था। उसका मुखमण्डल अत्यन्त दीर्घ तथा उत्कीर्ण-सा था। उसके कानों के अग्रभाग निश्चल थे। उसकी ग्रीवा उज्ज्वल सुवर्ण की शृङ्खला की लगाम से शोभित थी। उसकी ग्रीवा के ऊपर लाक्षा की भाँति लाल लम्बी सटाएँ झूल रही थीं। वह रक्तवर्ण के आभूषण से शोभित था। अश्वालङ्कार के मरकतरत्नों की प्रभा से उसका शरीर श्याम हो रहा था। उसके विस्तृत खुर मानो अञ्जनशिलाओं से निर्मित किये गये थे। उसकी जाँघें मानो उत्कीर्ण थीं। उसका वक्षःस्थल विस्तारित-सा था। उसका मुख मानो चिकना किया गया था। उसकी कन्धरा मानो विस्तारित की गयी थी। उसके पार्श्व मानो उत्कीर्ण थे। उसके जघनों को मानो द्विगुणित किया गया था। वह अशोकपुष्प की भाँति पाटल था। उसका मुख पुण्ड्रक (धवल रोमावर्त) से अङ्कित था। उसके कान खड़े रहते थे।[३]

अश्व के चित्रण में भी बाण ने एक-एक विशेषता का उल्लेख किया है। दधीच के अश्व का भी वर्णन कमनीय है।[४] गन्धमादन हाथी का व[र्ण]न बहुत मनोरम है।[५] बाण, अश्वों तथा हाथियों की सूक्ष्म विशेषताओं को जानते थे, [इस]लिए उन्होंने इनका चित्रण कुशलता से किया है।

कादम्बरी में शुकों के स्वाभाविक जीवन की चारु वर्णना [मि]लती है। कादम्बरी के भवन में स्थित शुक-सारिका के रूप का वर्णन अत्यधिक सुन्[दर] है।[६]

---

१. हर्ष० ११९-१०
२. काद०, पृ० १४४-१४५।
३. वही, पृ० १५५-१५७।
४. हर्ष० ११०
५. वही, २१२९-३१
६. काद०, पृ० ३५१।

बाण बौद्धिक तथा नैतिक सौन्दर्य के अङ्कन में भी सफल हैं। शुकनास के प्रसङ्ग में बौद्धिक सौन्दर्य का अङ्कन हुआ है। शुकनास सभी शास्त्रों का ज्ञाता है। सङ्कटापन्न कार्यों में भी उसकी बुद्धि विषण्ण नहीं होती। उसकी प्रज्ञा अत्यन्त विलक्षण है।[1] उसने चन्द्रापीड को जो उपदेश दिया है,[2] उससे उसके ज्ञान की गरिमा प्रकट होती है।

बौद्धिक तथा नैतिक सौन्दर्य की दृष्टि से मुनियों का सौन्दर्य उल्लेखनीय है। दिवाकरमित्र[3] और जाबालि के प्रसङ्ग में सौन्दर्य की इन दो विधाओं का रम्य आकल्प दृष्टिगोचर होता है। मुनियों के सौन्दर्य के चित्रण में नैतिक सौन्दर्य का विशेष उन्मीलन उपलब्ध होता है।

जाबालि का चित्रण कुशलता से किया गया है। वे प्राणियों के पूर्वजन्म की घटनाओं को जानते हैं। सभी विद्याएँ उनमें निवास करती हैं। उनके पास धर्म अपने अखण्ड रूप में विद्यमान है। वे करुणारस के प्रवाह हैं, संसारसागर के सन्तरणसेतु हैं, क्षमाजल के आधार हैं, तृष्णालता-वन के लिए परशु हैं, सन्तोषरूपी अमृतरस के सागर हैं, सिद्धिमार्ग के उपदेशक हैं, पापग्रह के लिए अस्ताचल हैं, धर्मध्वज के आधारवंश हैं, सभी विद्याओं में प्रवेश के लिए तीर्थ हैं, लोभसिन्धु के लिए वडवानल हैं, शास्त्ररत्नों के लिए निकषोपल हैं, रागपल्लव के लिए दावानल हैं, क्रोधरूपी सर्प के महामन्त्र हैं, मोहान्धकार के लिए सूर्य हैं। वे नरकद्वार के लिए अर्गलाबन्ध हैं, आचारों के आश्रयस्थल हैं, मङ्गलों के आयतन हैं, मदविकारों के अस्थान हैं, सन्मार्ग के दर्शक हैं, साधुता की उत्पत्ति हैं, उत्साहचक्र की नेमि हैं, सत्त्व के आश्रय हैं, कलिकाल के विरोधी हैं, तपस्या के कोश हैं, सत्य के मित्र हैं,

---

१. काद०, पृ० ११३-११५।

२. वही, पृ० १९५-२०९।

३. वीतरागैरार्हतैर्मस्कर[illegible]भिः श्वेतपटैः पाण्डुरभिक्षुभिर्भागवतैर्वर्णिभिः केशलुञ्चनैः कापिलैर्जैनैर्लोकायतिकै[illegible] काणादैरौपनिषदैरैश्वरकारणिकैः कारन्धमिभिर्धर्मशास्त्रिभिः पौराणिकैः साप्तत[illegible]वैः शैवैः शाब्दैः पाञ्चरात्रिकैरन्यैश्च स्वान् सिद्धान्ताञ्शृण्वद्भिरभियुक्तैश्चिन्तय[illegible]द्भिश्च प्रत्युच्चरद्भिश्च संशयानैश्च निश्चिन्वद्भिश्च व्युत्पादयद्भिश्च विवदमानैश्चाभ्यस[illegible]द्भिश्च व्याचक्षाणैश्च शिष्यतां प्रतिपन्नैर्दूरादेवावेद्यमानम्,...उपशममिव पिबद्भि[illegible]हरिणैर्जिह्वालताभिरुपलिह्यमानपादपल्लवम्, वामकरतलनिविष्टेन नीवारमश्नतो पारावतपोतेन कर्णोत्पलेनेव प्रियां मैत्रीं प्रसादयन्तम्...उद्ग्रीवं मयूरं मरकतमणि[illegible]रकमिव वारिधाराभिः पूरयन्तम्, इतस्ततः पिपीलिकाश्रेण[illegible]नां श्यामाकतण्डुलकणान् स्वयमेव किरन्तम्...ध्यानस्यापि ध्येयमिव, ज्ञानस्यापि ज्ञेयमिव, जन्म जपस्य, ने[illegible] नियमस्य, तत्त्वं तपसः, शरीरं शौचस्य, कोशं कुशलस्य, वेश्म विश्वासस्य, सव[illegible] सद्वृत्ततायाः, दाक्ष्यं दाक्षिण्यस्य, पारं परानुकम्पायाः...।

हर्ष० ८।७३

सरलता के क्षेत्र हैं, पुण्यराशि के उत्पत्तिस्थान हैं। मत्सर, विपत्ति, परिभव, अभिमान, दीनता तथा क्रोध से रहित हैं।[1]

हारीत शुक को देखकर दयार्द्र हो जाते हैं। वे उसे जल पिलाते हैं।[2] राजा पुष्पभूति अपनी वीरता का परिचय देकर भैरवाचार्य के कार्य की सिद्धि करते हैं।[3] यह सब नैतिक सौन्दर्य के अन्तर्गत आता है।[4]

---

१. काद०, पृ० ८७-८९।

२. वही, पृ० ७४-७५।

३. हर्ष० ३१५२-५४

४. "Moral beauty comprises, as we shall subseq[uently] see, two distinct elements, equally but diversely beautif[ul], justice and charity, respect and love of men."

M. V. Cousin : Lectures on The True, The Beautiful And The Good (Tr. by O. W. Wight), p. 150.

दशम अध्याय

बाणभट्ट का पाण्डित्य

वेद

वाण की रचनाओं में वेद की अनेक बातों का उल्लेख मिलता है।

कवि ने अघमर्षण[1] तथा अप्रतिरथ[2] पदों का प्रयोग किया है।

अघमर्षण ऋग्वेद का एक सूक्त है। इस सूक्त में तीन मन्त्र हैं। इस सूक्त के ऋषि मधुच्छन्दस् के पुत्र अघमर्षण हैं।

अप्रतिरथ का प्रयोग अप्रतिरथ सूक्त के लिए किया गया है। सूक्त के ऋषि का नाम अप्रतिरथ है।[4]

रुद्रैकादशी के जपे जाने का उल्लेख किया गया है।[5] यहाँ उस सूक्त की ओर सङ्केत है, जिसमें रुद्र की प्रार्थना की गयी है। यह ग्यारह अनुवाकों में है।[6] ११ या १२१ बार इसका पाठ करने से रोग, पाप आदि की निवृत्ति होती है।[7] सायण अपने रुद्रभाष्य में वायुपुराण का अधोलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं—

'रोगवान् पापवांश्चैव रुद्रं जप्त्वा जितेन्द्रियः।
रोगात्पापाद् विनिर्मुक्तो ह्यतुलं सुखमश्नुते॥'[8]

हर्षचरित में एक स्थान पर वरुण के पाश का निर्देश किया गया है।[9] वरुण का आयुध पाश है, इसीलिए वे पाशी या पाशभृत् कहे जाते हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में वरुण के पाश का उल्लेख किया गया है।[10]

---

१. काद०, पृ० ७५
२. हर्ष० २।२६
३. 'ऋतं च सत्यं चा[illegible]द्धात्तपसोऽध्यजायत...चान्तरिक्षमथो स्वः॥'—ऋग्वेद १०।१९०।१
४. वही, १०।१०३
इस सूक्त में [illegible]ह मन्त्र हैं। इसका प्रथम मन्त्र है—
'आशुः शिशानो [illegible]षभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिष[illegible] एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः॥'
५. हर्ष० ५।२१
६, ७, ८. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. V, p. 73.
९. हर्ष० २।३१
१०. 'उदुत्तमं मुमुग्[illegible]तो वि पाशं मध्यमं चृत।
अवाधमानि ज[illegible] से।'—ऋग्वेद १।२५।२१

चरण[1] और शाखापदों[2] के प्रयोग दर्शनीय हैं।

कभी-कभी चरण और शाखा का एक ही अर्थ में प्रयोग होता है। चरण का अर्थ है शाखाध्येता, अर्थात् जो वेद की किसी एक शाखा का अध्ययन करता है।[3] डॉ० काणे का कथन है कि वाण ने शाखा का प्रयोग शाखाध्येता के अर्थ में किया है।[4]

कवि ने पद और क्रम – इन दो पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है।[5] पद और क्रम से तात्पर्य पदपाठ और क्रमपाठ से है।[6]

'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं

यः पार्थिवानि विममे रजांसि।' का पदपाठ इस प्रकार है—'विष्णोः। नु। कम्। वीर्याणि। प्र। वोचम्। यः। पार्थिवानि। विऽममे। रजांसि।'[7]

'इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम्।' का क्रमपाठ इस प्रकार है —'इदं विष्णुः। विष्णुर्वि। वि चक्रमे। चक्रमे त्रेधा। त्रेधा नि। नि दधे। दधे पदम्। पदमिति पदम्।'[8]

वाण के उल्लेख से प्रकट होता है कि दीक्षित कृष्णसार मृग के सींग से खुजलाता है।[9] दीक्षित के लिए कृष्णसार के सींग से खुजलाने का विधान किया गया है।[10]

ब्रह्म के लिए अज और त्रयीमय पदों का प्रयोग मिलता है।[11] कठोपनिषद् में

---

१. 'शिष्यद्वयेनेव...वाचालितचरणा' – हर्ष० १।३
'त्रय्येव सुप्रतिष्ठितचरणया' – काद०, पृ० १६३।
२. 'शमितसमस्तशाखान्तरसंशीतयः' – हर्ष० १।१८
३. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. I, p. 20.
४. ibid., Uch. 1, p. 85.
५. हर्ष० १।३
६. Kane's Note's on the Harshacharita, Uch. 1, p. 20.
७. द्रष्टव्य ऋग्वेद (वैदिक-संशोधन-मण्डल, पूना) १।१५४।१ [illegible]ा पदपाठ।
८. Kane's Notes on the Harshachrita, Uch. 1, p. [illegible].
९. काद०, पृ० २४३।
१०. 'अथ न दीक्षितः काष्ठेन नखेन वा कण्डूयेत...तस्माद्दीक्षितः क्लृप्[illegible]षाणयैव कण्डूयेत।'
Kane's Notes on the Kādambarī (pp. [illegible]24-237 of Dr. Peterson's edition), quoted on p. 13.
तथा द्रष्टव्य–
कादम्बरी (पूर्वभाग), हरिदास सिद्धान्तवागीश की टीका, पृ० ४६५।
११. 'अजाय...त्रयीमयाय' – काद०, पृ० १।

आत्मा को अज कहा गया है ।[१] बृहदारण्यक में वेद ब्रह्म के निःश्वास बताये गये हैं ।[२]

कादम्बरी में ब्रह्म सृष्टि, पालन और संहार का हेतु भी कहा गया है ।[३] उपनिषद् में निरूपित किया गया है कि ब्रह्म से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, उसी के कारण जीवित रहते हैं और अन्त में उसी में विलीन हो जाते हैं ।[४]

महाश्वेता के लिए कहा गया है कि वह ज्योति में प्रविष्ट हो चुकी है ।[५] यहाँ ज्योति पद ब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।[६] उपनिषदों में ब्रह्म प्रकाशकों का प्रकाशक कहा गया है । उसके प्रकाशित होने से सभी पदार्थ प्रकाशित होते हैं ।[७]

बाण ने उल्लेख किया है कि मोक्ष का मार्ग सूर्य से होकर जाता है ।[८] बृहदारण्यक में विवेचन किया गया है कि जो ज्ञान का अवलम्बन करते हैं, वे आदित्यलोक में जाते हैं और वहाँ से वे ब्रह्मलोक में जाते हैं । इसके बाद उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती ।[९] गीता में इस मार्ग को शुक्लगति कहा गया है ।[१०]

---

१. 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।'

कठोपनिषद् १।२।१८

२. 'स यथाऽऽर्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस. . .।'

बृहदारण्यकोपनिषद् ४।५।११

३. 'अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे' —काद०, पृ० १ ।

४. 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति ।'

तैत्तिरीयोपनिषद् ३।१।१

५. काद०, पृ० २५० ।

६. काद०, भानुचन्द्रगु[illegible] टीका, पृ० २५० ।

७. 'तमेव भान्तमनुभ[illegible]त सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।' —कठो० २।२।१५

८. हर्ष० १।३

९. 'ते य एवमेतद्वि[illegible]चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षम[illegible]र्यमाणपक्षाद्यान्षण्मासानुदङङ्ङादित्य एति मासेभ्यो देवलोकं देवलोकादादित्यम[illegible]याद्वैद्युतं तान् वैद्युतान् पुरुषो मानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति ते तेषु ब्रह्मलोकेषु [illegible]ः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः ।'

बृहदारण्यकोपनिषद् ६।२।१५

१०. 'शुक्लकृष्णगती [illegible]ते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्य[illegible]वृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥'

गीता ८।२६

कवि ने उल्लेख किया है कि जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, उनकी दृष्टि को इन्द्रिय रूपी घोड़ों के द्वारा उत्थापित रज (धूलि, रजोगुण) कलुषित कर देती है ।[१] उपनिषद् की मान्यता है कि जो अविज्ञानवान् होता है और जिसका मन वश में नहीं रहता, उसकी इन्द्रियाँ उसी प्रकार उसके वश में नहीं रहतीं, जिस प्रकार सारथि के वश में दुष्ट घोड़े।[२]

वाण ने अध्येषणा पद का प्रयोग किया है ।[३] यहाँ स्यात् बृहदारण्यक के निरूपण **'ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव. . .भवतः ।'**[४] की ओर सङ्केत किया गया है ।

महाश्वेता के वर्णन के प्रसङ्ग में कहा गया है कि जो आत्महत्या करता है, वह पाप का भागी होता है ।[५] उपनिषद् का वचन है कि आत्मघाती मरने के बाद उन लोकों में जाते हैं, जो घोर अन्धकार से आवृत रहते हैं ।[६]

वेदाङ्ग

शिक्षा

शिक्षा वेद का घ्राण है । उसका वेदाङ्गों में अत्यधिक महत्त्व है । उसमें वर्णों के उच्चारण आदि के सम्वन्ध में विवेचन किया गया है ।[७]

---

१. 'उद्दामप्रसृतेन्द्रियाश्वसमुत्थापितं हि रजः कलुषयति दृष्टिमनक्षजिताम् ।'
हर्ष० १।४

२. 'यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥'
कठोपनिषद् १।३।५

३. हर्ष० १।१८

४. बृहदारण्यकोपनिषद् ४।४।२२

५. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. I, p. 85.

६. 'असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥'
ईशावास्योपनिषद्, ३ ।

७. 'The next Vedānga in our list is śikshā or the science of proper pronunciation, especially as teaching the laws of euphony peculiar to the Veda. This comprises the knowledge of letters, accents, quantity, the right use of the organs of articulation, and phonetics generally.' —Monier Monier-Williams : Indian Wisdom, p. 149.

पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि अव्यक्त तथा पीडित वर्णों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वर्णों का उचित प्रयोग करने से प्रयोक्ता ब्रह्मलोक में महनीय होता है।[१] तात्पर्य यह है कि वर्णों का सुस्पष्ट उच्चारण होना चाहिए।

जब शुक जय शब्द का उच्चारण करता है, तब वर्ण और स्वर स्पष्ट उच्चरित होते हैं।[२]

शुक आर्या का पाठ करता है। उसके वर्णोच्चारण में स्पष्टता है और स्वर में मधुरता। वर्णों का प्रविभाग स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। मात्रायें, अनुस्वार तथा स्वर अभिव्यक्त हैं।[३]

बाण पाठ करने के नियमों को जानते हैं, इसीलिए उन्होंने वर्णोच्चारण में स्पष्टता तथा स्वर में मधुरता की बात कही है। पाणिनीयशिक्षा में पाठक के गुणों का विवेचन किया गया है। पाठक के छः गुण कहे गये हैं—माधुर्य, अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण, पदों का विभाग, सुन्दर और शुद्ध स्वर, धैर्य तथा लय।[४]

हर्षचरित में वर्णन उपलब्ध होता है कि दुर्वासा ने विकृत स्वर से गान किया।[५]

स्वर तीन होते हैं—उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित।[६]

यदि स्वर सम्यक् उच्चरित न हों, तो मन्त्र यजमान को नष्ट कर देता है।[७] मन्त्रों का ठीक उच्चारण होना चाहिए। सम्यक् उच्चारित मन्त्र ही अपने तात्पर्य को बोधित करते हैं।

व्याकरण

बाण व्याकरण के मर्मज्ञ थे। उनकी भाषा और शैली का परिशीलन करने से उनके व्याकरण-विषयक ज्ञान का भान होता है। उनकी रचनाओं में अनेक स्थलों पर व्याकरण-सम्बन्धी बातों का उल्लेख मिलता है।

---

१. 'एवं वर्णाः प्रयोक्त[व्य]ा नाव्यक्ता न च पीडिताः।
सम्यग् वर्णप्रयोगे[ण] ब्रह्मलोके महीयते॥' — पाणिनीयशिक्षा, ३१।

२. काद०, पृ० २६

३. 'श्रुता भवद्भिरस्य [...] विहङ्गमस्य स्पष्टतया वर्णोच्चारणे स्वरे च मधुरता। ...यदयम-संकीर्णवर्णप्रविभ[ाग]मभिव्यक्तमात्रानुस्वारसंस्कारयोगां विशेषसंयुक्तां गिरमुदीरयति।' वही, पृ० २६।

४. 'माधुर्यमक्षरव्यक्ति[ः] पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं [च] षडेते पाठके गुणाः॥' — पाणिनीयशिक्षा, ३३।

५. हर्ष० ११२

६. पाणिनीयशिक्षा, [..]१।

७. 'मन्त्रो हीनः स्व[र]तो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो [यज]मानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥'
वही ५२।

बाण अपने चचेरे भाइयों की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—

'प्रसन्नवृत्तयो गृहीतवाक्याः कृतगुरुपदन्यासा न्यायवेदिनः सुकृतसंग्रहाभ्यासगुरवो लब्धसाधुशब्दा लोक इव व्याकरणेऽपि ।'[१]

'प्रसन्नवृत्ति' का तात्पर्य है—स्पष्ट व्याख्यान, विशुद्ध स्पष्टीकरण। बाण के चचेरे भाइयों को पाणिनि के सूत्रों का सम्यक् ज्ञान था और वे सूत्रों की स्पष्ट व्याख्या करते थे। वृत्ति का अर्थ काशिकावृत्ति भी किया गया है।[२]

'वाक्य' का अर्थ है—वार्तिक।[३] बाण के चचेरे भाई कात्यायन के वार्तिकों को पूर्णरूप से जानते थे। 'वाक्य' भर्तृहरि के वाक्यपदीय के लिए भी प्रयुक्त माना जा सकता है।[४]

'सुबन्त और तिङन्त पद कहे जाते हैं।[५]

'न्यास' से तात्पर्य काशिकावृत्ति पर जिनेन्द्रबुद्धिकृत न्यास नामक टीका से है।[६]

न्याय उन नियमों को कहते हैं, जिनकी सहायता से सूत्रों का अर्थ किया जाता है। जैसे—**'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे'** या **'छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति'**।[७]

'संग्रह' से तात्पर्य व्याडि के संग्रह नामक ग्रन्थ से है।[८]

साधु शब्द का अर्थ है—शुद्ध शब्द, अनपभ्रष्ट शब्द।[९] बाण के चचेरे भाई व्याकरणशास्त्र के मर्मज्ञ थे, अतएव वे व्याकरण-सम्मत शब्दों का ही प्रयोग करते थे।

बाण ने 'व्याख्यान' पद का प्रयोग किया है।[१०] पदों का विभाजन, उदाहरण, प्रत्युदाहरण तथा वाक्याध्याहार—इनको समुदित रूप से व्याख्यान कहते हैं।[११]

एक स्थल पर **'प्रत्ययानां परत्वम्'** प्रयोग मिलता है।[१२] पाणिनि के **'प्रत्ययः'** ३।१।१ तथा **'परश्च'** ३।१।२— इन सूत्रों से ज्ञात होता है कि प्रत्यय का प्रकृति के बाद प्रयोग होता है।

---

१. हर्ष० ३।३९-४०

२, ३, ४. Kane's Notes on the Harshacharita, Uc[illegible]. III, p. 172.

५. 'सुप्तिङन्तं पदम्'–पा० १।४।१४

६. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अ[illegible]न, पृ० ५३।

७, ८. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch.[illegible]I, p. 172.

९. हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० १२७।

१०. 'तान्येव...व्याख्यानमण्डलानि' — हर्ष० ३।३८

११. 'न केवलानि चर्चापदानि व्याख्यानम् – वृद्धिः – आत् –[illegible] ऐजिति। किं तर्हि? उदाहरणं – प्रत्युदाहरणं – वाक्याध्याहारः–इत्येतत्समुदित[illegible]व्याख्यानं भवति।'
महाभाष्य (प्रथ[illegible] खण्ड), पृ० ५९।

१२. काद०, पृ० ११२।

कवि ने पुरुष, विभक्ति, आदेश, कारक, सम्प्रदान, आख्यात, क्रिया तथा अव्यय पदों का प्रयोग किया है।[१]

पुरुष तीन होते हैं—प्रथम, मध्यम तथा उत्तम।[२]

विभक्ति दो प्रकार की होती है—सुप् तथा तिङ।[३]

किसी शब्द अथवा वर्ण के स्थान पर जो अन्य शब्द या वर्ण कर दिया जाता है, वह आदेश कहा जाता है। जैसे—स्त्रीलिङ्ग में त्रि के स्थान पर तिसृ या चतुर् के स्थान पर चतसृ आदेश होता है।[४]

कारक उसे कहते हैं, जो क्रिया का जनक होता है—**क्रियाजनकं कारकम्।**[५] महाभाष्य में कहा गया है कि जो करने वाला है, वह कारक कहा जाता है—**करोतीति कारकमिति।**[६]

सम्प्रदान एक कारक है। कर्त्ता दान के कर्म से जिसे सन्तुष्ट करना चाहता है, वह सम्प्रदान कहा जाता है।[७]

तिङन्त पद को आख्यात कहते हैं।[८]

क्रिया की परिभाषा इस प्रकार से प्रस्तुत की गयी है—'जो कुछ सिद्ध या असिद्ध साध्य रूप से अभिहित हो, उसे क्रमरूप का आश्रय करने के कारण क्रिया कहते हैं।'[९]

'जो तीनों लिङ्गों, सभी विभक्तियों तथा सभी वचनों में एक रूप रहता है, उसे अव्यय कहते हैं।'[१०]

---

१. 'व्याकरणमिव प्रथममध्यमोत्तमपुरुषविभक्तिस्थितानेकादेशकारकाख्यातसंप्रदानक्रिया-व्ययप्रपञ्चसुस्थितम्' – काद० पृ० १७६।

२. 'तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः' – पा० २।२।१०१

३. 'विभक्तिश्च' – वही, १।४।१०४

४. 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' – वही, ७।२।९९

५. सिद्धान्तकौमुदी की 'कारके' १।४।२३ पर बालमनोरमा व्याख्या, पृ० ४०८।

६. महाभाष्य (प्रथम खण्ड), पृ० २४२।

७. 'कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम्' – पा० १।४।३२

८. 'आख्यातं तिङन्तं पदम्' – कादम्बरी, हरिदास-सिद्धान्तवागीश-कृत टीका, पृ० ३५२।

९. 'यावत्सिद्धमसिद्धं वा साध्यत्वेनाभिधीयते।
आश्रितक्रमरूपत्वात् तत् क्रियेत्यभिधीयते॥'
वाक्यपदीय ३।८।१

१०. 'सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम्॥'
मध्यकौमुदी, पृ० ४६।

'असमस्तपदवृत्ति' तथा 'द्वन्द्व' का उल्लेख मिलता है ।[1]

अनेक पदों का एक पद होना ही समास है ।[2] जब समास हो जाता है, तब समास में आये हुए सभी पद समस्त कहे जाते हैं ।

वृत्तियाँ पाँच हैं—कृत्, तद्धित, समास, एकशेष, सनाद्यन्त धातुरूप ।[3]

द्वन्द्व एक समास का नाम है । जब 'च' के अर्थ में वर्तमान अनेक सुबन्तों का समास होता है, तब वह द्वन्द्व कहा जाता है ।[4]

ज्योतिष

बाण ने ज्योतिष की अनेक बातों का उल्लेख किया है ।

तारक नामक ज्योतिषी ग्रह और संहिता का पारदृश्वा कहा गया है ।[5]

बृहत्संहिता में ज्योतिष के तीन स्कन्ध बताये गये हैं—संहिता, तन्त्र और होरा । संहितास्कन्ध में ज्योतिष के सभी विषयों का वर्णन होता है । जिसमें गणित के द्वारा ग्रहों की गति का वर्णन किया जाता है, उसे तन्त्रस्कन्ध कहते हैं । होरा में अङ्गों का निर्णय होता है, अर्थात् विवाह, यात्रा आदि का वर्णन किया जाता है ।[6]

हर्ष का जन्म ज्येष्ठ के महीने में कृतिका नक्षत्र में कृष्ण पक्ष की द्वादशी की रात्रि में हुआ था । ज्योतिषी ने आकर सूचित किया था कि सभी ग्रह अपने-अपने उच्च स्थान में हैं ।[7]

डॉ० काणे का कथन है कि हर्ष का जन्म ज्येष्ठ में कृष्ण पक्ष की द्वादशी को हुआ था, अतः सूर्य मेष-राशि का नहीं हो सकता (मेष का सूर्य उच्च होता है) ।[8]

ग्रह, मोक्ष तथा कला शब्दों का प्रयोग मिलता है ।[9]

---

१. 'असमस्तपदवृत्तिमिवाद्वन्द्वाम्' — काद०, पृ० २५० ।

२. सिद्धान्तकौमुदी की तत्त्वबोधिनी टीका, पृ० १६० ।

३. 'कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्चवृत्तयः ।'
मध्यकौमुदी, पृ० १६२ ।

४. 'चार्थे द्वन्द्वः' — पा० २।२।२९

५. हर्ष० ४।६

६. 'ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं
तत्कात्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता ।
स्कन्धेऽस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ
होरान्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोऽपरः ।।'
बृहत्संहिता १।९

७. 'सर्वेषूच्चस्थानस्थितेष्वेवं ग्रहेषु' — हर्ष० ४।६

८. Kane's Notes on the Harsharcharita, Uch. IV, p. 24.

९. 'ज्योतिषमिव ग्रहमोक्षकलाभ्यासनिपुणम्' — काद० पृ० ७७ ।

ग्रह और मोक्ष से तात्पर्य सूर्य और चन्द्र के ग्रहण और मोक्ष से है ।[१] कला के सम्बन्ध में इस प्रकार निर्देश प्राप्त होता है—१५ निमेष = १ काष्ठा, ३० काष्ठा = १ कला, १५ कला = १ नाडिका, २ नाडिका = १ मुहूर्त ।[२]

कवि ने चित्रा, श्रवण और भरणी नक्षत्रों का उल्लेख किया है ।[३]

आर्द्रा और मृगशीर्ष नक्षत्रों का उल्लेख हुआ है ।[४]

कृत्तिका और आश्लेषा का भी उल्लेख मिलता है ।[५]

नक्षत्र सत्ताईस हैं । उनमें अश्विनी प्रथम है और रेवती अन्तिम ।[६]

बाण ने वर्णन किया है कि ग्रहपंक्ति ध्रुव-प्रतिबद्ध होती है ।[७]

ज्योतिष का प्रमाण है—

'भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धमाक्षिप्तं प्रवहानिलैः ।
पर्येत्यजस्रं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमम् ॥'[८]

---

१. काद०, भानुचन्द्रकृत टीका, पृ० १७७ ।

२. 'निमेषो मानुषो योऽयं मात्रामात्रप्रमाणतः ।
तैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिशंत्काष्ठास्तथा कला ॥
नाडिका तु प्रमाणेन कलाश्च दश पञ्च च ।
... ...
नाडिकाभ्यामथ द्वाभ्यां मुहूर्तो द्विजसत्तमाः ।'
Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1-124 of Peterson's edition), pp. 42-43.

३. 'नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्' — काद० पृ० २३ ।

४. 'व्याधानुगम्यमानतरलतारकमृगा' — वही, पृ० ४१ ।
यहाँ 'व्याध' पद [illegible] प्रयोग आर्द्रा नक्षत्र के लिए हुआ है ।

५. 'नक्षत्रराशिरिव [illegible]त्रमृगकृत्तिकाश्लेषोपशोभितः' — वही, पृ० ७३ ।

६. 'अश्विनी भरणी [illegible]व कृत्तिका रोहिणी मृगः ।
आर्द्रा पुनर्वसुः [illegible]ष्यस्ततोऽश्लेषा मघा तथा ॥
पूर्वाफाल्गुनिका [illegible]तस्मादुत्तराफल्गुनी ततः ।
हस्तश्चित्रा तथा [illegible]स्वाती विशाखा तदनन्तरम् ॥
अनुराधा ततो [illegible]येष्ठा ततो मूला निगद्यते ।
पूर्वाषाढोत्तराष[illegible] त्वभिजिच्छ्रवणस्ततः ॥
धनिष्ठा शतत[illegible]ख्यं पूर्वाभाद्रपदा ततः ।
उत्तराभाद्रपाच[illegible] रेवत्येतानि भानि च ॥'
संग्रहशिरोमणि के पृ० २७ पर उद्धृत ।

७. 'ग्रहपङ्क्त्येव [illegible]प्रतिबद्धया' — काद० पृ० २४६ ।

८. काद०, हरिदास [illegible]सिद्धान्तवागीश की टीका में पृ० ५०६ पर उद्धृत ।

तात्पर्य यह है कि आकाश में दोनों ध्रुवों के आधार पर नक्षत्र-मण्डल का विन्यास माना जाता है और वह नक्षत्रमण्डल प्रवह वायु से आहत होकर निरन्तर भ्रमण करता है। उसी के साथ ग्रहकक्षाओं का भी भ्रमण हुआ करता है।

कादम्बरी में 'ग्रहाणां तुलारोहणम्'[1] प्रयोग प्राप्त होता है।

ग्रह एक राशि से दूसरी राशि पर जाते हैं।[2] तुला एक राशि है, अतः ग्रहों का तुलाराशि पर जाना स्वाभाविक है।

सूर्य की संक्रान्ति का उल्लेख हुआ है।[3]

ग्रह का एक राशि से दूसरी राशि पर जाना संक्रान्ति कहा जाता है।[4]

सूर्य के उत्तरायण होने का उल्लेख मिलता है।[5]

सूर्य की मकर राशि की संक्रान्ति से छः मास तक सूर्य का उत्तरायण होता है तथा कर्क राशि की संक्रान्ति से छः मास तक दक्षिणायन होता है।[6]

बाण ने उल्लेख किया है कि चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र का अतिक्रमण करता है।[7]

ग्रह एक नक्षत्र का भोग करके दूसरे नक्षत्र पर जाता है। ज्येष्ठा के बाद मूल आदि नक्षत्र आते हैं। चन्द्रमा ज्येष्ठा का अतिक्रमण करके मूल आदि पर जाता है।[8]

चन्द्रमा के सूर्य में प्रविष्ट होने का उल्लेख मिलता है।[9]

चन्द्रमा का प्रत्येक अमावास्या को सूर्य में प्रवेश होता है।[10]

मङ्गल के वक्रचार की चर्चा मिलती है।[11]

---

१. काद०, पृ० ११२।

२. 'परिणाहवशाद् भिन्ना तद्वशाद् भानि भुञ्जते।'
सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकार, श्लो० २६।

३. 'दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रान्तिः' —काद०. पृ० २००।

४. 'तत्र ग्रहाणां प्राग्राशितोऽपरराशौ संक्रमणं संक्रान्तिरिति संक्रान्तिलक्षणम्।'
मुहूर्तचिन्तामणि, व्याख्या, पृ० १२०।

५. 'शिशिरसमयसूर्यमिव कृतोत्तरासङ्गम्' —काद०, पृ० ८६।

६. 'भानोर्मकरसंक्रान्तेः षण्मासा उत्तरायणम्।
कर्क्यादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम्॥'
सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लो० ९।

७. 'शशिनो ज्येष्ठातिक्रमः' —काद०, पृ० ११३।

८. काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश की टीका, पृ० २२२।

९. 'भगवन्तं भानुमन्तमिव मूर्तिरैन्दवी' —हर्ष० ५।३१

१०. 'चन्द्रमा वा अमावास्यायामादित्यमनुप्रविशति सोऽन्तर्धीयते [illegible] न निर्जानन्ति।'
Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. V, p. 102.

११. 'लोहिताङ्गं वक्रचारेषु' —हर्ष० २।३१।

मङ्गल के वक्रगमन का वर्णन ज्योतिष के ग्रन्थों में मिलता है ।[१] मङ्गल का वक्रचार अशुभ माना गया है ।[२]

हर्ष का जन्म व्यतीपात आदि अशुभ योगों से रहित दिन में हुआ था ।[३]

सूर्यसिद्धान्त में निरूपित किया गया है—'जब सूर्य तथा चन्द्र भिन्न-भिन्न अयन में हों, दोनों का राश्यादि-योग छः राशि हो और दोनों की क्रान्ति समान हो, तब व्यतीपात योग होता है ।'[४]

व्यतीपात प्राणियों के मङ्गल का विनाश करता है ।[५]

श्रीमद्भगवद्गीता

'प्रकटितविश्वरूपाकृतेः'[६] प्रयोग गीता के विश्वरूप-दर्शन नामक ग्यारहवें अध्याय की ओर सङ्केत करता है ।

कादम्बरी में मन स्वभाव से चञ्चल कहा गया है ।[७]

गीता में मन स्वभाव से चञ्चल बताया गया है और उसका निरोध वायु के निरोध की भाँति दुष्कर कहा गया है ।[८]

बाण के उल्लेख से प्रकट होता है कि परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है ।[९]

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि मुझ अव्यक्त मूर्ति से यह संसार व्याप्त है ।[१०]

---

१. कृतर्त्तुचन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टिभिः ।
शररुद्रैश्चतुर्थेषु केन्द्रांशैर्भूसुतादयः ॥
भवन्ति वक्रिणस्तैस्तु स्वैः स्वैश्चक्राद् विशोधितैः ।
अवशिष्टांशतुल्यैः स्वैः केन्द्रैरुज्झन्ति वक्रताम् ॥'
सूर्यसिद्धान्त, स्पष्टाधिकार, श्लो० ५३-५४ ।

२. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. II, p. 135.

३. हर्ष० ४।६

४. 'विपरीतायनगतौ चन्द्राकौं क्रान्तिलिप्तिकाः ।
समास्तदा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतौ ॥'
सूर्यसिद्धान्त, पाताधिकार, श्लो० २ ।

५. 'विनाशयति पातोऽस्मिन् लोकानामसकृद्यतः ।
व्यतीपातः प्रसिद्धोऽयं संज्ञाभेदेन वैधृतः ॥' —वही, श्लो० ४ ।

६. काद०, पृ० १०

७. 'प्रकृतिचञ्चलतया ...मनसाकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति ।'
वही, पृ० २०३ ।

८. 'चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥' —गीता ६।३४

९. 'परमात्ममयीव प्राप्तिषु' —हर्ष० ४।२

१०. 'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।' —गीता ६।४

दर्शन

चार्वाक

कादम्बरी में लोकायतिक विद्या का उल्लेख हुआ है।[1] चार्वाक-दर्शन को लोकायतिक-विद्या भी कहते हैं। चार्वाक-मत के लिए लोकायत का प्रयोग मिलता है।[2]

चार्वाक-दर्शन के अनुसार पृथिवी, जल, तेज तथा वायु—ये चार ही तत्त्व हैं। इन्हीं तत्त्वों से चैतन्य उत्पन्न होता है। इनके नष्ट हो जाने पर देहरूप आत्मा स्वयं नष्ट हो जाता है।[3]

चार्वाक का कथन है कि जब तक जीवित रहे, तब तक सुख-पूर्वक जीवित रहे, ऋण लेकर भी घृत-पान करे। जब देह जलकर भस्म हो जाता है, तब उत्पत्ति कैसे हो सकती है।[4]

चार्वाक केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानता है।[5] वह ईश्वर की सत्ता नहीं स्वीकार करता।[6] वह वेदों का खण्डन करता है और कहता है कि वेद धूर्तों की कृतियाँ हैं।[7]

---

१. 'लोकायतिकविद्येवाधर्मरुचेः' —काद०, पृ० २८१।

२. 'लोकगाथामनुरुन्धाना नीतिकामशास्त्रानुसारेणार्थकामावेव पुरुषार्थौ मन्यमानाः पारलौकिकमर्थमपह्नुवानाश्चार्वाकमतमनुवर्तमाना एवानुभूयन्ते अत एव तस्य चार्वाकमतस्य लोकायतमित्यन्वर्थमपरं नामधेयम्।'
सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० २।

३. 'तत्र पृथिव्यादीनि भूतानि चत्वारि तत्त्वानि तेभ्य एव देहकारणपरिणतेभ्यः किण्वादिभ्यो मदशक्तिवत् चैतन्यमुपजायते तेषु विनष्टेषु सत्सु स्वयं विनश्यति। तदिह विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति स न प्रेत्य संज्ञास्तीति तत् चैतन्यविशिष्टदेह एवात्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्।'
वही, पृ० ३।

४. 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥' — वही, पृ० ११।

५. M. Hiriyanna : Outlines of Indian Philosophy, p. 189.

६. ibid., p. 193. and
Jadunath Sinha : A History of Indian Philosophy (Vol. I), p. 247.

७. 'त्रय्या धूर्तप्रलापमात्रत्वेन' — सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० ४।
'अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः॥'
वही, पृ० ४।

लोकायतिक का मत है—न स्वर्ग है, न मोक्ष है, न पारलौकिक आत्मा है और न तो वर्ण, आश्रम आदि की क्रियायें ही फल देने वाली हैं।[१]

जैन

बाण ने जैन-दर्शन के अहिंसा-सिद्धान्त का उल्लेख किया है।[२]

जैन अहिंसा को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करते हैं।[३] वे अपने जीवन में हिंसा से सदा बचने का प्रयास करते हैं।

बौद्ध

बाण बौद्ध-दर्शन के ज्ञाता थे। उन्होंने कई स्थलों पर बौद्ध-दर्शन-सम्बन्धी बातों का उल्लेख किया है।

वे हर्षचरित में कोश[४] और बोधिसत्त्व-जातक[५] का उल्लेख करते हैं। कोश से तात्पर्य वसुबन्धु-कृत अभिधर्मकोश से है।

त्रिसरण[६] (त्रिशरण), शिक्षापद,[७] शील,[८] मैत्री[९] तथा करुणा[१०]—ये पारिभाषिक शब्द हर्षचरित में प्रयुक्त किये गये हैं।

बुद्ध, धर्म और संघ—ये त्रिशरण कहे जाते हैं। **'बुद्धं सरणं गच्छामि धम्मं सरणं गच्छामि संघं सरणं गच्छामि'** में बुद्ध, धर्म और सङ्घ-इन तीनों की शरण में जाने की बात कही गयी है।[११]

शिक्षापद (सिक्खापद) दस हैं—१. हिंसा न करना (अहिंसा), २. चोरी न करना (अस्तेय), ३. अब्रह्मचर्य का परित्याग (ब्रह्मचर्य), ४. असत्य न बोलना (सत्य), ५. मद्य का निषेध, ६. अनुचित समय में भोजन न करना, ७. सङ्गीत

---

१. 'न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥'
सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० १०।

२. 'जिनधर्मेणेव जीवानुकम्पिना' —काद०, पृ० १०२।

३. डॉ० राधाकृष्णन् : भारतीय दर्शन (प्रथम भाग), पृ० २२९-२३०, तथा M. Hiriyanna : Outlines of Indian Philosophy, p. 167.

४. 'शुकैरपि शाक्यशासनकुशलैः कोशं समुपदिशद्भिः' —हर्ष० ८।७३

५. 'कौशिकैरपि बोधिसत्त्वजातकानि जपद्भिः' —वही, ८।७३

६, ७, ८, ९. वही, ८।७३

१०. वही, ८।७८

११. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VIII, p. 223.
तथा ;
'यो च बुद्धं च धम्मं च संघं च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति॥'
धम्मपद, १९०।

का परित्याग, ८. माला, गन्ध, मण्डन आदि का परित्याग, ९. महार्घ शय्या का परित्याग, १०. सुवर्ण-रजत का परित्याग।[1]

शिक्षापद में जो प्रथम पाँच हैं, वे पाँच शील भी कहे जाते हैं।[2]

दस शील भी माने गये हैं। वे ये हैं—१. हिंसा न करना, २. चोरी न करना, ३. अब्रह्मचर्य का परित्याग, ४. असत्य न बोलना, ५. पिशुन वचन का परित्याग, ६. कठोर वचन न बोलना, ७. अनर्थ वचन का प्रयोग न करना, ८. लोभ का परित्याग, ९. द्रोह न करना और १०. मिथ्या-दृष्टि का परित्याग।[3]

बाद में दस शील और दस शिक्षापद एक माने गये हैं।[4]

मैत्री और करुणा चार अप्रमाणों में हैं। चार अप्रमाण ये हैं—मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा।[5]

कादम्बरी में सर्वास्तिवाद का उल्लेख मिलता है।[6]

सर्वास्तिवाद में जगत् की सभी वस्तुओं की सत्ता स्वीकार की गयी है। 'सर्वास्तिवादी यथार्थवादी दर्शन है अर्थात् हमारी इन्द्रियों के द्वारा बाह्य जगत् का जो स्वरूप प्रतीत होता है, उसे वह सत्य तथा यथार्थ मानता है।'[7]

शङ्कराचार्य के अनुसार सर्वास्तिवादी वे हैं, जो बाहरी, भीतरी, भूत, भौतिक, चित्त तथा चैत्त—सभी वस्तुओं को स्वीकार करते हैं।[8]

१, २, ३. Rhys Davids : Pali–English Dictionary (1959), pp. 708 and 712.

४. 'The so-called 10 Sīlas (Childers) as found at Kh.II (under the name of dasa-sikkhāpada) are of late origin and served as memorial verses for the use of novices. Stricty speaking they should not be called dasa-sīla.'

ibid., p. 712.

५. 'अप्रमाणानि चत्वारि व्यापादादिविपक्षतः।
मैत्र्यद्वेषः करुणा च मुदिता सुमनस्कता॥'

अभिधर्मकोश ८।२९

द्रष्टव्य अभि० ८।२९ पर राहुल की टीका – 'मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षेति चत्वारि अप्रमाणानि उच्यन्ते, अप्रमाणभावनाविपाकफलप्रदत्वात्।'

६. 'बौद्धेनेव सर्वास्तित्ववादशूरेण' – काद०, पृ० १०२।

७. बलदेव उपाध्याय : बौद्ध-दर्शन, पृ० २२६।

८. 'तत्र ये सर्वास्तित्ववादिनो बाह्यमान्तरं च वस्त्वभ्युपगच्छन्ति भूतं भौतिकं च चित्तं चैत्तं च।'

ब्रह्मसूत्र २।२।१८ पर शाङ्करभाष्य

योगाचार के विज्ञानवाद का भी निर्देश उपलब्ध होता है।[१]

योगाचार के मत में विज्ञान ही सत् है, बाह्य जगत् असत् है। जो कुछ दिखायी पड़ रहा है, वह चित्त का ही रूप है।[२]

न्याय-वैशेषिक

कवि की रचनाओं में न्याय-वैशेषिक की कई बातों का उल्लेख मिलता है।

हर्षचरित में प्रमाणगोष्ठी की चर्चा मिलती है।[३]

न्याय-दर्शन में निरूपित किया गया है कि प्रमाण, प्रमेय आदि के तत्त्वज्ञान से मोक्ष मिलता है।[४]

प्रमा का साधन प्रमाण कहा जाता है।[५] प्रमा यथार्थानुभव को कहते हैं।[६]

कादम्बरी में **'यत्र च दशरथसुतनिकरनिशितशरनिपातनिहतरजनीचरबलबहलरुधिरसिक्तमूलमद्यापि तद्रागाविद्धनिर्गतपलाशमिवाभाति नवकिसलयमरण्यम्'**[७] उल्लेख मिलता है। वृक्षों में लाल पल्लव दिखायी पड़ रहे हैं। वृक्षों की जड़ें राक्षसों के रक्त से पहले सिक्त हो गयी थी। कवि की कल्पना है कि वृक्षों में लाल पत्ते इसलिए निकल रहे हैं, क्योंकि वृक्ष-मूल रक्त से सींचे गये हैं।

बाण ने **'कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः'**[८] सिद्धान्त के आधार पर योजना की है। सूत्र का तात्पर्य है कि कारण में जो गुण होते हैं, वे कार्य में भी होते हैं।

---

१. 'बौद्धबुद्धिमिव निरालम्बाम्' —काद०, पृ० २५०।
'जिनस्येवार्थवादशून्यानि दर्शनानि' —हर्ष० २।३५

२. 'दृश्यते न विद्यते बाह्यं चित्तं चित्रं हि दृश्यते।
देहभोगप्रतिष्ठानं चित्तमात्रं वदाम्यहम्॥'

अर्थात् बाहरी दृश्य जगत् बिल्कुल विद्यमान नहीं है। चित्त एकाकार है। परन्तु वही इस जगत् में विचित्र रूपों में दीख पड़ता है। कभी वह देह के रूप में और कभी भोग (वस्तुओं के उपभोग) के रूप में प्रतिष्ठित रहता है, अतः चित्त ही की वास्तविक सत्ता है। जगत् उसी का परिणाम है।'

बलदेव उपाध्याय : बौद्ध-दर्शन, पृ० २८२-२८३।

३. हर्ष० ३।३८

४. 'प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।'

न्यायदर्शन १।१।१

५. 'प्रमाकरणं प्रमाणम्।' —तर्कभाषा, पृ० १३।

६. 'यथार्थानुभवः प्रमा।' —वही, पृ० १४।

७. काद०, पृ० ४३

८. वैशेषिक-दर्शन २।१।२४

कवि का 'असत्साधनमिवादृष्टान्तम्'[१] प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। इसमें निर्दशित किया गया है कि असत् हेतु दृष्टान्त से रहित होता है। यदि कोई दृष्टान्त न दिया जा सके, तो अनुपसंहारी हेत्वाभास माना जाता है। 'सर्वमनित्यं प्रमेयत्वात्' के लिए कोई उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, क्योंकि कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जिसमें अनित्यत्व और प्रमेयत्व तो हो, किन्तु सर्व के अन्तर्गत न आती हो। इस हेत्वाभास का दूसरा उदाहरण है—'जगत् अब्रह्मप्रकृतिकं चैतन्यानन्वितत्वात्।'[२]

कादम्बरी में पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की तृप्ति का उल्लेख किया गया है।[३]

घ्राण गन्ध, रसना रस, चक्षु रूप, त्वक् स्पर्श और श्रोत्र शब्द की उपलब्धि का साधन है।[४]

द्रव्य[५] और महाभूत[६] पदों का उल्लेख मिलता है।

द्रव्य नौ माने गये हैं—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन।[७] इनमें पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत कहे जाते हैं।[८]

कवि ने 'पार्थिवोऽपि गुणमयः'[९] प्रयोग किया है। जो पार्थिव है, वह गुणमय नहीं हो सकता।[१०] पृथिवी द्रव्य है और गुण द्वितीय पदार्थ है।[११] कोई वस्तु द्रव्य से बनी हो

१. काद०, पृ० २३४।
२. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1-124 of Peterson's edition), p. 312.
३. 'इदमपि खल्वमृतमिव सर्वेन्द्रियाह्लादनसमर्थमतिविमलतया चक्षुषः प्रीतिमुपजनयति, शिशिरतया स्पर्शसुखमुपहरति, कमलसुगन्धितया घ्राणमाप्याययति, हंसमुखरतया श्रुतिमानन्दयति, स्वादुतया रसनामाह्लादयति।' —काद०, पृ० २३५।
४. 'तत्र च गन्धोपलब्धिसाधनमिन्द्रियं घ्राणम्।' —तर्कभाषा, पृ० १६६।
'रसनोपलब्धिसाधनमिन्द्रियं रसनम्।' —वही, पृ० १६७।
'रूपोपलब्धिसाधनमिन्द्रियं चक्षुः।' —वही, पृ० १६७।
'स्पर्शोपलब्धिसाधनमिन्द्रियं त्वक्।' —वही, पृ० १६७।
'शब्दोपलब्धिसाधनमिन्द्रियं श्रोत्रम्।' —वही, पृ० १६७।
५. हर्ष० ४।१
६. वही, ४।२; ८।८४
७. 'तानि च द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव।' तर्कभाषा, पृ० १७०।
८. तर्कभाषा की विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि-कृत व्याख्या, पृ० १७०।
९. हर्ष० ६।४९
१०. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VI, p.159.
११. 'ते च द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाः।' —तर्कभाषा, पृ० १६८।

और गुण से भी, यह असम्भव है। यहाँ विरोधाभास अलङ्कार द्वारा न्याय-वैशेषिक के सिद्धान्त का उपस्थापन किया गया है।

आकाश का गुण शब्द माना गया है—'शब्दगुणमाकाशम्'[1]। यही बात 'आकाशमय इव शब्दप्रादुर्भावे'[2] के द्वारा प्रकट की गयी है।

बाण ने 'प्रायेण परमाणव इव समवायेष्वनुगुणीभूय द्रव्यं कुर्वन्ति पार्थिवं क्षुद्राः'[3] में परमाणु, समवाय आदि पारिभाषिक पदों का प्रयोग किया है।

दो परमाणुओं के संयोग से द्व्यणुक उत्पन्न होते हैं। तीन द्व्यणुकों में संयोग होने पर त्र्यणुक उत्पन्न होता है। चार त्र्यणुकों से चतुरणुक और चतुरणुकों से स्थूलतर तथा स्थूलतम पदार्थ उत्पन्न होते हैं। परमाणु द्व्यणुक के समवायिकारण होते हैं और द्व्यणुक त्र्यणुक के समवायिकारण होते हैं।[4]

परमाणुओं और द्व्यणुक में समवाय सम्बन्ध होता है। अयुतसिद्ध पदार्थों का समवाय सम्बन्ध होता है।[5]

हर्षचरित में जाति पदार्थ की ओर सङ्केत किया गया है।[6] जाति नित्य है और अनेकानुगत है।[7]

सांख्य

कादम्बरी में प्रधान और पुरुष का उल्लेख किया गया है।[8]

सांख्य में प्रधान और पुरुष—ये दो तत्त्व मुख्य हैं। प्रधान को प्रकृति कहते हैं। पुरुष न तो प्रकृति है और न तो विकृति ही।[9]

---

१. तर्कभाषा, पृ० १८६।

२. हर्ष० ३।४४

३. वही, ४।११

४. 'द्वयोः परमाण्वोः क्रियया संयोगे सति द्वचणुकमुत्पद्यते। तस्य परमाणू समवायिकारणं तत्संयोगोऽसमवायिकारणम्, अदृष्टादि निमित्तकारणम्। ततो द्व्यणुकानां त्रयाणां क्रियया संयोगे सति त्र्यणुकमुत्पद्यते। तस्य द्वयणुकानि समवायिकारणं, शेषं पूर्ववत्। एवं त्र्यणुकैश्चतुर्भिश्चतुरणुकम्। चतुरणुकैरपरं स्थूलतरं, स्थूलतरैरपरं स्थूलतमम्।' तर्कभाषा, पृ० १८१।

५. 'तत्रायुतसिद्धयोः सम्बन्धः समवायः।' —वही, पृ० २६।
'ययोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ।' —वही, पृ० २६।

६. 'असाधारणा द्विजातयः' —हर्ष० १।१८

७. Kane's Notes on the Harshacharita; Uch. I, p. 87.

८. 'सांख्यागमेनेव प्रधानपुरुषोपेतेन' —काद०, पृ० १०२।

९. 'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥ —सांख्यकारिका, ३।
उपर्युक्त कारिका पर द्रष्टव्य वाचस्पति-कृत तत्त्वकौमुदी—
'प्रकरोति प्रकृतिः प्रधानम्, सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था, सा अविकृतिः प्रकृतिरेवेत्यर्थः।'

प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहङ्कार, अहङ्कार से पञ्चतन्मात्रायें, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ तथा पञ्चतन्मात्राओं से महाभूत उत्पन्न होते हैं।[१]

जब पुरुष यह समझ लेता है कि वह प्रकृति से भिन्न है, तब वह प्रकृति के प्रति उदासीन हो जाता है। प्रकृति भी यह समझकर कि पुरुष ने उसके स्वरूप को समझ लिया है, अपना कार्य बन्द कर देती है। सांख्य-मत में प्रकृति और पुरुष के भेद के ज्ञान से ही कैवल्य प्राप्त होता है।[२]

तीनों गुणों का निर्देश किया गया है।[३]

सांख्य में सत्त्व, रजस् और तमस्—इन तीनों गुणों की चर्चा मिलती है। सत्त्व हलका और प्रकाशक होता है, रजस् चञ्चल और उत्तेजक होता है तथा तमस् भारी और अवरोधक होता है।[४]

योग

बाण की रचनाओं में योग शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है।[५] चित्तवृत्ति के निरोध का नाम योग है।[६]

नियम[७] पद का प्रयोग मिलता है।

नियम योग का अङ्ग है।[८] शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान

---

१. 'प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि॥'
सांख्यकारिका, २२।

२. "Recognizing that nature is not connected with it, spirit is indifferent to her, nature recognizing that her true character is understood ceases her activity, and, though the union of the two remains in existence even after the attainment of true knowledge, there is no possibility of further production."
A. B. Keith : The Sāṁkhya System, p. 98.

३. '...त्रिगुणात्मने नमः।' —काद०, पृ० १।
'सर्वगुणोपेता राजसेनानभिभूताः' —हर्ष० १।१८
'पवनमय इव सर्वपार्थिवरजोविकारहरणे' —वही, ३।४४

४. 'सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥' —सांख्यकारिका, १३।

५. हर्ष० १।७; काद०, पृ० ७५।

६. 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' —पातञ्जलयोगदर्शन १।२

७. हर्ष० ८।७३

८. 'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।'
पातञ्जलयोगदर्शन २।२९

(ईश्वर में मन को आसक्त करना)—ये नियम हैं।[१]

शौच पद प्रयुक्त किया गया है।[२] शौच नियम के अन्तर्गत है।

पद्मासन,[३] ब्रह्मासन,[४] पर्यङ्कबन्ध[५] और स्वस्तिकबन्ध[६] पदों का उल्लेख किया गया है।

पद्मासन के सम्बन्ध में इस प्रकार निर्देश मिलता है—'इस आसन में बाईं जांघ पर दाहिने चरण को तथा दाहिनी जाँघ पर बायें चरण को रखना चाहिए। दाहिने हाथ को पीछे से घुमाकर बाईं जाँघ पर स्थित दाहिने चरण के अँगूठे को तथा बायें हाथ को पीछे से घुमाकर दाहिनी जाँघ पर स्थित बायें चरण के अँगूठे को पकड़ना चाहिए। हृदय के समीप चार अङ्गुल के अन्तर पर चिबुक को रखकर नासिका के अग्रभाग को देखना चाहिए। यह आसन व्याधियों को नष्ट करने वाला माना जाता है।'[७]

ब्रह्मासन का प्रयोग बाण ने शायद पद्मासन के लिए किया है।[८]

मल्लिनाथ ने कुमारसम्भव की टीका में पर्यङ्कबन्ध का अर्थ वीरासन किया है। वीरासन में दाहिने पैर को बाईं जाँघ पर और बायें पैर को दाहिनी जाँघ पर रखा जाता है।[९]

जानु और जंघा के बीच में दोनों पादतलों को ठीक से रख कर शरीर को सीधा करके बैठने से स्वस्तिक आसन बनता है।[१०]

---

१. 'शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।' – पातञ्जलयोगदर्शन २।३२

२. हर्ष० ८।७३

३. काद०, पृ० १७८।

४. वही, पृ० २४३।

५. हर्ष० ३।४७

६. वही, ८।७०

७. 'वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम्।
अंगुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकये-
देतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते॥'

हठयोगप्रदीपिका १।४४

८. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 124-237 of Peterson's edition), p. 15.

९. 'एकं पादमथैकस्मिन् विन्यस्योरौ तु संस्थितम्।
इतरस्मिंस्तथैवोरुं वीरासनमुदाहृतम्॥'

कुमारसम्भव ३।४५ पर मल्लिनाथ की टीका में उद्धृत।

१०. 'जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायो विशन्मन्त्री स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते॥'

Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VIII, p. 217.

प्राणायाम,[1] ध्यान[2] और समाधि[3] शब्दों के प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

श्वास और प्रश्वास की गति का विच्छेद प्राणायाम कहा जाता है।[4]

ध्येय में प्रत्यय (बुद्धि) का एकाग्र होना ध्यान कहा जाता है।[5]

कवि ने 'व्युत्थान' पद का प्रयोग किया है।[6] व्युत्थान का अर्थ है—समाधि-निवृत्ति।[7] इस स्थिति में चित्त की वृत्तियाँ विषयों में प्रवृत्त और चञ्चल रहती हैं। योगसूत्र में निरूपित किया गया है कि प्रातिभ आदि समाधि में विघ्न हैं, किन्तु व्युत्थान में सिद्धियाँ हैं।[8]

हारीत के वर्णन के प्रसङ्ग में 'महालयप्रवेश'[9] का उल्लेख हुआ है। साधक कुण्डलिनी के मुख को ऊपर करके उसे ब्रह्मरन्ध्रतक ले जाता है और वहाँ स्थिर कर देता है। यही महालय कहा जाता है।[10]

---

१. काद०, पृ० ३०६।

२. वही, पृ० ७६।

३. हर्ष० ११७

४. 'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।'
पातञ्जलयोगदर्शन २।४६
पात० २।४६ पर व्यास-भाष्य—
'सत्यासनजये बाह्यस्य वायोरागमनं श्वासः। कौष्ठ्यस्य वायोर्निःसारणं प्रश्वासः। तयोर्गतिविच्छेद उभयाभावः प्राणायामः।'

५. 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।' —पातञ्जलयोगदर्शन ३।२
उक्त सूत्र पर व्यास-भाष्य — 'तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानतासदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।'

६. हर्ष० ४।२

७. Kane's Notes on Harshacharita, Uch. IV, p. 11.

८. 'ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः।' —पातञ्जल० ३।३७
उक्त सूत्र पर तत्त्ववैशारदी — 'व्युत्थितचित्तो हि ताः सिद्धीरभिमन्यते, जन्मदुर्गत इव द्रविणकणिकामपि द्रविणसंभारम्। योगिना तु समाहितचित्तेनोपनताभ्योऽपि ताभ्यो विरन्तव्यम्।'
उक्त सूत्र पर द्रष्टव्य भोजवृत्ति — 'ते प्राक् प्रतिपादिताः फलविशेषाः समाधेः प्रकर्षे उपसर्गा उपद्रवा विघ्नाः, तत्र हर्षस्मयादिकरणेन समाधिः शि[illegible]लीभवति। व्युत्थाने तु पुनर्व्यवहारदशायां विशिष्टफलदायकत्वात् सिद्धयो भव[illegible]।'

९. 'वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः' —काद०, पृ० ७४।

१०. काद०, भानुचन्द्र-कृत टीका, पृ० ७४।
तथा—

बाण का 'सतारान्तःपुरपर्यन्तस्थिततनुः'[१] प्रयोग विमर्श के योग्य है।

भानुचन्द्र के अनुसार इसमें उस योगी की ओर सङ्केत किया गया है, जिसका लैङ्गिक तनु तार (प्रणव) से युक्त कुण्डलिनी के पर्यन्त में विराजमान सहस्रार में योग के सामर्थ्य से स्थित हो चुका हो।[२]

मीमांसा

बाण ने अधिकरण,[३] अनुवाद[४] और भावना[५] शब्दों का प्रयोग किया है।

षट्-चक्र-भेद के बाद भ्रूमध्य के निम्नदेश से यावत् विकल्प तिरोहित होने लगते हैं। उस समय ललाटप्रदेश में देहाभिमान वर्जित होकर परम ज्योति के अमृत-कोष की उत्पत्ति होती है और प्रतिदिन उस महाशक्ति के आकर्षण से आकृष्ट होने पर क्रमशः अन्तरतर-अन्तरतम भाव से महाशून्य भेद कर सहस्रदल कमल का साक्षात्कार होता है। भ्रूमध्यस्थ बिन्दु से सहस्रार के महाबिन्दु-पर्यन्त विभिन्न स्तर हैं। इन सब स्तरों को क्रमशः अतिक्रमण करते हुए महाशक्ति महाबिन्दुस्थ परम-शिव का आलिङ्गन करती है। सुदीर्घ काल के विरह के बाद शिव-शक्ति का महामिलन सङ्घटित होता है। उस समय कुण्डलिनीशक्ति कुण्डलभाव को त्याग कर दण्डरूप धारण करती है और अन्त में महाबिन्दु में परमशिव के साथ समरस्य-लाभ करती है। इस मिलन से जो अमृतधारा का क्षरण होता है, उस सुशीतल धारा में मन और प्राण अभिषिक्त हो जाते हैं और ऊर्ध्वमुख होकर उस धारा का पान करने लगते हैं। समान वायु की क्रिया के बाद उदानवायु की क्रिया में कुण्डलिनी की ऊर्ध्वगति निष्पन्न होती है। यह ऊर्ध्वगति वस्तुतः सहस्रार में समाप्त न होकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त अग्रसर होती है। उसके बाद और ऊर्ध्वगति नहीं रहती। उस समय व्यान-शक्ति के प्रभाव से अपनी खण्ड सत्ता अनन्त व्यापक रूप धारण करती है। संक्षेप में यही आत्मा का नित्य स्वरूप में लौट जाने का इतिहास है।'

म० म० गोपीनाथ कविराज : भारतीय संस्कृति और साधना (प्रथम खण्ड), पृ० ३२१।

१. काद०, पृ० ६५।

२. 'तारः शक्तिविशेषः प्रणवो ब्रह्म च। तदुक्तमन्यत्र – 'इदं तारत्रयं प्रोक्तमगम्यागमनादृते।' एतद्वृत्तौ 'तारत्रयं प्रणवशतत्रयम्' इत्याह विज्ञानेश्वरः। तया सह वर्तमानं यदन्तःपुरमिति पुरस्य शरीरस्यान्तर्मध्यं कुण्डलिनी नाडीविशेषः।...तस्याः पर्यन्तः सहस्रारं कमलं तत्र योगसामर्थ्यात् स्थितं लैङ्गिकं तनुर्यस्य स तथा।'

काद०, भानुचन्द्र-कृत टीका, पृ० ६६।

३. हर्ष० २।३५

४. वही, ३।५४

५. काद०, पृ० २४

जैमिनि-कृत पूर्वमीमांसा अध्यायों में विभक्त है; अध्याय पादों में और पाद अधिकरणों में विभक्त हैं। प्रत्येक अधिकरण में सूत्र हैं, जो पूर्णतः एक ही विषय का प्रतिपादन करते हैं। अधिकरण के पाँच अङ्ग हैं—विषय, विशय (सन्देह), पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष तथा सिद्धान्त। कुछ लोगों के अनुसार अधिकरण के पाँच अङ्ग ये हैं—विषय, सन्देह, संगति, पूर्वपक्ष और सिद्धान्त।[१]

वैदिक वाक्य दो प्रकार का होता है—विधि तथा अर्थवाद। जो किसी नियम, आदेश या धार्मिक आदेश का विधान करे, उसे विधि कहते हैं, जैसे—**'स्वर्गकामो ज्योतिष्टोमेन यजेत'**। अर्थवाद वह वाक्य है, जो विधि का अनुमोदन करता है, दृष्टान्तों द्वारा विधि का स्पष्टीकरण करता है, विधि का अनुगमन करने वालों की प्रशंसा करता है और विधि का अनुगमन न करने से होने वाले दोषों का निर्देश करता है। अर्थवाद के तीन भेद हैं। उनमें अनुवाद एक है। 'सिद्ध के उपन्यास' (**सिद्धस्य उपन्यासः**) अथवा 'विधि द्वारा विहित के अनुवचन' (**विधिविहितस्य अनुवचनमनुवादः**) को अनुवाद कहते हैं।[२]

'होने वाले के (**भवितुः**) होने के अनुकूल प्रयोजक के व्यापार-विशेष को भावना कहते हैं[३]। यह दो प्रकार की होती है—शाब्दी[४] और आर्थी[५]।

'स्वर्गकामो ज्योतिष्टोमेन यजेत' में **'यजेत'** से भावना प्रकट होती है।

वेदान्त

वाण ने वेदान्त के सिद्धान्त का भी उल्लेख किया है—**'अन्तर्ज्ञाननिराकृतस्य मोहान्धकारस्य'**।'[६] तात्पर्य यह है कि मोहान्धकार अन्तर्ज्ञान से दूर होता है।

---

१. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. II, p. 158.

२. ibid., Uch. III, pp. 228-229.

३. **'भावना नाम भवितुर्भवनानुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः।'**

अर्थसंग्रह, पृ० १०-११।

उपर्युक्त पर कौमुदी—व्याख्या – 'भवितुरुत्पद्यमानस्योत्पत्त्यनुकूलो भावयितुरुत्पादयितुः प्रयोजकस्य व्यापारविशेषो भावनेत्यर्थः। प्रयोजकव्यापारत्वादेव णिजन्तेन भावनाशब्देनोच्यते। यथोत्पद्यमानस्यौदनस्योत्पत्त्यनुकूलो देवदत्तस्य व्यापारविशेषो भावनेत्यर्थः।'

वही, पृ० ११।

४. **'तत्र पुरुषप्रवृत्त्यनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः शाब्दी भावना। सा लिङंशेनोच्यते।'**

वही, पृ० ११।

५. **'प्रयोजनेच्छाजनितक्रियाविषयव्यापार आर्थी भावना।'**

वही, पृ० १९।

६. **काद०, पृ० २६४।**

अद्वैतवेदान्ती की घोषणा है कि मोह (अविद्या) की निवृत्ति ज्ञान से होती है। मोह की निवृत्ति ही मोक्ष है।[१]

रामायण, महाभारत तथा पुराण

बाण रामायण, महाभारत और पुराणों के ज्ञाता थे। उनके समय में रामायण, महाभारत आदि का सम्मान था।[२] उन्होंने महाभारत की प्रशंसा की है।[३] बाण के निर्देश से प्रकट होता है कि उनके समय में वायुपुराण का पाठ होता था।[४]

बाण ने अनेक स्थलों पर रामायण, महाभारत आदि की कथाओं का निर्देश किया है। यहाँ हर्षचरित और कादम्बरी में निर्दिष्ट कथाओं का सङ्केत प्रस्तुत किया जा रहा है और यह भी निर्देश किया जा रहा है कि वे रामायण आदि में कहाँ मिलती हैं—

हर्षचरित	रामायण
कुमुद – एक वानर – १।२	किष्किन्धा० ३६।३८
सेतुबन्ध – १।२	युद्ध० २२
नृग का कृकलास होना – ३।४०	उत्तर०[५] ५३।१६
त्रिशंकु का तारा के रूप में स्थित होना – ३।५१	बाल० ५७-६०
समुद्र-मन्थन से रत्नों का निकलना – ४।१	बाल० ४५
मान्धाता – ४।६	उत्तर०[६] ६७।५-६

---

१. 'अविद्यास्तमयो मोक्षस्सा च बन्ध उदाहृतः।'
'निवृत्तिरात्मा मोहस्य ज्ञातत्वेनोपलक्षितः।'
'तस्मादविद्यास्तमयो नित्यानन्दप्रतीतितः।
निःशेषदुःखोच्छेदाच्च पुरुषार्थः परो मतः॥'
आनन्दानुभव-कृत न्यायरत्नदीपावलि की भूमिका के पृ० २५ पर उद्धृत।

२. 'महाभारतपुराणरामायणानुरागिणा' —काद०, पृ० १०२।

३. 'नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्॥' — हर्ष० १।१

४. वही, ३।३६

५. 'अदृश्यः सर्वभूतानां कृकलासो भविष्यसि।
बहुवर्षसहस्राणि बहुवर्षशतानि च॥' — उत्तर० ५३।१६

६. अयोध्यायां पुरा राजा युवनाश्वसुतो बली।
मान्धाता इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु वीर्यवान्॥
स कृत्वा पृथिवीं कृत्स्नां शासने पृथिवीपतिः।
सुरलोकमितो जेतुमुद्योगमकरोन् नृपः॥ — वही ६७।५-६

कार्तिकेय – ४।१०	बाल० ३७
दशानन द्वारा कैलास का उठाया जाना – ५।२३	उत्तर० १६
जानकी का अग्नि में प्रवेश – ५।२८	युद्ध० ११६
शिवि – ५।३२	अयोध्या० १२।४३
समुद्रमन्थन से विष का निकलना – ५।३५	बाल०[1] ४५।२०
पूरु का अपने पिता ययाति की वृद्धावस्था लेना – ६।३६	उत्तर० ५६
विन्ध्य का उत्सेध (बढ़ना)–६।४३	अरण्य०[2] ११।८५
अश्वमेध के अनुष्ठान से इन्द्र की ब्रह्म-हत्या से मुक्ति – ७।५६	उत्तर० ८६
कुबेर का एक नेत्र (नेत्र के पिङ्गलवर्ण होने के कारण कुबेर का नाम एकपिंग) – ७।६४	उत्तर० १३
त्रिशंकु का मुख नीचे किये हुए आकाश में स्थित होना – ७।६५	बाल०[3] ५७।६०

कादम्बरी	रामायण
रावण – शिवभक्त – पृ० २	उत्तर० १६
भगीरथ द्वारा गङ्गा का पृथिवी पर लाया जाना – पृ० ८	बाल० ३८-४३
विष्णु का वामनावतार – पृ० ६	बाल० २६
त्रिशंकु का इन्द्र द्वारा गिराया जाना –पृ० १६	बाल० ५७-६०

---

१. 'उत्पपाताग्निसंकाशं हालाहलमहाविषम् ।
तेन दग्धं जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।।'
बाल० ४५।२०

२. 'मार्गं निरोद्धुं सततं भास्करस्याचलोत्तमः ।
सन्देशं पालयंस्तस्य विन्ध्यशैलो न वर्द्धते ।।'
अरण्य० ११।८५

३. 'गुरुशापहतो मूढ पत भूमिमवाक्शिराः ।
एवमुक्तो महेन्द्रेण त्रिशङ्कुरपतत् पुनः ।।'
बाल० ६०।१८

मारीच का सुवर्ण-मृग बन कर पञ्चवटी में जाना और भगवान् राम का उसे मारने के लिए उसके पीछे दौड़ना —पृ० ४४	अरण्य० ४२-४३
राम और लक्ष्मण द्वारा दनुकबन्ध की एक-एक भुजा का काटा जाना —पृ० ४४	अरण्य०[1] ६९-७०
बालि द्वारा सुग्रीव का निर्वासन और सुग्रीव का ऋष्यमूक पर रहना —पृ० ४६	किष्किन्धा० ९-१०
सुग्रीव की सूर्य से उत्पत्ति —पृ० ५३	अरण्य०[2] ७२।२१
सहस्रार्जुन द्वारा सहस्रभुजाओं से नर्मदा के प्रवाह का विकीर्ण किया जाना —पृ० ५७	उत्तर० ३२
राम द्वारा खर-दूषण की सेना का संहार —पृ० ५८	अरण्य० २२-२६
हनूमान् द्वारा शिलाखण्ड से अक्ष की हड्डियों का चूर्ण किया जाना —पृ० ८०	युद्ध०[3] ५२
जह्नु द्वारा निगली हुई गङ्गा का निकाला जाना —पृ० ८३	बाल० ४३

---

१. 'ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ।
अच्छिन्दन्तां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांशदेशतः॥
दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः।
चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः॥'

अरण्य० ७०।८-९

२. 'भास्करस्यौरसः पुत्रो बालिना कृतकिल्बिषः।
संनिधायायुधं क्षिप्रमृष्यमूकालयं कपिम्॥'

वही ७२।२१

३. 'धूम्राक्षस्य शिरोमध्ये गिरिशृङ्गमपातयत्।
स विस्फारितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः॥
पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः।
धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषा निशाचराः।
त्रस्ता प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमाना प्लवङ्गमैः॥'

युद्ध० ५२।३६-३७

शिव द्वारा अन्धक का विनाश
—पृ० १०७ अरण्य० ३०।२७

राम द्वारा कैलास का उठाया जाना
—पृ० १०९ उत्तर० १६

सागर द्वारा राम की वन्दना—पृ० ११० युद्ध० २२

नल द्वारा सेतु का निर्माण — पृ० ११० युद्ध० २२

स्कन्द द्वारा तारक-वध — पृ० ११३ बाल० ३६-३७

ऋष्यशृङ्ग के प्रभाव से दशरथ को पुत्र-
लाभ — पृ० १२५ बाल० ९-१६

शिव द्वारा विष-पान — पृ० २३३ बाल० ४५

हर्षचरित	महाभारत
च्यवन के तेज से पुलोमा का भस्म होना — १।११	आदि० ५-६
शन्तनु — गङ्गा के पति — २।३५	आदि० ९८
भीष्म से काशिराज का पराजित होना — २।३५	आदि० १०२
द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा का अमोघ अस्त्र — २।३५	सौप्तिक० १३
कर्ण-सूर्य के पुत्र — २।३५	आदि० ११०
भीम—सहस्रों हाथियों के वल से युक्त — २।३५	आदि० १२८
नहुष का सर्प होना — ३।४०	वन० १७९
ययाति द्वारा ब्राह्मणी (देवयानी) का पाणिग्रहण — ३।४०	आदि० ८१
सोमक द्वारा अपने पुत्र जन्तु का वध — ३।४०	वन० १२७-१२८
सौदास को राक्षस होने का शाप मिलना — ३।४०	आदि० १७५
नल का कलि द्वारा अभिभूत होना — ३।४०	वन० ७६
संवरण का अपने मित्र सूर्य की कन्या के प्रति आसक्त होना — ३।४०	आदि० १७०
कार्तवीर्य का गोब्राह्मण-पीडन और	

विनाश – ३।४०	वन० ११६
मरुत्त और बृहस्पति – ३।४०	आश्वमेधिक० ५–६
पाण्डु का कामासक्त होकर मरना – ३।४०	आदि० १२४
युधिष्ठिर द्वारा असत्य-कथन – ३।४०	द्रोण०[1] १९०।५५
शिव द्वारा त्रिपुर-दाह – २।२५	द्रोण० २०२
कर्ण – कुण्डलधारी – ४।१०	वन० ३१०
विन्ध्य का उत्सेध – ६।४३	वन० १०४
जनमेजय का सर्पों के समूल विनाश के लिए उद्यत होना – ६।४३	आदि० ५०-५८
भीम द्वारा दुःशासन के रुधिर के पान की प्रतिज्ञा – ६।४३	कर्ण० ८३
द्रोणाचार्य का शस्त्र-त्याग – ६।४४	द्रोण० १९०
धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति – ६।४४	द्रोण०[2] १९१।२
परशुराम द्वारा क्रौञ्चपर्वत में रन्ध्र का निर्माण – ६।४४	वन० २२५ (महाभारत में स्कन्द द्वारा क्रौञ्चपर्वत के विदारण का वर्णन प्राप्त होता है।)
बडवामुख – ६।४५	आदि०[3] १७९।२१-२२
हिडिम्वा और भीम – ६।४७	आदि० १५४

---

१. 'तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः।
(अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह।)
अव्यक्तमब्रवीद् राजन् हतः कुञ्जर इत्युत ॥'
द्रोण० १९०।५५

२. 'य इष्ट्वा मनुजेन्द्रेण द्रुपदेन महामखे।
लब्धो द्रोणविनाशाय समिद्धाद्धव्यवाहनात् ॥'
वही १९१।२

३. 'ततस्तं क्रोधजं तात और्वोऽग्निं वरुणालये।
उत्ससर्ज स चैवाप उपयुङ्क्ते महोदधौ ॥
महद्धयशिरो भूत्वा यत् तद् वेदविदो विदुः।
तमग्निमुद्गिरद् वक्त्रात् पिबत्यापो महोदधौ ॥'
आदि० १७९।२१-२२

परशुराम द्वारा इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश – ६।४७	वन०[1] ११७।६
युधिष्ठिर द्वारा राजसूय का सम्पादन – ७।५६	सभा० ३३
अर्जुन की गन्धर्व पर विजय – ७।५६	सभा० २८
वज्रदत्त (भगदत्त का पुत्र)–७।६३	आश्व०[2] ७६।१४
दुर्योधन के निधन का समाचार सुन कर अश्वत्थामा का दुःखित होना – ७।६७	शल्य० ६५
परशुराम द्वारा कार्तवीर्य का विनाश, रुधिर के ह्रदों का निर्माण – ८।८६	आदि०[3] २।३-४ तथा वन० ११६-११७
गरुड़ और विभावसु कच्छप – ८।८६	आदि० २६
विष्णु और मधु-कैटभ – ८।८६	वन०[4] २०३।३५
कादम्बरी	**महाभारत**
राहु और अमृत-राहु के शिर का काटा जाना – पृ० ४	आदि० १६
अर्जुन की परीक्षा लेने के लिए शिव ने किरात का वेश धारण किया। पार्वती ने किराती का वेश धारण किया – पृ० २१	वन० ३६
शुकों का अस्पष्ट उच्चारण और हाथियों की जिह्वा-परिवृत्ति – पृ० २७	अनुशासन० ८५

१. 'त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्रदान् ॥'
वन० ११७।६

२. 'निवारितं गजं दृष्ट्वा भगदत्तसुतो नृपः ।
उत्ससर्ज शितान् बाणानर्जुनं क्रोधमूर्च्छितः ॥'
आश्व० ७६।१४

३. 'त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः ।
असकृत् पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः ॥
स सर्वं क्षत्रमुत्साद्य स्ववीर्येणानलद्युतिः ।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रौधिरान् ह्रदान् ॥'
आदि० २।३-४

४. 'मधुकैटभयो राजन् शिरसी मधुसूदनः ।
चक्रेण शितधारेण न्यकृन्तत महायशाः ॥'
वन० २०३।३५

विराटनगरी और कीचक – पृ० ४१	विराट० १३-२२
अगस्त्य द्वारा सागर के जल का पान – पृ० ४१	वन० १०५
मेरु के प्रति ईर्ष्या के कारण विन्ध्य का उत्सेध, विन्ध्य द्वारा अगस्त्य की आज्ञा का पालन – पृ० ४१-४२	वन० १०४
अगस्त्य और वातापि – पृ० ४२	वन० ९९
दुर्योधन और शकुनि – पृ० ४८	सभा० ४८
एकलव्य – पृ० ५८	आदि० १३१
एकचक्रा – बकासुर – पृ० ६१	आदि० १५५-१६२
पराशर का योजनगन्धा के साथ प्रेम-सम्बन्ध – पृ० ६२	आदि० ६३
घटोत्कच – भीम के समान रूपवाला (घटोत्कच भीम का पुत्र था) – – पृ० ६२	आदि०[1] १५४।४३
खाण्डव-वन जलाने के लिए अग्नि ने ब्रह्मचारी का रूप धारण किया – पृ० ७१-७२	आदि० २२२-२२७
शन्तनु के पुत्र भीम – पृ० ८५	आदि० १००
वडवानल द्वारा जल का भक्षण – पृ० ८६	आदि० १८०।२१-२२
शिव द्वारा त्रिपुर-दाह – पृ० १०७	द्रोण० २०२
ययाति – पृ० १०७	आदि० ७८-८४
भीमसेन का सौगन्धिक-वन से पुष्प लाना – पृ० ११०	वन० १४६
क्रौञ्च के रन्ध्र से हंसों का निकलना – पृ० १११	वन०[2] २२५

---

१. 'त्वं कुरूणां कुले जातः साक्षाद् भीमसमो ह्यसि ।
ज्येष्ठः पुत्रोऽसि पञ्चानां साहाय्यं कुरु पुत्रक ॥'
आदि० १५४।४३

२. 'बिभेद स शरैः शैलं क्रौञ्चं हिमवतः सुतम् ।
तेन हंसाश्च गृध्राश्च मेरुं गच्छन्ति पर्वतम् ॥'
वन० २२५।३३

दुःशासन का अपराध—द्रौपदी का केश-कर्षण — पृ० ११३	सभा० ६७-६८
धर्म के प्रभाव से युधिष्ठिर का जन्म — पृ० ११४	आदि० १२२
पाण्डु और किंदम मुनि का शाप — पृ० ३१६	आदि० ११७
अर्जुन, बभ्रुवाहन, उलूपी — पृ० ३२१	आश्व० ७६-८०
कृष्ण ने परीक्षित को जिलाया — पृ० ३२१	आश्व० ६६

हर्षचरित	पुराण
अत्रि का तनय दुर्वासा — १।२	विष्णु० १।१०
गङ्गा का विष्णु के अङ्गुष्ठ से निकलना — १।७	विष्णु० २।८।११
विष्णु के वक्षःस्थल पर विराजमान कौस्तुभमणि — १।११	भागवत०[1] ८।८।५
च्यवन और सुकन्या — १।११	विष्णु०[2] ४।१
कृष्ण द्वारा कालिय-मर्दन — २।३३	विष्णु० ५।७
कृष्ण द्वारा वृषभरूपधारी अरिष्टासुर का वध — २।३५	विष्णु० ५।१४
चन्द्रमा द्वारा बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण — ३।४०	विष्णु० ४।६
सुद्युम्न का स्त्री होना — ३।४०	भागवत० ६।१
कुवलयाश्व का अश्वतर की नागकन्या मदालसा के साथ विवाह — ३।४०	मार्कण्डेय० २०—२१
पृथु द्वारा पृथिवी का परिभव — ३।४०	विष्णु० १।१३
भगवान् शिव द्वारा पूषा के दाँतों का तोड़ा जाना — ३।४७	भागवत०[3] ४।५।२१
नरकासुर की उत्पत्ति — ३।५१	विष्णु० ५।२६

१. 'कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः।
तस्मिन् हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलंकरणे विभुः॥'
भागवत० ८।८।५

२. 'शर्यातिः कन्या सुकन्या नामाभवत् यामुपयेमे च्यवनः।'
विष्णु० ४।१।६२

३. 'पूष्णश्चापातयद्दन्तान् कालिङ्गस्य यथा बलः।' — भागवत० ४।५।२१

बलिदानव का पाताल में जाना—३।५१	भागवत० ८।२०-२३
समुद्र-मन्थन से रत्नों का निकलना —४।१	विष्णु० १।६
नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु का वध —४।१०	भागवत० ७।८
मन्दराचल – मन्थनदण्ड – ४।११	विष्णु० १।६।७८
सोमपुत्र-बुध – ४।१६	विष्णु० ४।६
धन्वन्तरि – समुद्रमन्थन – ५।२७	भागवत० ८।८
भरत (ऋषभ का पुत्र) – ५।३०	विष्णु० २।१।२८
नाभाग – ५।३०	विष्णु० ४।१
त्वष्टा द्वारा सूर्य के तेज का निशातन – ६।३८	विष्णु०[1] ३।२
पुरुकुत्स (मान्धाता का पुत्र)—६।३८	विष्णु० ४।३
कृष्ण द्वारा केशी का वध – ६।४१	विष्णु० ५।१६
कल्माषपाद (सुदास का पुत्र)—६।४७	विष्णु०[2] ४।४
याज्ञवल्क्य द्वारा यजुस् का वमन – ८।८६	विष्णु०[3] ३।५

कादम्बरी	पुराण
बाणासुर-शिव का भक्त – पृ० २	विष्णु० ५।३३
नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु का वध – पृ० ३	भागवत० ७।८

---

१. 'भ्रममारोप्य सूर्यं तु तस्य तेजोनिशातनम् ।
कृतवानष्टमं भागं स व्यशातयदव्ययम् ॥'
विष्णु० ३।२।६

२. 'असावपि प्रतिगृह्योदकाञ्जलिं मुनिशापप्रदानायोद्यतो भगवन्नयमस्मद्गुरुर्नार्हस्येनं कुलदेवताभूतमाचार्यं शप्तुमिति मदयन्त्या स्वपत्न्या प्रसादितस्सस्याम्बुदरक्षणार्थं तच्छापाम्बुनोर्व्यां न चाकाशे चिक्षेप किं तु तेनैव स्वपादौ सिषेच । तेन च क्रोधाश्रितेनाम्बुना दग्धच्छायौ तत्पादौ कल्माषतामुपगतौ ततस्स कल्माषपादसंज्ञामवाप ।'
वही, ४।४।५६-५७

३. 'याज्ञवल्क्यस्ततः प्राह भक्त्यैतत्ते मयोदितम् ।
ममाप्यलं त्वयाधीतं यन्मया तदिदं द्विज ॥
इत्युक्तो रुधिराक्तानि सरूपाणि यजूंषि सः ।
छर्दयित्वा ददौ तस्मै ययौ स स्वेच्छया मुनिः ॥'
वही, ३।५।१०-११

पृथु द्वारा धनुष के अग्रभाग से पर्वतों का उत्सारण – पृ० ६ — विष्णु०[1] १।१३

विष्णु का मोहिनीरूप धारण करना – पृ० २१ — भागवत० ८।८

बलराम द्वारा यमुना का कर्षण – पृ० २१-२२ — विष्णु० ५।२५

चण्डी द्वारा महिषासुर का वध—पृ० २२ — मार्कण्डेय० ८२-८४

कृष्ण द्वारा कुवलयापीड के दाँतों का तोड़ा जाना – पृ० ६१ — विष्णु० ५।२०

सनत्कुमार – पृ० ७१ — भागवत०[2] ३।१२

कृष्ण द्वारा नरक का वध – पृ० ७३ — विष्णु० ५।२९

धुन्धुमार – पृ० १०७ — विष्णु०[3] ४।२।४०

धर्मशास्त्र

बाण धर्मशास्त्र के ज्ञाता थे। उनके ग्रन्थों में धर्मशास्त्र-विषयक अनेक प्रसङ्ग उपलब्ध होते हैं।

कवि ने धर्माधिकारियों से अधिष्ठित अधिकरण-मण्डप की चर्चा की है।[4]

अधिकरण-मण्डप धर्माधिकरण भी कहा जाता है।[5] जिस स्थान पर धर्मशास्त्र की दृष्टि से सार-असार का विवेचन होता है, उसे धर्माधिकरण कहते हैं।[6]

---

१. 'तत उत्सारयामास शैलान् शतसहस्रशः।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः॥'
विष्णु० १।१३।८२

२. 'सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः।
सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः॥'
भागवत० ३।१२।४

३. 'योऽसावुदकस्य महर्षेरपकारिणं धुन्धुनामानमसुरं वैष्णवेन तेजसाप्यायितः पुत्रसहस्रैरेकविंशद्भिः परिवृतो जघान धुन्धुमारसंज्ञामवाप।' —विष्णु० ४।२।४०

४. काद०, पृ० १७१।

५. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1–124 of Peterson's edition), p. 226.

६. 'धर्मशास्त्रविचारेण सारासारविवेचनम्।
यत्राधिक्रियते स्थाने धर्माधिकरणं हि तत्॥'
ibid., p. 226.

कादम्बरी में उल्लेख किया गया है कि राजा तारापीड ने जन्म के दसवें दिन पुत्र का नामकरण किया।[१]

पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण है—'**दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम कुर्यात्**'[२]। मनुस्मृति में भी कहा गया है कि जन्म के दसवें या बारहवें दिन पुत्र का नामकरण करना चाहिए।[३]

वैशम्पायन का नामकरण चन्द्रापीड के नामकरण के एक दिन बाद अर्थात् जन्म के ग्यारहवें दिन किया गया।[४]

जन्म के ग्यारहवें या बारहवें दिन भी नामकरण करने का उल्लेख प्राप्त होता है—'**एकादशे द्वादशे वा पिता नाम कुर्यात्**'[५]।

चन्द्रापीड ने सोलह वर्ष की अवस्था तक विद्याध्ययन किया था।[६]

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में निरूपित किया है कि सोलह वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्याध्ययन करना चाहिए। इसके बाद विवाह किया जा सकता है।[७]

हारीत कृष्णमृगचर्म तथा यज्ञोपवीत धारण किये हुए था।[८]

याज्ञवल्क्य-स्मृति में निरूपित किया गया है कि ब्रह्मचारी दण्ड, मृगचर्म, उपवीत तथा मेखला धारण करे।[९]

मनु का वचन है कि ब्रह्मचारी कृष्णमृगचर्म, रुरुमृगचर्म तथा छाग (बकरे) का चर्म धारण करे।[१०]

महाश्वेता ब्रह्मसूत्र धारण किये हुए थी।[११]

---

१. काद०, पृ० १४८।

२. काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश की टीका, पृ० २६०।

३. 'नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते॥'
मनु० २।३०

४. काद०, पृ० १४८।

५. काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश की टीका, पृ० २६०।

६. काद०, पृ० १५३।

७. 'ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात्। अतो गोदानं दारकर्म चास्य।'
अर्थशास्त्र १।५।२

८. काद०, पृ० ७२।

९. 'दण्डाजिनोपवीतानि मेखलाञ्चैव धारयेत्।'
याज्ञवल्क्यस्मृति १।२९

१०. 'कार्ष्णरौरवबास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः।'
मनु० २।४१

११. काद०, पृ० २४८।

ब्रह्मचर्य का पालन करने वाली स्त्रियों के लिए यज्ञोपवीत-धारण शास्त्रीय है।[१]

दृढदस्यु मुञ्ज की मेखला धारण किये हुए था।[२]

मनुस्मृति में निरूपण किया गया है कि ब्राह्मण की मेखला मूंज की होनी चाहिए। वह तीन गुणों वाली तथा चिकनी हो।[३]

दृढदस्यु पलाश का दण्ड धारण करता था।[४]

ब्राह्मण ब्रह्मचारी को बिल्व अथवा पलाश का दण्ड धारण करना चाहिए।[५]

दृढदस्यु ने त्रिपुण्ड्रक धारण कर रखा था।[६]

ब्रह्माण्डपुराण में उल्लेख प्राप्त होता है कि पुण्ड्र धारण करने से पाप का नाश होता है।[७] कात्यायन का कथन है कि श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, वैश्वदेव तथा देवार्चन में त्रिपुण्ड्र धारण करने वाला मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।[८]

दृढदस्यु प्रत्येक कुटी में जाकर भिक्षा मांगता था।[९]

ब्रह्मचारी के लिए नियम निर्दिष्ट किया गया है कि वह विधिपूर्वक भिक्षा माँगे।[१०]

भोजन के वाद आचमन करने का उल्लेख मिलता है।[११]

मनु का कथन है कि द्विज प्रतिदिन आचमन करके शान्त-चित्त होकर भोजन करे। भोजन के बाद आचमन करे और आँख, नाक तथा कान के छेदों का जल से संस्पर्श करे।[१२]

---

१. 'द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्यचर्या।'
  काद०, हरिदाससिद्धान्तवागीश की टीका, पृ० ५०७।

२. काद०, पृ० ४२।

३. 'मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।' – मनु० २।४२

४. काद०, पृ० ४२।

५. 'ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ।
  पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः॥' – मनु० २।४५

६. काद०, पृ० ४२।

७. 'स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्याद्धुत्वा चैवं तु भस्मना।
  देवानभ्यर्च्य गन्धेन सर्वपापापनुत्तये॥'
  Kane's Notes on the Kādamdarī (pp. 1–124 of Peterson's edition), p. 64

८. 'श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने।
  धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः॥' – ibid., p. 64

९. काद०, पृ० ४२।

१०. 'प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्षं यथाविधि।' – मनु० २।४८

११. काद०, पृ० ३४।

१२. 'उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात् समाहितः।
  भुक्त्वा चोपस्पृशेत् सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत्॥' – मनु० २।५३

पञ्चाग्नि तापने का संकेत मिलता है ।[१]

पञ्चाग्नि में चारों ओर अग्नियाँ जलाई जाती हैं और ऊपर सूर्य तपता रहता है । मनु पञ्चाग्नि तापने का उल्लेख करते हैं ।[२]

हारीत ने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया था ।[३]

मनु ने कहा है—'विद्वान् अश्वों को वश में करने वाले सारथि की भाँति बुद्धि को भ्रष्ट करने वाले विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों को वश में करे ।'[४]

वाण उन लोगों की निन्दा करते हैं, जो गुरुओं के आने पर नहीं उठते ।[५]

मनुस्मृति में निर्देश है कि यदि अपनी शय्या पर बैठा हो और गुरु वहाँ उपस्थित हों, तो आसन का परित्याग करके उनका अभिवादन करना चाहिए ।[६]

कवि ने विवाह-सम्बन्धी बातों का भी उल्लेख किया है । राज्यश्री के विवाह के प्रसङ्ग में इन्द्राणी के पूजन का उल्लेख प्राप्त होता है ।[७]

विवाह में शची-पूजन का निर्देश किया गया है—**'सम्पूज्य प्रार्थयित्वा तां शचीदेवीं गुणाश्रयाम् ।'**[८] प्रयोगरत्नाकर में भी शची-पूजन का उल्लेख हुआ है ।[९] धर्मसिन्धु का प्रमाण है—'एक-दूसरे से मिले हुए शिव तथा गौरी की सुवर्ण या चाँदी आदि की वनी हुई प्रतिमा का कात्यायनी, महालक्ष्मी तथा इन्द्राणी के साथ पूजन करे ।'[१०]

वाण ने उल्लेख किया है कि विवाह की वेदी शमी-पल्लवों से मिश्रित खीलों से उद्भासित थी ।[११]

---

१. काद०, पृ० ६३ ।

२. 'ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्यात्' — मनु० ६।२३

३. काद०, पृ० ७३ ।

४. 'इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥' — मनु० २।८८

५. काद०, पृ० २०६-२०७ ।

६. 'शय्यासनस्थश्चैवैवमित्युत्थायाभिवादयेत् ।' — मनु० २।११९

७. हर्ष० ४।१४

८. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. IV, p. 52;

९. 'ततो दाता पात्रस्थसिततण्डुलपुञ्जे शचीमावाह्य षोडशोपचारैः पूजयेत्तां च कन्यैवं प्रार्थयेत् – 'देवेन्द्राणि नमस्तुभ्यं देवेन्द्रप्रियभामिनि । विवाहभाग्यमारोग्यं पुत्रलाभं च देहि मे ॥' — ibid., Uch. IV, p. 52.

१०. 'अन्योऽन्यालिङ्गितगौरीहरयोः प्रतिमां सुवर्णरौप्यादिनिर्मितां कात्यायनीमहालक्ष्मी-शचीभिः सह पूजयेत् ।'
धर्मसिन्धु, तृतीय परिच्छेद, पृ० २२६ ।

११. हर्ष० ४।१७

धर्मशास्त्र के आचार्यों ने शमी-पल्लवों से मिश्रित खीलों का विधान किया है।[१]

राज्यश्री के साथ ग्रहवर्मा के वेदी पर चढ़ने का उल्लेख हुआ है।[२]

धर्मसिन्धु का निर्देश है कि वर तथा वधू मन्त्रोच्चारण के साथ वेदी पर चढ़ें।[३]

अग्नि की प्रदक्षिणा करने तथा लाज-होम करने का उल्लेख हुआ है।[४]

मेधातिथि लाज-होम तथा अग्नि की तीन वार प्रदक्षिणा करने की विधि का निर्देश करते हैं।[५]

कालिदास ने भी कुमारसम्भव में शिव-पार्वती के विवाह के प्रसङ्ग में अग्नि-प्रदक्षिणा तथा लाज-मोक्ष का वर्णन किया है।[६]

वाण ने यौतक शव्द का प्रयोग किया है।[७]

यौतक वह सम्पत्ति है, जो विवाह में स्त्री को उस समय दी जाती है, जब वह पति के साथ वैठती है।[८]

यशोमती धर्म की भूमि कही गयी है।[९]

धर्मशास्त्र का वचन है कि पत्नी धर्माचरण का साधन है।[१०]

हर्षचरित में उल्लेख मिलता है कि यशोमती प्रभाकरवर्धन के पास दूसरी शय्या पर लेटी।[११]

---

१. 'शमीपल्लवमिश्राल् लाजानञ्जलिना वपति।'

रघुवंश ७।२६ की मल्लिनाथ की टीका।

२. हर्ष० ४।१७

३. 'वधूवरौ पूर्वोक्तलक्षणां वेदीं मन्त्रघोषेणारुह्य।'

धर्मसिन्धु, तृतीय परिच्छेद, पृ० २२६।

४. हर्ष० ४।१७

५. 'लाजहोममभिनिर्वर्त्य त्रिःप्रदक्षिणमग्निमावर्त्य सप्तपदानि स्त्री प्रक्रम्यते।'

मनु० ८।२२७ पर मेधातिथि–भाष्य।

६. 'तौ दम्पती त्रिःपरिणीय वह्निमन्योऽन्यसंस्पर्शनिमीलिताक्षौ।
स कारयामास वधूं पुरोधास्तस्मिन् समिद्धार्चिषि लाजमोक्षम्॥'

कुमार० ७।८०

७. हर्ष० ४।१८

८. 'यौतकं विवाहादिकाले पत्या सहैकासने प्राप्तं युतयोर्यौतकमिति निघण्टूक्तेरिति मदनः।'

Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. IV, p. 12.

९. हर्ष० ४।३

१०. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. IV, p. 12.

११. हर्ष० ४।३

धर्मशास्त्र का निर्देश है कि पत्नी के साथ न तो भोजन करना चाहिए और न तो शयन ही।[1]

'मुद्राबन्ध' पद का प्रयोग मिलता है।[2]

मुद्राबन्ध के विषय में कहा गया है कि यदि मुद्रा-रहित हाथ से दैविक कर्म किया जाय, तो वह निष्फल हो जाता है। अतः मुद्रा से युक्त होकर कर्म करना चाहिए।[3]

'पञ्चब्रह्म' पद का प्रयोग हुआ है।[4]

पञ्चब्रह्म एक प्रार्थना है। भस्म धारण करने के समय इसका उच्चारण करना चाहिए।[5] इस प्रार्थना में सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर तथा ईशान को सम्बोधित किया गया है।[6]

हर्षचरित में 'षडाहुतिहोम' की चर्चा मिलती है।[7]

जिसमें छह आहुतियों का प्रक्षेप हो, उसे षडाहुतिहोम कहते हैं। छह आहुतियाँ ये हैं—'ओं देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा१। ओं मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा२। ओं पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा३। ओं आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा४। ओं एनसोऽवयजनमसि स्वाहा५। ओं यच्चैनो विश्वांश्चचार यद्वा विद्वांस्तस्य सर्व्वस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा६।'[8] शङ्कर के अनुसार छह बार अग्नि में आहुति डालकर जो होम किया जाता है, उसे षडाहुतिहोम कहते हैं।[9] छह देवताओं के नाम ये हैं—प्रजापति, सोम, अग्नि, इन्द्र, द्यावापृथिवी तथा धन्वन्तरि।[10]

---

१. 'नाश्नीयाद्भार्यया साकं न च सुप्यात्तया समम्।'
हर्ष०, शङ्कर-कृत टीका, पृ० २०२।

२. हर्ष० १।८

३. 'मुद्राविमुक्तहस्तेन क्रियते कर्म दैविकम्।
यदि तन्निष्फलं तस्मात् कर्म मुद्रान्वितश्चरेत्॥'
Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. 1, p. 46.

४. हर्ष० १।८

५. 'महेश महितोसि तत्पुरुष पूरुषाग्र्यो भवानघोर रिपुघोर तेऽनवम वामदेवाञ्जलिः। नमः सपदिजात ते त्वमिति पञ्चरूपोचित प्रपञ्चचयपञ्चवृन्मम मनस्तमस्ताडय॥'
Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. 1, p. 46.

६. ibid., Uch. 1, p. 46.

७. हर्ष० ५।२१

८. हर्ष०, जीवानन्द-कृत टीका, पृ० ४७२।

९. 'प्रजापतये स्वाहा' इति षण्णां देवतानां नाम गृहीत्वा षण्णामेवाहुतीनां प्रक्षेपः षडाहुतिहोम उच्यते।'
हर्ष०, शङ्कर-कृत टीका, पृ० २५७।

१०. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. V, p. 73.

अष्टपुष्पिका चढ़ाने का उल्लेख मिलता है।[१]

अष्टपुष्पिका का तात्पर्य है—शिव की आठ मूर्तियों का ध्यान करके चढ़ाये गये आठ पुष्प।[२] अधोलिखित श्लोक में शिव की पूजा में प्रयुक्त आठ पुष्पों के नाम प्राप्त होते हैं—

'बकं द्रोणं च दुर्धूरं सुमना पाटला तथा।
पद्ममुत्पलगोसूर्यमष्टौ पुष्पाणि शङ्करे॥'[३]

महानवमी का उल्लेख हुआ है।[४]

आश्विन की शुक्लपक्ष की नवमी महानवमी कही जाती है। महानवमी को दुर्गा की आराधना की जाती है और महिष आदि चढ़ाये जाते हैं।[५]

चतुर्दशी के दिन महाकाल की अर्चना का उल्लेख किया गया है।[६]

'शिवस्योक्ता चतुर्दशी' निरूपण से प्रकट होता है कि शिव की उपासना के लिए चतुर्दशी प्रशस्त मानी गयी है।[७]

हर्षचरित में उल्लेख प्राप्त होता है कि बाण ने शिव की प्रतिमा को दुग्ध से अभिषिक्त किया।[८]

इस समय भी शिव के भक्त शिव को प्रसन्न करने के लिए क्षीर से उन्हें अभिषिक्त करते हैं।[९]

---

१. हर्ष० १।८

२. 'भवायेत्यादिभिर्मन्त्रैरष्टमूर्तेस्तथाष्टभिः।
अष्टौ मूर्तीरपि ध्यात्वा प्रयुक्ता चाष्टपुष्पिका॥'
हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० ३१।

३. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. 1, p. 46.

४. हर्ष० ८।७१

५. 'अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य अष्टमी मूलसंयुता।
सा महानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा॥
... ...
तस्यै ये ह्युपयुज्यन्ते प्राणिनो महिषादयः।
सर्वे ते स्वर्गतिं यान्ति घ्नतां पापं न विद्यते॥'
Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VIII, p. 218.

६. काद०, पृ० १२४।

७. काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश की टीका, पृ० २४३।

८. हर्ष० २।२५

९. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. II, p. 114.

'महादान' पद का प्रयोग उपलब्ध होता है ।[1]

महादान सोलह हैं । दानमयूख में वे इस प्रकार निरूपित किये गये हैं—१. तुलापुरुषदान, २. हिरण्यगर्भदान, ३. ब्रह्माण्डदान, ४. कल्पतरुदान, ५. गोसहस्रदान, ६. हिरण्यकामधेनुदान, ७. हिरण्याश्वदान, ८. हिरण्याश्वरथदान, ९. हिरण्यहस्तिरथदान, १०. पञ्चलाङ्गलदान, ११. धरादान, १२. विश्वचक्रदान, १३. महाकल्पलतादान, १४. सप्तसागरदान, १५. रत्नधेनुदान, १६. महाभूतघटदान ।[2]

कादम्बरी में 'महापातक' पद का प्रयोग किया गया है । वहाँ मुनिवध महापातक माना गया है ।[3]

ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्ण की चोरी, गुरुपत्नीगमन—ये महापातक हैं । ब्रह्महत्या आदि करने वालों का संसर्ग भी महापातक है ।[4]

शुकनासोपदेश के प्रसङ्ग में कामजनित व्यसनों का वर्णन हुआ है—**'द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगयां श्रम इति, पानं विलास इति ।'**[5]

यहाँ द्यूत, परदाराभिगमन, मृगया तथा मद्यपान इन चार व्यसनों की चर्चा हुई है । मनु ने कहा है कि कामजनित व्यसनों में चार अत्यन्त दुःखदायी होते हैं—मद्यपान, जुआ, स्त्रीसङ्ग तथा मृगया ।[6]

---

१. हर्ष० ३।४३; काद०, पृ० १७५ ।

२. 'आद्यं तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञितम् ।
हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम् ।।
कल्पपादपदानं च गोसहस्रं च पञ्चमम् ।
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च ।।
हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा ।
पञ्चलाङ्गलकं तद्वद्धरादानं तथैव च ।।
द्वादशं विश्वचक्रं च ततः कल्पलतात्मकम् ।
सप्तसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च ।।
महाभूतघटस्तद्वत् षोडशः परिकीर्तितः ।'
नीलकण्ठभट्ट : दानमयूख ।

३. काद०, पृ० २९७ ।

४. 'ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः ।
एते महापातकिनो यैश्च तैः सह संवसेत् ।।'
मनु० ११।५४

५. काद०, पृ० २०५ ।

६. 'पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।
एतत् कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ।।'
मनु० ७।५०

प्रायश्चित्त का उल्लेख मिलता है।[१]

पाप-क्षय के साधन के रूप में निरूपित विधि-वोधित कर्म प्रायश्चित्त कहा जाता है।[२]

हर्षचरित में उल्लेख किया गया है कि ब्रह्मघ्न को प्रायश्चित्त के रूप में मनुष्य की खोपड़ी के सामने शिर झुकाकर वन्दना करनी चाहिए।[३]

धर्मशास्त्र का प्रमाण है कि ब्रह्मघ्न को प्रायश्चित्त के रूप में अपने द्वारा मारे गये ब्राह्मण की खोपड़ी को या उसके न मिलने पर अन्य किसी ब्राह्मण की खोपड़ी को धारण करना चाहिए।[४]

बकवृत्ति, कुक्कुटव्रत और वैडालवृत्ति का उल्लेख प्राप्त होता है।[५]

'जो आचरण से भ्रष्ट है, पर अपने विनय को प्रकट करने के लिए दृष्टि नीचे किये रहता है, निष्ठुर है, स्वार्थ की साधना में लगा है, शठ है, मिथ्याविनीत है, वह द्विज बकव्रत-धारी कहा जाता है।'[६]

'यदि व्रत से पाप को छिपा कर किसी कारण को पुरस्कृत करके व्रतचर्या का पालन किया जाय, तो वह कुक्कुटव्रत कहा जाता है। कुक्कुटव्रत वाला यह नहीं कहता कि मैंने पाप किया है, इसलिए प्रायश्चित्तरूप में व्रत कर रहा हूँ। वह व्रत के वास्तविक कारण को छिपा कर किसी अन्य कारण को प्रस्तुत करता है।'[७]

कुक्कुटव्रत के सम्बन्ध में अधोलिखित प्रमाण उपलब्ध होता है—

---

१. काद०, पृ० ३०६।

२. 'पापक्षयमात्रसाधनत्वेन विधिबोधितं कर्म प्रायश्चित्तमिति स्मार्ताः।'
काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश की टीका, पृ० ६२१।

३. हर्ष० ७।६५

४. 'शिरः कपाली ध्वजवान् भिक्षाशी कर्म वेदयन्।
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि मितभुक् शुद्धिमाप्नुयात्॥'
याज्ञवल्क्यस्मृति ३।२४३
उक्त श्लोक की मिताक्षरा टीका — "तत्र कपालं स्वव्यापादितब्राह्मणशिरःसम्बन्धि ग्राह्यम् — 'ब्राह्मणो ब्राह्मणं घातयित्वा तस्यैव शिरःकपालमादाय तीर्थान्यनुसञ्चरेत्' इति।...तदलाभेऽन्यस्य ब्राह्मणस्यैव ग्राह्यम्।"

५. हर्ष० १।१८

६. 'अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः॥'
मनु० ४।१९६

७. 'यः कारणं पुरस्कृत्य व्रतचर्यां निषेवते।
पापं व्रतेन प्रच्छाद्य कौक्कुटं नाम तद् व्रतम्॥'
हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० ५८।

'यदि साध्वी परस्त्रियों का बलात् भोग किया जाय, तो उसे कुक्कुटव्रत कहते हैं।'[१]

वैडालव्रती के विषय में मनु का कथन है—'वैडालव्रती उसे कहते हैं, जो पाखण्डी है, दूसरे के धन का लोभी है, कपटी है, लोगों को ठगता है, हिंसक है तथा दूसरों की निन्दा करता है।'[२]

'अविसंवादी' पद का प्रयोग मिलता है।[३]

जो विसंवाद नहीं करता, वह अविसंवादी है। विसंवाद के सम्बन्ध में अधोलिखित व्याख्या दर्शनीय है—

'जब प्रतिज्ञा के अनुसार अनुष्ठान किया जाता है, तब संवाद कहा जाता है। यदि प्रतिज्ञा के विपरीत अनुष्ठान हो, तो विसंवाद होता है।'[४]

'असिधाराव्रत' पद का प्रयोग किया गया है।[५]

'स्त्री के साथ एक शय्या पर लेटने पर भी यदि उसके साथ भोग न किया जाय, तो उसे असिधाराव्रत कहते हैं।'[६]

बाण ने जल, अग्नि, तुला और विष—इन दिव्यों का उल्लेख किया है।[७]

जल-परीक्षा के विषय में इस प्रकार निरूपण किया गया है—'इसमें तीन बाण चलाये जाते हैं। एक व्यक्ति बीच के बाण को लाने के लिए भेजा जाता है। शीघ्रता से दौड़ने वाला एक व्यक्ति उस स्थान पर खड़ा रहता है, जहाँ से बाण चलाये जाते हैं। वह संकेत पाने पर उस स्थान की ओर दौड़ता है, जहाँ पर पहले जाने वाला व्यक्ति हाथ में बाण लिए हुए उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। इसके साथ ही वह व्यक्ति, जिसकी जल-परीक्षा

---

१. 'बलात्कारेण या भुक्तिः साध्वीनां परयोषिताम्।
तां कौक्कुटव्रतमिति कथयन्ति मनीषिणः॥'
हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० ५८।

२. 'धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः॥'
मनु० ४।१९५

३. हर्ष० २।३२

४. 'प्रतिश्रुतानामर्थानामनुष्ठानं तथैव यत्।
तत् संवादोऽननुष्ठानं विसंवाद इतीरितम्॥'
हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० १०३।

५. हर्ष० २।३२

६. 'यत्रैकशयनस्थापि प्रमदा नोपभुज्यते।
असिधाराव्रतं नाम वदन्ति मुनिपुङ्गवाः॥'
Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. II, p. 139.

७. काद०, पृ० ११२।

हो रही है, जल में गोता लगाता है। वह व्यक्ति, जो हाथ में बाण लिए हुए दूसरे व्यक्ति की प्रतीक्षा कर रहा था, दौड़ता हुआ उस स्थान पर आता है, जहाँ पर जल-परीक्षा वाला व्यक्ति जल में निमग्न था। यदि वह व्यक्ति जल में निमग्न ही मिले, तो उसकी विजय होती है और यदि वह जल के ऊपर आ गया हो, तो उसकी पराजय होती है।'[१]

अग्नि-दिव्य के सम्बन्ध में इस प्रकार विवेचन प्रस्तुत किया गया है—

'जो अग्नि की शपथ लेता है, उसके हाथ पर व्रीहि मलना चाहिए और फिर व्रण आदि के स्थानों पर अलक्तक-रस आदि से चिह्न बनाना चाहिए। उसकी अञ्जलि पर अश्वत्थ के सात पत्तों को रखना चाहिए और उन्हें हाथ के साथ ही सात सूत्रों से बांधना चाहिए। इसके वाद शपथ लेने वाला कहे—हे अग्ने, तुम सभी प्राणियों के भीतर विद्यमान हो। तुम पुण्य-पाप को देखकर सत्य का प्रकटन करो। तव प्राड्विवाक उसके हाथों पर अग्नि की भाँति लाल लोहे का पिण्ड रखे। वह पुरुष लौह-पिण्ड को अञ्जलि में रखकर सात मण्डल धीरे-धीरे चले। इसके वाद वह अग्नि को गिरा दे और हाथों से व्रीहि को मले। यदि न जले, तो शुद्ध और यदि जले, तो अशुद्ध माना जाता है।'[२]

---

१. 'समकालमिषुं मुक्तमानीयान्यो जवी नरः।
गते तस्मिन्निमग्नाङ्गं पश्येच्वेच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥'

याज्ञवल्क्यस्मृति २।११९

उक्त श्लोक पर मिताक्षरा –

'निमज्जनसमकालं गते तस्मिन् जविन्येकस्मिन् पुरुषे अन्यो जवी शरपातस्थानस्थितः पूर्वमुक्तमिषुमानीय जले निमग्नाङ्गं यदि पश्यति, तदा स शुद्धो भवति। एतदुक्तं भवति – त्रिषु शरेषु मुक्तेष्वेको वेगवान् मध्यमशरपातस्थानं गत्वा तमादाय तत्रैव तिष्ठति। अन्यस्तु पुरुषो वेगवान् शरमोक्षस्थाने तोरणमूले तिष्ठति। एवं स्थितयोस्तयोस्तृतीयस्यां करतालिकायां शोध्यो निमज्जति। तत्समकालमेव तोरणमूलस्थितोऽपि द्रुततरं तोरणमूलं प्राप्यान्तर्जलगतं यदि न पश्यति तदा शुद्धो भवतीति। एतदेव स्पष्टीकृतं पितामहेन – "गन्तुश्चापि च कर्तुश्च समं गमनमज्जनम्। गच्छेत्तोरणमूलात्तु लक्ष्यस्थानं जवी नरः॥ तस्मिन् गते द्वितीयोऽपि वेगादादाय सायकम्। गच्छेत्तोरणमूलं तु यतः स पुरुषो गतः॥ आगतस्तु शरग्राही न पश्यति यदा जले। अन्तर्जलगतं सम्यक् तदा शुद्धिं विनिर्दिशेत्॥" इति।'

२. 'करौ विमृदितव्रीहीं लक्षयित्वा ततो न्यसेत्।
सप्त चाश्वत्थपत्राणि तावत्सूत्रेण वेष्टयेत्॥
त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावके।
साक्षिवत्पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं कवे मम॥
तस्येत्युक्तवतो लो (लौ) हं पञ्चाशत्पलिकं समम्।
अग्निवर्णं न्यसेत्पिण्डं हस्तयोरुभयोरपि॥'

याज्ञवल्क्यस्मृति २।१०३-१०५।

तुला-दिव्य के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य का निरूपण इस प्रकार है—

'तुला में एक ओर अभियुक्त को बैठाना चाहिए और दूसरी ओर मिट्टी आदि को रखकर लेखा कर लेनी चाहिए। इसके बाद अभियुक्त को उतरकर प्रार्थना करनी चाहिए—हे तुले, तुम सत्य का स्थान हो और देवों ने पहले तुम्हारा निर्माण किया है। अतएव हे कल्याण करने वाली, तुम सत्य बोलो और संशय से मुझे मुक्त कर दो। हे माता, यदि मैं असत्यवादी पापी हूँ, तो मुझे नीचे ले जाओ और यदि मैं शुद्ध हूँ, तो मुझे ऊपर कर दो। यदि तौलने पर प्रतिमान से दिव्यकर्ता ऊपर की ओर जाये, तो शुद्ध समझना चाहिए और यदि नीचे की ओर जाये, तो अशुद्ध।'[1]

विष-दिव्य के सम्बन्ध में अधोलिखित विवेचन मिलता है—

'हे विष, तुम ब्रह्मा के पुत्र हो और सत्यधर्म में व्यवस्थित हो। तुम अभिशाप से मेरी रक्षा करो और मेरे लिए अमृत हो जाओ। ऐसा कहकर अभियुक्त हिमशैलज शार्ङ्ग विष खाये। यदि विष का वेग न हो और पच जाय, तो अभियुक्त शुद्ध माना जाता है।'[2]

आशौच का उल्लेख मिलता है।[3]

मनु का कथन है कि सपिण्डों में मृतक का आशौच दस दिन तक रहता है। किन्हीं को अस्थि-संचयन तक, किन्हीं को तीन दिन तक तथा किन्हीं को एक दिन ही रहता है।'[4]

हर्षचरित में वर्णन किया गया है कि हर्ष ने आशौच में ताम्बूल नहीं ग्रहण किया।[5]

---

१. 'तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः।
प्रतिमानसमीभूतो रेखाः कृत्वाऽवतारितः।
त्वं तुले सत्यधामासि पुरा देवैर्विनिर्मिता।
तत्सत्यं वद कल्याणि संशयान्मां विमोचय॥
यद्यस्मि पापकृन्मातस्ततो मां त्वमधो नय।
शुद्धश्चेद्गमयोर्ध्वं मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत्॥'
याज्ञवल्क्यस्मृति २।१००-१०२

२. 'त्वं विष ब्रह्मणः पुत्रः सत्यधर्मे व्यवस्थितः।
त्रायस्वास्मादभीशापात् सत्येन भव मेऽमृतम्॥
एवमुक्त्वा विषं शार्ङ्गं भक्षयेद्धिमशैलजम्।
यस्य वेगैर्विना जीर्णं तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत्॥'
वही, २।११०-१११

३. हर्ष० ६।३६

४. 'दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते।
अर्वाक् सञ्चयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव वा॥' —मनु० ५।५९

५. हर्ष० ५।३४

धर्मशास्त्र का निर्देश है कि आशौच में ताम्बूल नहीं ग्रहण करना चाहिए।[1]

सूतक में कुशशयन पर लेटने का उल्लेख किया गया है।[2]

धर्मशास्त्र का वचन है कि आशौच में तृण, चटाई आदि पर लेटना चाहिए।[3]

सूर्यग्रहण के कारण उपस्थित आशौच में उपवास करने का उल्लेख किया गया है।[4]

धर्मसिन्धु का प्रमाण है कि यदि तीन रात्रि या एक रात्रि उपवास करके ग्रहण में स्नान, दान आदि करे, तो महान् फल होता है। एक रात्रि के पक्ष में तो ग्रहण से पूर्व दिन में उपवास करे, यह कुछ लोग कहते हैं। ग्रहण के ही अहोरात्र में उपवास करे, यह अन्य लोग कहते हैं।[5]

निर्णयसिन्धुकार का भी मत है कि राहु-दर्शन में सूतक लगता है। अतः स्नान करके कर्म करे तथा पक्वान्न न खाये।[6]

पुण्डरीक के मर जाने पर महाश्वेता जलना चाहती है।[7]

पति के मर जाने पर या तो ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए या सती हो जान चाहिए।[8]

वाण के वर्णन से यह प्रकट होता है कि जब स्त्रियाँ सती होने लगें, तब प्रसन्न रहें।[9]

धर्मशास्त्र में प्रतिपादित किया गया है कि जो स्त्री प्रसन्न होकर पति के पीछे जाने

---

१. 'तत्राशौचमध्ये माषमांसापूपमधुरलवणदुग्धाभ्यङ्गताम्बूलक्षाराणि वर्ज्यानि।'
Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. V, p, 111.

२. हर्ष० १।८

३. 'तृणकटास्तीर्णभूमौ पृथक् शयीरन् कम्बलाद्यास्तीर्णभूमौ।'
Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. 1, p. 43.

४. हर्ष० १।८

५. 'त्रिरात्रमेकरात्रं वा समुपोष्य ग्रहणे स्नानदानाद्यनुष्ठाने महाफलम्। एकरात्रपक्षे ग्रहणदिनात् पूर्वदिने उपवास इति केचित्। ग्रहणसम्बन्धाहोरात्र उपवास इत्यपरे।'
धर्मसिन्धु, प्रथम परिच्छेद, पृ० ३०।

६. 'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।
स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत्॥'
निर्णयसिन्धु, प्रथम परिच्छेद, पृ० ७५।

७. काद०, पृ० ३१२।

८. 'मृते भर्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा।'
काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश की टीका, पृ० ६३५।

९. हर्ष० ५।३२

की इच्छा से श्मशान में जाती है, वह पग-पग पर अश्वमेध का उत्तम फल प्राप्त करती है।[1]

प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद के वर्णन में उल्लेख किया गया है कि वसुमती धवल वस्त्र धारण करे।[2]

पृथ्वी राजा की पत्नी मानी गयी है। राजा की मृत्यु हो गयी है, अतः वह विधवा हो गयी है।

धर्मसिन्धु में प्रतिपादित किया गया है कि विधवा कंचुक न धारण करे तथा विकार उत्पन्न करने वाला वस्त्र न पहने।[3]

अस्थि-संचयन[4] तथा अस्थि-प्रक्षेप[5] का उल्लेख मिलता है।

'अस्थि-सञ्चयन मन्त्रों के सहित अग्निदाह के दिन से लेकर पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, सातवें या नवें दिन गोत्रजों के साथ अपने-अपने सूत्र के अनुसार करना चाहिए। उसमें द्विपाद तथा त्रिपाद नक्षत्र तथा कर्त्ता का जन्म-नक्षत्र वर्जित हैं। सम्भव हो, तो रवि, भौम, शनि—इन वारों को भी छोड़ दे।....अस्थियों का गङ्गाजल में या अन्य तीर्थ में प्रक्षेप करे।'[6]

राजा प्रभाकरवर्धन के शयन, आसन, आतपत्र आदि ब्राह्मणों को दे दिये गये।[7]

'ग्यारहवें दिन शय्या-दान का विधान है। मृत व्यक्ति ने जिन-जिन वाहन, भाजन, वस्त्र आदि का उपभोग किया हो और उसका जो-जो इष्ट हो, उन सबको दे दे।'[8]

---

१. 'अनुव्रजति भर्तारं गृहात् पितृवनं मुदा।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम्॥'
निर्णयसिन्धु, तृतीय परिच्छेद, पृ० ८०४।

२. हर्ष० ५।३३

३. 'कंचुकं न परीदध्याद्वासो न विकृतं वसेत्।'
धर्मसिन्धु, तृतीय परिच्छेद, पृ० ४१५।

४. हर्ष० ५।३३

५. वही, ६।३६

६. 'अस्थिसञ्चयनं तु समन्त्राग्निदाहदिनादारभ्य प्रथमदिने द्वितीये तृतीये चतुर्थे सप्तमे नवमे वा गोत्रजैः सह स्वस्वसूत्रोक्तप्रकारेण कार्यम्। तत्र द्विपादत्रिपादनक्षत्राणि कर्तुर्जन्मनक्षत्रं च वर्ज्यम्। सम्भवेऽर्कभौममन्दवारा वर्ज्याः। अस्थ्नां गङ्गाम्भसि तीर्थान्तरे वा प्रक्षेपः।'
धर्मसिन्धु, तृतीय परिच्छेद, पृ० ३९६।

७. हर्ष० ६।३६

८. 'एकादशाहे शय्याया दाने एष विधिः स्मृतः।
तेनोपभुक्तं यत्किंचिद्वस्त्रवाहनभाजनम्।
यद्यदिष्टं च तस्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत्॥'
धर्मसिन्धु, तृतीय परिच्छेद, पृ० ४०३।

वृषोत्सर्ग का भी उल्लेख हुआ है।[1]

मृत्यु के ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग करने का विधान निरूपित किया गया है। ग्यारहवें दिन बैल दाग करके छोड़ दिया जाता है। वृषोत्सर्ग का फल बताया गया है—'जिसकी मृत्यु के ग्यारहवें दिन वृष छोड़ा जाता है, वह प्रेतलोक का परित्याग करके स्वर्गलोक में चला जाता है।'[2]

आयुर्वेद

हर्षचरित से ज्ञात होता है कि विषवैद्य मयूरक, भिषक्पुत्र मन्दारक तथा धातुवादी विहङ्गम बाण के मित्र थे।[3]

प्रभाकरवर्धन के एक चिकित्सक का नाम रसायन था। वह पुनर्वसु के शिष्य[4] द्वारा उपदिष्ट आयुर्वेद का ज्ञाता था। वह आयुर्वेद के आठों अंगों में पारंगत था और व्याधियों के स्वरूप को ठीक-ठीक जानता था।[5]

सुश्रुत के अनुसार आयुर्वेद के ये आठ अंग हैं—शल्य, शालाक्य, काय-चिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायनतन्त्र तथा वाजीकरण।[6]

हर्षचरित में प्रभाकरवर्धन की व्याधि का वर्णन किया गया है। उससे उस समय की चिकित्सा के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है। वर्णन इस प्रकार है—

'गम्भीर ज्वर से वैद्य भी डर गये थे। मन्त्री विषण्ण थे। पुरोहित शिथिल थे। मित्र, विद्वान्, सामन्त—सभी दुःखित थे। चामरग्राही तथा शिरोरक्षक दुःख से कृश थे। कञ्चुकी, वन्दी तथा सेवक दुःखित थे। पौरोगव (पाकस्थानाध्यक्ष) वैद्यों द्वारा उपदिष्ट पथ्य को लाने में लगे हुए थे। बनिये भेषज की सामग्री को जुटाने में लगे हुए थे। तोयकर्मान्तिक बार-बार बुलाया जा रहा था। तक्र की मटकियों को तुषार में लपेटकर ठण्डा किया जा रहा था। श्वेत तथा भीगे कपड़े में रखे हुए कपूर से अञ्जन-शलाका

---

१. हर्ष० ३।४३

२. 'एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः।
प्रेतलोकं परित्यज्य स्वर्गलोकं स गच्छति॥'
Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. III, p. 190.

३. हर्ष० १।१९

४. पुनर्वसु के छह शिष्य थे—
'अथ मैत्रीपरः पुण्यमायुर्वेदं पुनर्वसुः।
शिष्येभ्यो दत्तवान् षड्भ्यः सर्वभूतानुकम्पया॥
अग्निवेशश्च भेल (ड) श्च जतूकर्णः पराशरः।
हारीतः क्षारपाणिश्च जगृहुस्तन्मुनेर्वचः॥'
चरकसंहिता, सूत्रस्थान, १।३०-३१

५. हर्ष० ५।२५

६. सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान, अध्याय १, पृ० २।

शीतल की गयी थी। गीले पंक से लिपे हुए नये भाण्ड में कुल्ला करने का मट्ठा रखा हुआ था। कमल के गीले तथा कोमल पत्तों से कोमल मृणाल ढके थे। वह स्थान, जहाँ पान-योग्य जल के पात्र थे, नालयुक्त नीलकमलों से युक्त था। उबाला हुआ जल धारा-निपातों से ठण्डा किया जा रहा था। पाटल शर्करा (लाल शक्कर) की सुगन्ध फैल रही थी। मञ्च पर बालू की बनी सुराही रखी हुई थी। सरस सेवार से लपेटा हुआ सरस रन्ध्रों वाला घड़ा झर रहा था। गल्वर्क के पात्र में लावा तथा सत्तू चमक रहे थे। पन्ना के पात्र में सफेद शक्कर रखी हुई थी। प्राचीन आँवला, मातुलुङ्ग, दाडिम, द्राक्षा आदि फल सञ्चित किये गये थे।'[1]

कवि ने कादम्बरी में सूतिकागृह का वर्णन किया है।[2]

यह वर्णन चरक में निरूपित सूतिकागृह के रक्षाविधान के वर्णन से मिलता है।[3]

---

१. हर्ष० ५।२२

२. 'तत्र च सुकृतरक्षासंविधाने, नवसुधानुलेपनधवलिते, प्रज्वलितमङ्गलप्रदीपे पूर्णकलशाधिष्ठितपक्षके, प्रत्यग्रलिखितमङ्गल्यालेख्योज्ज्वलितभित्तिभागमनोहारिणि, उपरचितसितविताने, वितानपर्यन्तावबद्धमुक्तागुणे, मणिप्रदीपप्रहततिमिरे वासभवने भूतिलिखितपत्रलताकृतरक्षापरिक्षेपम्, शयनशिरोभागविन्यस्तधवलनिद्रामङ्गलकलशम्, आबद्धविविधौषधिमूलयन्त्रपवित्रम्, अवस्थापितरक्षाशक्तिवलयम्, इतस्ततो विकीर्णगौरसर्षपम्, अवलम्बितबालयोक्त्रग्रथितलोलपिप्पलपत्रम्, आसक्तहरितारिष्टपल्लवम्...शीतलप्रदीपैर्गोरोचनामिश्रगौरसर्षपैश्च सलिलाञ्जलिभिश्चाचारकुशलेनान्तःपुरजरतीजनेन क्रियमाणावतरणकमङ्गलाम्, धवलाम्बरविविक्तवेषेण प्रमुदितेन प्रस्तुतमङ्गलप्रायालापेन परिजनेनोपास्यमानाम्'।

काद०, पृ० १३६-१३७।

'मणिमयमङ्गलकलशयुगलाशून्येनासक्तबहुपुत्रिकालंकृतेन ... संनिहितकनकमयहलमुसलयुगेन ... अनवरतदह्यमानाज्यमिश्रभुजगनिर्मोकमेषविषाणक्षोदम्, अनल-पुष्यमाणारिष्टतरुपल्लवोल्लसितरक्षाधूमगन्धम्, अध्ययनमुखरद्विजगणप्रकीर्यमाणशान्त्युदकलवम्, अभिनवलिखितमातृपदपूजाव्यग्रधात्रीजनम्, अनेकवृद्धाङ्गनारब्धसूतिकामङ्गलगीतिकामनोहरम्, उपपाद्यमानस्वस्त्ययनम्, क्रियमाणशिशुरक्षाबलिविधानम्...रक्षापुरुषैः परिवृतं सूतिकागृहमदर्शत्।'

वही, पृ० १४१-१४४।

३. 'अथास्य रक्षां विदध्यात् — आदानीखदिरकर्कन्धुपीलुपरूषकशाखाभिरस्या गृहं समन्ततः परिवारयेत्। सर्वतश्च सूतिकागारस्य सर्षपातसीतण्डुलकणकणिकाः प्रकिरेयुः। तथा तण्डुलबलिहोमः सततमुभयकालं क्रियेतानामकर्मणः। द्वारे च मुसलं देहलीमनु तिरश्चीनं न्यसेत् वचाकुष्ठक्षौमकहिङ्गुसर्षपातसीलशुनकणकणिकानां रक्षोघ्नसमाख्यातानां चौषधीनां पोट्टलिकां बद्ध्वा सूतिकागारस्योत्तर-

षष्ठी देवी का उल्लेख किया गया है।[1]

बालक की छठी की रात्रि में रक्षा का विधान करके बान्धवों को जागना चाहिए।[2]

'पुटपाक' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।[3]

'एक शराव में औषध रखकर उसे दूसरे शराव से ढक दिया जाता है। इस शराव-सम्पुट पर मिट्टी से लेप कर दिया जाता है। तब उसे आग में डाल दिया जाता है। इस प्रकार की विधि को पुटपाक कहते हैं।'[4]

'रसायन' पद का प्रयोग किया गया है।[5]

'जो औषधि वृद्धावस्था तथा व्याधियों का नाश करे, वय का स्तम्भन करे, नेत्र को बल दे, धातुओं को बढ़ाये और कामभावना को उत्तेजित करे, उसे रसायन कहते हैं।'[6]

'रसायन से दीर्घ आयु, स्मृति, मेधा, आरोग्य, तरुणावस्था, शरीर-बल, इन्द्रिय-बल तथा कान्ति की प्राप्ति होती है।'[7]

हर्षचरित में कफ से पीड़ित के लिए कटुक के प्रयोग का उल्लेख मिलता है।[8]

देहल्यामवसृजेत्, तथा सूतिकायाः कण्ठे सपुत्रायाः स्थाल्युदककुम्भपर्यङ्केष्वपि, तथैव च द्वयोर्द्वारपक्षयोः। कणककण्टकेन्धनवानग्निस्तिन्दुककाष्ठेन्धनश्चाग्निः सूतिकागारस्याभ्यन्तरतो नित्यं स्यात्। स्त्रियश्चैनां यथोक्तगुणाः सुहृदश्चानुजागृयुर्दशाहं द्वादशाहं वा। अनुपरतप्रदानमङ्गलाशीः स्तुतिगीतवादित्रमन्नपानविशदमनुरक्तप्रहृष्टजनसम्पूर्णं च तद्वेश्म कार्यम्। ब्राह्मणश्चाथर्ववेदवित् सततमुभयकालं शान्ति जुहुयात् स्वस्त्ययनार्थं कुमारस्य तथा सूतिकायाः।'

चरकसंहिता, शारीरस्थान ८।४७

१. काद०, पृ० १४२।

२. 'षष्ठीं निशां विशेषेण कृतरक्षाबलिक्रियाः।
जागृयुर्बान्धवास्तत्र दधतः परमां मुदम्॥'

अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान १।२१

३. हर्ष० २।२३

४. उत्तररामचरित, कान्तानाथ शास्त्री-कृत टिप्पणी, पृ० ४०३।

५. काद०, पृ० ३९८।

६. 'यज्जराव्याधिविध्वंसि वयसः स्तम्भकं तथा।
चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं भेषजं तद्रसायनम्॥'

योगरत्नाकर, रसायनाधिकार, पृ० ९२७।

७. 'दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
देहेन्द्रियबलं कान्तिं नरो विन्देद्रसायनात्॥'

वही, पृ० ९२७।

८. हर्ष० ७।६५

कफज्वर में कटुक (कटुरसाधिष्ठित, ज्वर को दूर करने वाले द्रव्यों से बनाया गया क्वाथ) का प्रयोग करना चाहिए।[१]

बाण के उल्लेख से ज्ञात होता है कि सन्निपात में शिरोगौरव होता है और वह लङ्घन से दूर होता है।[२] दूसरे स्थल के उल्लेख से प्रकट होता है कि सन्निपात आलस्य उत्पन्न करने वाला होता है।[३]

चरकसंहिता में निरूपित किया गया है कि सन्निपात में शिरोगौरव और आलस्य होता है।[४] रसरत्नाकर में सन्निपात में लङ्घन का विधान निरूपित किया गया है।[५]

हर्षचरित में दाहज्वर का उल्लेख प्राप्त होता है। उल्लेख से ज्ञात होता है कि दाहज्वर चन्दनचर्चा से दूर होता है।[६]

आयुर्वेद में दाहज्वर के उपचार के लिए धारागृह, चन्दन-स्पर्श आदि का विधान किया गया है।[७]

राजयक्ष्मा का उल्लेख मिलता है।[८]

---

१. 'तिक्तः पित्ते विशेषेण प्रयोज्यः कटुकः कफे।'

अष्टाङ्गहृदय, चिकित्सितस्थान १।४०

२. हर्ष० ६।४६

३. वही, ८।८४

४. 'श्रमः पिपासा दाहश्च गौरवं शिरसोऽतिरुक्।
वातपित्तोल्बणे विद्याल्लिङ्गं मन्दकफे ज्वरे॥'

चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ३।९१

'आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरतिभ्रमैः।
कफोल्बणं सन्निपातं तन्द्राकासेन चादिशेत्॥'

वही, ३।९६

५. 'त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सप्तरात्रमथापि वा।
लङ्घनं सन्निपातेषु कुर्यादारोग्यदर्शनात्॥'

रसरत्नाकर, पृ० १२७।

६. हर्ष० ६।४७

७. 'पौष्करेषु सुशीतेषु पद्मोत्पलदलेषु च।
कदलीनां च पत्रेषु क्षौमेषु विमलेषु च॥
चन्दनोदकशीतेषु शीते धारागृहेऽपि वा।
हिमाम्बुसिक्ते सदने दाहार्तः संविशेत् सुखम्॥
हेमशङ्खप्रवालानां मणीनां मौक्तिकस्य च।
चन्दनोदकशीतानां संस्पर्शानुरसान् स्पृशेत्॥'

चरकसंहिता, चिकित्सास्थान ३।२६०-२६२

८. हर्ष० २।२२

राजयक्ष्मा क्षय, शोष और रोगराट् नामों से प्रसिद्ध है। यह बहुत भयङ्कर रोग है।[1]

वाण ने उल्लेख किया है कि क्षय का रोगी शिलाजतु का सेवन करता है।[2]

टीकाकार शङ्कर द्वारा उद्धृत श्लोक से ज्ञात होता है कि शिलाधातु के सेवन से क्षयरोग नष्ट होता है।[3]

भस्मक व्याधि का उल्लेख हुआ है।[4]

भस्मक व्याधि से पीड़ित मनुष्य जो कुछ भी खाता है, वह सब शीघ्र ही भस्म हो जाता है।[5]

कामला का उल्लेख मिलता है।[6]

'जो पाण्डुरोगी पित्त बढ़ाने वाले पदार्थों को खाता है, उसका पित्त रक्त और मांस को दूषित करके कामला रोग पैदा करता है। इससे नेत्र, मूत्र, त्वचा, नख, मुख तथा पुरीष हल्दी की भाँति पीले हो जाते हैं। दाह, अपच और तृषा की अधिकता हो जाती है। उसका रङ्ग मेढक की भाँति हो जाता है और इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं। यह रोग पाण्डुरोग के न होने पर भी पित्त के बढ़ जाने से हो जाता है।'[7]

हर्षचरित में अनुबन्धिका पद का प्रयोग मिलता है।[8]

अनुबन्धिका हिक्का (हिचकी) को कहते हैं।[9]

---

१. 'अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः।
राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति च स्मृतः॥'
योगरत्नाकर, राजयक्ष्मानिदान, पृ० ३१०।

२. हर्ष० २।२३

३. 'शिलाधातुप्रयोगाद्वा प्रसादाद्वाथ शाङ्करात्।
अजामूत्रप्रयोगाद्वा क्षयः क्षीयेत नान्यथा॥'
हर्ष०, शङ्कर-कृत टीका, पृ० ८१।

४. हर्ष० २।२३

५. 'येन भस्मीभवन्त्याशु भक्षितान्यखिलानि च।
स वस्तूनि क्षुधारूपो व्याधिर्भस्मक उच्यते॥'
हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० ७७।

६. हर्ष० ६।४५

७. 'यः पाण्डुरोगी सेवेत पित्तलं तस्य कामलाम्॥
कोष्ठशाखाश्रयं पित्तं दग्ध्वासृङ्मांसमावहेत्।
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वङ्नखवक्त्रशकृत्तया॥
दाहाविपाकतृष्णावान् भेकाभो दुर्बलेन्द्रियः।
भवेत् पित्तोल्बणस्यासौ पाण्डुरोगादृतेऽपि च॥
अष्टाङ्गहृदय, निदानस्थान १३।१५-१८

८. हर्ष० ५।२३

९. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. V, p. 81.

हर्षचरित के वर्णन से ज्ञात होता है कि अपस्मार के कारण स्थैर्य समाप्त हो जाता है।[१]

चरकसंहिता का प्रमाण है कि अपस्मार में स्मृति, बुद्धि तथा सत्त्व का नाश हो जाता है। इसमें ज्ञान नहीं रहता।[२]

अर्दित से ओष्ठ के वक्र होने की चर्चा मिलती है।[३]

अर्दित एक वातव्याधि है। अर्दित से मुख आधा टेढ़ा हो जाता है, ग्रीवा टेढ़ी हो जाती है, शिर हिलता है, वाणी ठीक से नहीं निकलती और नेत्र आदि में विकृति आ जाती है।[४]

हर्षचरित में उल्लेख हुआ है कि वातिक (वायुसम्बन्धी) विकार मनुष्य को उन्मत्त बना देता है।[५]

माधवनिदान में निर्देश किया गया है कि विकृत वात मनुष्य को उन्मत्त बना देता है।[६]

वातखुड व्याधि का उल्लेख हुआ है।[७]

'जो सुकुमार हैं, घूमते-फिरते नहीं, उनका रक्त दूषित हो जाता है। चोट लगने से या रक्त की शुद्धि न होने से भी रक्त दूषित हो जाता है। रक्त के दूषित होने पर वायु-वर्धक तथा शीतल द्रव्यों का सेवन करने से बढ़ा हुआ और क्रुद्ध वायु प्रतिलोम होकर उस प्रकार से दूषित रक्त से रुद्ध होकर पहले रक्त को ही दूषित कर देता है। इसके नाम ये हैं—आढ्यरोग, खुड, वातबलाश और वातशोणित।'[८]

हर्षचरित के उल्लेख से प्रकट होता है कि तेल से वातरोग दूर होता है।[९]

आयुर्वेद में वातरोग को दूर करने के लिए तैल का विधान निरूपित किया गया है।[१०]

---

१. हर्ष० २।२४

२. 'अपस्मारं पुनः स्मृतिबुद्धिसत्त्वसंप्लवाद् वीभत्सचेष्टमावस्थिकं तमःप्रवेशमाचक्षते।'
चरकसंहिता, निदानस्थान, अध्याय ८, पृ० ३२६।

३. हर्ष० २।२४

४. 'वक्रीभवति वक्त्रार्धं ग्रीवा चाप्यपवर्तते।
शिरश्चलति वाक्स्तम्भो नेत्रादीनाञ्च वैकृतम्॥'
माधवनिदान, वातव्याधि अधिकार, पृ० १४५।

५. हर्ष० ४।११

६. माधवनिदान, उन्मादनिदान, पृ० १२४।

७. हर्ष० ८।७६

८. 'प्रायेण सुकुमाराणामचङ्क्रमणशीलिनाम्।
अभिघातादशुद्धेश्च नृणामसृजि दूषिते॥
वातलैः शीतलैर्वायुर्वृद्धः क्रुद्धो विमार्गगः।
तादृशेनासृजा रुद्धः प्राक् तदेव प्रदूषयेत्॥
आढ्यरोगं खुडं वातबलाशं वातशोणितम्।
तदाहुर्नामभिस्तच्च पूर्वं पादौ प्रधावति॥'
अष्टाङ्गहृदय, निदानस्थान १६।२-४

९. हर्ष० ८।८४

१०. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान, अध्याय २८।

सूजी हुई आँखों में मनःशिला के लेप का उल्लेख किया गया है।[१]

अष्टाङ्गहृदय में दाह, उपदेह, राग, अश्रुस्राव तथा शोथ की शान्ति के लिए विडालक (आँख के बाहर पलकों पर लेप) का विधान बताया गया है। कफजनित अभिष्यन्द में मनःशिला आदि का विडालक करना चाहिए।[२]

कादम्बरी में तिमिर रोग का उल्लेख किया गया है। उल्लेख से यह प्रकट होता है कि उसको दूर करने के लिए अञ्जनवर्ति का प्रयोग करना चाहिए।[३]

अष्टाङ्गहृदय में तिमिर को दूर करने वाले अञ्जन के सम्बन्ध में इस प्रकार निरूपण किया गया है—

'जितना भाग पारद एवं सीसक का हो, उतना ही अञ्जन होना चाहिए। उसमें थोड़ा-सा कपूर मिलाना चाहिए। इस प्रकार बनाया गया अञ्जन तिमिर को नष्ट करता है।'[४]

बाण के उल्लेख से प्रकट होता है कि चक्षूराग (नेत्र की लालिमा) को दूर करने के लिए उष्णोदक से स्वेद करना चाहिए।[५]

आयुर्वेद में प्रसिद्ध है कि उष्णोदक से स्वेद करने से नेत्र की रक्तिमा दूर होती है।[६]

बाण ने निरूपण किया है कि कर्णकण्डू को दूर करने के लिए क्षार का प्रयोग करना चाहिए।[७]

अष्टाङ्गहृदय में कर्णकण्डू को दूर करने के लिए क्षारतैल का प्रयोग श्रेष्ठ बताया गया है।[८]

---

१. हर्ष० ८।७६

२. 'दाहोपदेहरागाश्रुशोफशान्त्यै विडालकम्।
कुर्यात् सर्वत्र पत्रैलामरिचस्वर्णगैरिकैः॥
... ...
मनोह्वाफलिनीक्षौद्रैः कफे सर्वस्तु सर्वजे।'
अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान १६।२,५

३. 'कष्टमनञ्जनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्।'
काद०, पृ० १६५।

४. 'रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ तयोस्तुल्यमथाञ्जनम्।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तमञ्जनं तिमिरापहम्॥'
अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान १३।३६

५. हर्ष० ६।४६

६. हर्ष०, जीवानन्द-कृत टीका, पृ० ६५७।
Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VI, p. 149.

७. हर्ष० ६।४६

८. 'कण्डूं क्लेदं च बाधिर्यं पूतिकर्णं च रुक्कृमीन्।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयेषु च॥'
अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान १८।२९-३०

'गलग्रह' का प्रयोग हुआ है ।[१]

चरक का वचन है कि जिस मनुष्य का कफ स्थिर होकर गले के अन्दर ठहरा हुआ शोथ उत्पन्न करता है, उसे गलग्रह हो जाता है ।[२]

हर्षचरित के निरूपण से स्पष्ट होता है कि श्वयथु में सिरा से रक्त निकलवाना चाहिए ।[३]

सुश्रुतसंहिता में श्वयथु में सिरावेध से रुधिर निकलवाने का विधान बताया गया है ।[४]

उष्णस्वेद से घाव की कर्कशता को दूर करने का उल्लेख किया गया है ।[५]

आयुर्वेद में निरूपित किया गया है कि व्रण की कर्कशता को स्वेदन से दूर करना चाहिए ।[६]

संगीत

बाण सङ्गीत के मर्मज्ञ थे । उन्होंने अनेक स्थलों पर सङ्गीत-सम्बन्धी बातों का उल्लेख किया है ।

कादम्बरी में सङ्गीतक शब्द का प्रयोग मिलता है ।[७]

गीत, नृत्य तथा वाद्य—इन तीनों को सङ्गीत कहते हैं ।[८]

गीति[९] और गीत[१०] शब्दों के प्रयोग प्राप्त होते हैं ।

'स्थायी, आरोही तथा अवरोही वर्णों से अलङ्कृत पद एवं लय से युक्त गानक्रिया गीति कहलाती है ।'[११]

---

१. हर्ष० २।२४

२. 'यस्य श्लेष्मा प्रकुपितस्तिष्ठत्यन्तर्गले स्थिरः ।
आशु संजनयेच्छोफं जायतेऽस्य गलग्रहः ॥'
चरकसंहिता, सूत्रस्थान १८।२२

३. हर्ष० ६।४६

४. 'सिराभिश्चाभीक्ष्णं शोणितमवसेचयेत् ।'
सुश्रुतसंहिता, चिकित्सास्थान, अध्याय २३, पृ० ४८६ ।

५. हर्ष० ६।४६-४७

६. 'रुजावतां दारुणानां कठिनानां तथैव च ।
शोफानां स्वेदनं कार्यं ये चाप्येवंविधा व्रणाः ॥'
सुश्रुतसंहिता, चिकित्सास्थान १।२१

७. काद०, पृ० १४

८. 'गीतनृत्यवाद्यत्रयं प्रेक्षणार्थे कृतं संगीतकमुच्यते ।'
काद०, भानुचन्द्र-कृत टीका, पृ० १४ ।

९. हर्ष० १।६, ३।३९

१०. वही, ३।३९

११. कैलासचन्द्र देव : भरत का संगीत-सिद्धान्त, पृ० २४५ ।

'दशांशलक्षणलक्षित स्वरसन्निवेश (राग या जाति), पद, ताल एवं मार्ग—इन चार अङ्गों से युक्त गान गीत कहलाता है।'[1]

ध्रुवा[2] तथा ध्रुव[3] पदों के प्रयोग दर्शनीय हैं।

ध्रुवा एक प्रकार की गीति है।[4]

गान में जिसे बार-बार दुहराते हैं, उसे ध्रुव (टेक) कहते हैं।[5]

कादम्बरी में स्वर शब्द का प्रयोग किया गया है।[6]

जो श्रुतिके बाद हो तथा अनुरणनात्मक, श्रोत्राभिराम और रञ्जक हो, उसे स्वर कहते हैं।[7]

स्वर सात हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत तथा निषाद।[8]

स्वरों में निषाद का उल्लेख हुआ है।[9]

एक सप्तक के सभी स्वर जहाँ आकर समाप्त हो जायँ, उसे निषाद कहते हैं।[10]

'विवादी' पद का प्रयोग किया गया है।[11]

जिन स्वरों में बीस श्रुतियों का अन्तर होता है, वे परस्पर विवादी होते हैं।[12]

---

१. कैलासचन्द्र देव : भरत का संगीत-सिद्धान्त, पृ० २५०।

२. हर्ष० १।८

३. काद०, पृ० २४९।

४. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. 1, p. 46.

५. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 124-237 of Peterson's edition), p. 26.

६. काद०, पृ० ३५९।

७. 'श्रुत्यन्तरभावित्वं यस्यानुरणनात्मकः।
स्निग्धश्च रञ्जकश्चासौ स्वर इत्यभिधीयते॥'
सङ्गीतदर्पण, प्रथम खण्ड १।५७

८. 'षड्ज ऋषभगान्धारौ मध्यमः पञ्चमस्तथा।
धैवतश्च निषादश्च स्वराः सप्त प्रकीर्तिताः॥'
सङ्गीतदामोदर, तृतीयस्तबक, पृ० ३०।

९. 'गीतकलाविन्यासमिव निषादानुगतम्' — काद०, पृ० ६२।

१०. 'निषीदन्ति यतो लोके निषादस्तेन कथ्यते।'
सङ्गीतदामोदर, तृतीय स्तवक, पृ० ३०।

११. हर्ष० ३।३९

१२. 'विवादिनस्तु ये तेषां स्याद्विंशतिकमन्तरम्।'
कैलासचन्द्र देव : भरत का सङ्गीत-सिद्धान्त, पृ० ४२।
तथा
'बीस का अन्तर होने पर स्वर विवादी होते हैं, यथा ऋषभ और गान्धार तथा धैवत और निषाद।'
रामजी उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० ९२१।

गमक का प्रयोग मिलता है ।[1]

अपनी श्रुति से उत्पन्न छाया को छोड़कर दूसरी श्रुति के आश्रय को जो स्वर ले जाय, उसे गमक कहते हैं ।[2]

बाण ने मूर्च्छना का उल्लेख किया है ।[3]

क्रम-युक्त होने पर सात स्वर मूर्च्छना कहे जाते हैं ।[4]

कादम्बरी में राग शब्द का प्रयोग हुआ है ।[5]

जिससे लोगों के चित्त का रञ्जन हो, उसे राग कहते हैं ।[6]

श्रुति शब्द का प्रयोग हर्षचरित और कादम्बरी दोनों में प्राप्त होता है ।[7]

श्रुतियाँ वे सूक्ष्म ध्वनियाँ हैं, जिनसे स्वर बनते हैं ।[8]

समकाल का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है ।[9]

गान-ग्रह और ताल-ग्रह जहाँ एक साथ आकर मिल जायँ, उसे समकाल कहते हैं ।[10]

आरभटी का उल्लेख मिलता है ।[11]

---

१. हर्ष० ३।३९

२. 'स्वश्रुतिस्थानसम्पन्नच्छायां श्रुत्यन्तराश्रयाम् ।
स्वरो यो मूर्च्छनामेति गमकः स इहोच्यते ।।'
सङ्गीतदामोदर, तृतीय स्तबक, पृ० ३१ ।

३. 'वेणुर्मूर्च्छनासु' —हर्ष० ७।६६

४. 'क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छनास्त्वभिसंज्ञिताः ।'
कैलासचन्द्र देव : भरत का सङ्गीत-सिद्धान्त, पृ० ३४ ।

५. काद०, पृ० ११ ।

६. 'यैस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगत्त्रितयवर्तिनाम् ।
ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भरतादिभिः ।।'
सङ्गीतदामोदर, तृतीयस्तबक, पृ० ३४ ।
'योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।
रञ्जको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः ।।'
सङ्गीतदर्पण २।१

७. हर्ष० ३।३९; काद०, पृ० २५ ।

८. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. III, p. 160.

९. हर्ष० ४।८

१०. सङ्गीत के मर्मज्ञ डॉ० जयदेव सिंह के निर्देश के अनुसार समकाल का लक्षण दिया गया है ।

११. हर्ष० २।२२

आरभटी एक वृत्ति है। माया, इन्द्रजाल, सङ्ग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त चेष्टायें, वध, वन्ध आदि से युक्त उद्धत वृत्ति को आरभटी कहते हैं।[१]

ताण्डव[२] और लास्य[३] का उल्लेख किया गया है।

पुरुष का नृत्य ताण्डव और स्त्री का नृत्य लास्य कहा जाता है।[४]

जो भाव, ताल आदि से युक्त हो, कोमल अङ्गों द्वारा हो और जिसके द्वारा शृङ्गार आदि रसों का उद्दीपन हो, वह नृत्य लास्य कहा जाता है।[५]

रेचक और रास का भी उल्लेख किया गया है।[६]

रेचक में कमर, हाथ और ग्रीवा का सञ्चालन होता है।[७] शङ्कर के अनुसार इसके तीन प्रकार हैं—कटीरेचक, हस्तरेचक तथा ग्रीवारेचक।[८]

रास में पुरुष और स्त्री मण्डल वना कर नाचते हैं। इसमें आठ, सोलह या वत्तीस नायक नाचते हैं।[९]

तालावचर पद का प्रयोग मिलता है।[१०]

हाथों से ताल देकर जो गाते हैं और नृत्य करते हैं, वे तालावचर कहे जाते हैं।[११]

करण का उल्लेख हुआ है।[१२]

---

१. 'मायेन्द्रजालसङ्ग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः ॥
संयुक्ता वधबन्धाद्यैरुद्धतारभटी मता।'
साहित्यदर्पण ६।१३२-१३३

२. काद०, पृ० ४६।

३. वही, पृ० ५२।

४. 'पुंनृत्यं ताण्डवं नाम स्त्रीनृत्यं लास्यमुच्यते।
सङ्गीतदामोदर, चतुर्थ स्तबक, पृ० ६९।

५. हिन्दी विश्वकोष, २० वाँ भाग, पृ० २९६।

६. हर्ष० २।२२

७. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३३।

८. हर्ष०, शङ्कर-कृत टीका, पृ० ७८।

९. 'अष्टौ षोडश द्वात्रिंशद्यत्र नृत्यन्ति नायकाः।
पिण्डीवन्धानुसारेण तन्नृत्तं रासकं स्मृतम् ॥'
वही, पृ० ७८

१०. हर्ष० ४।८

११. 'करांस्तु तालं कृत्वा ये गीतं नृत्तं च कुर्वते।
ते तालावचराः प्रोक्ता गीतिशास्त्रविशारदैः ॥'
हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० १९१।

१२. हर्ष० ३।३९

हाथ से ताल को स्पष्ट करना करण कहा जाता है ।[१]

सारणा का उल्लेख किया गया है ।[२]

वीणा-वादन को सारणा कहते हैं ।[३]

आतोद्य का उल्लेख हुआ है ।[४]

अमरकोश के अनुसार वाद्य और आतोद्य समानार्थक हैं । इसके चार प्रकार हैं—तत, अवनद्ध, घन तथा सुषिर । वीणा आदि वाद्य तत के अन्तर्गत आते हैं, मुरज आदि अवनद्ध कहे जाते हैं, वंश आदि की सुषिर तथा कांस्यताल आदि की घन संज्ञा है ।[५]

आलिङ्ग्यक,[६] झल्लरी,[७] तन्त्रीपटहिका,[८] घर्घरिका,[९] मृदङ्ग,[१०] वीणा,[११] वेणु,[१२] परिवादिनी[१३] (सात तन्त्रियों से युक्त वीणा), दुंदुभि,[१४] प्रयाणभेरी,[१५] काहला,[१६] प्रयाणपटह,[१७] डिण्डिम[१८] आदि वाद्यों का उल्लेख हुआ है ।

सङ्गीत-सम्बन्धी उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त तान,[१९] ताल[२०] लय[२१] आदि का भी उल्लेख मिलता है ।

---

१. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. III, p. 171
मल्लिनाथ ने कुमारसम्भव (७।४०) की टीका में करण का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—
"करणैस्तालव्यवस्थापितैस्ताडनविशेषैः । तदुक्तं राजकन्दर्पेण –
'नृत्यवादित्रगीतानां प्रयोगवशभेदिनाम् ।
संस्थानं ताडनं रोधः करणानि प्रचक्षते ।।' इति ।"

२. काद०, पृ० १६३ ।

३. Kane's Notes on ahe Kādambarī (pp. 1-124 of Peterson's edition), p. 215.

४. हर्ष० ४।८

५. 'ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम् ।
वंशादिकं तु सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम् ।
चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्यनामकम् ।।'
अमरकोश १।७।४-५

६, ७, ८. हर्ष० ४।८

९. काद०, पृ० १३ ।

१०. वही, पृ० १४ ।

११, १२. वही, पृ० २५ ।

१३. वही, पृ० १७१ ।

१४. वही, पृ० २१६ ।

१५, १६ १७, १८. वही, पृ० २१७ ।

१९. हर्ष० ४।८, ८।७६

२०, २१. वही, ४।८

सामुद्रिकशास्त्र

हर्षवर्धन चक्रवर्ती के चिह्नों का समाश्रय कहा गया है।[1]

चक्रवर्ती के चिह्न ये हैं—दण्ड, अंकुश, चक्र, धनुष, श्रीवत्स, वज्र तथा मत्स्य।[2]

शूद्रक चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त था।[3]

चक्रवर्ती के लक्षण इस प्रकार निरूपित किये गये हैं—जिसका हाथ अत्यन्त लाल तथा कोमल हो, अंगुलियाँ सटी हों और हाथ में धनुष तथा अंकुश के चिह्न हों, वह चक्रवर्ती होता है।[4]

हर्षवर्धन का चरण अरुण था।[5]

सामुद्रिकशास्त्र में उल्लेख प्राप्त होता है कि जिनके चरण, रसना, ओष्ठ आदि लाल होते हैं, वे धन, पुत्र तथा स्त्री के सुख से युक्त होते हैं।[6]

चन्द्रापीड के चरणों में ध्वज, रथ, अश्व, छत्र तथा कमल की रेखायें थीं।[7]

जिनके चरण छत्र, कमल आदि की रेखाओं से युक्त होते हैं, वे सम्राट् होते हैं।[8]

शूद्रक की भुजायें लम्बी थीं।[9]

लम्बी भुजायें प्रशस्त मानी जाती हैं। राजा की भुजायें लम्बी होती हैं।[10]

---

१. हर्ष० ४।६

२. 'दण्डाङ्कुशौ चक्रचापौ श्रीवत्सः कुलिशं तथा।
मत्स्यश्चैतानि चिह्नानि कथ्यन्ते चक्रवर्तिनाम्।'
हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० १८७।

३. काद०, पृ० ७।

४. 'अतिरक्तः करो यस्य ग्रथिताङ्गुलिको मृदुः।
चापाङ्कुशाङ्कितः सोऽपि चक्रवर्ती भवेद् ध्रुवम्॥'
काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश-कृत टीका, पृ० १३।

५. हर्ष० २।३२

६. 'रसनोष्ठदन्तपीठकरांघ्रिगुदतालुलोचनान्तेन।
रक्तेन रक्तसारा धनतनयस्त्रीसुखोपेताः॥'
सामुद्रिकशास्त्र, पृ० ८२।

७. काद०, पृ० १४६।

८. 'यस्य पादतले पद्मं चक्रं वाप्यथ तोरणम्।
अङ्कुशं कुलिशं छत्रं स सम्राड् भवति ध्रुवम्॥'
काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश-कृत टीका, पृ० २८४।

९. काद०, पृ० १९।

१०. 'बाहू वामविवलितौ वृत्तावाजानुलम्बितौ पीनौ।
पाणी फलछत्राङ्कौ करिकरतुल्यौ समौ नृपतेः॥'
सामुद्रिकशास्त्र, पृ० ३८।

शूद्रक के हाथ में शंख तथा चक्र के चिह्न थे।[१]

सामुद्रिकशास्त्र में कहा गया है कि जिसके हाथ में शंख का चिह्न होता है, वह लक्षपति होता है और जिसके हाथ में चक्र का चिह्न होता है, वह राजा होता है।[२]

चन्द्रापीड की हथेली लाल कमल की कली की भाँति थी।[३]

लाल हथेली प्रशस्त मानी गयी है।[४]

हर्ष का वक्षःस्थल विशाल था।[५]

विशाल वक्षःस्थल प्रशस्त माना गया है।[६]

हर्ष का कन्धा वृषभ के कन्धे की भाँति था।[७]

जिसका कन्धा वृषभ के ककुद की भाँति होता है, वह लक्ष्मी से सम्पन्न होता है।[८]

हर्ष का अधर विम्वफल की भाँति था।[९] चन्द्रापीड का अधर रक्तकमल की कली की भाँति था।[१०]

जिसका अधर विम्ब की भाँति होता है, वह धनाढ्य होता है।[११] सामुद्रिकशास्त्र में लाल अधर प्रशस्त माना गया है।[१२]

चन्द्रापीड की नासिका दीर्घ थी।[१३]

---

१. काद०, पृ० ८।

२. 'शङ्खाङ्को लक्षपतिः' —सामुद्रिकशास्त्र, पृ० ४६।
'श्रीवत्साभा सुखिनां चक्राभा भूभुजां करे रेखा।' —वही, पृ० ४७।

३. काद०, पृ० १४५।

४. 'पाणिपादतलौ रक्तौ नेत्रान्तरनखानि च।
तालुकोऽधरजिह्वा च सप्त रक्तं प्रशस्यते॥'
काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश-कृत टीका, पृ० २८४।

५. हर्ष० २।३३

६. 'उरो ललाटं वदनं च पुंसां विस्तीर्णमेतत् त्रितयं प्रशस्तम्।'
बृहत्संहिता ६८।८५

७. हर्ष० २।३२

८. 'स्कन्धावनुक्रमतो मूले पीनौ समुन्नतौ किञ्चित्।
वृषककुदसमौ ह्रस्वौ लक्ष्मीं दृढसंहतिं वहतः॥'
सामुद्रिकशास्त्र, पृ० ३३।

९. हर्ष० २।३२

१०. काद०, पृ० १४५।

११. 'विम्बाधरो धनाढ्यः' —सामुद्रिकशास्त्र, पृ० ५९।

१२. 'तालुकोऽधरजिह्वा च सप्त रक्तं प्रशस्यते।'
काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश-कृत टीका, पृ० २८४।

१३. काद०, पृ० १४५।

दीर्घ नासिका प्रशस्त मानी गयी है।[१]

शूद्रक के नेत्र खिले हुए श्वेत कमल की भाँति श्वेत थे[२] और विस्तृत थे।[३]

जिनके नेत्र पद्मदल की भाँति होते हैं, वे धनी होते हैं।[४] यदि नेत्र मुक्ता की भाँति श्वेत हो, तो मनुष्य शास्त्र-ज्ञानी होता है।[५] धनवान् और भोगियोंके नेत्र स्निग्ध और बड़े होते हैं।[६]

हारीत की कनीनिकायें पिंगल थीं।[७]

महापुरुष की कनीनिकायें पिंगल होती हैं। जिसकी कनीनिकायें पिंगल होती हैं, वह चक्रवर्ती होता है।[८]

शूद्रक का ललाट अष्टमी के चन्द्रखण्ड की भाँति था तथा विस्तृत था।[९]

जिसका ललाट अर्धचन्द्र की भाँति हो, वह धनवान् होता है।[१०] यदि छाती, ललाट और वक्षःस्थल विस्तीर्ण हों, तो श्रेष्ठ होते हैं।[११]

शूद्रक ऊर्णा से युक्त था।[१२] चन्द्रापीड के ललाट पर भी पद्मनालखण्ड के सूत्र की भाँति सूक्ष्म ऊर्णा थी।[१३]

दोनों भौंहों के मध्य में जो लोमावर्त होता है, उसे ऊर्णा कहते हैं। ऊर्णा महापुरुष का लक्षण है। चक्रवर्तियों तथा योगियों के ललाट पर ऊर्णा होती है।[१४]

---

१. 'बाहुनेत्रद्वयं कुक्षि द्वौ तु नासा तथैव च।
स्तनयोरन्तरञ्चैव पञ्च दीर्घं प्रशस्यते॥'
काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश-कृत टीका, पृ० २८३।

२. काद०, पृ० १८।

३. वही, पृ० १९।

४. 'पद्मदलाभैर्धनिनः' — बृहत्संहिता ६८।६४

५. 'मुक्तासितैः श्रुतज्ञानी' — सामुद्रिकशास्त्र, पृ० ६६।

६. 'स्निग्धा विपुलार्थभोगवताम्' — बृहत्संहिता ६८।६७

७. 'काद०, पृ० ७३।

८. "इदं महापुरुषोपलक्षणम्। तदुक्तमन्यत्र —
'शूद्रोऽपि चक्रवर्ती स्यात्पीततारकचक्षुषि' इति।"
वही, भानुचन्द्र-कृत टीका, पृ० ७३।

९. काद०, पृ० १८।

१०. 'धनवन्तोऽर्धेन्दुसदृशेन' — बृहत्संहिता ६८।७०

११. 'उरो ललाटं वदनं च पुंसां विस्तीर्णमेतत्त्रितयं प्रशस्तम्।' — वही ६८।८५

१२. काद०, पृ० १८।

१३. वही, पृ० १४५।

१४. 'भ्रूद्वयमध्ये मृणालतन्तुसूक्ष्मः शुभायत एकः प्रशस्तावर्तो महापुरुषलक्षणं चक्रवर्त्यादीनां महायोगिनाञ्च भवति।'
काद०, हरिदास सिद्धान्तवागीश-कृत टीका, पृ० २८३।

हारीत की ललाटास्थि के पास गर्त था, जिसपर आवर्त शोभित हो रहा था।[१]

भानुचन्द्र का कथन है कि इस प्रकार का आवर्त महातपस्वी का लक्षण है।[२]

चन्द्रापीड के रुदन का स्वर दुन्दुभि की ध्वनि की भाँति अतिगम्भीर था।[३]

यदि स्वर, बुद्धि तथा नाभि गम्भीर हों, तो प्रशस्त माने जाते हैं।[४] सामुद्रिकशास्त्र का वचन है कि जिस बालक का रुदन मन्दर द्वारा मथी जाती हुई जलराशि की ध्वनि की भाँति गम्भीर होता है, वह पृथ्वी का पालन करता है।[५]

माधवगुप्त हाथी की भाँति चलता था।[६]

जिनकी गति शार्दूल, हंस, मत्त हाथी, बैल और मयूर के समान होती है, वे राजा होते हैं।[७]

स्त्रियों के निरूपण के प्रसंग में भी बाण का सामुद्रिकशास्त्रविषयक ज्ञान प्रकट होता है।

कादम्बरी के नितम्ब गुरु थे।[८] उसका मध्यभाग वलियों से अलंकृत था।[९] उसका अधर लाल था[१०] तथा बाल भ्रमर की भाँति नितान्त श्याम थे।[११]

बृहत्संहिता में गुरु नितम्ब[१२] तथा त्रिवली से अलंकृत मध्यभाग[१३] प्रशस्त माने गये हैं।

---

१. काद०, पृ० ७४।

२. वही, भानुचन्द्र-कृत टीका, पृ० ७४।

३. काद०, पृ० १४६।

४. 'स्वरो बुद्धिश्च नाभिश्च त्रिगम्भीरमुदाहृतम्।'
काद०, हरिदाससिद्धान्तवागीश-कृत टीका, पृ० २८५।

५. 'मन्दरमन्थानकमथ्यमानजलराशिघोषगम्भीरम्।
बालस्य यस्य रुदितं स महीं महीयान् संपालयति॥'
सामुद्रिकशास्त्र, पृ० ७१।

६. हर्ष० ४।१२

७. 'शार्दूलहंससमदद्विपगोपतीनां तुल्या भवन्ति गतिभिः शिखिनां च भूपाः।'
बृहत्संहिता ६८।११५

८. काद०, पृ० ३३९।

९. वही, पृ० ३४३।

१०. वही, पृ० ३४०।

११. वही, पृ० ३४३।

१२. 'विस्तीर्णमांसोपचितो नितम्बो गुरुश्च धत्ते रसनाकलापम्।'
बृहत्संहिता ७०।४

१३. 'मध्यं स्त्रियास्त्रिवलियुक्तम्'।
वही, ७०।५

यदि स्त्री का अधर बन्धुजीव पुष्प की भाँति लाल हो, तो प्रशस्त माना जाता है।[१]

स्त्रियों के कृष्णवर्ण के केश सुख प्रदान करने वाले होते हैं।[२]

सरस्वती की ध्वनि हंस के स्वन की भाँति थी।[३]

कोकिल तथा हंस के शब्द की भाँति मनोहर तथा दीनता से रहित वचन वाली स्त्री सुख देने वाली होती है।[४]

साहित्य

बाण साहित्य के मर्मज्ञ थे। उनकी रचनाओं में साहित्य के सौन्दर्यमय उपादानों का संयोग स्पष्टरूप से दृष्टिगत होता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में साहित्य की कतिपय महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है। यहाँ उनकी चर्चा की जा रही है।

बाण अपने समय में प्रचलित शैलियों का उल्लेख करते हैं—उत्तर के लोगों में श्लेष की बहुलता पायी जाती है, पश्चिम के लोगों में केवल अर्थ का प्राधान्य रहता है। दाक्षिणात्यों में उत्प्रेक्षा का बाहुल्य है और गौड़ों में अक्षरडम्बर।[५]

वे कहते हैं कि नवीन अर्थ, शिष्ट स्वभावोक्ति, सरल श्लेष, स्फुट रस तथा विकटाक्षरबन्ध एक स्थान पर कठिनता से मिलते हैं।[६]

वे सुभाषित के सम्बन्ध में कहते हैं कि मनोहर सुभाषित दुर्जन के गले के नीचे नहीं उतरता। सज्जन उसे अपने हृदय में धारण करते हैं।[७]

कवि ने आख्यायिका[८] और कथा[९] की प्रशंसा की है।

---

१. 'बन्धुजीवकुसुमोपमोऽधरो मांसलो रुचिरविम्बरूपभृत्।' — बृहत्संहिता ७०।६

२. 'स्निग्धनीलमृदुकुंचितैकजा मूर्धजाः सुखकराः समं शिरः।' — वही, ७०।९

३. हर्ष० १।१७

४. 'दाक्षिण्ययुक्तमशठं परपुष्टहंसवल्गुप्रभाषितमदीनमनल्पसौख्यम्।' —बृहत्संहिता ७०।७

५. 'श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः॥' — हर्ष० १।१

६. 'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेव दुष्करम्॥' हर्ष० १।१

७. 'सुभाषितं हारि विशत्यधो गलान्न दुर्जनस्यार्करिपोरिवामृतम्।
तदेव धत्ते हृदयेन सज्जनो हरिर्महारत्नमिवातिनिर्मलम्॥'
काद०, पृ० ४।

८. 'सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वलैः।
शब्दैराख्यायिका भाति शय्येव प्रतिपादकैः॥'
हर्ष० १।२

९. 'स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव॥'
काद०, पृ० ४।

आख्यानक शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।[१]

सरल और मनोज्ञ भाषा में कही हुई कथा को आख्यानक कहते हैं।[२]

सूत्रधार,[३] नाटक[४], अंक[५], प्रस्तावना[६] तथा पताका[७] पदों का प्रयोग मिलता है।

जो नाटकीय कथासूत्र की प्रथम सूचना देता है, उसे सूत्रधार कहते हैं।[८]

'नाटक की कथा इतिहास-प्रसिद्ध होनी चाहिए। इसमें पाँच सन्धियाँ हों। यह विलास, समृद्धि आदि गुणों और अनेक प्रकार की विभूतियों के वर्णन से युक्त हो। इसमें सुख-दुःख की उत्पत्ति का निरूपण हो और यह अनेक रसों से पूर्ण हो। इसमें पांच से लेकर दस तक अंक हों। प्रख्यात वंश में उत्पन्न, धीरोदात्त, प्रतापी, गुणवान् कोई राजर्षि या दिव्य अथवा दिव्यादिव्य पुरुष नायक होता है। शृङ्गार या वीर में से कोई एक रस प्रधान होता है और अन्य रस अंग होते हैं। इसको निर्वहण सन्धि में अद्‌भुत बनाना चाहिए। चार या पाँच मुख्य पुरुष कार्य के साधन में व्यापृत रहें। गाय की पूंछ के अग्रभाग की भाँति इसकी रचना होनी चाहिए।'[९]

---

१. काद०, पृ० १३।

२. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1-124 of Peterson's edition), p. 22.

३. 'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।' — हर्ष० १।२

४. काद०, पृ० १३।

५. वही, पृ० १७५।

६. वही, पृ० २०२।

७. वही, पृ० १७५।

८. 'नाटकीयकथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते॥'
अभिज्ञानशकुन्तल की रमेन्द्रमोहन बोस-कृत टीका, अंक १, पृ० ७।

९. 'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
विलासर्द्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः॥
सुखदुःखसमुद्भूतिनानारसनिरन्तरम्।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्॥'
साहित्यदर्पण ६।७-११

अङ्क का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—'इसमें नेता का चरित प्रत्यक्ष होना चाहिए। यह रस और भाव से समुद्दीप्त हो। गूढ़ार्थक शब्दों का प्रयोग न हो। छोटे चूर्णक (समास-रहित गद्य) का प्रयोग होना चाहिए। इसमें अवान्तर कार्य की समाप्ति हो जाय, किन्तु बिन्दु कुछ लगा रहे। यह बहुत कार्यों से युक्त न हो तथा इसमें बीज का उपसंहार न हो। इसे अनेक विधानों से युक्त होना चाहिए। इसमें पद्यों का प्रयोग अधिक नहीं होना चाहिए। इसमें आवश्यक कार्यों (सन्ध्या, वन्दन आदि) का विरोध न हो। अनेक दिनों में होने वाली कथा एक ही अङ्क में न कही जाय। नायक को सदा समीप रहना चाहिए। इसे तीन-चार पात्रों से युक्त होना चाहिए।'[1]

प्रस्तावना का लक्षण इस प्रकार है—'जहाँ नटी, विदूषक या पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ अपने कार्य के सम्बन्ध में प्रस्तुत कथा को सूचित करने वाले विचित्र वाक्यों से वार्तालाप करें, उसे आमुख कहते हैं। वही प्रस्तावना नाम से भी प्रसिद्ध है।'[2]

पताका का लक्षण यह है—'जो प्रासंगिक कथा अनुबन्ध-युक्त हो और दूर तक चले, वह पताका कही जाती है।'[3]

अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक, विन्दुमती, गूढचतुर्थपाद और प्रहेलिका शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है।[4]

---

१. 'प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः।
भवेदगूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसंयुतः॥
विच्छिन्नावान्तरैकार्थः किंचित्संलग्नबिन्दुकः।
युक्तो न बहुभिः कार्यैर्बीजसंहृतिमान्न च॥
नानाविधानसंयुक्तो नातिप्रचुरपद्यवान्।
आवश्यकानां कार्याणामविरोधाद्विनिर्मितः॥
नानेकदिननिर्वर्त्यकथया सम्प्रयोजितः।
आसन्ननायकः पात्रैर्युतस्त्रिचतुरैस्तथा॥'
साहित्यदर्पण ६।१२-१५

२. 'नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा॥'
वही, ६।३१-३२

३. 'सानुबन्धं पताकाख्यम्'—दशरूपक १।१३
इसकी वृत्ति इस प्रकार है—'दूरं यदनुवर्तते प्रासङ्गिकं सा पताका।'

४. काद०, पृ० १४।

अक्षरच्युतक में किसी अक्षर को निकाल देने से दूसरे अर्थ की प्रतीति होने लगती है। इसका उदाहरण यह है—

'कुर्वन् दिवाकराश्लेषं दधच्चरणडम्बरम्।
देव यौष्माकसेनायाः करेणुः प्रसरत्यसौ ॥'[१]

यदि यहाँ 'करेणु' पद में से 'क' निकाल दिया जाय, तो 'रेणु' पद अवशिष्ट रहता है। अब पूरे श्लोक में रेणु का वर्णन प्राप्त होता है।

मात्राच्युतक में किसी मात्रा के निकाल देने पर भी दूसरा अर्थ स्फुट प्रतीत होता है।[२] इसका उदाहरण अधोलिखित है—

'महाशयमतिस्वच्छं नीरं संतापशान्तये।
खलवासादतिश्रान्ताः समाश्रयत हे जनाः ॥'[३]

यहाँ 'नीर' शब्द की ईकार की मात्रा के निकाल देने पर 'नर' पद अवशिष्ट रहता है। अब इसके पक्ष में पूरे श्लोक का अर्थ घटित होता है।

रुद्रट ने मात्राच्युतक का अधोलिखित उदाहरण दिया है—

'नियतमगम्यमदृश्यं भवति किल त्रस्यतो रणोपान्तम्।'[४]

यहाँ किल की इकार की मात्रा को हटा देने से 'कलत्रस्य' पद बनता है। अब पूरे वाक्य का अर्थ कलत्र के पक्ष में घटित होता है।

बिन्दुमती में श्लोक के व्यंजनों के स्थान पर बिन्दु रख दिये जाते हैं और अ को छोड़कर अन्य स्वरों के चिह्न लगा दिये जाते हैं। इसमें बिन्दुओं और स्वरों के चिह्नों की सहायता से श्लोक बनाया जाता है।[५]

बिन्दुमती का उदाहरण इस प्रकार है—

'ि०००००ा०ं ि०ं ि००ाः ००००ीि०ि००ः।
००००० ि० ०००ा०० ०००ी ००ो००००ः ॥'

---

१. काद०, भानुचन्द्र-कृत टीका, पृ० १४।
धर्मदाससूरि ने विदग्धमुखमण्डन में अक्षरच्युतक का अधोलिखित उदाहरण दिया है-
'महानपि सुधीरोऽपि बहुरत्नयुतोऽपि सन्।
विरसः कुपरीवारो नदीनः केन सेव्यते ॥'—४।६५

२. 'अन्योऽप्यर्थः स्फुटो यत्र मात्रादिच्युतकेष्वपि।
प्रतीयते विदुस्तज्ज्ञास्तन्मात्राच्युतकादिकम् ॥' — विदग्धमुखमण्डन ४।५८

३. वही, ४।५९

४. रुद्रट : काव्यालंकार ५।२८

५. 'स्वरेषु बिन्दुयुक्तेषु हलानां यदबोधनम्।
तद्बिन्दुमदिति प्राहुः केचिद्बिन्दुमतीमिति ॥'
विदग्धमुखमण्डन ४।२९

उपरि निर्दिष्ट बिन्दुओं और स्वर-चिह्नों के आधार पर अधोलिखित श्लोक बनता है—

'त्रिभुवनचूडारत्नं मित्रं सिन्धोः कुमुद्वतीदयितः ।
अयमुदयति घुसृणारुणतरुणीवदनोपमश्चन्द्रः ॥'[1]

गूढचतुर्थपाद में श्लोक के तीन चरणों में चतुर्थ चरण छिपा रहता है। उदाहरण अधोलिखित है—

'द्युवियद्भामिनी तारसंरावविहतश्रुतिः ।
हेमेषु माला शुशुभे ।'

यहाँ श्लोक के अन्य चरणों में श्लोक का चतुर्थ चरण 'विद्युतामिव संहतिः' छिपा हुआ है।[2]

प्रहेलिका पहेली है। इसमें दो अर्थ वाले गुह्य शब्दों का प्रयोग होता है।[3] प्रहेलिका का अधोलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

'कानि निकृत्तानि कथं कदलीवनवासिना स्वयं तेन ।'[4]

यहाँ प्रश्न है—कदलीवन में गये हुए उसके द्वारा क्या किस प्रकार काटे गये ?

इसका उत्तर भी इसी में छिपा हुआ है। वह इस प्रकार है— उसके (रावण) द्वारा तलवार से कदली की भाँति नव शिर काटे गये।[5]

यह प्रहेलिका स्पष्ट प्रच्छन्नार्था है। इसमें एक अर्थ स्पष्ट रहता है और दूसरा छिपा रहता है। उदाहरण में प्रश्न-सम्बन्धी अर्थ स्पष्ट है और उत्तर-सम्बन्धी अर्थ छिपा हुआ है।[6]

---

१. विदग्धमुखमण्डन ४।३१

२. 'पादगुप्तकं यथा—'द्युविद्भामिनी तारसंरावविहतश्रुतिः। हेमेषु माला शुशुभे।' अत्र 'विद्युतामिव संहतिः' इति चतुर्थपादस्य गुप्तत्वम्।'
वाग्भट : काव्यानुशासन, अध्याय चतुर्थ, पृ० ४६।

३. 'द्वयोरप्यर्थयोर्गुह्यमानशब्दा प्रहेलिका ।'
अग्निपुराण ३४३।२५

४. रुद्रट : काव्यालंकार ५।२६

५. 'स चायम्। कानि शिरांसि मस्तकानि निकृत्तानि। कथम्। कदलीव रम्भेव। केन। असिना खड्गेन। कियन्ति। नव नवसंख्यानि। स्वयमात्मना। तेन दशाननेन। कथंशब्दोऽत्र विस्मये।'
रुद्रट-कृत काव्यालंकार ५।२६ की नमिसाधु-कृत व्याख्या।

६. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1-124 of Peterson's edition), p. 25.

बाण ने उज्ज्वल[1] और शय्या[2] पदों का प्रयोग किया है।

उज्ज्वल का अर्थ है—कान्ति-सम्पन्न। उज्ज्वलता (नवीनता) ही कान्ति है।[3] इसके अभाव में श्लोक प्राचीन कथन की छाया ही कहा जायगा।[4]

एक पद की दूसरे पद के प्रति मैत्री शय्या कही जाती है।[5] जब वाक्यों में पदों की मैत्री विद्यमान रहती है, तब एक भी पद हटाकर उसके स्थान पर दूसरा पद रखने पर सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।

कविसमय

कवि जिस अशास्त्रीय, अलौकिक तथा परम्परा-प्रचलित अर्थ का उपनिबन्धन करते हैं, उसे कविसमय कहते हैं।[6]

राजशेखर ने तीन प्रकार के अर्थनिबन्धनों का उल्लेख किया है—१. असत् का निबन्धन, २. सत् का अनिबन्धन, ३. नियम।[7]

जो पदार्थ शास्त्र या लोक में देखा या सुना न गया हो, उसका काव्य-रचना में उल्लेख करना असत् का निबन्धन है। शास्त्र और लोक-दोनों में वर्णित पदार्थ का उल्लेख न करना सत् का अनिबन्धन है तथा शास्त्र और लोक के नियमों से नियन्त्रित और बहुधा व्यवहृत पदार्थ का उल्लेख करना नियम है।

---

१. 'पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।'
हर्ष० १।२

२. 'रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता'—काद०, पृ० ४।

३. 'औज्ज्वल्यं कान्तिः'—काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति ३।१।२५, तथा
'औज्ज्वल्यं कान्तिरित्याहुर्गुणं गुणविपश्चितः।
पुराणचित्रस्थानीयं तेन वन्ध्यं कवेर्वचः॥'
हर्ष०, रंगनाथ-कृत टीका, पृ० ८।

४. 'बन्धस्योज्ज्वलत्वं नाम यदसौ कान्तिरिति। यदभावे पुराणच्छायेत्युच्यते।'
काव्यालंकारसूत्र ३।१।२५ की वृत्ति।

५. 'या पदानां परान्योन्यमैत्री शय्येति कथ्यते।'
वैद्यनाथ: प्रतापरुद्रयशोभूषण, काव्यप्रकरण, पृ० ६७।

६. 'अशास्त्रीयमलौकिकं च परम्परायातं यमर्थमुपनिबध्नन्ति कवयः स कविसमयः।'
काव्यमीमांसा, चतुर्दश अध्याय, पृ० १९६।

७. 'असतो निबन्धनात्, सतोऽप्यनिबन्धनात्, नियमतश्च।'
वही, पृ० १९७।

स्वर्ग्य-वर्ग

काम

काम के धनुष-बाण पुष्पमय हैं।[1]

बाण ने उल्लेख किया है कि काम का धनुष पुष्पमय है।[2] काम को कुसुमशर कहा गया है।[3]

काम के बाणों से युवकों के हृदय विद्ध होते हैं, ऐसी कवि-परम्परा है।[4] कादम्बरी में इसका उल्लेख हुआ है।[5]

कविपरम्परा में काम मूर्त और अमूर्त—दोनों माना गया है।[6]

कादम्बरी में मूर्त काम के उल्लेख का दर्शन किया जा सकता है।[7] काम के अमूर्तत्व को प्रकट करने के लिए काम के लिए अनंग शब्द का प्रयोग होता है। कवि ने काम के लिए अनंग शब्द का प्रयोग किया है।[8]

चन्द्रमा

कविपरम्परा है कि चन्द्रमा अत्रि के नेत्र से उत्पन्न हुआ है और शिव के शिर पर स्थित चन्द्रमा बालरूप है।[9]

हर्षचरित में अत्रि के नेत्र से उत्पन्न चन्द्रमा का उल्लेख हुआ है।[10]

बाण ने शिव के शिर पर स्थित बालचन्द्र का उल्लेख किया है।[11]

---

१. 'मौर्वी रोलम्बमाला धनुरथ विशिखाः कौसुमाः पुष्पकेतोः।'
साहित्यदर्पण ७।२४

२. 'अनङ्गकुसुमचापलेखामिव'—काद०, पृ० २३।

३. वही, पृ० २६१।

४. 'भिन्नं स्यादस्य बाणैर्युवजनहृदयं स्त्रीकटाक्षेण तद्वत्।'
साहित्यदर्पण ७।२४

५. 'प्रोषितजनजायाजीवोपहारहृष्टमन्मथास्फालितचापरवभयस्फुटितपथिकहृदयरुधिरार्द्रीकृतमार्गेषु।'
काद०, पृ० २६१।

६. काव्यानुशासन, प्रथम अध्याय, पृ० १८।

७. काद०, पृ० २६६।

८. वही, पृ० २३।

९. काव्यमीमांसा, षोडश अध्याय, तथा अलंकारशेखर, षष्ठरत्न, पृ० ६०।

१०. हर्ष ७।६०

११. 'अखिलमण्डलप्राप्त्यर्थमीशानशिरःशशाङ्कमिव धृतव्रतम्।'
काद०, पृ० २६३।

आकाश-वर्ग

ज्योत्स्ना

कृष्णपक्ष में ज्योत्स्ना और शुक्लपक्ष में तिमिर का अभाव माना गया है ।[१]
महाश्वेता गौरवर्ण की है । वह शुक्लपक्ष की परम्परा-सी दिखायी पड़ रही है ।[२]

पक्षि-वर्ग

चक्रवाक-मिथुन

कवि-प्रसिद्धि है कि चक्रवाक और चक्रवाकी रात्रि में एक-दूसरे से अलग रहते हैं ।[३]
बाण ने रात्रि में इनके वियोग का उल्लेख किया है ।[४]

वारि-वर्ग

समुद्र

क्षीरसागर तथा क्षारसागर में अभेद माना गया है ।[५]

विष्णु क्षीरसागर में शयन करते हैं, पर बाण ने क्षारसागर में शयन करने का उल्लेख किया है ।[६]

पातालीय-वर्ग

नाग और सर्प

कवि-समय के अनुसार नाग और सर्प में अभेद है ।[७]

वासुकि मूलतः सर्प है, पर बाण ने उसके लिए महानाग शब्द का प्रयोग किया है ।[८]

---

१. 'कृष्णपक्षे सत्या अपि ज्योत्स्नायाः, शुक्लपक्षे त्वन्धकारस्य ।'
काव्यानुशासन, प्रथम अध्याय, पृ० १३

२. काद०, पृ० २४६ ।

३. 'विभावर्यां भिन्नतटाश्रयणं चक्रवाकयोः' ।
कविकल्पलता, पृ० ३६ ।

४. 'कमलिनीपरिमलपरिचयागतालिमालाकुलितकण्ठं कालपाशैरिव चक्रवाकमिथुनमाकृष्यमाणं विजघटे ।'
काद०, पृ० १८६ ।

५. 'महार्णवसागरयोः क्षीरक्षारसमुद्रयोः'—काव्यकल्पलतावृत्ति १।५।१०६

६. 'न खलु साम्प्रतमाचरति जलशयनदोहदं देवो रथाङ्गपाणिर्यदिदममृतरससुरभिसलिलमपहाय लवणरसपयस्युदन्वति स्वपिति ।'
काद०, पृ० २३५ ।

७. 'कमलासम्पदोः कृष्णहरितोर्नागसर्पयोः'—अलंकारशेखर, षष्ठरत्न, पृ० ६० ।

८. 'अत्र बलिना मोचितभूभृद्वेष्टनो मुक्तो महानागः' ।
हर्ष० ३।४०

वनस्पति-वर्ग

पद्म और कुमुद

कवि-प्रसिद्धि है कि पद्म केवल दिन में विकसित होता है और कुमुद केवल रात्रि में।[1]

रवि-विरह से पद्मिनी के निमीलित होने का उल्लेख किया गया है।[2] दिन में पद्मिनी विकसित होती है और रात्रि में निमीलित हो जाती है।

बाण ने रात्रि में कुमुद के विकसित होने का उल्लेख किया है।[3]

अशोक

कवि-समय है कि अशोक स्त्रियों के पादाघात से विकसित होता है।[4]

कादम्बरी में वर्णन मिलता है कि युवतियाँ चरणों से अशोक के वृक्ष पर प्रहार करती हैं।[5]

बकुल

कवि-परम्परा है कि स्त्रियों की मुखमदिरा से सिक्त होकर बकुल विकसित होता है।[6]

बाण ने उल्लेख किया है कि बकुल कामिनी के मुख की मद्यधारा से विकसित होता है।[7]

मालती

वसन्त में मालती पुष्प का वर्णन नहीं किया जाता।[8]

कादम्बरी में वर्णन किया गया है कि मधुमास में मालती नहीं खिलती।[9]

---

१. 'अहन्यम्भोजं निशायां विकसति कुमुदम्'—साहित्यदर्पण ७।२५
२. काद०, पृ० २८२।
३. वही, पृ० ३०१।
४. 'पादाघातादशोकं विकसति'—साहित्यदर्पण ७।२४
५. 'कदाचिदशोकपादप इव युवतिचरणतलप्रहारसंक्रान्तालक्तको रागमुवाह।'
काद०, पृ० ११७।
६. 'पादाघातादशोकं विकसति बकुलं योषितामास्यमद्यैः।'
साहित्यदर्पण ७।२४
७. 'कदाचिद्वकुलतरुरिव कामिनीगण्डूषसीधुधारास्वादमुदितो विकाशमभजत्।'
काद०, पृ० ११७।
८. 'वसन्ते मालतीपुष्पं फलपुष्पे च चन्दने।'
अलंकारशेखर, षष्ठरत्न, पृ० ५९।
'न स्याज्जातिर्वसन्ते'—साहित्यदर्पण ७।२५
९. 'मधुमासकुसुमसमृद्धिमिवाजातिम्'—काद०, पृ० २३।

चन्दन

चन्दन की उत्पत्ति मलयपर्वत पर ही मानी जाती है ।[१]

बाण ने उल्लेख किया है कि मलय की मेखला चन्दनपल्लवों से अलंकृत रहती है ।[२]

वर्ण-वर्ग

शुक्ल और गौर

कवि-समय के अनुसार शुक्ल और गौर वर्णों में अभेद है ।[३]

महाश्वेता गौरवर्ण की है । उसके वर्ण को प्रकट करने के लिए शुक्लवर्ण के पदार्थ उपन्यस्त किये गये हैं ।[४]

यश, हास तथा पुण्य

यश और हास शुक्ल माने गये हैं ।[५]

कादम्बरी में यश[६] और हास[७] शुक्ल वर्णित किये गये हैं ।

पुण्य आदि भी श्वेत वर्णित किये जाते हैं ।[८]

कादम्बरी में पुण्य श्वेत वर्णित किया गया है ।[९]

भस्म

भस्म को धवल कहने का विधान है ।[१०]

कादम्बरी में भस्म का रंग धवल वर्णित किया गया है ।[११]

---

१. 'हिमवत्येव भूर्जत्वक् चन्दनं मलये परम् ।'—अलंकारशेखर, षष्ठरत्न, पृ० ५९ ।
बरनत चन्दन मलय ही हिमगिरि ही भुजपात ।
केशवग्रन्थावली, कविप्रिया, पृ० ११० ।

२. 'मलयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम्'—काद०, पृ० २३ ।

३. काव्यानुशासन, अध्याय १, पृ० १६ ।

४. काद०, पृ० २४३-२४६ ।

५. 'यशोहासादौ शौक्ल्यस्य'—काव्यानुशासन, अध्याय १, पृ० १४ ।
'मालिन्यं व्योम्नि पापे यशसि धवलता वर्ण्यते हासकीर्त्योः ।'
साहित्यदर्पण ७।२३

६. 'यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्ततः सुतो बाण इति व्यजायत ।'
काद०, पृ० ७ ।

७. 'पशुपतिलास्यक्रीडेव सुधाधवलाट्टहासा'—वही, पृ० १०३ ।

८. 'शुक्लत्वं कीर्तिपुण्यादौ'—अलंकारशेखर, षष्ठरत्न, पृ० ५९ ।

९. काद०, पृ० २६४-२६५ ।

१०. 'ध्वजचामरहंसानां हारस्य वकभस्मनोः ।' –अलंकारशेखर, षष्ठरत्न, पृ० ६० ।

११. 'गृहीतव्रतयेव भस्मधवलया'—काद०, पृ० ८३ ।

आतपत्र

सामान्यतः आतपत्र शुक्ल माना जाता है।[1]

बाण ने धवल आतपत्र का वर्णन किया है।[2]

अनुराग तथा क्रोध

अनुराग और क्रोध लाल माने जाते हैं।[3]

कादम्बरी में अनुराग[4] और क्रोध[5] लाल वर्णित किये गये हैं।

सूर्य

कविपरम्परा ने सूर्य को लाल माना है।[6]

हर्षचरित में सूर्य लाल वर्णित किया गया है।[7]

अयश तथा पाप

कविसमय के अनुसार ये कृष्णवर्ण माने गये हैं।[8]

बाण ने उल्लेख किया है कि अयश कज्जल की भाँति अतिमलिन होता है।[9]

हर्षचरित में शापाक्षर काले कहे गये हैं।[10]

शापाक्षर पापरूप होने के कारण मलिन कहे जाते हैं।[11]

---

१. 'सामान्यवर्णने शौक्ल्यं छत्राम्भःपुष्पवाससाम्।'
कविकल्पलता, पृ० ३६।

२. काद०, पृ० २१४-२१५।

३. 'प्रतापे रक्ततोष्णत्वं रक्तत्वं क्रोधरागयोः।'
काव्यकल्पलतावृत्ति १।५।६७

४. 'अथ मदीयेनेव हृदयेन कृतरागसंविभागे लोहितायति गगनतलावलम्बिनि रविबिम्बे'।
काद०, पृ० २८१।

५. 'दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम्।'
वही, पृ० ३।

६. कविकल्पलता, पृ० ३७।

७. 'जपापीडपाटलेऽस्ताचलशिखरस्खलिते खञ्जतीव कमलिनीकण्टकक्षतपादपल्लवे पतङ्गे'—हर्ष० २।२५।

८. 'अयशःपापादौ कार्ष्ण्यस्य'—काव्यानुशासन, अध्याय १, पृ० १४-१५।

९. 'निजगृहदूषणं जालमार्गप्रदीपकेन कज्जलमिवातिमलिनं केवलमयशः सञ्चितं गौडाधमेन।' —हर्ष० ६।४४

१०. 'सुरभिनिःश्वासपरिमललग्नैर्मूर्तैः शापाक्षरैरिव षट्चरणचक्रैराकृष्यमाणा'। —
—वही, ११५

११. 'षट्चरणानां शापाक्षरसादृश्यं पापरूपतया शापाक्षराणामपि मलिनतामभिप्रेत्योक्तम्।'
हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० २२।

नेत्र

कविपरम्परा में नेत्र के अनेक रंग माने गये हैं ।[१]

पुण्डरीक के नेत्र श्वेत थे ।[२] बाण ने नेत्र को पाटल भी कहा है ।[३]

संख्या-वर्ग

भुवन

कविसम्प्रदाय में तीन, सात और चौदह भुवन माने जाते हैं ।[४]

कादम्बरी में तीन[५] और सात[६] भुवनों का उल्लेख मिलता है ।

समुद्र

कवि चार और सात समुद्रों का उल्लेख करते हैं ।[७]

बाण ने दोनों संख्याओं का उल्लेख किया है ।[८]

दिशाएँ

कवि दिशाओं की चार, आठ और दस संख्याओं का उल्लेख करते हैं ।[९]

बाण ने तीनों संख्याओं का उल्लेख किया है ।[१०]

राजनीति

बाण राजनीति के भी पण्डित थे । उनकी रचनाओं में राजशास्त्र की अनेक बातों का उल्लेख मिलता है ।

---

१. 'तथा चक्षुरादेरनेकवर्णोपवर्णनम्' —काव्यानुशासन, प्रथम अध्याय, पृ० १८ ।

२. काद०, पृ० २७१ ।

३. 'स्वभावपाटलतया च चक्षुषः' —हर्ष० ३।५१

४. 'भुवनानि निबध्नीयात् त्रीणि सप्त चतुर्दश ।'

अलङ्कारशेखर, षष्ठरत्न, पृ० ६० ।

५. 'एकमहाभूतमयमिव त्रैलोक्यमासीत् ।' —काद०, पृ० २२१ ।

६. 'यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्' —वही, पृ० ७ ।

७. 'चतस्रोऽष्टौ दश दिशश्चतुरः सप्तवारिधीन् ।' —अलङ्कारशेखर, षष्ठरत्न, पृ० ६० ।

८. 'चतुरुदधिमालामेखलाया भुवो भर्ता' —काद०, पृ० ७ ।

'सप्ताम्बुराशिरशनामशेषद्वीपमालिनीं महीम्' —हर्ष० २।३६

९. 'चतस्रोऽष्टौ दश दिशश्चतुरः सप्त वारिधीन् ।'

अलङ्कारशेखर, षष्ठरत्न, पृ० ६० ।

१०. 'प्रथमं प्राचीम्, ततस्त्रिशङ्कुतिलकाम्, ततो वरुणलाञ्छनाम्, अनन्तरं च सप्तर्षिशवलां दिशं जिग्ये' —काद०, पृ० २२५ ।

'इन्द्रायुधसहस्रसंछादिताष्टदिग्भागमिव जलधरदिवसम्' —वही, पृ० १७ ।

'पुञ्जितनरेन्द्रवृन्दकनकदण्डातपत्रसङ्घट्टनष्टदिवसा दश दिशो बभूवुः ।'

वही, पृ० ११९ ।

राज्याङ्ग[1] और प्रकृति[2] शब्दों का प्रयोग मिलता है।

'राजा, मन्त्री, मित्र, कोश राष्ट्र, दुर्ग और सेना—इन सातों को राज्याङ्ग या प्रकृति कहते हैं।'[3]

राजा तारापीड तीन शक्तियों से सम्पन्न वर्णित किये गये हैं।[4]

शक्तियां तीन हैं—प्रभावज, मन्त्रज तथा उत्साहज। प्रभाव तथा उत्साह शक्तियों से मन्त्रशक्ति प्रशस्त मानी गयी है। शुक्राचार्य प्रभाव तथा उत्साह से सम्पन्न थे, किन्तु मन्त्रशक्ति वाले देवपुरोहित बृहस्पति ने उन्हें पराजित किया।[5]

शूद्रक के वर्णन में प्रताप शब्द का प्रयोग मिलता है।[6]

कोष तथा दण्ड से उत्पन्न तेज को प्रताप कहते हैं। इसको प्रभाव भी कहते हैं।[7]

कादम्बरी में मन्त्र शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।[8]

राजनय में मन्त्र का बहुत अधिक महत्त्व है। मन्त्र के सम्बन्ध में मनु का कथन है—'पर्वत पर चढ़कर या निर्जनवन के घर में जाकर या अरण्य में जाकर किसी के द्वारा न देखे जाने पर मन्त्र के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। जिसके मन्त्र को मन्त्रियों के अतिरिक्त अन्य लोग नहीं जान पाते, वह राजा कोश से रहित होने पर भी सारी पृथिवी का भोग करता है।'[9]

याज्ञवल्क्य कहते हैं—'राजा का मूल मन्त्र होता है, अतः राजा मन्त्र को इस प्रकार सुरक्षित रखे कि लोग फलोदय के पहले उसके कामों को न जान सकें।'[10]

---

१. हर्ष० ४।१

२. काद०, पृ० १०४।

३. 'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च।
राज्याङ्गानि प्रकृतयः' —अमरकोश २।८।१७-१८

४. 'फलितशक्तित्रयः' —काद०, पृ० १०७।

५. 'प्रभावोत्साहशक्तिभ्यां मन्त्रशक्तिः प्रशस्यते।
प्रभावोत्साहवान् काव्यो जितो देवपुरोधसा॥' —कामन्दकीयनीतिसार १२।७

६. काद०, पृ० ७।

७. 'स प्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोषदण्डजम्।' —अमरकोश २।८।२०

८. काद०, पृ० ७४।

९. 'गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः।
अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभागतः॥
यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः॥' —मनुस्मृति ७।१४७-१४८।

१०. 'मन्त्रमूलं यतो राज्यमतो मन्त्रं सुरक्षितम्॥
कुर्याद्यथाऽस्य न विदुः कर्मणामाफलोदयात्।'

याज्ञवल्क्यस्मृति (चेट्टलूर्–संपादित) १।३४३-३४४।

कौटिल्य के अनुसार मन्त्र के पाँच अंग हैं—१. कार्य आरम्भ करने का उपाय, २. पुरुषद्रव्यसम्पत्, ३. देशकालविभाग, ४. विनिपातप्रतीकार, ५. कार्यसिद्धि ।[१]

सन्धि[२] और विग्रह[३] पदों के प्रयोग मिलते हैं ।

'जब कोई राजा बलवान् द्वारा आक्रान्त होकर विपत्तिग्रस्त हो जाय और कोई प्रतिक्रिया न कर सके, तो सन्धि कर लेनी चाहिए ।'[४]

'अपने अभ्युदय की आकांक्षा वाले अथवा शत्रु द्वारा पीड़ित किये जाते हुए देश, काल तथा सेना से युक्त राजा को विग्रह कर लेना चाहिए ।'[५]

मनु का कथन है कि राजा को सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा संश्रय—इन छह गुणों का सदा चिन्तन करना चाहिए ।[६]

कादम्बरी में दण्ड शब्द का प्रयोग किया गया है ।[७]

'दण्ड प्रजा पर शासन करता है, दण्ड ही रक्षा करता है, दण्ड सबके सो जाने पर जागता रहता है, इसलिए विद्वान् दण्ड को धर्म मानते हैं ।'[८]

दण्ड के दो प्रकार हैं—शरीरदण्ड तथा अर्थदण्ड ।[९]

---

१. 'कर्मणामारम्भोपायः, पुरुषद्रव्यसम्पत्, देशकालविभागः, विनिपातप्रतीकारः, कार्यसिद्धिरिति पञ्चाङ्गो मन्त्रः ।'

अर्थशास्त्र १।१५

२, ३. काद०, पृ० ११४ ।

४. 'बलिना विगृहीतः सन् नृपोऽनन्यप्रतिक्रियः ।
आपन्नः सन्धिमन्विच्छेत् कुर्वाणः कालयापनम् ॥'

कामन्दकीयनीतिसार ९।१

५. 'आत्मनोऽभ्युदयाकांक्षी पीड्यमानः परेण वा ।
देशकालबलोपेतः प्रारभेतेह विग्रहम् ॥'

नीतिमयूख, पृ० ६४ ।

'देशकालबलोपेतः प्रारभेत च विग्रहम् ।' — शुक्रनीति ४।८१

६. 'सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च ।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा ॥' — मनुस्मृति ७।१६०

७. काद०, पृ० ११३ ।

८. 'दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥'

— मनुस्मृति ७।१८

९. 'शरीरश्चार्थदण्डश्च दण्डश्च द्विविधः स्मृतः ।'

राजनीतिरत्नाकर, पृ० ६२ ।

कादम्बरी में एक स्थल पर मूलदण्ड, कोश और मण्डल पदों का प्रयोग किया गया है।[1] यहाँ मूलदण्ड का अभिप्राय परम्पराप्राप्त सैन्य है। अर्थशास्त्र में पाँच प्रकार की सेना का निरूपण प्राप्त होता है—मौलबल (परम्पराप्राप्त सैन्य), भृतबल, श्रेणीबल, मित्रबल और अटवीबल।[2]

कोशसंचय का अत्यधिक महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। कोश ही राजा का जीव है, उसका प्राण जीव नहीं। द्रव्य ही राजा का शरीर है, उसका शरीर शरीर नहीं।[3]

कामन्दक का वचन है—'कोशसम्पन्न व्यक्ति को धर्म के लिए, अन्य प्रयोजन के लिए, सेवकों के भरण के लिए तथा आपत्ति के लिए सदा कोश की रक्षा करनी चाहिए।'[4]

मण्डल राजनीति का पारिभाषिक शब्द है। यह किसी राजा के दूर और पड़ोस के राजाओं के समूह के लिए प्रयुक्त होता था। मल्लिनाथ ने अधोलिखित बारह राजाओं के मण्डल का उल्लेख किया है[5]—

१—शत्रु, २. मित्र, ३. शत्रु का मित्र, ४. मित्र का मित्र, ५. शत्रु के मित्र का मित्र, ६. पार्ष्णिग्राह (पीछे से आक्रमण करने वाला शत्रु), ७. आक्रन्द (पार्ष्णिग्राह शत्रु को रोकने वाला मित्र राजा), ८. पार्ष्णिग्राहासार (बुलाने पर शत्रु की सहायता के लिए आया हुआ राजा), ९. आक्रन्दासार (बुलाने पर मित्र की सहायता के लिए आया हुआ राजा), १०. विजिगीषु, ११. मध्यम और १२. उदासीन।

---

१. 'अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलमपि मुञ्चति भूभुजम्।'
काद०, पृ० २००।

२. 'तत्र मौलभृतश्रेणीमित्राटवीबलानामन्यतममुपलब्धदेशकालं दण्डं दद्यात्।'
अर्थशास्त्र ७।८

३. 'कोशो महीपतेर्जीवो न तु प्राणाः कथञ्चन।
द्रव्यं हि देहो भूपस्य न शरीरमिति स्थितिः॥'
वाचस्पत्यम्, तृतीय भाग, पृ० २२७१ पर उद्धृत।

४. 'धर्महेतोस्तथार्थाय भृत्यानां भरणाय च।
आपदर्थञ्च संरक्ष्यः कोशः कोशवता सदा॥' कामन्दकीयनीतिसार ४।६२

५. 'द्वादशराजमण्डलं तु कामन्दकेनोक्तम्—(अरिर्मित्रमरेर्मित्रं मित्रमित्रमतः परम्। तथारिमित्रमित्रं च विजिगीषोः पुरःसराः॥ पार्ष्णिग्राहस्ततः पश्चादाक्रन्दस्तदनन्तरम्। आसारावनयोश्चैव विजिगीषोस्तु पृष्ठतः॥ अरेश्च विजिगीषोश्च मध्यमो भूम्यनन्तरः। अनुग्रहे संहतयोः समर्थो व्यस्तयोर्वधे। मण्डलाद्बहिरेतेषामुदासीनो बलाधिकः। अनुग्रहे संहतानां व्यस्तानां च वधे प्रभुः॥) इति। (अरिर्मित्रादयः पञ्च विजिगीषोः पुरःसराः। पार्ष्णिग्राहाक्रन्दपार्ष्णिग्राहासाराक्रन्दासाराः॥) इति पृष्ठतश्चत्वारः मध्यमोदासीनौ द्वौ विजिगीषुरेक इत्येवं द्वादशराजमण्डलम्।' —मल्लिनाथ: रघुवंश ९।१५ की टीका।

हर्षचरित में 'चन्द्रमा जीवितेशः'[१] उल्लेख मिलता है।

जीवितेश का अर्थ पुरोहित भी किया गया है।[२] शुक्रनीति में विवेचन किया गया है कि मन्त्रि-परिषद् में पुरोहित पहला मन्त्री होता था।[३]

बाण ने सञ्चारक पद का प्रयोग किया है।[४]

शंकर की टीका से ज्ञात होता है कि दो प्रकार के गुप्तचर होते थे।[५] प्रथम प्रकार के गुप्तचर एक स्थान पर रहते थे और दूसरे प्रकार के गुप्तचर एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते थे। दूसरे प्रकार के गुप्तचर सञ्चारक कहे जाते थे।[६]

उपधा शब्द का भी प्रयोग हुआ है।[७]

धर्म आदि द्वारा परीक्षण का नाम उपधा है—**'धर्माद्यैर्यत्परीक्षणम्'**।[८] उपधा द्वारा अमात्य आदि की परीक्षा की जाती थी। कौटिल्य ने चार प्रकार की उपधा का उल्लेख किया है—**धर्मोपधा, अर्थोपधा, कामोपधा और भयोपधा**।[९] इन उपाधाओं का प्रयोग करके जिसकी परीक्षा ली जा चुकी हो और जो शुद्ध निकला हो, उसे उचित पद पर नियुक्त करना चाहिए।[१०]

इतिहास

बाण की कृतियों में अनेक प्राचीन रचनाओं और ऐतिहासिक व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है।

---

१. हर्ष० १।६

२. हर्ष०, शंकर-कृत टीका, पृ० ५७।

३. 'पुरोधाः प्रथमं श्रेष्ठः सर्वेभ्यो राजराष्ट्रभृत्।
तदनु स्यात्प्रतिनिधिः प्रधानस्तदनन्तरम्॥'
शुक्रनीति २।७४

४. हर्ष० १।६

५. 'द्विविधा हि चराः संस्थाः सञ्चारकाश्च।'
हर्ष०, शंकर-कृत टीका, पृ० ५७।

६. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. 1, p. 77.

७. हर्ष० ४।११

८. अमरकोश २।८।२१

९. अर्थशास्त्र १।१०

१०. 'त्रिवर्गभयसंशुद्धानमात्यान् स्वेषु कर्मसु।
अधिकुर्याद्यथाशौचमित्याचार्या व्यवस्थिताः॥'
वही, १।१०

कवि की रचनाओं में रामायण,[१] महाभारत,[२] अर्थशास्त्र,[३] वासवदत्ता,[४] सेतुबन्ध,[५] बृहत्कथा[६] आदि का उल्लेख मिलता है। अभिधर्मकोश की ओर संकेत किया गया है।[७]

व्यास,[८] भट्टारहरिचन्द्र,[९] सातवाहन,[१०] प्रवरसेन,[११] भास[१२] और कालिदास[१३] का उल्लेख मिलता है।

हर्षचरित में हर्ष के जीवन का विस्तृत वर्णन किया गया है। हर्ष जिस वंश में उत्पन्न हुए थे, उसके संस्थापक पुष्पभूति थे।[१४] इसी वंश में प्रभाकरवर्धन उत्पन्न हुए।[१५] उनकी पत्नी यशोमती थी।[१६] प्रभाकरवर्धन के राज्यवर्धन[१७] और हर्षवर्धन[१८] नामक दो पुत्र थे और राज्यश्री[१९] नामक एक पुत्री।

राज्यश्री का विवाह मौखरि-वंश के राजा अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा के साथ हुआ था।[२०]

१, २. काद०, पृ० १०२।

३. वही, पृ० २०७।

४. हर्ष० १।१

५, ६. वही, १।२

७. 'अत्र लोकनाथेन दिशां मुखेषु परिकल्पिता लोकपालाः सकलभुवनकोशश्चाग्रजन्मनां विभक्त इति।'—हर्ष० ३।४०

'शुकैरपि शाक्यशासनकुशलैः कोशं समुपदिशद्भिः'

वही, ८।७३

काणे आदि की दृष्टि में कोश अभिधर्मकोश के लिए प्रयुक्त हुआ है—

Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. III, p. 180; Uch. VIII, p. 223.

वासुदेवशरण अग्रवाल: हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ५५।

८. हर्ष० १।१

९, १०, ११, १२, १३. वही, १।२

१४. वही, ३।४४–५५

१५. वही, ४।१

१६. वही, ४।२–३

१७. वही, ४।५

१८. वही, ४।५–६

१९. वही, ४।१०

२०. वही, ४।१३ तथा ४।१६–१८

यशोमती के भाई भण्डि का उल्लेख हुआ है। जब वह आठ वर्ष का था, तभी यशोमती के भाई ने राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन के साथी के रूप में रहने के लिए उसे भेजा था।[१]

मालवराजपुत्र कुमारगुप्त और माधवगुप्त भी राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के अनुचर थे।[२]

प्रभाकरवर्धन के मरते ही मालवराज ने ग्रहवर्मा की हत्या कर दी।[३] मालवराज की पहचान देवगुप्त से की जाती है।[४] राज्यवर्धन ने आक्रमण करके मालवराज पर विजय प्राप्त कर ली, किन्तु गौडाधिप ने धोखे से उनकी हत्या कर दी।[५] गौडाधिप का नाम शशांक था।[६]

हर्षचरित के वर्णन से ज्ञात होता है कि प्राग्ज्योतिष के राजा कुमार (भास्करवर्मा) ने हर्ष से मित्रता की।[७]

राज्यश्री को खोजता हुआ हर्ष दिवाकरमित्र के आश्रम पहुँचा था।[८] दिवाकरमित्र ग्रहवर्मा के बालमित्र थे।[९]

हर्षचरित में प्रमादवश विपत्तिग्रस्त राजाओं की एक सूची मिलती है।[१०] राजाओं के नाम ये हैं—नागकुल में उत्पन्न नागसेन, श्रावस्ती के राजा श्रुतवर्मा, मृत्तिकावती के राजा सुवर्णचूड, यवनेश्वर (राजा का नाम नहीं दिया गया है), मथुरा के राजा बृहद्रथ,

---

१. हर्ष० ४।१०

२. वही, ४।११

३. वही, ६।४०

४. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ११८।

५. हर्ष० ६।४३

६. Kane's Introduction to the Harshacharita, p. 33.
R.C. Majumdar and others : An Advanccd History of India, pp. 155-156.

७. हर्ष० ७।६४

८. वही, ८।७३–७५

९. वही, ८।७१

१०. वही, ६।५०–५१

वत्सपति (उदयन),[१] सुमित्र, अश्मकेश्वर शरभ, मौर्य राजा बृहद्रथ,[२] चण्डीपति, काकवर्ण,[३] शुङ्गराज, मगधराज, कुमारसेन,[४] विदेहराज के पुत्र गणपति, कलिंग के राजा भद्रसेन, करूष के राजा दध्र, चकोरनाथ चन्द्रकेतु,[५] चामुण्डीपति पुष्कर, मौखरि क्षत्रवर्मा, शकपति[६], काशिराज महासेन, अयोध्या के राजा जारूथ, सुह्म के राजा देवसेन, वैरन्त के राजा रन्तिदेव, वृष्णि विदूरथ, सौवीर के राजा वीरसेन तथा पौरवेश्वर सोमक।

---

१. 'नागवनविहारशीलं च मायामातङ्गान्निर्गता महासेनसैनिका वत्सपतिं न्ययंसिषुः।' हर्ष० ६।५०

वत्सपति उदयन हाथी पकड़ने के लिए वन में जाया करता था। महासेन ने विन्ध्याटवी में लकड़ी का बना हुआ एक हाथी रखवा दिया। उसमें सैनिक छिपे हुए थे। जब उदयन हाथी पकड़ने के लिए गया, तब सैनिकों ने उसे पकड़ लिया।

Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VI, p. 160.

२. मौर्यवंश का अन्तिम राजा बृहद्रथ था। उसके सेनापति पुष्यमित्र ने उसे हटाकर राज्य पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

R. C. Majumdar and others : An Advanced History of India, p. 110.

३. 'श्री भण्डारकर का विचार है कि यवन से तात्पर्य हखामनि वंश के ईरानी लोगों से है, जिनका गान्धार पर राज्य था। शिशुनाग–पुत्र काकवर्ण ने उस शासन का अन्त किया और कुछ यवनों को जीतकर अपने यहाँ लाया। उनमें से एक ने आश्चर्यकारी उड़ने वाला वायुयान बनाया और उस पर राजा को बैठाकर वह 'नगर' या जलालाबाद के पास जहाँ गांधार की राजधानी थी, उसे ले गया और उसे मार डाला।'

वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १३२ (पाद-टिप्पणी)।

४. 'अवन्ति में वीतिहोत्रों का शासन था। वीतिहोत्र तालजंघों में से थे। तालजंघ कार्तवीर्य सहस्रार्जुन का पौत्र था। वीतिहोत्रों के सेनापति पुणक ने राजा को मारकर अपने पुत्र प्रद्योत (चण्डप्रद्योत) को अवन्ति का राजा बनाया। पर वह अग्नि धधकती रही और वीतिहोत्रों के सहयोगी तालजंघवंश के किसी व्यक्ति ने महाकाल के मन्दिर में अवसर पाकर पुणक के पुत्र और प्रद्योत के छोटे भाई कुमारसेन को मार डाला।'

वही, पृ० १३३ (पाद-टिप्पणी)।

५. चकोर उज्जयिनी राजधानी से दक्षिण-पश्चिम में था। गौतमीपुत्र शातकर्णी से दो पीढ़ी पहले वहां चकोर शातकर्णी की राजधानी थी। उसका नाम चन्द्रकेतु प्रतीत होता है। —वही, पृ० १३३।

६. 'अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेशगुप्तश्च चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयदिति।' हर्ष० ६।५१

उपर्युक्त राजाओं में अभी तक कुछ ही राजाओं की पहचान हो सकी है। विद्वानों का विचार है कि राजा ऐतिहासिक हैं, कवि-कल्पित नहीं।[१]

हर्षचरित में एक स्थल पर 'दिङ्नाग' पद का प्रयोग हुआ है।[२]

'दिङ्नाग' का अर्थ वौद्ध-दार्शनिक दिङ्नाग भी किया गया है। दिङ्नाग चौथी-पाँचवीं शताब्दी में हुए थे।[३]

भूगोल

राजशेखर का कथन है कि जो कवि देश तथा काल का ज्ञान रखता है, उसके लिए वर्णनीय पदार्थों का अभाव नहीं रहता।[४]

वाण देश के ज्ञाता थे। उन्होंने भ्रमण द्वारा अनुभव प्राप्त किया था। उनकी कृतियों में भूगोल-विषयक ज्ञान सन्निहित है।

बाण ने भारतवर्ष का उल्लेख किया है।[५]

समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित देश को भारतवर्ष कहते हैं।[६]

उदीच्य, प्रतीच्य तथा दाक्षिणात्य का उल्लेख किया गया है।[७]

शकपति ने रामगुप्त से उसकी पत्नी ध्रुवदेवी की याचना की। रामगुप्त ने इसे स्वीकार कर लिया। इस पर रामगुप्त के छोटे भाई चन्द्रगुप्त ने स्त्रीवेष में जाकर शकपति की हत्या की। हर्षचरित के टीकाकार शंकर ने इस घटना का निर्देश किया है—

'चन्द्रगुप्तभ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानश्चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेषजनपरिवृतेन रहसि व्यापादित इति।'

हर्ष०, शंकर-कृत टीका, पृ० ३४६–३४७; और द्रष्टव्य—

N. N. Ghosh : Early History of India, p. 246.

१. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १३३।

२. 'दर्पात् परामृशन्नखकिरणसलिलनिर्झरैः समरभारसम्भावनाभिषेकमिव चकार दिङ्नागकुम्भकूटविकटस्य बाहुशिखरकोषस्य वामः पाणिपल्लवः।'

हर्ष० ६।४१

३. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२२।

४. 'देशं कालं च विभजमानः कविर्नार्थदर्शनदिशि दरिद्राति।'

काव्यमीमांसा, सप्तदश अध्याय, पृ० २२७।

५. हर्ष० १।१

६. 'उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥'

विष्णुपुराण ३।२।१

७. हर्ष० १।१

प्राचीनकाल में भारत का विभाजन पाँच भागों में किया गया था—उत्तरी भारत, पश्चिमी भारत, मध्यभारत, पूर्वी भारत तथा दक्षिणी भारत।[१]

उदीच्य उत्तर के कवियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। उत्तरी भारत में पंजाब, कश्मीर, पूर्वी अफगानिस्तान आदि सम्मिलित थे।[२]

प्रतीच्य पश्चिम के कवियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। पश्चिमी भारत में सिन्ध, पश्चिमी राजपूताना, कच्छ, गुजरात आदि की गणना होती थी।[३]

दाक्षिणात्य दक्षिण के कवियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। दक्षिण भारत में नासिक से लेकर पश्चिम में गंजम तक तथा दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक के सभी देश सम्मिलित थे।[४]

दक्षिणापथ[५] तथा उत्तरापथ[६] का उल्लेख मिलता है।

दक्षिणापथ नर्मदा के दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक फैला हुआ था। कभी-कभी कृष्णा तथा नर्मदा के बीच के देश को बोधित करने के लिए भी इसका प्रयोग होता था।[७]

उत्तरापथ पंजाब और कश्मीर के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। यह थानेश्वर के उत्तर में था। उत्तरापथ का प्रयोग प्रायः उत्तरीभारत के लिए होता था।[८]

मध्यदेश का उल्लेख किया गया है।[९]

हिमालय और विन्ध्य तथा विनशन (वह स्थान जहाँ सरस्वती लुप्त होती है) और प्रयाग के बीच का देश मध्यदेश कहा जाता था।[१०]

गौड देश का उल्लेख हुआ है।[११]

यह बंगाल का मध्यभाग था।[१२]

---

१. Cunningham : Ancient Geography of India, pp. 13-14.

२. ibid., p. 13.

३. ibid., pp. 13-14.

४. ibid., p. 14.

५. हर्ष० ७।५६ ; काद०, पृ० १६।

६. हर्ष० ५।१६

७. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VII, p. 188.

८. ibid., Uch. V, p. 66.

९. काद०, पृ० ३७।

१०. 'हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥'
मनुस्मृति २।२१

११. हर्ष० १।१

१२. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. II I,p·192.

वनायु, आरट्ट, कम्बोज, सिन्धु देश तथा पारसीक के घोड़ों का उल्लेख प्राप्त होता है ।[१]

वनायु वानाघाटी या वजीरिस्तान है, आरट्ट, वाहीक या पंजाब है, कम्बोज मध्य एशिया में वंक्षु नदी का पामीरप्रदेश है, सिन्धु देश सिन्धसागर या थलदोआब है तथा पारसीक सासानी ईरान है ।[२]

श्रीकण्ठजनपद तथा स्थाण्वीश्वर का उल्लेख किया गया है ।[३]

श्रीकण्ठजनपद की राजधानी स्थाण्वीश्वर थी ।[४] स्थाण्वीश्वर थानेश्वर है ।[५]

गुर्जर,[६] गान्धार,[७] लाट,[८] वत्स,[९] अश्मक[१०] और मगध[११] का उल्लेख मिलता है ।

गुर्जर के अन्तर्गत पश्चिमी राजपूताना तथा हिन्द रेगिस्तान आते थे ।[१२]

गान्धार सिन्धु नदी के पश्चिम में था ।[१३] इसकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी ।[१४]

लाट से दक्षिणी गुजरात का बोध होता है ।[१५]

वत्स इलाहाबाद के पश्चिम में था । इसकी राजधानी कौशाम्बी थी ।[१६]

अश्मक अजन्ता की गुफाओं के समीप के देश का नाम था ।[१७]

मगध आधुनिक बिहार प्रान्त के लिए प्रयुक्त होता था ।[१८]

हर्षचरित के '**मेकलाधिपमन्त्रिणः**'[१९] के मेकल पद से मेकल पर्वत के पार्श्व के प्रदेश का

---

१. हर्ष० २।२८

२. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ४१ ।

३. हर्ष० ३।४३

४. Cunningham : Ancient Geography of India, Notes, p. 701.

५. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. III, p. 192.

६, ७, ८. हर्ष० ४।१

९, १०, ११. वही, ६।५०

१२. Cunningham : Ancient Geography of India, pp. 284-285.

१३. ibid., p.55.

१४. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 23.

१५. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. IV, p. 5,

लाट शब्द गुजरात तथा उत्तरी कोंकण के लिए प्रयुक्त होता था—

Mc Crindle's Ancient India as described by Ptolemy, p. 153.

१६. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 100.

१७. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VI, p. 160.

१८. ibid., Uch. VI, p. 161.

१९. हर्ष० ६।५०

बोध होता है ।[१] मेकल अमरकण्टक पर्वत है। इससे नर्मदा निकलती है ।[२]

विदेह, कलिङ्ग, करूष, सुह्म तथा सौवीर देश का उल्लेख हुआ है ।[३]

विदेह में आधुनिक नेपाल का कुछ भाग, तिरहुत तथा चम्पारन सम्मिलित थे ।[४]

कलिङ्ग गोदावरी तथा महानदी के मुहानों के बीच में था ।[५]

करूष जबलपुर के समीप में था ।[६] डे का कथन है कि करूष बिहार प्रान्त के शाहाबाद जिले का पूर्वी भाग था ।[७] सरकार का मत है कि करूप बिहार का आधुनिक शाहाबाद जिला है ।[८]

सुह्म पश्चिमी बंगाल है। इसकी राजधानी ताम्रलिप्त थी ।[९]

सौवीर देश आबू पर्वत के पश्चिम में रहा होगा ।[१०]

बाण ने चीन देश का उल्लेख किया है ।[११]

प्राग्ज्योतिष[१२] तथा कामरूप[१३] का उल्लेख मिलता है।

प्राग्ज्योतिष की पहचान आधुनिक आसाम से की जा सकती है। प्राग्ज्योतिष का दूसरा नाम कामरूप था ।[१४]

---

१. सरकार 'मेकलाश्चोत्कलैः सह' पर टिप्पणी लिखते हुए व्यक्त करते हैं कि मेकल-देश अमरकण्टक के समीप में था—

D. C. Sircar : Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, p. 34.

२. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 58.

३. हर्ष० ६।५१

४. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VI, p. 162.

५, ६. ibid., Uch. VI, p. 162.

७. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 37.

८. D. C. Sircar : Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, p. 33.

९. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VI, p 162.

१०. ibid., Uch. VI, p. 163.

११. हर्ष० ७।५६

१२. वही, ७।६०

१३. वही, ७।६४

१४. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VII, p. 188.

कादम्बरी में मालव[१], आन्ध्र,[२] द्रविड़,[३] सिंहल[४] और अंग देश[५] का उल्लेख उपलब्ध होता है।

मालव (मालवा) भरोच के उत्तर-पूर्व में था।[६]

आन्ध्र आधुनिक तेलंगाना है।[७]

द्रविड़ देश दक्षिण भारत का एक भाग था। यह कृष्णा तथा कावेरी नदियों के मुहानों के बीच में था। इसकी राजधानी काञ्ची थी।[८]

सिंहल (सीलोन) लंका का प्राचीन नाम है।[९]

अंग देश में गंगा के उत्तर में स्थित भूभाग को छोड़कर विहार के आधुनिक मुंगेर तथा भागलपुर जिले सम्मिलित थे। इसकी राजधानी चम्पा थी।[१०]

शोणितपुर का उल्लेख हुआ है।[११]

शोणितपुर गढ़वाल में केदारगंगा के तट पर है। कहा जाता है कि यह शोणितपुर वाणासुर की राजधानी थी।[१२]

म० म० काणे का कथन है कि शोणितपुर पूर्वी बंगाल में था। इसकी पहचान देवीकोट से की जाती है।[१३]

---

१. काद०, पृ० ११।

२, ३, ४. वही, पृ० १७१।

५. वही, पृ० १६३।

६. Cunningham : Ancient Geography of India, p. 562.

७. ibid., p. 603; and
N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 4.

८. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1–124 of Peterson's edition), p. 227.

९. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 84.

१०. D. C. Sircar : Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, p. 83.

११. काद०, पृ० १७५।

१२. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, pp. 85–86.

१३. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1–124 of Peterson's edition), p. 233.

पद्मावती,[1] श्रावस्ती,[2] काशी,[3] अयोध्या,[4] विदिशा,[5] मथुरा,[6] अवन्ती[7] और उज्जयिनी[8] का उल्लेख किया गया है।

पद्मावती विदर्भ (वरार) में थी।[9] इसकी पहचान विजयनगर से की जा सकती है।[10]

श्रावस्ती अयोध्या राज्य में एक नगरी थी।[11] यह उत्तरकोशल की राजधानी थी।[12]

विदिशा आधुनिक भिलसा है।[13]

अवन्ती की पहचान आधुनिक मालवा से की जा सकती है। उज्जयिनी अवन्ती की राजधानी थी।[14]

कवि ने अगस्त्याश्रम,[15] पंचवटी[16] और बदरिकाश्रम[17] का उल्लेख किया है।

अगस्त्य का आश्रम शायद नासिक के समीप में कहीं पर था।[18]

पंचवटी, नासिक के समीप में है।[19]

बदरिकाश्रम अलकनन्दा के तट पर स्थित है।[20]

१, २. हर्ष० ६।५०

३, ४. वही, ६।५१

५. काद०, पृ० १२।

६, वही, पृ० ८०।

७, ८. वही, पृ० १०४।

९. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 63.

१०. ibid., p. 64.

११. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VI, p. 160.

१२. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 87.

१३. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1–124 of Peterson's edition), p. 21.

१४. V. S. Apte : The Student's Sanskrit-English Dictionary, p. 60.

१५. काद०, पृ० ४२।

१६. वही, पृ० ४३।

१७. वही, पृ० ११०।

१८. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1–124 of Peterson's edition), p. 62

१९. ibid., p. 65.

२०. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 7.

कादम्बरी में सेतुबन्ध का उल्लेख मिलता है।[1]

सेतुबन्ध वर्तमान आदम ब्रिज है। कहा जाता है कि यह सुग्रीव की सहायता से राम द्वारा निर्मित किया गया था।[2]

बाण ने नदियों में सरस्वती,[3] अजिरवती,[4] वेत्रवती,[5] गोदावरी,[6] यमुना,[7] नर्मदा,[8] गंगा[9] और सिप्रा[10] का उल्लेख किया है।

सरस्वती नदी पंजाब में थी।[11]

अजिरवती राप्ती नदी का प्राचीन नाम है।[12]

वेत्रवती आधुनिक बेतवा है।[13]

गोदावरी दक्षिण भारत की नदी है। यह त्र्यम्बक नामक स्थान के पास ब्रह्मगिरि से निकलती है। त्र्यम्बक नासिक से बीस मील की दूरी पर स्थित बताया जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि यह जटाफटका नामक पर्वत से निकलती है।[14]

नर्मदा अमरकण्टक से निकलती है तथा अरब सागर में गिरती है।[15]

सिप्रा मालवा की प्रसिद्ध नदी है। इसके किनारे पर उज्जैन बसा हुआ है।

हर्षचरित में शोणनद का उल्लेख हुआ है।[16]

---

१. काद०, पृ० ११०।
२. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 83.
३. हर्ष० ११२
४. वही, २१२६
५. काद०, पृ० १२।
६. वही, पृ० ४२।
७. वही, पृ० ४९।
८. वही, पृ० ५७।
९. वही, पृ० ८३।
१०. वही, पृ० १०१।
११. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. 1, p. 3.
१२. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३६–३७।
१३. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1–124 of Peterson's edition), p. 21.
१४. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, pp. 24–25.
१५. D. C. Sircar : Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, p. 47 note.
१६. हर्ष० ११८

शोण नद सोन नदी है। यह अमरकण्टक से निकलती है और पटना के समीप गंगा में मिलती है।[१]

मानससरोवर[२] और पुष्कर[३] का उल्लेख मिलता है।

मानससरोवर नामक झील की स्थिति हिमालय में बतायी गयी है।[४] यह झील १५ मील लम्बी और ११ मील चौड़ी बतायी जाती है।[५]

पुष्कर झील अजमेर से ६ मील की दूरी पर है।[६]

कवि ने दण्डकारण्य[७] और चण्डिकाकानन[८] का उल्लेख किया है।

दण्डकारण्य के अन्तर्गत यमुना से लेकर कृष्णा तक फैले हुए सभी वन आते थे।[९]

चण्डिकाकानन शाहाबाद जिले में सोन तथा गंगा के बीच में रहा होगा।[१०]

बाण की रचनाओं में श्रीपर्वत,[११] कैलास,[१२] चन्द्राचल,[१३] पारियात्र,[१४] दर्दुर,[१५] मलय,[१६] महेन्द्र,[१७] विन्ध्य,[१८] मेरु,[१९] ऋष्यमूक,[२०] उदयाचल,[२१] मन्दर,[२२] गन्धमादन[२३] तथा वैदूर्य[२४] का उल्लेख प्राप्त होता है।

श्रीपर्वत श्रीशैल है। यह कृष्णा नदी के दक्षिणी तट पर है। यह कुरनूल से बयालीस मील की दूरी पर ईशान कोण में है।[२५]

---

१. D. C. Sircar : Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, p. 47 note.

२. काद०, पृ० ६३।

३. वही, पृ० ७४।

४. D. C. Sircar : Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, p. 96.

५. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 57.

६. ibid., p. 74.

७. काद०, पृ० ४१।

८. हर्ष० २।२६

९. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. 1, p. 45.

१०. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३६।

११. हर्ष० १।२

१२, १३. वही, १।८

१४, १५, १६, १७. वही, ७।५९

१८, १९. काद०, पृ० ४१।

२० वही, पृ० ४६।

२१, २२, २३. वही, पृ० ११०।

२४. वही, पृ० २३१।

२५. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ९।

कैलास मानससरोवर के उत्तर में स्थित है।[१]

चन्द्राचल विन्ध्याचल का वह भाग प्रतीत होता है, जहाँ अमरकण्टक की पश्चिमी ढाल से सोन नदी निकलती है।[२]

पारियात्र से विन्ध्य के पश्चिमी भाग तथा अरावली पर्वतमाला का बोध होता है।[३]

दर्दुर पर्वत सुदूर दक्षिण में है।[४]

मलय पर्वत दर्दुर के समीप में है। इसकी पहचान कावेरी नदी के दक्षिण में स्थित पश्चिमी घाट के दक्षिणी भाग से की जाती है।[५]

महेन्द्र की पहचान पूर्वी घाट से की जाती है।[६]

विन्ध्य बंगाल की खाड़ी से लेकर अरबसागर तक फैला हुआ है। यह उत्तरी भारत को दक्षिणी भारत से अलग करता है।[७]

महाभारत के अनुसार मेरु गढ़वाल में स्थित रुद्र हिमालय है। मत्स्यपुराण से ज्ञात होता है कि सुमेरु पर्वत के उत्तर में उत्तरकुरु, दक्षिण में भारतवर्ष, पश्चिम में केतुमाला तथा पूर्व में भारतवर्ष है। परम्परा से ज्ञात होता है कि गढ़वाल में स्थित केदारनाथ पर्वत ही सुमेरु है। यह भी विचार प्रस्तुत किया गया है कि मेरु अल्मोड़ा जिले के ठीक उत्तर में है।[८]

ऋष्यमूक तुंगभद्रा के तट पर स्थित है।[९]

उदयाचल उड़ीसा में भुवनेश्वर से पाँच मील की दूरी पर है।[१०]

---

१. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 31.

२. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १८।

३. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 68; and
Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VII, p. 187.

४. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. VII, p. 188.

५. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 52.

६. D. C. Sircar : Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, p. 54.

७. Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1–124 of Peterson's edition), p. 53.

८. B. S. Upadhyaya : India in Kālidāsa, p. 6.

९. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 77.

१०. ibid., p. 95.

मन्दर की पहचान भागलपुर जिले में स्थित एक पर्वत से की जाती है।[1]

गन्धमादन रुद्रहिमालय का एक भाग है।[2]

वैदूर्य पर्वत की पहचान सतपुड़ा की पहाड़ियों से की जाती है।[3]

स्वप्न, शकुन और उत्पात

बाण की कृतियों में स्वप्न, शकुन आदि का उल्लेख मिलता है।

राजा तारापीड ने स्वप्न में देखा कि विलासवती के मुख में चन्द्रमा प्रविष्ट हो रहा है। उस समय रात्रि का अधिकांश बीत चुका था।[4] बाण ने उल्लेख किया है कि रात्रि के अन्तिम प्रहर में देखे गये स्वप्न प्रायः सत्य होते हैं।[5]

स्वप्नवेत्ताओं का कथन है कि रात्रि के अन्तिम प्रहर में देखे गये स्वप्न शीघ्र ही फल देते हैं।[6]

हर्ष ने स्वप्न में देखा कि एक सिंह दावाग्नि में जल रहा है और सिंही भी उसी में अपने बच्चों को डालकर कूद रही है।[7]

इस स्वप्न से राजा के दाहज्वर तथा यशोमती के अपने बच्चों का परित्याग करके अग्नि में प्रविष्ट होने की सूचना मिलती है।[8]

कादम्बरी के वर्णन से ज्ञात होता है कि पुरुष के दाहिने नेत्र का स्फुरण शुभ है।[9]

शकुनशास्त्र से भी यह प्रमाणित होता है कि पुरुष के दाहिने नेत्र का स्फुरण बन्धु-दर्शन या अर्थलाभ का सूचक है।[10]

राज्यश्री के बायें नेत्र के फड़कने का उल्लेख किया गया है।[11]

---

१. N. L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 53.

२. ibid., p. 20.

३. ibid., p. 7.

४. काद०, पृ० १३०।

५. वही, पृ० १३१।

६. 'गोविसर्जनवेलायां दृष्ट्वा सद्यः फलं भवेत्।'

नैषधचरित ७।४२ की नारायण-कृत टीका।

७. हर्ष० ५।१९

८. 'एष तु स्वप्नो राज्ञो भाविनो दाहज्वरस्य यशोवत्याः स्वात्मजान् परित्यज्य अग्नि-प्रवेशस्य च सूचकः।'

हर्ष०, रंगनाथ-कृत टीका, पृ० २२२।

९. काद०, पृ० १३५।

१०. 'दक्षिणचक्षुःस्पन्दनं बन्धुदर्शनमर्थलाभं वा।'

अभिज्ञानशकुन्तल, रमेन्द्रमोहनबोस-कृत टिप्पणी, पंचम अंक, पृ० ३५।

११. हर्ष० ८।८०

स्त्रियों के वाम अंग का स्फुरण सौख्यप्रद माना जाता है।[१]

जब महाश्वेता पुण्डरीक से मिलने के लिए चली, तब उसका दाहिना नेत्र फड़क उठा।[२]

शकुनशास्त्र में स्त्री के दाहिने नेत्र का स्फुरण अशुभ माना गया है।[३]

क्षीरी-वृक्ष पर बैठकर काक का शब्द करना सुनिमित्त है।[४]

बृहत्संहिता से ज्ञात होता है कि यदि दुधारे वृक्ष पर बैठकर कौआ काँव-काँव शब्द करे, तो शुभ होता है।[५]

सूखे वृक्ष पर बैठकर सूर्य की ओर मुख करके शब्द करते हुए काक का उल्लेख किया गया है।[६]

बृहत्संहिता का वचन है कि यदि गृहस्थ के घर में पूर्व आदि दिशाओं की ओर देखता हुआ सूर्य की ओर मुख करके काक शब्द करे, तो गृहस्वामी को राजभय, चोरभय, बन्धन, कलह तथा पशुभय होता है।[७] यह भी कहा गया है कि यदि काक सूखे वृक्ष पर बैठकर शब्द करे, तो कलह होता है।[८]

हर्षचरित में घोड़े का उत्तर की ओर हिनहिनाना शुभ माना गया है।[९]

शृगालियों के चिल्लाने का उल्लेख हुआ है।[१०]

---

१. 'दक्षिणाङ्गस्य स्फुरणं नराणां सर्वसौख्यदम्।
तदेव कथ्यते सद्भिर्नारीणामप्रदक्षिणम्॥'
काद०, कृष्णमोहन-कृत टीका, पृ० २०७।

२. काद०, पृ० ३००।

३. 'पुंसां सदा दक्षिणदेहभागे स्त्रीणां च वामावयवेषु लाभः।
स्पंदाः फलानि प्रदिशंत्यवश्यं निहन्ति चोक्तांगविपर्ययेण॥'
वसन्तराजशाकुन, पृ० ९०।

४. हर्ष० ८।८०

५. 'सुस्निग्धपत्रपल्लवकुसुमफलानम्रसुरभिमधुरेषु।
सक्षीरावणसुस्थितमनोज्ञवृक्षेषु चार्थकरः॥' —बृहत्संहिता ९५।३३

६. हर्ष० ५।२०

७. 'ऐन्द्रयादिदिगवलोकी सूर्याभिमुखो रुवन् गृहे गृहिणः।
राजभयचोरबन्धनकलहाः स्युः पशुभयं चेति॥'
बृहत्संहिता ९५।१९

८. 'छिन्नाग्रेऽङ्गच्छेदः कलहः शुष्कद्रुमस्थिते ध्वाङक्षे।'—वही, ९५।३८

९. हर्ष० ८।८०

१०. वही, ५।२७

बृहत्संहिता में गीदड़ का शब्द अशुभ माना गया है।[1] किरातार्जुनीय में शृगाली का शब्द अशुभ घोषित किया गया है।[2]

बाण ने क्षपणक के दर्शन का उल्लेख किया है।[3]

क्षपणक का दर्शन अनिष्ट माना गया है।[4] मुद्राराक्षस में अमात्य राक्षस कहता है कि क्षपणक का दर्शन अपशकुन है।[5]

यात्रा के समय चाष पक्षी तथा मयूर के दर्शन का उल्लेख किया गया है।[6]

इनका दर्शन शुभ माना गया है।[7]

जब हर्षवर्धन चलने लगे, तब हरिण उनकी बाईं ओर से निकले।[8]

यह अपशकुन है। पुरुष की बाईं ओर शव, शृगाली और कुम्भ तथा दाहिनी ओर गाय, मृग और द्विज शुभ के सूचक हैं।[9]

स्त्रियों के प्रयाण में दाहिनी ओर मृग का आगमन अमंगल-द्योतक है।[10]

---

१. 'क्रोष्टुकनादे च तथा शस्त्रभयं मुनिवचश्चेदम्।'

बृहत्संहिता ४६।६३

२. 'पुराधिरूढः शयनं महाधनं विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः।
अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः॥'

किरातार्जुनीय १।३८

३. हर्ष० ५।२०

४. 'नपुंसकव्यङ्गनग्नमुक्तकच्छसिताम्बराः।
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा नेष्यन्ते दर्शनं गताः॥'

हर्ष०, जीवानन्द-कृत टीका, पृ० ४६४।

५. 'अमात्य! एष खलु सांवत्सरिकः क्षपणकः।
राक्षसः—(स्वगतमनिमित्तं सूचयित्वा) कथं
प्रथममेव क्षपणकदर्शनम्?' —मुद्राराक्षस, चतुर्थ अंक, पृ० १६७।

६. हर्ष० ७।५६

७. 'भरद्वाजमयूरस्य चाषस्य नकुलस्य च।
गमने दर्शनं पुण्यं दुर्लभं तु प्रदक्षिणम्॥'

हर्ष०, रंगनाथ-कृत टीका, पृ० ३२१।

८. हर्ष० ५।२०।

९. 'वामे शवशिवाकुम्भा दक्षिणे गोमृगद्विजाः।'

हर्ष०, जीवानन्द-कृत टीका, पृ० ४६३।

१०. 'प्रस्थितामिवानभीष्टदक्षिणवातमृगागमनाम्'।

काद०, पृ० ३८५।

शकुनशास्त्र में भी इसी प्रकार का निरूपण प्राप्त होता है।[१]

कादम्बरी के निरूपण से ज्ञात होता है कि उल्कापात अनिष्ट की सूचना देता है।[२]

बृहत्संहिता में निरूपण किया गया है कि उल्कापात विनाश का सूचक है।[३]

बाण उत्पातों का वर्णन करते हुए पृथिवी के कम्पन का उल्लेख करते हैं।[४]

बृहत्संहिता से ज्ञात होता है कि छेद के बिना भूमि का फटना और काँपना भयदायक होता है।[५]

धूमकेतु का भी उल्लेख हुआ है।[६]

बृहत्संहिता का प्रमाण है—जो केतु छोटा, प्रसन्न, चिकना, सरल, सुन्दर तथा शुक्ल वर्ण का होकर उदित होता है, वह सुभिक्ष और सौख्य प्रदान करता है। इसके विपरीत रूप वाले केतु शुभ नहीं होते। वे धूमकेतु कहे जाते हैं।[७]

सूर्यमण्डल के निष्प्रभ होने तथा उसमें कबन्ध के दिखायी पड़ने का उल्लेख हुआ है।[८]

यदि सूर्यमण्डल में दण्डाकार केतु दिखायी पड़े, तो राजा की मृत्यु होती है और कबन्ध दिखायी पड़े, तो व्याधि का भय होता है।[९]

चन्द्र का परिवेश जलता हुआ दिखायी पड़ा।[१०]

---

१. 'स्त्रीणां प्रयाणे दक्षिणो मृगोऽपशकुनमिति वसन्तराजादौ प्रसिद्धम्।'
कादं०, भानुचन्द्र-कृत टीका, पृ० ३८५।

२. कादं०, पृ० ७६।

३. 'अम्बरमध्याद् बह्वचो निपतन्त्यो राजराष्ट्रनाशाय।'
बृहत्संहिता ३३।११

४. हर्ष० ५।२७

५. 'छिद्राभावे भूमेर्दरणं कम्पश्च भयकारी।'
बृहत्संहिता ४६।७५

'भूभारखिन्ननागेन्द्रदीर्घनिःश्वाससम्भवः।
भूकंपः सोऽपि जगतामशुभाय भवेत् सदा॥'
नारदीयसंहिता, पृ० ६१।

६. हर्ष० ५।२७

७. 'ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः स्निग्धस्त्वृजुरुचिरसंस्थितः शुक्लः।
उदितो वाप्यभिदृष्टः सुभिक्षसौख्यावहः केतुः॥
उक्तविपरीतरूपो न शुभकरो धूमकेतुरुत्पन्नः।'
बृहत्संहिता ११।८-९

८. हर्ष० ५।२७

९. 'दण्डे नरेन्द्रमृत्युर्व्याधिभयं स्यात् कबन्धसंस्थाने।'
बृहत्संहिता ३।१७

१०. हर्ष० ५।२७

यह भी एक उत्पात माना गया है। इससे संसार के अमंगल की सूचना मिलती है।[1]

दिशाओं के लाल होने तथा जलने का उल्लेख हुआ है।[2]

पीले वर्ण का दिग्दाह राजभय का कारण होता है, अग्नि के रंग का दिग्दाह देश-नाश का कारण होता है। यदि दिग्दाह लाल हो और दक्षिणी पवन बहता हो, तो धान्य को नष्ट करता है।[3]

वसुधा वधू बहती हुई रक्त की धारा से लाल हुई चित्रित की गयी है।[4]

बृहत्संहिता का निरूपण है कि रुधिर की वर्षा होने से राजाओं में युद्ध होता है।[5]

असमय में आकाश में बादलों के घिरने का उल्लेख किया गया है।[6]

बृहत्संहिता में निरूपित किया गया है कि अनृतु में वर्षा होने से रोग होता है।[7]

निर्घात का उल्लेख हुआ है।[8]

निर्घात दिव्य उत्पात है।[9] वराहमिहिर का कथन है—जिस दिशा से भयंकर तथा जर्जर शब्द के साथ निर्घात का उत्पात हो, वह दिशा नष्ट हो जाती है।[10]

बाण ने उल्लेख किया है कि धूलि की वर्षा ने सूर्य को धूसरित कर दिया।[11]

जब धूलि गहन अन्धकार की भांति समस्त दिशाओं को इस प्रकार आच्छादित कर लेती है कि पर्वत, पुर और वृक्ष नहीं दिखायी पड़ते, तब राजा का नाश होता है।[12]

---

१. हर्ष०, जीवानन्द–कृत टीका, पृ० ५१२।

२. हर्ष० ५।२७

३. 'दाहो दिशां राजभयाय पीतो देशस्य नाशाय हुताशवर्णः।
यश्चारुणः स्यादपसव्यवायुः सस्यस्य नाशं स करोति दृष्टः॥'

बृहत्संहिता ३१।१

४. हर्ष० ५।२७

५. 'असृग्वर्षे चापि नृपयुद्धम्' —बृहत्संहिता ४६।४३

६. हर्ष० ५।२७

७. 'रोगो ह्यनृतुभवायां नृपवधोऽनभ्रजातायाम्।'

बृहत्संहिता ४६।३८

८. हर्ष० ५।२७

९. 'दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमुल्कानिर्घातपवनपरिवेषाः।'

बृहत्संहिता ४६।४

१०. 'भैरवजर्जरशब्दो याति यतस्तां दिशं हन्ति।'

वही, ३९।५

११. हर्ष० ५।२७

१२. 'कथयन्ति पार्थिववधं रजसा घनतिमिरसञ्चयनिभेन।
अविभाव्यमानगिरिपुरतरवः सर्वा दिशश्छन्नाः॥'

बृहत्संहिता ३८।१

कुलदेवता की प्रतिमाओं का विकृत होना उत्पात है।[1]

यदि शिवलिंग, देवता की प्रतिमा या आयतन कारण के विना भग्न हो जायँ, चलायमान हों, स्वेदयुक्त हों, अश्रुपात करें या जल्पना करें, तो राजा और देश का नाश होता है।[2]

सिंहासन के समीप भौंरों का मँड़राना, अन्तःपुर के ऊपर कौओं का काँव-काँव करना तथा गृध्र द्वारा श्वेत आतपत्र के वीच के माणिक्यखण्ड का काटकर निकाला जाना—इन उत्पातों का भी उल्लेख हुआ है।[3]

राज्यवर्धन की मृत्यु के पहले अधोलिखित उत्पातों का वर्णन किया गया है[4]—

१. कबन्ध-युक्त सूर्य-विम्ब में राहु का दिखायी पड़ना।
२. सप्तर्षियों से धूम का निकलना।
३. दिग्दाह का होना।
४. तारों का आकाश से गिरना।
५. चन्द्रमा का प्रभाहीन होना।
६. उल्काओं का प्रज्वलित होना।
७. धूलि और कंकड़ियों से युक्त पवन का बहना।

इसी प्रकार दूसरे स्थान पर अधोलिखित उत्पातों का वर्णन हुआ है[5]—

१. कृष्णसार मृग का इधर-उधर विचरण करना।
२. मधुमक्खियों की सदनों में झंकार।[6]
३. वन के कपोतों का नगर में उड़ना।[7]

---

१. हर्ष० ५।२७

२. 'अनिमित्ताङ्गचलनस्वेदाश्रुनिपातजल्पनाद्यानि।
लिङ्गार्चायतनानां नाशाय नरेशदेशानाम्॥'

बृहत्संहिता ४६।८

३. हर्ष० ५।२७

४. वही, ६।४३

५. वही, ६।५१–५२

६. मधुमक्खियों का घर में छत्ता लगाना अपशकुन है—
'यदि गृहे मधूका मधु कुर्वन्ति॥ उपोष्यौदुम्बरीः समिधोऽष्टशतं दधिमधुघृताक्ता 'मा नस्तोक इति' द्वाभ्यां जुहुयात्।'

शाङ्खायनगृह्यसूत्र ५।१०।२

७. कपोत का चोंच आदि से घर पर चोट करना दुर्निमित्त माना गया है और उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है—
'कपोतश्चेदगारमुपहन्यादनुपतेद्वा देवाः कपोत इति प्रत्यृचं जुहुयाज्जपेद्वा।'

आश्वलायनगृह्यसूत्र ३।६।५

४. उपवन के वृक्षों में असमय में ही पुष्पों का आ जाना।[१]
५. सभा की शालभञ्जिकाओं का रुदन।
६. योद्धाओं को दर्पण में अपना कबन्ध दिखायी पड़ना।
७. राजमहिषियों की चूड़ामणियों में चरण-चिह्नों का प्रकट होना।
८. चेटियों के हाथ से चँवर का छूटना।
९. प्रणयकलह में भी वीरों का मानिनियों से दीर्घकाल तक पराङ्मुख होना।
१०. करिणियों के कपोलों पर भ्रमरों का एकत्र होना।
११. घोड़ों का हरी घास का खाना छोड़ना।
१२. बालिकाओं के ताल देकर नचाने पर भी घर के मयूरों का नर्तन न करना।
१३. रात्रि में तोरण के समीप अकारण ही कुत्तों का चिल्लाना।[२]
१४. दिन में तर्जनी दिखाती हुई कोटवी (नंगी स्त्री) का घूमना।
१५. कुट्टियों पर घास का निकलना।
१६. मद्यपात्रों में पड़ते हुए योद्धाओं की स्त्रियों के मुखप्रतिविम्बों का वेणीवन्धन से युक्त दिखाई पड़ना।
१७. भूमि का कंपन।
१८. वीरों के शरीर पर रुधिरविन्दुओं का दृष्टिगत होना।
१९. कठोर झंझावात का चलना।

बाण द्वारा वर्णित उत्पातों में नवीनता भी है।

हाथी

बाण हाथियों की सूक्ष्म विशेषताओं का उल्लेख करते हैं।

दर्पशात औपवाह्य हाथी था।[३]

जो सवारी के लिए उपयुक्त होता है, उसे औपवाह्य कहते हैं। कर्म के अनुसार

---

१. अनृतु में वृक्षों में पुष्पों के आने से राष्ट्र में भेद पड़ता है—
'राष्ट्रविभेदस्त्वनृतौ बालवधोऽतीव कुसुमिते बाले।'
बृहत्संहिता ४६।२६

२. यदि कुत्ता अर्धरात्रि के समय उत्तर की ओर मुख करके शब्द करे, तो ब्राह्मणपीड़ा तथा गोहरण की सूचना मिलती है। यदि रात्रि के अन्त में ईशानकोण की ओर मुख करके रोये, तो कन्यादूषण, अग्नि तथा गर्भपात को सूचित करता है—
'उदङ्मुखश्चापि निशार्धकाले विप्रव्यथां गोहरणं च शास्ति।
निशावसाने शिवदिङ्मुखश्च कन्याभिदूषानलगर्भपातान्॥'
बृहत्संहिता ८९।५

३. हर्ष० २।२९

हाथी के चार प्रकार हैं—दम्य, सान्नाह्य, औपवाह्य और व्याल।[१] औपवाह्य के आठ भेद हैं।[२]

दर्पशात भद्रजाति का हाथी था।[३]

भद्रजाति का हाथी श्रेष्ठ माना जाता है। बृहत्संहिता का वचन है—जिनके दन्त मधु के रंग के हों, जिनके शरीर के सभी अंग सम्यक् विभक्त हों, जो न बहुत मोटे हों और न कृश ही हों, जो कार्य करने में समर्थ हों, जो तुल्य अंगों से सम्पन्न हों, जिनका पृष्ठवंश धनुष के समान हो और जिनके जघन शूकर के तुल्य हों, वे भद्र जाति के हाथी कहे जाते हैं।[४]

दर्पशात चतुर्थ अवस्था को, जिसमें शरीर पर मधु-बिन्दु की भांति लाल बिन्दु पड़ जाते हैं, छोड़ रहा था।[५]

चतुर्थी दशा तीस वर्ष तथा चालीस वर्ष के बीच की अवस्था मानी जाती है।[६] इस अवस्था में हाथियों का शरीर लाल रेखाबिन्दुओं से युक्त हो जाता है।[७]

सात अरत्नि ऊँचा, नव अरत्नि लम्बा, दस अरत्नि मोटा तथा चालीस वर्ष की अवस्था वाला हाथी उत्तम माना जाता है।[८]

दर्पशात के मद की गन्ध आम्र, चम्पक आदि की भाँति थी।[९]

---

१. अर्थशास्त्र २।३२

२. 'औपवाह्योऽष्टविधः—आचरणः कुंजरौपवाह्यः धोरणः आधानगतिकः यष्टयुपवाह्यः तोत्रोपवाह्यः शुद्धोपवाह्यः मार्गायुकश्चेति।'

वही, २।३२

३. हर्ष० २।३१

४. 'मध्वाभदन्ताः सुविभक्तदेहा न चोपदिग्धाश्च कृशाः क्षमाश्च।
गात्रैः समैश्चापसमानवंशा वराहतुल्यैर्जघनैश्च भद्राः॥'

बृहत्संहिता ६७।१

५. हर्ष० २।२९

६. Kane's Notes on the Harshacharita, Uch. II, p. 129.

७. 'चतुर्थ्यामवगाढायां लेखाबिन्दुभिराचितः।'

हर्ष०, शंकर–कृत टीका, पृ० १०४–१०५।

८. 'सप्तारत्निरुत्सेधो नवायामो दश परिणाहः।
प्रमाणतश्चत्वारिंशद्वर्षो भवत्युत्तमः।'

अर्थशास्त्र २।३१

९. हर्ष० २।३०

यदि मद की गन्ध अच्छी हो, तो हाथी अच्छा माना जाता है। यदि मद की गन्ध अच्छी न हो, तो हाथी प्रशस्त नहीं माना जाता।[1]

गन्धमादन हाथी का वर्णन करते हुए वाण लिखते हैं कि उसका शुण्डाग्र लाल था।[2]

जिस हाथी का शुण्डाग्र लाल होता है, वह राजा के लिए शुभ होता है।[3]

दर्पशात के दाँतों की कान्ति फैल रही थी, मानो वह कुमुदवन का वमन कर रहा हो।[4]

कुमुद, कुन्द आदि की भाँति दाँत प्रशस्त माने जाते हैं।[5]

दर्पशात का तालु लाल था।[6]

यदि हाथी के ओष्ठ, तालु आदि लाल हों, तो वह प्रशस्त माना जाता है।[7]

दर्पशात के नेत्र स्वभावतः पिंगल थे।[8]

पिंगल नेत्र अच्छे माने जाते हैं।[9]

दर्पशात का शिर उन्नत,[10] मुख लम्बा,[11] और वंश (पीठ की हड्डी) विस्तृत था।[12]

---

१. 'उभयत्रुतिरप्येष विवर्णो हर्षवर्जितः।
यदि स्यादपगन्धश्च तदासौ न सतां मतः॥'
हर्ष०, शंकर-कृत टीका, पृ० १०६–१०७।

२. कादं०, पृ० १७०।

३. 'दीर्घाङ्गुलिरक्तपुष्कराः' —बृहत्संहिता ६७।८

४. हर्ष० २।३०

५. 'पयःकुमुदकुन्दाभौ केतकीकुमुदद्युती।
मृगाङ्ककिरणालोकौ कीर्तिकल्याणकारकौ॥'
हर्ष०, शंकर-कृत टीका, पृ० १०५–१०६।

६. हर्ष० २।३०

७. 'रक्तौष्ठतालुरसनम्'—हर्ष०, शंकर-कृत टीका, पृ० १०६।

८. हर्ष० २।३०

९. 'शशिसूर्यसमाभासे कलविङ्काक्षसन्निभे।
प्रसन्नमधुपिङ्गे च स्थिरे चामीलने तथा॥
अपरिस्रावणी चैव कुशाग्निनिभभास्वरे।
नेत्रे शस्ते समे स्निग्धे दीर्घे चाविलपक्ष्मणी॥'
हर्ष०, शंकर-कृत टीका, पृ० १०६।

१०. हर्ष० २।३०

११. वही, २।३१

१२. वही, २।३०

उन्नत शिर की प्रशंसा की गयी है।[१]
हाथी का लम्बा मुख प्रशस्त माना जाता है।[२]
विस्तृत वंश वाला हाथी अच्छा माना जाता है।[३]
दर्पशात के नख स्निग्ध थे।[४]
हाथी के स्निग्ध नख प्रशस्त माने जाते हैं।[५]
दर्पशात विनय में अच्छे शिष्य की भाँति था।[६]
विनय-सम्पन्न हाथी राजा के लिए बहुत अच्छा माना जाता है।[७]

अश्व

हर्षचरित में वनायु, आरट्ट, कम्बोज, सिन्धु आदि देश के घोड़ों का उल्लेख हुआ है।[८]

---

१. 'समं महच्च पूर्णं च नातिस्तब्धोच्चमस्तकम्।
नावाग्रं नातिपृथुलं वितानावग्रहं मृदु॥'
हर्ष०, शंकर–कृत टीका, पृ० १०७।

२. 'पृथुलायतास्याः' —बृहत्संहिता ६७।६

३. 'यावत्पूरितपार्श्वश्च वंशश्चापलताकृतिः।
शुभो ज्ञेयो गजेन्द्राणामायतः कुरुते सुखम्॥'
हर्ष०, शंकर–कृत टीका, पृ० १०८।

४. हर्ष० २।३१

५. 'नखाः स्निग्धाः सिताः शस्ताः' इति।'
हर्ष०, शंकर–कृत टीका, पृ० १०९।

६. हर्ष० २।३१

७. 'विनये मुनिभिस्तुल्याः क्रुद्धा नागाश्च राक्षसाः।
निस्त्रिंशस्याधिकत्वाच्च शस्त्रं नागा महीपतेः॥'
हर्ष०, शंकर–कृत टीका, पृ० १०९।

८. हर्ष० २।२८
वनायु देश के घोड़े का लक्षण है—
'पूर्वार्धकायेषु समुच्छ्रितास्ते
ह्रस्वास्त्रिके भारसहाः सुसत्त्वाः।
स्थूलैश्च पादैर्दृढकुष्ठिकाश्च
कालानुवर्णा बहुशो भवन्ति॥
अपाङ्गदेशे विकटाः सुदीर्घा
मेघेभनादेषु न शङ्किनस्ते।
शान्ता मृगेन्द्रा इव ते विभान्ति
दर्पोज्ज्वला वह्निसमानरूपाः॥'
अश्वशास्त्र, कुललक्षणाध्याय, श्लो० २४–२५।

पञ्चभद्र, मल्लिकाक्ष और कृत्तिकापिञ्जर घोड़ों का उल्लेख हुआ है।[१] जिसके खुर और मुख श्वेत होते हैं, उसे पञ्चभद्र कहते हैं।[२] मल्लिकाक्ष के नेत्र श्वेत होते हैं।[३] कृत्तिकापिञ्जर का शरीर तारों की भाँति श्वेत विन्दुओं से युक्त होता है।[४] द्रोणी पद का प्रयोग हुआ है।[५] द्रोणी घोड़े की विशेष प्रकार की शोभा है।[६]

आरट्ट देश के घोड़े का लक्षण—

'आरट्टजाः सुजघना अदीर्घपृष्ठाः सुकुष्ठिका बलिनः।
स्थूलाक्षिकूटशङ्खास्तेजोजवसारयुक्ताः स्युः॥'

वही, श्लो० २९

कम्बोज देश के घोड़े का लक्षण—

'कांभोजा सुमहाललाटजघनस्कन्धा महावक्षसो
दीर्घग्रीवमुखा महाजवयुता ह्रस्वाण्डमेढ्रासनाः।
श्रीमन्तः सुमहासमुद्गचरणा दीर्घैस्तु जातैर्भुजैः
सर्वव्यञ्जनपूजिता दृढशफा मण्डूकनेत्राश्च ये॥
श्वेताश्च शोणाश्च भवन्त्यदीना न कृष्णवर्णा न विवर्णितास्ते।
ह्रस्वैश्च कूर्चैर्मृदुरोमकेशा ह्रस्वेन पृष्ठेन सुवर्णवन्तः॥'

वही, श्लो० १४–१५

सैंधव का लक्षण—

'सैन्धवकुलजा बलिनो दृढजत्रुमहोरसो महाप्रोथाः।
तनुसृक्वत्त्वगोला विलम्बमुष्काः सुमेढ्राश्च॥'

वही, श्लो० ३०।

१. हर्ष० २।२८

२. 'सिताश्च यस्य वाजिनः शफाः समस्तकं मुखम्।
स पञ्चभद्रनामको नृपस्य राज्यसौख्यदः॥'

हर्ष०, शंकर–कृत टीका, पृ० १०१।

३. 'मल्लिकाक्षः सितैर्नेत्रैः'— हलायुध : २।४३८

'पृथुस्निग्धा समा चैव मल्लिकाकुसुमप्रभा।
राजी यस्य तु पर्यन्ते परिक्षेप्ये तु लोचने॥
सह यो मल्लिकाक्षस्तु दृष्टिपर्यन्ततारकः।'

हर्ष०, शंकर–कृत टीका, पृ० १०१।

४. 'तारकाकदम्बककल्पानेकबिन्दुकल्माषितत्वचः।' —वही, पृ० १०१।

५. हर्ष० २।२९

६. पृष्ठोरःकटिपार्श्वस्थमांसोत्कर्षणनिर्मिता।
द्रोणिकेति प्रशंसन्ति शोभा वाजिनि पंचमी॥'

हर्ष०, शंकर–कृत टीका, पृ० १०२।

इन्द्रायुध का शरीर काली, पीली, हरी तथा लाल वर्ण की रेखाओं से चित्रित था।[१]

अश्वशास्त्र में निरूपित किया गया है कि नील, रक्त, श्वेत, पीत तथा काले या रंग-विरंगे मण्डलों से जिसका समस्त शरीर भूषित रहता है, वह अश्व राजा को विजय प्रदान करता है।[२]

हर्ष की मन्दुरा में आयत और मांसरहित मुख वाले घोड़े थे।[३]

आयत और निर्मांस मुख वाले घोड़े की प्रशंसा की गयी है।[४]

इन्द्रायुध का मुखमण्डल भस्म की भाँति शुभ्रवर्ण ललाटस्थ रोमावर्त से अंकित था।[५]

ललाट पर विद्यमान आवर्त शुभ माना गया है।[६]

गोल, चिकनी और सुडौल घाँटी वाले घोड़ों का उल्लेख किया गया है।[७]

उक्त लक्षणों वाली घाँटी की प्रशंसा की गयी है।[८]

यूप की भाँति टेढ़ी, लम्बी और ऊपर उठी हुई ग्रीवा की चर्चा हुई है।[९]

---

१. काद०, पृ० १५५।

२. 'नीलैश्च रक्तैश्च सितैश्च पीतैः कृष्णैश्च मिश्रैस्त्वथवा विचित्रैः।
यो मण्डलैर्भूषितसर्वकायः स स्वामिनो वैजयिकोऽश्वमुख्यः॥'
अश्वशास्त्र, मिश्रितलक्षणाध्याय, श्लो० ६।

३. हर्ष० २१२८

४. 'मुखं तन्वायतनतं चतुरस्रं समाहितम्।
ऋजु चैवोपदिष्टं च परिपूर्णं च शस्यते॥'
हर्ष०, शंकर–कृत टीका, पृ० १०१।
'आयतं तुरगाणां च निर्मांसं प्रियदर्शनम्।
सुगन्धं पूजितं वक्त्रं विपरीतं सुगर्हितम्॥'
अश्वशास्त्र, अंगलक्षणप्रकरणाध्याय, श्लो० १२।

५. काद०, पृ० १५७।

६. 'सृक्कण्यां च ललाटे च कर्णमूले निगालके।
बाहुमूले गले श्रेष्ठा आवर्तास्त्वशुभाः परे॥'
Kane's Notes on the Kādambarī (pp. 1–124 of Peterson's edition), p. 207.

७. हर्ष० २१२९

८. 'ग्रीवाशिरोऽन्तरश्लिष्टो दीर्घवृत्तः समाहितः।
नोद्वर्तो नाधितो नातिदुर्नाहोऽतिविधानतः॥
सुदिग्धोऽनुपदिग्धश्च निगालो गदितः शुभः।'
हर्ष०, शंकर–कृत टीका, पृ० १०१।

९. हर्ष० २१२९

उक्त लक्षणों वाली ग्रीवा प्रशस्त मानी जाती है।[१]

घोड़ों के कन्धों के जोड़ मांस से फले हुए थे।[२]

मांस से भरे हुए कन्धों के जोड़ प्रशस्त माने जाते हैं।[३]

घोड़ों की छाती निकली हुई थी, उदर गोल थे तथा टांगें पतली और सीधी थीं।[४]

निकली हुई छाती,[५] गोल उदर,[६] तथा पतली और सीधी टांगों[७] की प्रशंसा की गयी है।

घोड़ों के खुर लोहपीठ की भाँति कठोर थे।[८] इन्द्रायुध के खुर इन्द्रनीलमणि-निर्मित पादपीठ का अनुकरण कर रहे थे।[९]

खुरों की कठोरता प्रशस्त मानी जाती है।[१०]

---

१. 'ग्रीवा भूलम्बिनी वृत्ता दीर्घा च सुसमाहिता।
गले बद्धा विदौर्वृत्ता तथा शिरसि चोद्यता॥
निगाले स्याच्च निर्मांसा वृद्धौ सङ्कुचिता भृशम्।
शिलष्टमांसाग्रबद्धा च तुरगस्य प्रशस्यते।'

हर्ष०, शंकर–कृत टीका, पृ० १०१।

'ग्रीवाथ जङ्घे वदनं हयानां त्रीण्येव दीर्घाणि शुभानि विन्द्यात्।'

अश्वशास्त्र, मिश्रितलक्षणाध्याय, श्लो० ३१।

२. हर्ष० २।२६

३. 'स्कन्धः सुपरिपूर्णः स्याद्व्यक्तमांसः पृथुत्रिकः।
बहुमांसाङ्गसंश्लिष्टः स्थिरमांसश्च पूरितः॥'

हर्ष०, शंकरकृत टीका, पृ० १०१।

४. हर्ष० २।२६

५. 'स्थूलास्थि महदच्छिद्रं पृथुलं यच्च निर्वलि।
उर ईदृक् प्रशंसन्ति स्थूलक्रोडं महत्तरम्॥'

हर्ष०, शंकर-कृत टीका, पृ० १०१।

६. 'उदरं वृत्तमगुरु मृगस्योपचितं तथा।
अच्छिद्रह्रस्ववृत्ताल्पसमकुक्षि च पूजितम्॥'

वही, पृ० १०२।

७. 'जङ्घे वृत्ते दीर्घे निर्मांसपूजिते निगूढसिरे।'

वही, पृ० १०२।

८. हर्ष० २।२६

९. काद०, पृ० १५६।

१०. 'कठिनखरखुराः'—अश्वशास्त्र, मिश्रितलक्षणाध्याय, श्लो० ३४।
'खुरास्तुरङ्गे वृत्ताश्च ह्रस्वाश्च सुदृढा घनाः।'

हर्ष०, शंकर-कृत टीका, पृ० १०२।

इन्द्रायुध के केसर मधुपंक से युक्त थे।[1]

अश्वों के वात आदि दोषों की शान्ति के लिए मधुपंक के लेप का विधान निरूपित किया गया है।[2]

१. काद०, पृ० १५७।

२. 'उक्तं हि वैद्यके—अश्वस्य वातादिदोषशान्तये मधुयुक्तवचादिचूर्णस्य पङ्कस्तेन तनुलेपनम्।'

वही, भानुचन्द्र–कृत टीका, पृ० १५७।

एकादश अध्याय

बाणभट्ट की कृतियों में चित्रित संस्कृति तथा समाज

शासन-व्यवस्था

राजा

बाण के युग में राजतन्त्र की प्रथा थी। सभी अधिकार राजा के अधीन रहते थे। राजा का पद वंशपरम्परागत था। प्रभाकरवर्धन के बाद राज्यवर्धन और उनके बाद हर्षवर्धन राजा हुए थे। राजा में दैव—अंश माना जाता था।[१]

राजा प्रातःकाल सभा में जाता था। वहाँ वह शासनव्यवस्था के सम्बन्ध में विचार करता था और लोगों से मिलता था। चाण्डालकन्यका राजा से उस समय मिलती है, जब वे प्रातःकाल सभा में बैठे थे।[२] मध्याह्न के समय शंख बजने पर राजा सभाभवन से उठता था।[३] इसके बाद वह हलका व्यायाम करके स्नान करता था।[४] स्नान करने के बाद राजा पूजा करता था।[५] तदनन्तर भोजन करके धूमवर्ति का पान करता था और ताम्बूल खाता था।[६] इसके बाद राजा कुछ समय तक विश्राम करता था और राजाओं तथा मन्त्रियों से बातचीत करता था।[७] राजा अपराह्ण में फिर सभाभवन में जाता था और सन्ध्या हो जाने पर भीतरी कक्ष में चला जाता था।[८]

राजा संगीत, मृगया, शास्त्रचर्चा आदि के द्वारा मनोविनोद करता था।[९]

शासन-व्यवस्था के संचालन में मन्त्री राजा की सहायता करते थे। एक **प्रधानामात्य** होता था।[१०] कादम्बरी में कुलक्रमागत मन्त्रियों की चर्चा की गयी है।[११] बाण के वर्णन से राजा के अधोलिखित अनुचरों[१२] का पता लगता है—

---

१. हर्ष० २।३२

२. काद०, पृ० १५–१६।

३. वही, पृ० २७–२८।

४. वही, पृ० ३०–३२।

५. वही, पृ० ३३।

६. वही, पृ० ३४।

७. वही, पृ० ३५।

८. हर्ष० २।३६

९. काद०, पृ० १३–१४।

१०. वही, पृ० २६।

११. वही, पृ० १२।

१२. 'विच्छिन्नच्छत्रधारेण लम्बिताम्बरवाहिना भ्रष्टभृङ्गारग्राहिणा च्युताचमनधारिणा ताम्यत्ताम्बूलिकेन [illegible]ग्राहिणा'—हर्ष० ६।३६

१. छत्रधार—राजा का छत्र लेकर चलने वाला, २. अम्बरवाही—राजा के वस्त्रों को लेकर चलने वाला, ३. भृङ्गारवाही—राजा का जलपात्र लेकर चलने वाला, ४. आचमनधारी—आचमन का पात्र थामने वाला, ५. ताम्बूलिक तथा ६. खड्गग्राही।

कादम्बरी के उल्लेख से ज्ञात होता है कि राजा के पास ताम्बूलकरंकवाहिनी रहती थी।[1] वह पान का डिब्बा लिए हुए राजा के साथ रहती थी।

स्कन्धावार

स्कन्धावार के दो भाग होते थे—बाह्यसन्निवेश और राजकुल। बाह्यसन्निवेश में सर्वप्रथम एक ओर गजशाला थी और दूसरी ओर मन्दुरा।[2] इसके बाद बहुत लम्बा मैदान रहता था। इसमें राजाओं और विशिष्ट व्यक्तियों के शिविर और बाज़ार रहते थे।[3] हर्ष के स्कन्धावार में अनेक शिविर[4] लगे हुए थे—१. राजशिविर, २. हाथियों की सेना, ३. घोड़े, ४. ऊँट, ५. शत्रुमहासामन्त—ये राजा द्वारा जीते गये थे, ६—राजा के प्रताप तथा अनुराग से प्रणत, अनेक देशों से आये हुए महीपाल, ७. जैन, आर्हत, पाशुपत, पाराशर तथा वर्णी, ८. साधारण जनता, ९. सागरों के पार के देशों के निवासी म्लेच्छ, तथा १०. सभी द्वीपों से आये हुए दूत।

राजकुल

राजकुल की ड्योढ़ी को राजद्वार कहते थे। यहाँ प्रतीहार पहरा देते थे।[5] राजद्वार के भीतर जो मार्ग जाता था, उसके दोनों ओर कक्ष होते थे।[6] उनको द्वारप्रकोष्ठ अथवा अलिन्द कहते थे। राजभवन के भीतर अनेक कक्ष्यायें होती थीं। पहली बार बाण तीन कक्ष्याओं को पार कर हर्ष से मिले थे।[7] चन्द्रापीड सात कक्ष्याओं को पार करके तारापीड से मिला था।[8] हर्ष के भवन की प्रथम कक्ष्या में इभधिष्ण्यागार था और मन्दुरा भी थी।[9] इभधिष्ण्यागार में राजा का मुख्य हाथी दर्पशात रहता था और मन्दुरा में राजा के मुख्य घोड़े रहते थे।

---

१. काद०, पृ० ३०।
२. हर्ष० २।२८–२९
३. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०३।
४. हर्ष० २।२६–२८
वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७–३८।
५. वही, पृ० २०४।
६. हर्ष० ४।१४
७. 'समतिक्रम्य भूपालसहस्रसङ्कुलानि त्रीणि कक्ष्यान्तराणि चतुर्थे भुक्तास्थानमण्डपस्य पुरस्तादजिरे स्थितम्' —हर्ष० २।३१–३२
८. काद०, पृ० १७९।
९. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०४।

राजभवन की दूसरी कक्ष्या में **बाह्यास्थानमण्डप** था।[१] बाह्यास्थानमण्डप में राजा साधारण लोगों से मिलता था। ग्रास्थानमण्डप के सामने ग्रांगन था। यहाँ तक हर्ष हाथी या घोड़े पर चढ़े हुए जाते थे।[२]

राजभवन की तीसरी कक्ष्या में **धवलगृह** था।[३] धवलगृह के भीतर या समीप में **भुक्तास्थानमण्डप** था।[४] धवलगृह के चारों ग्रोर महत्त्वपूर्ण विभाग थे[५]—**१. गृहोद्यान, २. गृहदीर्घिका, ३. व्यायामभूमि,, ४. स्नानगृह या धारागृह, ५. देवगृह, ६. तोयकर्मान्त**—जल का स्थान, **७–महानस** तथा **८. आहारमण्डप**।

कादम्बरी के उल्लेख से ज्ञात होता है कि राजकुल के भीतर **आयुधशाला,**[६] **अधिकरणमण्डप**[७] ग्रौर **बाणयोग्यावास**[८] (बाण चलाने का स्थान) थे।

प्रशासन

जनता गाँवों ग्रौर नगरों में रहती थी। गाँवों में प्रायः एक हजार हलों से जोतने योग्य भूमि होती थी।[९] ग्राम का प्रमुख ग्रधिकारी ग्रामाक्षपटलिक होता था।[१०] वह गाँव की ग्राय का लेखा-जोखा रखता था। इसकी सहायता के लिए करणि होते थे।[११]

दूर के प्रान्तों के शासक **लोकपाल** कहे जाते थे।[१२] शायद माधवगुप्त एक लोकपाल था।[१३]

इस युग में सामन्त-प्रथा प्रचलित थी। सम्राट् की ग्राज्ञा से सामन्त कुछ निश्चित भू-भाग पर शासन करते थे ग्रौर सम्राट् को कर दिया करते थे।[१४] समय-समय पर सामन्त सम्राट् के यहाँ उपस्थित होते थे ग्रौर विभिन्न कार्यों में ग्रपना सहयोग प्रदान

१, २, ३, ४. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०५।

५. वही, पृ० २०६।

६. काद०, पृ० १६६।

७. वही, पृ० १७१।

८. वही, पृ० १७५।

९. हर्ष० ७।५४

१०, ११. वही, ७।५३

१२. 'अत्र लोकनाथेन दिशां मुखेषु परिकल्पिता लोकपालाः' —हर्ष० ३।४०

१३. 'Probably Madhavagupta was one such governor or local ruler. This assumption seems irresistible if the testimonies of the Harshacharita and the Aphasad inscription are considered in conjunction.

R. S. Tripathi : History of Kanauj, p. 136.

१४. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २१७।

करते थे।[1] सामन्त,[2] महासामन्त,[3] शत्रुमहासामन्त[4] और आप्तसामन्त[5] का उल्लेख कियां गया है।

बाण के वर्णनों से अधोलिखित अधिकारियों का ज्ञान प्राप्त होता है—

१—महासन्धिविग्रहाधिकृत[6]—यह सन्धि और युद्ध का मन्त्री था, २. महाबलाधिकृत[7]—यह सेना का सर्वोत्कृष्ट अधिकारी था, ३. बलाधिकृत,[8] ४. गजसाधनाधिकृत[9]—गजसेना का अधिकारी, ५. पाटीपति,[10] ६. दूत,[11] ७. महाप्रतीहार,[12] ८. प्रतीहार।[13]

दीर्घाध्वग[14] लेखहारक[15] और लेखक[16] का उल्लेख मिलता है।

दीर्घाध्वग दूर तक समाचार लेकर जाता था और शीघ्र ही लौट आता था।

सेना

हुएनसांग के अनुसार हर्ष की सेना के तीन अंग थे—हाथी, घोड़ा और पदाति।[17] हर्ष की सेना के प्रयाण में कहीं भी रथ का उल्लेख नहीं हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि

---

१. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २१८।
२. काद०, पृ० ३।
३. हर्ष० ५।१६
४. वही, २।२७
५. वही, २।२२
६. वही, ६।४७
७. काद०, पृ० ३६०।
८. हर्ष०, ७।५४
९. वही, ६।४६
१०. वही, ७।५४
पाटीपति का अर्थ 'Barrack Superintendent' किया गया है। द्रष्टव्य—The Harṣacarita of Bāṇa, Tr. by Cowell and Thomas, p. 199.
११, १२. हर्ष० २।२८
१३. वही, २।२७
१४. वही, ५।२०
१५. वही, २।२४
१६. वही, १।१६
१७. 'Accordingly they assembled all the soldiers of the Kingdom, summoned the masters of arms (champions, or, teachers of the art of fighting). They had a body of 5000 elephants, a body of 2000 cavalry, and 50,000 foot-soldiers......After six years he had subdued the Five Indies. Having thus enlarged his territory, he increased his forces; he had 60,000 war elephants and 100000 cavalry.'
Si-Yu-Ki (Tr. by Samuel Beal), Vol. I, p. 213.

इस समय रथ का महत्त्व नहीं समझा जाता था।[१] हर्ष की सेना बहुत बड़ी थी। बाण ने हर्ष को **'महावाहिनीपति'**[२] कहा है।

हाथी :—हर्ष की सेना में अनेक अयुत (दस हजार) हाथी थे—**'अनेकनागायुतबलम्'**[३]। हुएनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि हर्ष की सेना में साठ हजार हाथी थे।[४]

हाथियों की प्राप्ति के अधोलिखित स्रोत थे[५]—

१. **अभिनवबद्ध**—वनों से पकड़कर लाये हुए, २. **विक्षेपोपार्जित**—कर-रूप में मिले हुए, ३. **कौशलिकागत**—भेंट में मिले हुए, ४. **नागवीथीपालप्रेषित**—नागवन के अधिपतियों द्वारा प्रेषित, ५. **प्रथमदर्शनकुतूहलोपनीत**—प्रथम दर्शन के लिये आने वाले राजाओं, सामन्तों आदि के द्वारा दिये गये, ६. **दूतसंप्रेषणप्रेषित**—दूतों के साथ भेजे हुए, ७. **पल्लीपरिवृढढौकित**—शवरबस्तियों के सरदारों द्वारा भेजे हुए।

हाथियों की सेना का भेदन बड़ी कठिनता से होता था। इसीलिए बाण ने दर्पशांत को गिरिदुर्ग[६] और लोहप्राकार[७] कहा है। गज-बल शत्रुओं की सेना में क्षोभ उत्पन्न कर देता था और आक्रमण करने में प्रमुख था।[८] हाथी वक्रचार (टेढ़ी चाल चलना) और मण्डलभ्रान्ति (मण्डलाकार घूमना) में समर्थ होते थे।[९] इसके लिये उन्हें शिक्षा दी जाती रही होगी।

युद्ध के अतिरिक्त हाथियों का अन्य कामों में भी उपयोग होता था। हाथी राजकीय जुलूस में सजाकर निकाले जाते थे,[१०] पहरे पर रखे जाते थे,[११] और इनकी सहायता से

---

१. 'The non-employment of war-chariots in the various campaigns of Harṣa mentioned by Bāṇa Bhaṭṭa and importance attached to elephants corps and camel forces, would suggest that the chariot as one of the offensive arms of ancient India was coming to play only an insignificant role in the seventh century A. D. and was about to be eliminated altogether.'

B. K. Majumdar : The Military System in Ancient India, p. 95.

२, ३. हर्ष० २।३५

४. Si–Yu–Ki (Tr. by Samuel Beal), Vol. I, p. 213.

५. हर्ष० २।२६

६. 'उच्चकुम्भकूटाट्टालविकटं सञ्चारि गिरिदुर्गं राज्यस्य' —वही, २।३१

७. 'कृतानेकबाणविवरसहस्रं लोहप्राकारं पृथिव्याः' —वही, २।३१

८, ९. वही, २।३१

१०, ११. वही, २०९-१

नये हाथी पकड़े जाते थे।[1]

हाथियों के अधिकारी और परिचारक :—वाण के वर्णनों से हाथियों के अधोलिखित अधिकारियों तथा परिचारकों का पता लगता है—

१. **इभभिषग्वर**[2]—चिकित्सक, २. **महामात्र**[3]—हाथियों को युद्ध की शिक्षा देते थे, ३. **आरोह**[4]—सवारी के समय अलंकृत हाथियों को चलाते थे,[5] ४. **आधोरण**[6]—धोरणगति या दुलकी की चाल की शिक्षा देते थे,[7] ५. **निषादी**[8]—हाथियों को टहलाने, चलाने आदि का काम करते थे,[9] और ६. **लेशिक**[10]—हाथियों को घास, दाना आदि देते थे।

अश्व :—कवि ने हर्ष की मन्दुरा के वर्णन के प्रसंग में अश्वों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है। राजकीय अश्वशाला में वनायु, आरट्ट, कंबोज, भारद्वाज, सिन्धुदेश तथा पारसीक के घोड़े थे।[11] ये घोड़े, लाल, श्याम, श्वेत आदि रंगों के थे।[12] पञ्चभद्र, मल्लिकाक्ष, कृत्तिकापिञ्जर आदि शुभ लक्षणों से युक्त घोड़ों का उल्लेख किया गया है।[13]

पदातिसेना :—हर्ष की सेना में पदाति सैनिकों की क्या संख्या थी, इसका विवरण उपलब्ध नहीं होता। हुएनसांग का कथन है कि दिग्विजय से पूर्व हर्ष की सेना में पचास हज़ार पदाति-सैनिक थे।[14] यह संख्या विलकुल प्रारम्भ काल में रही होगी। बाद में जब हर्ष की सेना में साठ हज़ार हाथी और एक लाख घुड़सवार थे,[15] तब पदाति-सैनिकों की संख्या भी अधिक रही होगी।

१, २, ३. हर्ष०, ६।४६

४. वही, २।३०

५. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १३१।

६. हर्ष० ६।४६

७. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १३०।

८. हर्ष० ५।३४

९. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १३०।

१०. हर्ष० २।३०

११. 'अथ वनायुजैः, आरट्टजैः, काम्बोजैः, भारद्वाजैः, सिन्धुदेशजैः, पारसीकैश्च'। वही, २।२८

१२. वही, २।२८

१३. वही, २।२८

१४, १५. Si–Yu–Ki (Tr. by Samuel Beal), Vol. I, p. 213.

पदाति-सैनिकों की वेश-भूषा:—हर्षचरित के वर्णन से ज्ञात होता है कि पदाति-सैनिकों में अधिक युवक थे। वे ललाट पर लम्बे बालों का जूड़ा बांधे हुए थे।[1] उनके कानों में हाथीदांत के श्वेत आभरण थे।[2] वे काले, रंग-विरंगे और सुगन्धित कंचुक धारण किये हुए थे।[3] उनके शिर पर उत्तरीय के शिरोवेष्टन थे।[4] बायें हाथ में सोने के कड़े थे।[5] वे अपनी छुरी कमर की कपड़े की दोहरी पट्टिका में खोंसे हुए थे।[6] व्यायाम करने से उनके शरीर पतले और कठोर थे।[7]

चारभट सैनिकों का उल्लेख किया गया है। वे सेना के आगे-आगे चल रहे थे और अपने शरीर पर कपूर के मोटे थापे लगाये हुए थे।[8] वे कार्दरंग के चमड़े की ढाल लिये हुए थे।[9]

सैनिकों द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले अस्त्र-शस्त्र:—वाण के ग्रन्थों में अनेक अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख किया गया है—

१. **कृपाण**—दधीच के साथ जो सैनिक थे, वे हाथ में तलवार लिये हुए थे।[10]

२. **असिधेनु**[11] (छुरी)।

३. **भाला**—सेना के प्रयाण के वर्णन में भिन्दिपाल पद का प्रयोग मिलता है।[12] यह छोटा भाला था।

४. **कोण**[13]—यह मुँगरी या डंडा था, जिसे पैदल सैनिक लिये रहते थे।

५. **धनुष-बाण**[14]—विष-दिग्ध वाण का उल्लेख किया गया है।[15] वाणों को तरकस में रखा जाता था।[16]

---

१. 'प्रलम्बकुटिलकचपल्लवघटितललाटजूटकेन' —हर्ष० ११९

२. 'धवलदन्तपत्रिकाद्युतिहसितकपोलभित्तिना' —वही, ११९

३. 'पिनद्धकृष्णागुरुपङ्ककल्कचछुरणकृष्णशबलकषायकञ्चुकेन' —वही, ११९

४. 'उत्तरीयकृतशिरोवेष्टनेन' —वही, ११९

५. 'वामप्रकोष्ठनिविष्टस्पष्टहाटककटकेन' —वही, ११९

६. 'द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रन्थिग्रथितासिधेनुना' —वही, ११९

७. 'अनवरतव्यायामकृशकर्कशशरीरेण' —वही, ११९

८. 'चारुचारभटसैन्यन्यस्यमाननासीरमण्डलाडम्बरस्थूलस्थासके' —वही, ७।५४

९. 'पुरश्चञ्चच्चामरकिर्मीरकार्दरङ्गचर्ममण्डलमण्डनोड्डीयमानचटुलडामरचारभट-भरितभुवनान्तरैः' —वही, ७।५५

१०,११. वही, ११९

१२. 'पश्चिमासननिकार्पितभस्त्राभरणभिन्दिपालपूलिकैः'—वही, ७।५५

१३. वही, ११९

१४. काद०, पृ० ५७।

१५. 'विषमविषदूषितवदनेन च विकर्णेन कृष्णाहिनेव मूलगृहीतेन व्यग्रदक्षिणकराग्रम्'। हर्ष० ८।७०

१६. 'अच्छभल्लचर्ममयेन भल्लीप्रायप्रभूतशरभृता शबलशार्दूलचर्मपट्टपीडितेनालिकुल-कालकम्बललोम्ना पृष्ठभागभाजा भस्त्राभरणेन'—वही, ८।७०

सैनिक अपनी रक्षा के लिये ढाल,[१] कवच[२] और शिरस्त्राण[३] का प्रयोग करते थे। सैनिकों द्वारा हस्तपाशाकृष्टि और वागुरा का भी प्रयोग किया जाता था।[४]

वर्ण-व्यवस्था

वाण के समय में समाज में चार वर्ण थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र।[५] ब्राह्मण का समाज में विशेष सम्मान था। असंस्कृत ब्राह्मण का भी सत्कार होता था।[६] वात्स्यायन कुल में उत्कृष्ट कोटि के ब्राह्मण थे। वे गृहस्थ होते हुए भी मुनियों की भाँति आचरण करते थे। वे सब के साथ भोजन नहीं करते थे। वे कवि, वाग्मी, विद्वान् और विकार-रहित थे।[७]

वाण ने हर्ष को जो उत्तर दिया था, उससे उस समय के स्वाभिमानी ब्राह्मण का तेज प्रकट होता है।[८]

ब्राह्मण यज्ञ करते थे,[९] वेदाध्ययन करते थे[१०] और अध्यापन का कार्य करते थे।[११] वे दान लेते थे।[१२]

क्षत्रिय का कार्य शासन करना और युद्ध करना था। हर्ष क्षत्रिय था।[१३] क्षत्रियों को जो शिक्षा दी जाती थी, उसमें युद्ध-सम्बन्धी विषयों का भी सन्निवेश रहता था।[१४]

---

१. हर्ष० ७।५५
२. वही, ५।१९
३. वही, ६।४८
४. 'हस्तपाशाकृष्टि' से शत्रु के चलते-फिरते कूटयंत्र फंसाये जाते थे और वागुरा से घोड़े या हाथी पर सवार सैनिकों को खींच लिया जाता था।'—वासुदेवशरण अग्रवाल: हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ४०।
५. 'वर्णत्रयव्यावृत्तिविशुद्धान्धसः'—हर्ष० १।१८
६. वही, १।४
७. वही, १।१८
८. वही, २।३६।
९. काद०, पृ० ६।
१०. हर्ष० २।३६
११. काद०, पृ० ५।
१२. हर्ष० ६।३६।
१३. Kane's Introduction to the Harshacharita, p. 30.
हुएनसांग के अनुसार हर्ष वैश्य था—
Si–Yu–Ki (Tr. by Samuel Beal), Vol. I, p. 209.
१४. काद०, पृ० १५०।

विवाह

विवाह प्रायः अपने वर्ण में होते थे। अनुलोम विवाह भी प्रचलित था। सामान्यतः अनुलोम विवाह नहीं होता था। ब्राह्मण भी शूद्रा से विवाह करते थे। बाण के दो पारशव (ब्राह्मण पिता और शूद्रा से उत्पन्न) भाई थे।[१] उस समय बहुपत्नी-प्रथा थी। विशेषतः राजाओं के अनेक स्त्रियाँ होती थीं।[२]

लड़कियों का विवाह उस समय कर दिया जाता था, जिस समय वे यौवनावस्था में पदार्पण करती थीं। राजा प्रभाकरवर्धन यशोमती से राज्यश्री के विवाह के सम्बन्ध में बात करते हुए कहते हैं—'देवि, तरुणी भूता वत्सा राज्यश्रीः।'[३] कन्या के विवाह के लिये पिता बहुत चिन्तित रहते थे।[४]

पति और पत्नी के परामर्श से कन्या का विवाह होता था। प्रभाकरवर्धन राज्यश्री के विवाह के सम्बन्ध में यशोमती से बात करते हैं।[५]

विवाह के लिये लड़के की ओर से दूत भेजे जाते थे। ग्रहवर्मा ने राज्यश्री के साथ विवाह करने के लिये दूत भेजा था।[६]

गान्धर्व विवाह भी होते थे। दधीच और सरस्वती, चन्द्रापीड और कादम्बरी के विवाह इसी प्रकार के थे।

विवाह के अवसर पर घर को अलंकृत किया जाता था; बाजे बजाये जाते थे और मांगलिक गीत गाये जाते थे। ओखली, मुसल, शिल आदि पर थापे लगाये जाते थे। विवाह में इन्द्राणी का पूजन होता था।[७]

बाण के वर्णन से विवाह की विधि का भी ज्ञान होता है। वर कोहबर में जाता था। वधू का हाथ पकड़कर कोहबर से बाहर निकलता था और विवाह-मण्डप में बनी हुई वेदी के समीप जाता था। विवाह-वेदी के चारों ओर कलश रखे जाते थे। वर-वधू अग्नि में लाजाञ्जलि छोड़ते थे। विवाह हो जाने के बाद वर वधू के घर पर कुछ दिनों तक रहता था।[८]

दहेज का प्रचलन था। दहेज में बहुत-सी वस्तुएँ दी जाती थीं। राज्यश्री के विवाह में हाथी, घोड़े आदि दिये गये थे।[९]

---

१. हर्ष० १।१६
२. काद०, पृ० १२०-१२१।
३, ४, ५, ६. हर्ष० ४।१३
७. वही, ४।१३-१४
८. वही, ४।१७-१८
९. वही, ४।१४

नागरिक जीवन

बाण के युग में नागरिक-जीवन सुखमय था। नगरों के चारों ओर परिखा और प्राकार होते थे।[१] नगरों में बड़े-बड़े बाजार होते थे।[२] धनी नगरों में रहते थे।[३] नगरों में बड़े-बड़े भवन होते थे। भवनों में चामर लटकते रहते थे।[४] उनमें हाथी के दाँत की खूँटियाँ रहती थीं।[५] भीतों पर चित्र बनाये जाते थे।[६] नागरिकों के घर मणियों से अलंकृत रहते थे।[७] घरों में भूमि पर चन्दन-रस छिड़का जाता था।[८] चूने से भवन की सफेदी की जाती थी।[९] भवनों से सटे हुए उपवन भी रहते थे।[१०]

नगरों के चारों ओर अहीरों की बस्तियां रहती थीं।[११]

नगर के लोग पक्षपाती नहीं होते थे।[१२] वे सुन्दर, वीर, विनम्र, प्रियवादी और सत्यवादी होते थे।[१३] वे दानी होते थे।[१४] वे शान्तचित्त, उदार और सरल होते थे।[१५] वे परिहास में कुशल होते थे।[१६] वे अनेक भाषाओं[१७] के ज्ञाता और वक्रोक्ति में निपुण होते थे।[१८] वे सभी लिपियों को जानते थे।[१९] उन्हें वेद-शास्त्र, महाभारत, रामायण, पुराण, बृहत्कथा, भरत के नाटयशास्त्र आदि का ज्ञान था।[२०] नागरिक सुभाषित-रचना में निपुण होते थे।[२१] वे विज्ञान के ज्ञाता होते थे।[२२]

नागरिक चरित्रवान् होते थे। वे अपनी स्त्रियों में ही अनुरक्त रहते थे।[२३]

यद्यपि नगर के लोग अर्थ और काम की भी चिन्ता करते थे, किन्तु धर्म उनके लिए प्रधान था।[२४] नागरिक सभा, आवसथ, कूप, उपवन, पानीयशाला, देवालय, पुल तथा यन्त्र बनवाते थे।[२५] इससे प्रतीत होता है कि वे लोग परोपकारी थे। नागरिक अतिथियों का सत्कार करते थे[२६] और मित्रों की बात मानते थे।[२७]

---

१. काद०, पृ० ९८।
२. वही, पृ० ९९।
३. वही, पृ० १०१।
४, ५, ६. वही, पृ० १०३।
७. वही, पृ० १०५।
८. वही, पृ० १०६।
९. वही, पृ० १०३।
१०. वही, पृ० ९९।
११. वही, पृ० १०३।
१२, १३. वही, पृ० १०१।
१४,१५,१६,१७,१८,१९. वही, पृ० १०२।
२०,२१,२२. वही, पृ० १०२।
२३,२४,२५,२६. वही, पृ० १०१।
२७. वही, पृ० १०२।

नगरों में कामदेव की पूजा होती थी[1] और यज्ञ भी सम्पादित होते रहते थे।[2]

ग्राम्य जीवन

गाँव के लोग खेती करते थे। खेत हल से जोते जाते थे।[3] रहट से सिंचाई होती थी।[4] धान, गेहूँ, मूँग आदि अनाज उत्पन्न किये जाते थे।[5] ईख की भी खेती होती थी।[6] अनाज खलिहानों में रखे जाते थे।[7] गाँवों में पशु पाले जाते थे।[8]

गाँवों में यज्ञ होते रहते थे।[9] वहाँ वेद, व्याकरण, मीमांसा आदि का भी अध्ययन होता था।[10]

जंगल का जीवन

जंगल में घरों की दीवारें बाँस के फट्टों, नरकुल और सरकंडों से बनाई जाती थीं।[11] जंगल के लोग प्रायः कुदाल से भूमि को खोदकर छोटे-छोटे खेत बनाते थे।[12] खेतों के पास मचान बाँधे जाते थे।[13] जंगल के लोग आखेट से भी जीविका-निर्वाह करते थे।[14] बाघ को फँसाने के लिए व्याघ्रयन्त्र का प्रयोग किया जाता था।[15]

जंगल में प्याऊ का प्रबन्ध रहता था।[16] मिट्टी के घड़ों में जल भरकर रखा रहता था।[17] पथिक वहाँ रुककर सत्तू आदि खाते थे और जल पीते थे।[18]

पड़ोस के लोग जंगलों में लकड़ी एकत्र करने के लिए जाते थे।[19] वे कलेवे की पोटली अपने गले में बाँधे रहते थे।[20]

जंगल के गाँवों में मुरगे रहते थे।[21] जंगल के लोग अपने घरों में महुए का आसव रखते थे।[22] वे चामुण्डा देवी की पूजा करते थे।[23]

लोहार लकड़ी का कोयला बनाते थे।[24]

कृषि तथा व्यवसाय

वाण के समय में कृषि की प्रधानता थी। कृषि के द्वारा अनेक प्रकार के अनाज

---

१. काद०, पृ० १०० ।

२. वही, पृ० १०३ ।

३,४,५,६,७. हर्ष० ३।४२ ।

८. वही, ३।४२-४३

९,१०. वही, ३।३८

११. वही, ७।६९

१२. वही, ७।६८

१३,१४,१५,१६,१७,१८,१९,२०. वही, ७।६८

२१,२२. वही, ७।६९

२३,२४. वही, ७।६८

उत्पन्न किये जाते थे। ईख, धान, मूँग, गोधूम (गेहूँ), जीरा, राजमाष, श्यामाक, (सांवाँ) आदि की खेती होती थी।[१]

कृषि के अतिरिक्त जीविका के और भी साधन थे। बाण के मित्रों की सूची से उस समय की अनेक वृत्तियों का पता लगता है। बन्दी, विषवैद्य, ताम्बूलदायक, वैद्य, पुस्तक पढ़कर सुनाने वाला, सोनार, लेखक, चित्रकार, मिट्टी आदि का खिलौना बनाने वाला, मृदंग बजाने वाला, गायक, सैरन्ध्री, वंशी बजाने वाला, गान्धर्वशास्त्र का ज्ञाता, शरीर दबाने वाली, शैलाली (अभिनय करने वाला, नट), रसायन बनाने वाला, ऐन्द्रजालिक—ये अपनी-अपनी वृत्तियों से समाज को अनेक सांस्कृतिक विशेषताओं से अलंकृत कर रहे थे।[२]

यमपट्टिक यमपुरी से सम्बन्धित चित्रों को दिखाकर जीविका-निर्वाह करते थे।[३]

भास्करवर्मा द्वारा हर्ष के पास भेजे गये उपहारों की सूची के अध्ययन से अनेक वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है[४]:—

१. अनेक रंगों से सुन्दर लगने वाले वेत्रकरण्डक।
२. शुक्ति, शंख और गल्वर्क के बने हुए पानभाजन, जिन पर नक्काशी का काम हुआ था।
३. कार्दरंग द्वीप की ढालें।
४. कोमल जातीपट्टिकाएँ।
५. मुलायम चित्रपटों (जिन वस्त्रों पर चित्र बने हुए थे) के बने हुए तकिये। इनमें समूरु मृग के रोम भरे हुए थे।
६. वेंत के बने हुए आसन।
७. अगुरु की छाल से बनाये गये पत्रों वाली पुस्तकें।
८. सहकार के रस से युक्त बाँस की नलियाँ।
९. कृष्णागुरु के तेल से युक्त बाँस की नलियां।
१०. पटसन के बने हुए बोरे।
११. सफेद और काले चँवर।
१२. वेंत के पिंजड़े, जिन पर सोने का पानी चढ़ाया गया था।

उपर्युक्त सूची से ज्ञात होता है कि बाण के समय में अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनायी जाती थीं। इनसे बहुत-से लोग अपनी जीविका चलाते थे।

लोहार का उल्लेख प्राप्त होता है।[५]

---

१. हर्ष० ३।४२, ७।६८
२. वही, १।१६
३. वही, ५।२१
४. वही, ७।६१-६२
५. वही, ७।६८

वस्त्र तथा आभूषण

वाण ने कई प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख किया है—क्षौम,[1] वादर, दुकूल, लालातन्तुज, अंशुक और नेत्र ।[1] क्षौम क्षुमा (अलसी) के रेशों से तैयार किया जाता था, वादर सूती कपड़ा था, दुकूल पुण्ड्रदेश (उत्तरी बंगाल) में बनता था और लालातन्तुज रेशमी वस्त्र था ।[2] अंशुक वहुत ही पतला वस्त्र था । यह भारत तथा चीन में बनता था ।[3] नेत्र रेशमी कपड़ा था । यह बंगाल में बनता था ।[4]

पुरुषों के वस्त्र

पुरुषों के मुख्य रूप से दो वस्त्र थे—उत्तरीय तथा अधोवस्त्र । हर्षवर्धन उत्तरीय तथा अधोवस्त्र धारण किये हुए वर्णित किये गये हैं ।[5]

कवि ने राजाओं की वेश-भूषा में कई प्रकार के पहनावे का उल्लेख किया है—स्वस्थान, पिङ्गा, सतुला, कञ्चुक, चीनचोलक, वारवाण, कूर्पासक और आच्छादनक ।[6]

स्वस्थान सुथना की तरह था ।[7] पिंगा सलवार की तरह थी ।[8] सतुला जाँघिया की भाँति थी ।[9] कञ्चुक कोट की तरह पहनावा था । यह पैर तक लटकता रहता था । चीनचोलक शायद नीचे के वस्त्रों के ऊपर पहना जाता था ।[10] वारवाण कञ्चुक की तरह होता था । यह घुटने तक लम्बा होता था ।[11] कूर्पासक मिर्जई के ढंग का पहनावा था ।[12] वाण ने कई रंगों से रँगे हुए कूर्पासक का उल्लेख किया है ।[13] आच्छादनक छोटी चादर है ।[14]

वस्त्रों पर छपाई भी की जाती थी । वाण के उल्लेख से ज्ञात होता है कि दुकूल पर हंस छापे जाते थे ।[15]

---

१. हर्ष० ४।१४
२. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६-७७ ।
३. वही, पृ० ७८ ।
४. वही, पृ० ७९ ।
५. हर्ष० २।३३
६. वही, ७।५५
७. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १४८ ।
८. वही, पृ० १४८
९. हर्ष०, शंकर-कृत टीका, पृ० ३५९ ।
१०. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५१ ।
११. वही, पृ० १५० ।
१२. वही, पृ० १५२ ।
१३. हर्ष० ७।५५
१४. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५३ ।
१५. हर्ष० ७।५३

स्त्रियों के वस्त्र

स्त्रियों के ऐसे सूक्ष्म वस्त्र का उल्लेख प्राप्त होता है, जो शरीर से सटा हुआ रहता था। बाण ने इसे मग्नांशुक कहा है।[१]

कञ्चुक स्त्रियों का भी पहनावा था। यह पैर तक लटकता रहता था। चाण्डाल-कन्या कञ्चुक धारण किये हुए थी।[२]

चण्डातक (लहंगा) कञ्चुक के नीचे पहना जाता था। मालती चण्डातक पहने हुए थी। चण्डातक रंग-विरंगी बुंदकियों से युक्त था।[३]

स्त्रियाँ उत्तरीय से शरीर का ऊपरी भाग ढँकती थीं।[४] मुख पर घूँघट डाला जाता था।[५]

पुरुषों के आभूषण

अंगुलियों में अंगूठी पहनी जाती थी।[६] भुजा में केयूर धारण किया जाता था।[७] गले का आभूषण हार था। हर्ष हार धारण किये हुए थे।[८] कान में कुण्डल और श्रवणा-वतंस धारण किये जाते थे।[९] त्रिकण्टक नामक कर्णाभरण का उल्लेख प्राप्त होता है। बाण के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि यह दो मोतियों के बीच में मरकत मणि को जड़कर बनाया जाता था।[१०] हर्ष के वर्णन में शिर के तीन आभूषणों का उल्लेख किया गया है— चूडामणि, मालती पुष्प की मुण्डमाला तथा शिखण्डाभरण।[११] राजा शिर पर मुकुट धारण करते थे।[१२]

स्त्रियों के आभूषण

स्त्रियाँ पैरों में नूपुर धारण करती थीं। चाण्डालकन्यका मणिजटित नूपुर धारण किये हुए थी।[१३] कटि में मेखला पहनी जाती थी।[१४] स्त्रियाँ अंगुलियों में अंगूठी धारण

---

१. हर्ष० ५।३०
२. 'गुल्फावलम्बिनीलकञ्चुकावच्छन्नशरीराम्'—काद०, पृ० २१।
३. हर्ष० १।१४
४. वही, ५।२७
५. काद०, पृ० २१।
६. हर्ष०, १।४
७,८. वही, २।३३
९. वही २।३४
१०. 'कदम्बमुकुलस्थूलमुक्ताफलयुगलमध्याध्यासितमरकतस्य त्रिकण्टककर्णाभरणस्य'। वही, १।९
११. वही, २।३४
१२. काद०, पृ० २९।
१३,१४ वही, पृ० २२।

करती थीं ।[१] हाथ में कटक पहना जाता था । मालती सोने का कटक पहने हुए थी । कटक मरकत मणि की मकराकृति से समन्वित था ।[२] स्त्रियाँ गले में हार पहनती थीं ।[३] गले में प्रालम्वमालिका धारण करने का उल्लेख किया गया है ।[४] यह छाती तक लटकती रहती थी । मालती ने जो प्रालम्वमालिका धारण की थी, वह रत्नजटित थी । कान में दन्तपत्र[५] और बालिका[६] नामक आभूषण धारण किये जाते थे । मालती की बालिका में तीन मोती लगे थे ।[७] चटुलतिलकमणि का उल्लेख मिलता है ।[८] यह माँग से ललाट तक लटकती थी । केशों में चूडामणिमकरिका नामक आभूषण धारण किया जाता था ।[९] 'दोनों ओर निकले हुए दो मकरमुखों को मिलाकर सोने का मकरिका नामक आभूषण वनता था, जो सामने बालों में या सिर पर पहना जाता था ।'[१०]

पुष्पाभरण

पुष्पों के आभूषण भी धारण किये जाते थे । सरस्वती कान में सिन्धुवार की मञ्जरी धारण किये हुए थी ।[११] मस्तक पर पुष्पों की माला धारण की जाती थी ।[१२] जूड़े में पुष्प धारण किये जाते थे ।[१३]

प्रसाधन

शरीर पर चन्दन का लेप किया जाता था । राजा शूद्रक अपने शरीर में कस्तूरी, कुंकुम आदि से मिश्रित चन्दन लगाते हैं ।[१४] शुक्लाङ्गराग लगाने का उल्लेख मिलता है । वाणभट्ट प्रस्थान करने के समय शुक्लाङ्गराग लगाते हैं ।[१५] वक्षःस्थल पर चन्दन लगाकर

---

१. हर्ष० १।४
२. वही, १।१४
३. काद०, पृ० २२ ।
४,५. हर्ष० १।१४
६. वही, १।१५
७. 'बकुलफलानुकारिणीभिस्तिसृभिर्मुक्ताभिः कल्पितेन बालिकायुगलेन'—वही, १।१५
८. वही, १।१५
९. वही, १।१५
१०. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २४ ।
११. हर्ष० १।३
१२. वही, १।७
१३. वही, १।६
१४. काद०, पृ० ३३ ।
१५. हर्ष० २।२५

उस पर कुंकुम का छापा लगाया जाता था।[१] भुजाओं पर कस्तूरी के पंक से मकराकृति बनायी जाती थी।[२]

मुख को सुगन्धित करने के लिये सहकार, कर्पूर, कक्कोल, लवंग तथा पारिजात—इन पाँच द्रव्यों से बनाये गये मसाले का प्रयोग किया जाता था।[३]

पुरुष और स्त्री—दोनों ताम्बूल खाते थे।[४]

स्त्रियाँ शरीर में कुंकुम का चूर्ण मलती थीं।[५] वे चरणों में अलक्तक लगाती थीं।[६] वे कस्तूरी आदि का तिलक लगाती थीं[७] और सिन्दूर लगाती थीं।[८]

उबटन लगाया जाता था। बलाशना घृत का उल्लेख किया गया है।[९] यह एक ओषधि थी, जो सुन्दरता को बढ़ाने के लिये शरीर पर मली जाती थी।

पुरुष लम्बे बाल रखते थे। सैनिक बालों का जूड़ा बाँधते थे।[१०] स्त्रियाँ जूड़ा बाँधती थीं और उसमें पुष्प खोंसती थीं।[११]

शिक्षा तथा साहित्य

बाण के समय में शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। बाण के अतिरिक्त इस युग में अनेक कवि उत्पन्न हुए। हर्ष स्वयं विद्वान् और नाटककार थे। उन्होंने रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका की रचना की। वे विद्वद्गोष्ठियों में विद्वानों के विचार सुनते थे और निर्णय दिया करते थे।[१२] मयूर बाण के सम्बन्धी थे। उन्होंने

---

१. 'अतिसुरभिचन्दनानुलेपनधवलितोरःस्थलम् उपरिविन्यस्तकुङ्कुमस्थासकम्'। कादं०, पृ० १७–१८।

२, ३. हर्ष० १।६

४. कादं०, पृ० ३४; हर्ष० १।१४

५. हर्ष० ४।८

६. कादं०, पृ० २२।

७. हर्ष० १।१५; कादं०, पृ० २१।

८. हर्ष० ४।७

९. वही, ४।१४

१०. वही, १।६
वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०।

११. हर्ष० १।६
वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ९६।

१२. 'He ordered the priests to carry on discussions, and himself judged of their several arguments, whether they were weak or powerful. He rewarded the good and punished the wicked, degraded the evil and promoted the men of talent.'
Si-Yu-Ki (Tr. by Samuel Beal), Vol. I, p. 214.

सूर्यशतक की रचना की। भाषाकवि ईशान, वर्णकवि वेणीभारत और प्राकृतकवि वायुविकार बाण के समय में थे। इस युग में मातङ्ग दिवाकर नामक कवि भी हुए।[१]

शिक्षा गुरुकुलों में होती थीं। बड़े लोगों की शिक्षा की अलग व्यवस्था की जाती थी। चन्द्रापीड की शिक्षा की विशेष रूप से व्यवस्था की गयी थी। राजाओं की शिक्षा के लिये निर्धारित पाठ्यक्रम में अनेक विषयों का समावेश रहता था—व्याकरण, मीमांसा, न्याय-वैशेषिक, धर्मशास्त्र, राजनीति, व्यायाम-विद्या, चाप, चक्र आदि आयुधों में कुशलता, रथचर्या, गजारोहण, तुरंगमारोहण, वीणा, वेणु आदि वाद्यों का ज्ञान, नृत्यशास्त्र, गान्धर्ववेद, हस्तिशिक्षा, तुरगवयोज्ञान, पुरुषलक्षण, चित्रकर्म, पत्रच्छेद्य, पुस्तकव्यापार, लेख्यकर्म, द्यूतविद्या, शकुनिशब्दज्ञान, ज्योतिश्शास्त्र, रत्नपरीक्षा, काष्ठकर्म, गजदन्तव्यापार, वास्तुविद्या, आयुर्वेद, यन्त्रप्रयोग, विषापहरण, सुरंगोपभेद, तरण, लङ्घन, प्लुति, इन्द्रजाल, कथा, नाटक, आख्यायिका, काव्य, महाभारत-पुराण-इतिहास-रामायण, लिपि, अनेक देशों की भाषाओं का ज्ञान, संज्ञाओं का ज्ञान, शिल्प तथा छन्दःशास्त्र।[२]

ब्राह्मणों के घर पर भी शिक्षा की व्यवस्था रहती थी। बाण के घर पर वेद, व्याकरण, न्याय, मीमांसा, कर्मकाण्ड, काव्य आदि की शिक्षा दी जाती थी।[३] बाण के समय में अनेक गुरुकुल थे।[४]

प्राकृत में भी रचनाएँ होती थीं।[५]

बंदी सुभाषितों का पाठ करते थे। अनङ्गबाण और सूचीबाण नामक बन्दी बाण के मित्र थे।[६] कथक कथा कहते थे। लेखक लिखने का कार्य करते थे। बाण के मित्रों में एक लेखक और एक कथक था।[७] गानविद्या, नृत्य आदि में निपुण लोग बाण के मित्र थे।[८]

बाण के युग में अनेक शैलियाँ प्रचलित थीं। उदीच्यों की शैली श्लेष-बहुल थी, प्रतीच्यों में अर्थ-वैशिष्ट्य था, दाक्षिणात्यों में उत्प्रेक्षा और गौड़ों में अक्षरडम्बर का महत्त्व था।[९]

धार्मिक-स्थिति

बाण के समय में धार्मिक सहिष्णुता थी। अनेक सम्प्रदाय के लोग एक साथ रहते थे और उनमें विचारों का आदान-प्रदान चलता रहता था। उच्चकोटि के विद्वान् अपने

---

१. Kane's Introduction to the Harshacharita, p. 37.

२. काद०, पृ० १४९–१५०।

३. हर्ष० ३।३८

४. वही, १।१९

५, ६, ७, ८. वही, १।१९

९. वही, १।१

धर्म की बात तो जानते ही थे, अन्य धर्मों के रहस्य को भी समझते थे। दिवाकरमित्र के आश्रम में अनेक सम्प्रदायों के लोग अपनी-अपनी समस्याओं के समाधान के लिए जाते थे।[१] ब्राह्मण, जैन और बौद्ध धर्मों का विशेष प्रचार था।[२] ब्राह्मणों के ऐसे कुल थे, जहाँ निरन्तर यज्ञ होते रहते थे।[३] रामायण, महाभारत, पुराण आदि की कथायें होती रहती थीं।[४] पुराणों का पाठ होता था।[५] धर्म-परिवर्तन करने में किसी प्रकार की बाधा नहीं थी। दिवाकरमित्र पहले यजुर्वेद की मैत्रायणीय शाखा का अध्येता था; बाद में वह बौद्ध हो गया।[६] जैनधर्म के दिगम्बर सम्प्रदाय का आदर नहीं था। नग्न जैनसाधु का दर्शन अपशकुन माना जाता था।[७] धर्म के क्षेत्र में राजा का हस्तक्षेप नहीं था। सभी को अपनी इच्छा के अनुकूल धर्म स्वीकार करने की स्वतन्त्रता थी। हर्ष पहले शैव था।[८] हुएनसांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि वह बौद्ध हो गया था।[९] प्रभाकरवर्धन सूर्य का भक्त था।[१०] इससे ज्ञात होता है कि एक कुल में भी अनेक धर्मों के अनुयायी होते थे।

बाण के समय में शैवमत का अधिक प्रचार था। बाण शैव था। कवि की रचनाओं में अनेक स्थलों पर शिव की पूजा का उल्लेख मिलता है।[११] पुष्पभूति शैव था।[१२] बाण ने भैरवाचार्य नामक महाशैव का वर्णन किया है। उससे शिवभक्तों की अधोलिखित क्रियाओं[१३] का ज्ञान होता है—

१. असुरविवरप्रवेश, २. महामांसविक्रय तथा ३. शिर पर गुग्गुलु जलाना। असुरविवरप्रवेश में साधक गहरे गड्ढे में जाकर तान्त्रिक प्रयोग करता था। महामांसविक्रय की प्रथा भीषण थी। साधक श्मशान में जाता था और शवमांस लेकर फेरी लगाता हुआ पिशाच आदि को प्रसन्न करता था।[१४]

---

१. हर्ष० ८।७३
२. Kane's Introduction to the Harshacharita, p. 38.
३. हर्ष० ३।३८
४. काद०, पृ० १०२।
५. हर्ष० ३।३९
६. वही, ८।७१
७. वही, ५।२०
८. वही, ७।५३
९. Si–Yu–Ki (Tr. by Samuel Beal), Vol. I, P. 218–22.
१०. हर्ष० ४।३
११. वही, १।८, २।२५; काद०, पृ० ३३ इत्यादि।
१२. हर्ष० ३।४५
१३. वही, ३।४६
१४. वासुदेवशरण अग्रवाल: हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ५८।

भैरवाचार्य के चित्रण से ज्ञात होता है कि कुछ शैवमतानुयायी ऐसे थे, जो तान्त्रिक प्रयोगों का आश्रय लेते थे।

बाण ने शैवसंहिता का उल्लेख किया है।[१]

शिव की पूजा करते समय शिव को दूध से अभिषिक्त किया जाता था और फिर पुष्प, धूप, गन्ध, ध्वज, बलि, विलेपन और प्रदीप से पूजा की जाती थी।[२] शिव की आठ मूर्तियों का ध्यान करके अष्टपुष्पिका चढ़ायी जाती थी।[३]

चण्डिका की पूजा का उल्लेख मिलता है। उन पर लाल कमल, अगस्ति की कलियाँ तथा किंशुक की कलियाँ चढ़ायी जाती थीं।[४] बिल्वपत्र भी चढ़ाये जाते थे।[५] कदम्ब-पुष्पों से भी अर्चना की जाती थी।[६] देवी की अर्चना में गुग्गुलु भी जलाया जाता था।[७] देवी पर चढ़ाने के लिए पशुओं की हिंसा की जाती थी।[८]

सूर्य के भक्त सूर्य को अर्घ्य देते थे। वे रक्तचन्दन से चित्रित सूर्यमण्डल पर करवीर का पुष्प चढ़ाते थे।[९]

विष्णु और ब्रह्मा की पूजा का उल्लेख प्राप्त होता है।[१०] कामदेव की भी पूजा होती थी।[११]

जनता की सुविधा के लिए धर्मशाला, कूप, प्रपा आदि का निर्माण कराया जाता था।[१२]

बाण के समय में अनेक सम्प्रदाय थे। दिवाकरमित्र के आश्रम में अधोलिखित सम्प्रदायों के अनुयायी[१३] थे—

आर्हत (जैन दार्शनिक), मस्करी (पाशुपत), श्वेतपट, पाण्डुरभिक्षु (जिन्होंने बौद्धों के अरुण चीवर का परित्याग कर दिया था), भागवत, वर्णी, केशलुञ्चन (दिगम्बर जैन साधु), कापिल, जैन, लोकायतिक, काणाद, औपनिषद, ऐश्वरकारणिक (नैयायिक),

---

१. हर्ष० ३।४७
२. वही, २।२५
३. वही, १।८
४. काद०, पृ० ३९५।
५. वही, पृ० ३९६।
६. वही, पृ० ३९७।
७. वही, पृ० ३९७।
८. वही, पृ० ३९६।
९. वही, पृ० ७८।
१०. वही, पृ० ७९।
११. वही, पृ० २००।
१२. वही, पृ० १०१।
१३. हर्ष० ८।७३

कारन्धमी (धातुवादी), धर्मशास्त्री, पौराणिक, साप्ततान्तव (मीमांसक), शैव, शाब्द और पाञ्चरात्रिक।

दिवाकरमित्र के आश्रम के वर्णन से ज्ञात होता है कि बाण के समय में धर्म के क्षेत्र में अनेक दृष्टियों से चिन्तन-मनन हो रहा था।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का विचार है कि हर्षचरित के पाँचवें उच्छ्वास के वर्णन[१] में अनेक सम्प्रदायों की ओर संकेत किया गया है। सम्प्रदाय ये हैं—भागवत, वर्णी, श्वेताम्बर, पञ्चाग्नि तापने वाले शैव, वैयाकरण, पाण्डुरभिक्षु, जैनसाधु, दिगम्बर जैन-साधु, कपिलमतानुयायी, पाशुपत शैव, बौद्धभिक्षु, वैखानस, पाराशरी, पाञ्चरात्रिक, नैयायिक, धर्मशास्त्री, मीमांसक, मस्करी, लोकायतिक, वेदान्ती तथा पौराणिक।[२]

विभिन्नसम्प्रदायों में दीक्षित स्त्रियों का भी उल्लेख उपलब्ध होता है। पाशुपत शैव सम्प्रदाय की भिक्षुणियाँ गेरुआ वस्त्र पहनती थीं। बौद्धभिक्षुणियाँ लाल रंग का वस्त्र पहनती थीं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय की भिक्षुणियाँ श्वेत वस्त्र धारण करती थीं। ब्रह्मचारिणी तापसियाँ जटा, अजिन, वल्कल तथा पलाश का दण्ड धारण करती थीं।[३]

धारणाएँ और अन्धविश्वास

ज्योतिश्शास्त्र[४] और सामुद्रिकशास्त्र[५] पर लोगों की आस्था थी। शकुनों[६] पर भी विश्वास किया जाता था। शाप दिये जाते थे।[७] भूत-प्रेत की स्थिति मानी जाती थी। प्रभाकरवर्धन को स्वस्थ करने के लिए भूत आदि की बाधा को दूर करने का प्रयास किया गया था।[८]

तन्त्र-मन्त्र पर लोगों का विश्वास था।[९] वशीकरणचूर्ण का प्रयोग करके किसी को वश में करने का प्रयत्न किया जाता था।[१०] साधक गहरे गड्ढे में प्रविष्ट होकर वेताल की साधना करते थे।[११]

यात्रा करते समय अनेक प्रकार के मांगलिक कृत्यों का सम्पादन किया जाता था।[१२] ऐसा माना जाता था कि मांगलिक कृत्यों से यात्रा की बाधा दूर होती है और यात्रा में सफलता मिलती है।

---

१. हर्ष० ५।३४
२. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १०५-११३।
३. काद०, पृ० ३७१।
४. हर्ष० ४।६
५. काद०, पृ० ८, १६, ३४६ इत्यादि।
६. हर्ष० ५।२०, ७।५६, ८।८०
७. वही, १।४
८. वही, ५।२१
९, १०, ११. काद०, पृ० ३९९।
१२. हर्ष० २।२५

अभिलषित वस्तु की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के अनुष्ठान किये जाते थे और देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी। विलासवती पुत्र-प्राप्ति के लिए अधोलिखित विधानों का आश्रय लेती है—

'वह निरन्तर जलते हुए गुग्गुलु के धूम से अन्धकारित चण्डिका के गृहों में मुसलों की शय्या पर हरे कुश बिछाकर शयन करती थी। गोकुलों में वृद्ध गोप-वनिताओं से सम्पादित मंगलों वाली, लक्षणों से युक्त गायों के नीचे बैठकर स्नान करती थी। प्रतिदिन अनेक रत्नों के साथ सुवर्ण के तिलपत्र ब्राह्मणों को देती थी। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में चौराहों पर जाकर भूतवैद्यों के द्वारा चित्रित मण्डल के बीच बैठकर बलिदान से दिग्देवताओं को आनन्दित करके मांगलिक स्नान करती थी। सिद्धायतनों और मातृका भवनों में जाती थी। नागकुल के सरोवरों में स्नान करती थी। अश्वत्थ आदि वृक्षों की प्रदक्षिणा करती थी। न टूटे हुए चावल के दानों से बनाये गये दधि-युक्त भात को चांदी के पात्र में रखकर कौओं को बलि देती थी। प्रतिदिन अपरिमित पुष्प, धूप, अनुलेपन, मालपुआ, मांस, खीर तथा लावा लेकर दुर्गादेवी की पूजा करती थी। स्वयं भोजन-युक्त पात्र भेंट करके सत्यवादी नंगे बौद्धभिक्षुओं से प्रश्न करती थी। शुभाशुभ बताने वाली स्त्रियों के आदेशों को बहुत मानती थी। निमित्त जानने वालों के पास जाती थी। शकुन जानने वालों के प्रति आदर प्रकट करती थी। अनेक वृद्धों की परम्परा से आये हुए मन्त्रों के रहस्यों का अनुगमन करती थी। गोरोचना से लिखित भोजपत्रों वाले मन्त्रकरण्डकों को धारण करती थी। रक्षाकंकण से युक्त ओषधि-सूत्र बाँधती थी। उसके परिजन भी शुभाशुभ बातों को सुनने के लिए बाहर जाते थे। वह शृगालियों को मांस की बलि देती थी।'[1]

यहाँ बाण के समय में प्रचलित अनेक अन्धविश्वासों का उल्लेख किया गया है।

सामाजिक आचार

समाज में अतिथि का सम्मान किया जाता था। महाश्वेता चन्द्रापीड से कहती है—**'स्वागतमतिथये। कथमिमां भूमिमनुप्राप्तो महाभाग। तदुत्तिष्ठ। आगम्यताम्। अनुभूयतामतिथिसत्कारः'।**[2]

वार्तालाप करते समय व्यक्ति दूसरे को गौरव प्रदान करते थे।[3] वार्तालाप में बड़ी शिष्ट भाषा और मधुर वचन का प्रयोग किया जाता था।[4]

समाज में गुरु, पिता, माता और बड़े लोगों का सम्मान होता था। बाण कादम्बरी के प्रारम्भ में अपने गुरु की वन्दना करते हैं।[5] हर्ष अपने पिता और माता का बहुत

---

१. काद०, पृ० १२८–१३०।
२. वही, पृ० २५३।
३. हर्ष० १।११, ३।४८
४. वही, १।११–१२; काद०, पृ० ३३०–३३१।
५. काद०, पृ० ३।

अधिक सम्मान करते हैं।[१] वे अपने भाई राज्यवर्धन की आज्ञा का पालन करते हैं।[२] जब चन्द्रापीड शुकनास से मिलने के लिए जाता है, तब वह भूमि पर बैठता है।[३]

समाज में स्त्रियों का सम्मान था। जब महाश्वेता चन्द्रापीड से कादम्बरी के पास चलने के लिए कहती है, तब वह तैयार हो जाता है। चन्द्रापीड महाश्वेता से कहता है कि मैं आपके अधीन हूँ। मुझे चाहे जिस कार्य में नियुक्त करें—'**भगवति दर्शनात्प्रभृति परवानयं जनः कर्तव्येषु यथेष्टमशङ्कितया नियुज्यताम्।**'[४]

रीतियाँ

मृत-व्यक्ति के सम्बन्ध में बाण ने कई रीतियों का उल्लेख किया है। शव को श्मशान तक ले जाने के लिए शव-शिबिका बनायी जाती थी।[५] शव को चिता पर रखकर जलाया जाता था। प्रभाकरवर्धन को जलाने के लिए काले अगुरु की लकड़ी से चिता बनायी गयी थी।[६] शव की दाहक्रिया करने के बाद जलने से बची हुई अस्थियों को इकट्ठा करके घड़े में रखा जाता था।[७] इसे नदियों और तीर्थों में ले जाते थे।[८] मृतक के लिए भात का पिण्ड दिया जाता था।[९] प्रेत-पिण्ड खाने वाले ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था।[१०] आशौच समाप्त होने पर ब्राह्मणों को शय्या, आसन, पात्र आदि दिये जाते थे।[११] चिता के स्थान पर चैत्य-चिह्न की स्थापना की जाती थी।[१२] गीत गाकर शोक मनाने की प्रथा का भी उल्लेख किया गया है।[१३]

मनोविनोद

बाण ने स्थल-स्थल पर विनोदों का वर्णन किया है। ये जीवन में सुख, शान्ति तथा आनन्द प्रदान करते हैं।

विद्वान् विद्वद्गोष्ठियों में जाते थे। बाण ने अनेक गोष्ठियों में सम्मिलित होकर लाभ उठाया था।[१४] गोष्ठियों में साहित्यिक चर्चा हुआ करती थी। काव्य, नाटक, आख्यान, आख्यायिका, व्याख्यान आदि के द्वारा मनोविनोद होता था।[१५] अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक, बिन्दुमती, गूढचतुर्थपाद, प्रहेलिका आदि के द्वारा साहित्यिक जिज्ञासा की

---

१. हर्ष० ५।२४, ५।२६
२. वही, ६।४२
३. काद०, पृ० १८४।
४. वही, पृ० ३३१।
५, ६. हर्ष० ५।३२
७, ८, ९. वही, ५।३३
१०, ११, १२, १३. वही, ६।३६
१४. वही, १।१९
१५. काद०, पृ० १३।

शान्ति होती थी।[१] हर्ष के मनोविनोदों में वीर-गोष्ठियों का उल्लेख किया गया है।[२] इनमें वीरों की कहानियाँ कही जाती थीं। गोष्ठियों में विवाद भी हो जाते थे।[३]

राजा गृहदीर्घिकाओं में अन्तःपुरिकाओं के साथ क्रीड़ा करते थे।[४]

दरबारियों के मनोविनोदों का अत्यन्त सुन्दर निरूपण प्राप्त होता है। तारापीड के राजकुल के वर्णन से यह विदित होता है कि उनके उपस्थित न रहने पर कुछ सामन्त जुआ खेल रहे थे, कुछ अष्टापद खेल रहे थे, कुछ वीणा बजा रहे थे, कुछ चित्रफलक पर राजा का चित्र अंकित कर रहे थे, कुछ काव्यालाप में लीन थे, कुछ परिहासकथाओं में आनन्द ले रहे थे, कुछ विन्दुमती तथा कुछ प्रहेलिका के रस से आप्यायित थे, कुछ राजा के द्वारा वनाये गये सुभाषितों का पाठ कर रहे थे, कुछ द्विपदी का पाठ कर रहे थे, कुछ रसिक पत्रभंग की रचना कर रहे थे, कुछ वारांगनाओं से आलाप कर रहे थे और कुछ वैतालिक के गीत का श्रवण कर रहे थे।[५]

राजकुल के मनोरंजन के लिए कुवड़े, किरात, नपुंसक, वधिर, बौने, गूंगे, किन्नर-मिथुन और वनमानुष रखे जाते थे।[६] भेंड़े, मुरगे, कुरर, कपिंजल, लवा तथा बटेर की लड़ाई होती रहती थी।[७] सिंह, हरिण, वानर, चकोर, कलहंस, हारीत, कोकिल, शुक-सारिका, मयूर, सारस आदि भी मनोरंजन के साधन थे।[८]

प्रासाद के समीप प्रमदवन होता था।[९] वहीं पर क्रीडापर्वत होता था।[१०] हिमगृह का भी वर्णन उपलब्ध होता है।[११] ये विनोद के साधन थे।

वाण के समय में संगीत का विशेष महत्त्व था। घर्घरिका, मृदंग आदि वाद्य बजाये जाते थे।[१२] स्वरों पर विवाद होता था।[१३] लोग अभिनय तथा नृत्य में भी कुशल होते थे। वाण के मित्रों में नट शिखण्डक तथा नर्तकी हरिणिका का उल्लेख प्राप्त होता है।[१४]

वसन्तोत्सव मनाया जाता था। इस समय लोग दूसरों का परिहास करते थे।[१५]

---

१. काद०, पृ० १४।
२. हर्ष० २।३२
३. वही, १।२
४. काद०, पृ० ११६–११७।
५. वही, पृ० १७१–१७२।
६. वही, पृ० १७२–१७३।
७. वही, पृ० १७३।
८. वही, पृ० १७३–१७४।
९, १०. वही, पृ० ३५४।
११. वही, पृ० ३८१–३८३।
१२. वही, पृ० १३–१४; पृ० ११८।
१३. वही, पृ० ३५९।
१४. हर्ष० १।१९
१५. काद०, पृ० ४००।

लोग पिचकारियों में सुगन्धित जल भरकर अपने प्रियजनों को रंजित कर क्रीड़ा करते थे।[१] इसे उदकक्ष्वेडिका कहते थे।[२]

उत्सवों पर जनसमुदाय आनन्दविभोर होकर नाचता था। उस समय गीत भी गाये जाते थे। किसी को वाच्य तथा अवाच्य का ज्ञान नहीं रहता था। हर्ष के जन्मोत्सव का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।[३] उस समय वारविलासिनियाँ अश्लील रासक-पदों को गा गाकर नाच रही थीं।[४] राजमहिषियाँ भी भुजाओं को फैला फैलाकर नाच रही थीं।[५] इस अवसर पर बन्दी मुक्त कर दिये गये थे और बनियों की दूकानें लूट ली गयी थीं।[६]

राज्यश्री के विवाह का वर्णन मिलता है। इस अवसर पर चमार मंगलपटह बजा रहा था।[७] सुगन्धित-जल से क्रीड़ावापिकायें भरी गयी थीं।[८] चित्रकार मांगलिक चित्र बना रहे थे।[९] मिट्टी की मछलियां, कछुए, मकर आदि बनाये जा रहे थे।[१०] सौभाग्यवती स्त्रियाँ वर-वधू के नाम लेकर श्रुति-सुभग मांगलिक गीत गा रही थीं।[११]

आखेट भी मनोरंजन का साधन था।[१२]

इन्द्रजाल का उल्लेख प्राप्त होता है।[१३] भारत में इन्द्रजाल का बहुत सम्मान था।[१४] पुत्तलिका का नृत्य भी विनोद का साधन था।[१५]

यमपट्ट दिखाये जाते थे। हर्षचरित में यमपट्टिक का उल्लेख प्राप्त होता है। सड़क पर बहुत से बालक उसे घेरे हुए थे। वह बायें हाथ में लिये हुए दण्ड के ऊपर एक चित्रपट फैलाये हुए था। चित्रपट पर भीषण महिष पर बैठे हुए यम का चित्र अंकित था। वह दूसरे हाथ में लिये हुए सरकंडे से चित्र दिखा रहा था। यमपट्टिक चित्र दिखाते समय पद्यों का उच्चारण कर रहा था।[१६]

---

१. काद०, पृ० ११६।

२. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० ११४।

३. हर्ष० ४।७–९

४, ५. वही, ४।८

६. वही, ४।७

७. वही, ४।१३

८, ९, १०, ११. वही, ४।१४

१२. काद०, पृ० १८९।

१३. वही, पृ० ३५८।

१४. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १३५।

१५. काद०, पृ० २१।

१६. हर्ष० ५।२१

लड़कियाँ गेंद तथा गुड़िया का खेल खेलती थीं।[१] द्यूत और अष्टापद का खेल खेलने में भी वे चतुर थीं।[२] स्त्रियाँ झूला झूलतीं थीं।[३] अन्तःपुरिकाएँ राजा के चरित का अनुकरण करने का खेल खेलती थी।[४]

१. काद०, पृ० १७३।
२. वही, पृ० ३५४।
३, ४. वही, पृ० १७३।

द्वादश अध्याय

बाणभट्ट का परवर्ती कवियों पर प्रभाव

बाण विचार और चिन्तन को व्यक्त करने की नव विधाओं का आविष्कार करते थे और प्राचीन परिपाटी को नये रंगों की सज्जा से आभूषित करके उसे नवीन बना देते थे। वे शास्त्रों के सुधास्यन्दी प्रसंगों तथा रहस्यों के पारखी थे और अपनी वर्णना की प्रक्रिया में उनका संयोजन कर कविता-कामिनी का मण्डन करते थे। कवि में कल्पना करने की अद्भुत शक्ति थी, भाषा की भङ्गिमा और औचित्य को पहचानने की दिव्य दृष्टि थी। इन्हीं विशेषताओं के कारण बाण का अमर साहित्य सहृदयों को सन्तृप्त करता रहा है।

बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' भणिति प्रसिद्ध है। जिस विज्ञ आलोचक ने यह विचार व्यक्त किया था, वह संस्कृत साहित्य के विशाल भाण्डार से परिचित रहा होगा। उसने परवर्ती साहित्य पर बाण के व्यापक प्रभाव का दर्शन किया होगा। कवि द्वारा व्यवहृत कथानक, समुद्भावित कल्पनाराजि आदि का प्रतिबिम्ब अनेक कवियों पर स्पष्ट दिखायी पड़ता है। 'बाणभट्ट ने जिन उपलब्धियों से संस्कृत साहित्य का सम्भूषण किया है, उन्हीं के आधार पर अनेक परवर्ती कवियों ने भी साहित्य की सर्जना की है। परवर्ती कवियों की रचनाओं में बाण की कल्पनाओं, भावरेखाओं, चिन्तनपद्धतियों, काव्यसौष्ठव की विधाओं आदि का प्रतिबिम्बन परिलक्षित होता है। बाणभट्ट संस्कृत साहित्य के ऐसे मनीषी हैं, जिनकी प्रतिभा से कविमण्डल प्रभावित है और जिनकी अलौकिक अभिव्यञ्जनाओं की छटा दर्शनीय है।'[1] कविवर बाण धन्य हैं, जिन्होंने अनेक कवियों का उपकार किया है और जो अनेक पण्डितों को अपनी रचनाओं से आप्यायित करते रहे हैं।

कविपुत्र भूषण ने कादम्बरी (उत्तरार्ध) की रचना की। उन्होंने बाण द्वारा एकत्र की गयी कथा की सामग्री का उपयोग किया है।[2] उनकी वाक्य-योजनाओं पर बाण का प्रभाव है।[3]

---

१. अमरनाथ पाण्डेय : बाणभट्ट का आदान-प्रदान, पृ० १५।

२. 'बीजानि गर्भितफलानि विकासभाञ्जि
वप्त्रेव यान्युचितकर्मबलात्कृतानि।
उत्कृष्टभूमिविततानि च यान्ति पोषं
तान्येव तस्य तनयेन तु संहृतानि॥'

कादं० (उत्तरार्ध), पृ० ४२०।

३. अमरनाथ पाण्डेय : बाणभट्ट का आदान-प्रदान, पृ० ३३-३८।

सुबन्धु पर भी बाण का प्रभाव देखा जा सकता है। वासवदत्ता के मनोजव[1] घोड़े की कल्पना का आधार इन्द्रायुध[2] का वर्णन है। वासवदत्ता में निबद्ध वसन्तवर्णन[3] पर कादम्बरी के वसन्तवर्णन[4] का प्रभाव है। बाण के कुछ वाक्य वासवदत्ता में प्राय: ज्यों-के-त्यों प्राप्त होते हैं।[5]

अवन्तिसुन्दरीकथा के कवि दण्डी बाण के अधमर्ण हैं। वे बाण का उल्लेख करते हैं।[6] अवन्तिसुन्दरीकथा के अनेक वर्णनों, कल्पनाओं और वाक्य-रचनाओं पर बाण का प्रभाव है।[7]

अभिनन्द ने अपनी कृति कादम्बरीकथासार में कादम्बरी का संक्षेप प्रस्तुत किया है। उन्होंने कादम्बरी की पदावली का उपयोग किया है।[8]

त्रिविक्रमभट्ट नलचम्पू में कादम्बरी की प्रशंसा करते हैं।[9] नलचम्पू का शरद्-वर्णन[10] हर्षचरित के शरद्वर्णन[11] से प्रभावित है। सालङ्कायन का उपदेश[12] शुकनासोपदेश[13] की अनुकृति पर निबद्ध हुआ है। नल के राज्याभिषेक का वर्णन[14] चन्द्रापीड के राज्याभिषेक के वर्णन[15] से प्रभावित है। त्रिविक्रम ने अनेक स्थलों पर बाण

१. वासवदत्ता, पृ० २१२–२१३।

२. काद०, पृ० १५४–१५७।

३. वासवदत्ता, पृ० ११०–११२।

४. काद०, पृ० २६०–२६२।

५. अमरनाथ पाण्डेय : बाणभट्ट का आदान-प्रदान, पृ० ४१–४५।

६. वही, पृ० ४६।

७. वही, पृ० ४६–४८।

८. कादम्बरीकथासार—'को दोषः प्रविशत्विति'—१।२४।
काद०—'को दोषः प्रवेश्यताम्'—पृ० १६।
कादम्बरीकथासार—'योऽसि सोऽसि नमस्तुभ्यमारोहातिक्रमस्त्वया।
मर्षणीयोऽयमस्माकमारुरोहेति तं वदन्॥'—२।१०३
काद०—'महात्मन्नर्वन्, योऽसि सोऽसि। नमोऽस्तु ते।
सर्वथा मर्षणीयोऽयमारोहणातिक्रमोऽस्माकम्।'—पृ० १५६।

९. 'कादम्बरीगद्यबन्धा इव दृश्यमानबहुव्रीहयः केदाराः'।—नलचम्पू, पृ० ११।

१०. वही, पृ० ३९–४०।

११. हर्ष० ३।३८

१२. नलचम्पू, पृ० १०२–११२।

१३. काद०, पृ० १९५–२०९।

१४. नलचम्पू, पृ० ११५।

१५. काद०, पृ० २०६–२१०।

की पद-योजनाओं और कल्पनाओं का उपयोग किया है।[1]

यशस्तिलकचम्पूकार सोमदेव के लिए भी बाण की कृतियाँ उपजीव्य रही हैं।[2]

धनपाल की तिलकमञ्जरी पर बाण का व्यापक प्रभाव उपलब्ध होता है।[3] धनपाल ने अयोध्या नगरी के वर्णन[4] में बाण[5] का अनुकरण किया है। मदिरावती[6] का वर्णन यशोमती के वर्णन[7] का अनुकरण करता है। अदृष्टपार नामक सरोवर का वर्णन अच्छोदसरोवर के वर्णन[8] का अनुगामी है।

सोड्ढल-विरचित उदयसुन्दरीकथा के अनेक प्रसंगों पर बाण का प्रभाव है। हर्ष-चरित की भाँति उदयसुन्दरीकथा भी आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। बाण की भाँति सोड्ढल ने अपनी रचना के प्रथम उच्छ्वास में अपने वंश का वर्णन किया है। उदयसुन्दरी-कथा के शुक के चित्रण का आधार कादम्बरी है।[10] चण्डिकायन, कापालिक आदि के वर्णन बाण से प्रभावित हैं।[11]

कल्हण,[12] वादीभसिंह,[13] वामनभट्टबाण,[14] अम्बिकादत्त व्यास[15] आदि बाण के अधमर्ण हैं।

हिन्दी के कवि केशवदास[16], प्रसिद्ध लेखक डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी[17] आदि बाण से पूर्णतः प्रभावित हैं।

●

---

१. अमरनाथ पाण्डेय : बाणभट्ट का आदान-प्रदान, पृ० ५१–५६।
२. वही, पृ० ५७–६२।
३. तिलकमञ्जरी, पृ० ७–११।
४. वही, पृ० ६३–७१
५. काद०, पृ० ९८–१०४।
६. तिलकमञ्जरी, पृ० २१–२२।
७. हर्ष० ४।२–३
८. तिलकमञ्जरी, पृ० २०३–२०५।
९. काद०, पृ० २३०–२३६।
१०. अमरनाथ पाण्डेय : बाणभट्ट का आदान-प्रदान, पृ०७३।
११. वही, पृ० ७३।
१२. वही, पृ० ७९–८०।
१३. वही, पृ० ८१–८६।
१४. वही, पृ० ८९–९४।
१५. वही, पृ० ९५–९६।
१६. वही, पृ० ९७–१०२।
१७. वही, पृ० १०४–११४।

परिशिष्ट १

बाणभट्ट का शब्दकोश

(टि०—विशेषणों के लिङ्ग विशेष्यों के आधार पर व्यवस्थित हैं।)

हर्षचरित

शब्द	उच्छ्वास। पृष्ठ	अर्थ
अकुसृतिः	१।१८	शठता से रहित
अकुहनः	६।४०	दम्भ से रहित, ईर्ष्या से रहित
अक्षणिकः	४।१७	व्यग्र
अक्षिगतः	२।३७	घृणित, द्वेष्य
अङ्कनम्	४।१३	कलंक
अङ्गारः	२।२२	कोयला
अजः	२।३३	विष्णु
अजर्यम्	७।६२	मैत्री
अञ्जलिकारिका	४।१७	मिट्टी की मूर्ति
अटनिः	६।४७	धनुष का छोर
अट्टः	२।२१	हाट
अदशमीस्थः	१।१६	अवृद्ध
अधिरोहिणी	४।१४	सीढ़ी
अधोक्षजः	७।५७	विष्णु
अध्येषणा	१।१८	याच्ञा
अनक्षजित्	१।४	जिसने इन्द्रियों पर विजय नहीं प्राप्त की है।
अनन्तरः	२।२८	अभिन्न, मुख्य
अनपाचीना	२।३६	अविपरीत, निर्दोष
अनवस्करम्	१।१६	जिसका कुछ भी छिपा न हो।
अनिस्त्रिंशः	१।१८	अक्रूर
अनीकपः	७।५४	हाथी
अनुत्कटः	२।२८	ह्रस्व
अनुपदी	७।६७	खोजने वाला, अन्वेष्टा
अनुप्लवः	२।३७	अनुचर
अनुबन्धः	२।२२	सातत्य
अनुबन्धिका	५।२३	गात्र-सन्धि-पीड़ा; हिचकी
अनूकः	३।४५	घोड़े का निचला होठ; रीढ़
अनेलमूकः	१।५	गूंगा और बहरा
अन्तर्वत्नी	१।११	गर्भिणी
अन्धस्	१।१४	अन्न
अन्वक्षम्	१।१४	शीघ्र
अपदानम्	५।३३	वीरकर्म

अपाश्रयः	४।५	वितान, चंदोवा
अप्रतिपत्तिः	५।२८	किंकर्तव्यताविमूढ़
अभिन्नपुटः	४।१४	बांस ग्रादि का चौकोर पिटारा
अभियुक्तः	८।७३	ग्रभिनिविष्ट
अभियोगः	३।३८	उद्यम
अभिषङ्गः	५।२८	मिलन, सम्पर्क
अभिसारः	१।१२	सहायक, साथी
अभ्यर्णः	७।६९	समीप का
अभ्यवगाढा	२।२९	पूर्ण वृद्धि को प्राप्त
अभ्यवहरणम्	२।२२	भोजन, खाना
अभ्यागारिकः	२।३६	गृहस्थ
अमत्रम्	६।३६	पात्र
अमित्रमुखः	४।१७	जिसने सूर्य का मुख नहीं देखा है।
अम्लातकम्	४।१२	एक प्रकार का पुष्प
अयोगी	७।६५	जिसके विपरीत दैव हो।
अररम्	२।३७	किवाड़
अर्जुनः	३।४४	श्वेत
अर्णस्	२।३८	जल
अर्दितम्	२।२४	वातव्याधि
अर्धोरुकम्	३।५२	चण्डातक
अलगर्दः	६।४१	जल का साँप
अलातः	२।२२	जलती हुई लकड़ी
अलिञ्जरः	७।६८	वड़ा घड़ा
अवकरः	७।६५	कतवार
अवकेशी	२।२४	जिसमें फल न लगे।
अवग्राहः	७।५८	वह पात्र जिसमें स्नान का जल रखा जाय, स्नान-द्रोणी।
अवटः	७।५७	गर्त
अवनाटा	८।७०	निम्न, झुका हुग्रा
अवभृथः	२।३५	यज्ञ के ग्रन्त में किया गया स्नान
अवरक्षणी	७।५४	लगाम
अवलग्नः	२।२८	कटि
अवलोकितेश्वरः	८।७३	बोधिसत्त्व
अवष्टम्भः	१।९	गर्व
अवस्कन्दः	२।३१	ग्राक्रमण
अवाग्रः	८।७०	ग्रवनत
अविसंवादी	२।३२	व्रतानुष्ठान के समय शयन पर स्थित, काम-भावनायुक्त कान्ता द्वारा ग्रभिलषित होने पर भी जिसकी इन्द्रियाँ विकृत न हों ग्रौर जो सम्भोग ग्रादि द्वारा स्त्री के प्रति ग्रनुकूल ग्राचरण न करे, उसे विसंवादी कहते हैं। जो विसंवादी नहीं है, उसे ग्रविसंवादी कहते हैं—

"व्रतानुष्ठानसमये कान्तया शयनस्थया।
सकामयाभिलषितः तस्यामविकृतेन्द्रियः ।।
नाचरत्यानुकूल्यं यः सम्भोगकरणादिना ।
स विसंवादकोऽन्यो यः सोऽविसंवादिसंज्ञितः ।।'
हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ०१०२-१०३।

अवीचिः	२।२२	नरक-विशेष
अव्यालः	१।१८	जो शठ न हो
अश्मसारः	८।७१	लोह
अष्टपुष्पिका	१।८	शिव की अर्चना में प्रयुक्त किये जाने वाले आठ पुष्पों का गुच्छा।
अष्टमङ्गलकम्	६।४२	कंकण
असङ्कुसुकः	१।१८	स्थिर
असाम्परायिकः	६।३९	कातर, भीरु
असिधाराधारणव्रतम्	२।३२	यदि पुरुष एकान्त में स्त्री के साथ एक शय्या पर निर्विकाररूप से स्थित रहे, तो यह असिधारा-धारणव्रत कहा जाता है।
असुरविवरव्यसनी	१।१९	पाताल में घुस कर यक्ष या राक्षस को सिद्ध करके धन प्राप्त करने वाला।
अहिर्बुध्नः	५।२१	शिव
अहीरमणी	८।७०	दो मुखों वाला सर्प
आकल्पः	१।५	वेष
आकूतम्	१।१५	अभिप्राय
आक्षिकः	१।१९	जुआरी
आक्षेपः	८।८४	मिरगी, अपस्मार
आग्रहारिकः	७।५८	ब्राह्मण (अग्रहार का अर्थ है—ब्राह्मण-ग्राम। वहाँ रहने वाला आग्रहारिक कहा जाता था।)
आच्छोटनम्	२।२२	चटकना
आण्डीरः	७।५८	प्रगल्भ
आतर्पणम्	४।१४	दीवार आदि पर सफेदी करना
आत्ययिकम्	४।६	अत्यन्त आवश्यक
आदित्यहृदयम्	४।३	एक स्तोत्र का नाम
आधोरणः	२।३०	महावत
आपातः	८।८४	आक्रमण
आपीडः	१।४	समूह
आपीडः	२।२५	माला
आप्लवनम्	१।८	स्नान
आभीलम्	१।१९	कष्ट
आमर्दकः	५।२१	वेताल
आयतिः	२।३३	दीर्घता ; प्रताप
आयानम्	७।५५	अश्व-भूषण
आरकूटः	२।३६	पीतल
आरक्षकः	७।६९	अनाज की रखवाली करने वाला

आरभटी	२।२२	नाटक की चार वृत्तियों में से एक
आरुकम्	३।४२	ओषधि के काम में आने वाले एक प्रकार के पौधे का फल।
आर्द्रता	१।१३	कोमल भावना
आलिङ्ग्यक:	४।८	मुरज-विशेष
आलेपक:	४।१४	पलस्तर करने वाला
आवृत्ति:	२।३७	बन्द होना
आश्रवम्	१।१६	आज्ञानुवर्ती
आसेचनकम्	१।१२	जिसके दर्शन से नेत्र कभी तृप्त न हों— 'यत्सदा प्रेक्षमाणानां तत्सौभाग्याद्वितृष्णता। न जायते क्षणमपि तदासेचनकं मतम् ॥' हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० ४०।
आहतलक्षण:	७।६१	प्रसिद्ध
आहोपुरुषिका	७।६५	अहंमन्यता, अपने में गौरव का आरोप करना
उच्चण्ड:	२।२३	भड़कीला
उच्चित्रम्	७।५५	जिस पर चित्र पूर्णत: स्पष्ट हो।
उत्कलिका	२।३४	उत्कण्ठा ; लहर
उत्किर:	७।६६	ढेर
उद्गीतक:	४।११	प्रशंसक
उद्घात:	३।४२	कुएँ से पानी निकालने के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला पुरवट आदि साधन।
उद्धुर:	४।७	असंयत, अनिरुद्ध
उन्माथ:	४।५	संक्षोभ
उपजोष:	२।३७	आनन्द
उपलिङ्गम्	५।२२	अपशकुन
उपसंग्रहणम्	१।११	सादर प्रणाम
उरुबूक:	७।६६	रेंड़
उरोवध्रा	१।१४	घोड़े के पलान को कसने के काम में आने वाली चाम की पट्टी।
उल्लक:	७।६२	सुगन्धित फल-विशेष का रस, एक प्रकार का आसव
उल्लाघ:	१।५	रोग से मुक्त
ऊष्मा	४।११	दर्प
एकपिङ्ग:	७।६४	कुबेर
एड:	१।५	बधिर
औपवाह्य:	२।२६	केवल सवारी के काम में आने वाला राजहस्ती
कक्ष:	२।२३	तृण, लता
कङ्कटी	५।२२	कवचधारी
कञ्चुकिनी	३।४४	व्यभिचारिणी
कटभङ्ग:	६।४६	मद बढ़ाने वाली ओषधि
कटहार:	७।६८	तृण की रस्सी
कटुक:	७।५४	महावत के ऊपर का अधिकारी, महावत
कण्टकितकर्करी	७।६८	वह कर्करी (मिट्टी का घड़ा), जिस पर काँटे-जैसी बुँदकियों से अलंकार बनाया गया हो।
कण्ठालक:	७।५४	पर्याण-विशेष

कण्डनम्	३।४५	कूटना
कदलिका	२।२७	ध्वज
कन्दलः	३।३८	केले का वृक्ष
करकः	५।२२	घड़ा
करकः	८।७३	कमण्डलु
करङ्कः	७।५८	पिटारी, पनडब्बा
करणम्	३।३६	ताल को सूचित करने के लिए ताली बजाना; दस्तावेज़।
करणम्	७।६६	अंगों का विन्यास-विशेष, शरीर के अंगों को ऐंठना, मोड़ना।
करण्डः	७।५८	छोटी डलिया
करिकर्मचर्मपुटः	६।४६	हाथियों को शिक्षा देने के लिए चमड़े का बनाया हुआ हाथी का पुतला।
करीरः	६।४३	बांस का अंकुर
कर्कटिका	७।६६	ककड़ी
कर्करस्थली	२।२२	कठोर स्थली
कर्करी	५।२२	झंझर
कर्कशर्करा	५।२२	सफेद शक्कर
कर्णिका	५।३२	कर्णाभरण; पद्मबीज-कोश
कर्पटः	२।२३	कपड़े की धज्जी
कर्मण्यकरेणुका	६।४६	हाथियों को फँसाने में चतुर और सिद्ध हथिनी
कलमूकः	५।३०	गूंगा और बहरा
कलादः	१।१६	सोनार
कलिलः	६।४३	व्याप्त, भरा हुआ
कल्कः	१।६	चूर्ण
कल्यता	५।३४	स्वस्थता, रोग का अभाव
कल्याणम्	३।४४	सुवर्ण
कविरुदितकम्	६।३६	गीत गाकर शोक मनाना, अत्ययश्लोक
कशिपुः	२।२५	भोजन तथा वस्त्र
काकोदरः	३।५२	साँप
काचरा	३।४७	कृष्णधूमवर्ण; थोड़ा हरा
काण्डपटमण्डपः	७।५४	बड़ा डेरा
कात्यायनिका	१।१६	काषाय वस्त्र पहनने वाली बूढ़ी विधवा स्त्री
कापोतिका	७।६१	लता-विशेष
कारणा	३।५४	यातना, तीव्र वेदना
कारन्धमी	८।७३	धातुवादी, रसायनविद्
कार्तान्तिकः	५।२२	ज्योतिषी
कार्पटिकः	३।४६	तीर्थयात्री
कार्मः	७।६१	सदा काम में लगा रहने वाला, नौकर
काश्मर्यः	७।६६	एक पौधा
काष्ठामुनिः	२।३५	अत्यन्त उत्कृष्ट तपस्वी
काष्ठालुकः	७।६६	लता-विशेष
कासारः	२।२३	तालाब
काहलः	८।८१	ढोल के स्वर का अनुसरण करनेवाला; महान्

काहला	७।५४	बड़ा ढोल
कितवः	१।१९	जुआ खेलने वाला
किशोरी	४।८	घोड़ी, बछेड़ी
किष्कुः	७।५९	एक वित्ता
कीकसम्	६।३६	हड्डी
कीनाशः	६।४०	क्षुद्र, निर्धन
कीलालम्	३।४३	जल
कुकूलम्	२।२२	भूसी की आग
कुक्कुटव्रतम्	१।१८	मुख्य पाप को छिपाकर लोगों के समक्ष दूसरा कारण प्रकट कर पाप को विनष्ट करने के लिए किया जाने वाला व्रत ; साध्वी स्त्रियों का वलात् भोग करना ।
कुटः	२।३७	घड़ा
कुटहारिका	४।७	जल लाने वाली लड़की
कुटिलिका	७।५९	वक्रगमन
कुब्जिका	५।३०	आठ वर्ष की अवस्था की कुंआरी कन्या
कुम्भदासी	६।४०	जल लाने वाली दासी
कुलुण्ठकः	७।५९	कुत्तों को बाँधने का डंडा
कुवैकटिकः	६।४४	निकृष्ट जौहरी
कुष्ठम्	७।६९	एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ सुगन्ध और ओषधि के काम में आती है ।
कुसुमम्	२।२३	धूम
कुसुम्भः	७।६९	कुसुम्भ का फूल ; जल का छोटा पात्र
कूटपाकलः	४।१	हाथी के दस ज्वरों में से एक । यह हाथी को तत्क्षण मार डालता है ।
कूटपाशः	७।६८	जाल
कूर्चम्	१।१८	ढोंग
कूर्चम्	३।४६	भौंहों का मध्य भाग
कूर्चकः	४।१४	कूँची
कूर्पासकः	७।५५	चोल; स्त्रियों के लिए चोली के ढंग का और पुरुषों के लिए मिर्जई के ढंग का पहनावा ।
कृत्तिकापिञ्जरः	२।२८	वह घोड़ा जिसके शरीर पर तारों की भाँति सफेद चित्तियाँ हों ।
केदारः	२।३५	क्षेत्र
केदारिका	२।२१	क्षेत्र
केशलुञ्चनः	८।७३	केशों को नोचने वाला जैन साधु
कोकः	५।२५	चक्रवाक
कोकिलाक्षः	७।६८	तालमखाना
कोटवी	६।५२	नग्न स्त्री
कोणः	१।९	डंडा
कोणिका	७।५४	ढोल, वाद्य-विशेष ; पटगृह
कोशी	२।२७	छीमी
कौणपः	३।५१	राक्षस

कौमुदी	२।२७	आश्विन की पूर्णिमा
कौशलिका	२।२६	भेंट
कौसीद्यम्	३।३९	आलस्य
क्रकरः	७।६८	तीतर
क्षणः	८।८४	उत्सव
क्षणरुचिः	८।८४	विद्युत्
क्षपणकः	८।८४	जैनसाधु ; नष्ट करने वाला
क्षीबः	३।५१	मत्त
क्षुपः	७।६८	झाड़ी
क्षुल्लकः	३।४१	नीच
क्षोणीपाशः	७।५४	पृथ्वी में गड़ा हुआ फाँसेदार अंकुड़ा
क्षौणी	५।१९	भूमि, पृथिवी
क्ष्वेडः	१।६	विष
खक्खटः	७।५५	वृद्ध ; कठोर
खगः	२।२२	सूर्य
खण्डः	७।५८	खाँड़
खण्डलकम्	७।६८	टुकड़ा
खोलः	७।५५	पगड़ी, शिरस्त्राण
गणिका	६।४९	हाथियों को फँसाने के काम में आने वाली हथिनी
गण्डकुसूलः	७।६९	मिट्टी का बड़ा पात्र, कोठिला
गण्डशैलः	२।३१	पहाड़ से गिरी हुई चट्टान
गन्त्री	७।५५	बैलगाड़ी
गन्धनम्	४।१२	मर्दन
गरुडपक्षः	२।२७	मरकत-मणि
गल्वर्कः	५।२२	स्फटिक-मणि
गवेधुका	७।६९	एक प्रकार की घास
गह्वरम्	१।१८	दम्भ
गात्रिका	१।३	गाँती
गिरिकर्णिका	२।२५	पुष्प-विशेष
गिरिगुडकः	७।५९	ढेला
गुल्मः	४।१	झाड़ी ; समूह
गृहचिन्तकचेटकः	७।५४	तम्बुओं और सैनिकों के सामानों की देखरेख करने वाला नौकर।
गोणी	७।६९	बोरा
गोदन्तमणिः	८।७०	गोदन्त सर्प की मणि
गोपुरम्	२।३७	पुरद्वार
गोप्यः	६।४०	नौकर
गोलयन्त्रकम्	५।२२	गोलयन्त्र, जिससे जल रसता रहता था।
गोवाटम्	७।६८	गोशाला
गोशीर्षम्	७।६२	सुगन्धयुक्त चन्दन
गौधेरः	८।७२	चन्दनगोह, विसखपरा
ग्रन्थिपर्णम्	७।६९	गठिवन
ग्रामाक्षपटलिकः	७।५३	गाँव का लेखा रखने वाला अधिकारी

ग्राहकः	७।६८	बाज
घासिकः	७।५५	घोड़े के खाने का प्रवन्ध करने वाला
चक्रकम्	१।१०	चक्र के आकार का एक आभूषण
चक्रीवान्	७।५५	गदहा
चटुकः	७।५८	पूर्वभाग
चटुलतिलकमणिः	१।१५	ललाट पर लटकने वाला एक अलंकार
चण्डातकः	१।१४	लहंगा
चण्डालः	२।२६	साईस, अश्वपाल
चतुर्थी दशा	२।२६	हाथी की तीस और चालीस वर्ष के बीच की अवस्था
चरणः	१।३	विशिष्टशाखापाठकता (शंकर), शाखाध्येता
चर्मपुटम्	७।५४	चमड़े का झोला
चर्ममण्डलम्	७।५५	गोल ढाल
चाटः	७।५८	दस्यु
चारणम्	८।७२	खिलाना
चारणता	१।१६	धूर्तता
चारभटः	७।५४	वीर
चिकिनम्	८।७०	स्थूल और छोटा
चित्रकः	८।७०	चीता ; एक प्रकार का साँप
चिपिटः	८।७०	स्थूल, वड़ा
चीरी	२।२२	झींगुर
चुन्दी	७।५४	वेश्या
चुल्लम्	८।७०	कींचर से युक्त (आँख)
चूलिका	४।५	चूड़ा, शिखा
चेटकः	४।७	नौकर
चेलम्	२।२३	वस्त्र
चेलः	७।५५	लड़का
चोलकः	७।५६	जाकेट की तरह का पहनावा
छातः	१।१४	पतला, सूक्ष्म
जघन्यकर्म	७।६५	सुरत, रति
जनङ्गमः	६।३६	चण्डाल
जनी	२।३७	नायिका, सुन्दर स्त्री
जम्बीरः	८।७२	जंबीरी नीबू का वृक्ष
जयनम्	१।१०	घोड़े की मण्डनमाला
जलार्द्रा	५।२५	पानी से तर पंखा
जाङ्गुलिकः	१।१६	विपवैद्य
जातीपट्टिका	७।६१	कटिवस्त्र
जातीफलम्	७।६२	जायफल
जामिः	६।४२	वहन
जालिकः	४।११	मछुआ ; कपटी
जालिनी	६।४०	मायिनी
जाल्मः	७।५८	नीच, खल
जाहकः	७।६६	कछुआ ; चूहे की तरह का जीव
जितकाशी	२।३५	जितेन्द्रिय

जीवञ्जीवकः	७।६२	चकोर
जीवितेशः	१।१६	मृत्यु, यम; पुरोहित
ज्योतिःप्रकारः	८।८४	परमज्ञान
डामरः	७।५५	उद्भट ; दारुण, भयंकर
तनुताम्रलेखा	५।३०	वस्त्र के किनारे पर डाली गयी पतली ताँबे की धारी ।
तन्त्रीपटहिका	४।८	वाद्य-विशेष,जो गले में लटकाकर बजाया जाता था।
तरलः	२।२७	हार के बीच की मणि
तर्णकः	२।२१	बछड़ा
तलकः	७।५८	छोटी गाड़ी, जिसमें जलता हुआ कोयला भरा हो ।
तलसारकः	७।५४	ज़ेरबन्द
तापकः	७।५८	अंगीठी, चूल्हा
तापिका	७।५८	तई
ताम्रचरुकः	७।५८	चावल आदि उबालने के काम में आने वाला ताम्र का पात्र ।
तारा	७।६२	शुद्ध और चमकीला
ताराराजः	८।८२	चन्द्रमा
तालावचरः	४।८	ताल के साथ नाचने और गाने वाला
तुण्डिभः	८।७०	तोंद वाला
तुलायंत्रम्	७।६५	कूप आदि से जल निकालने के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला यन्त्र ।
तूलिका	६।५१	रुई से भरा हुआ गद्दा
तोक्मः	४।५	हरा जौ
तोत्रम्	६।४६	अंकुश
त्रपुसम्	३।३८	खीरा
त्रिकण्टकः	१।६	कर्णाभरण-विशेष । यह दो मुक्ताफलों के बीच में मरकत लगाकर बनाया जाता था ।
त्विषिमान्	२।२२	सूर्य
त्सरुः	२।२८	मूठ
दग्धमुण्डः	७।६५	सम्प्रदाय-विशेष का साधु
दम्यः	७।५७	नया बैल
दात्रम्	७।५८	हंसिया
दान्तः	७।६६	पालतू बैल
दार्दुरिकः	१।१६	दर्दुर नामक वाद्य बजाने वाला
दुर्विधः	७।५८	दरिद्र, दीन
देवभूयम्	६।४७	देवत्व, स्वर्गगमन, मृत्यु
देशना	८।७३	निर्देश, आदेश
द्रुघनः	७।५४	काठ की हथौड़ी
द्रोणः	२।३७	कौआ
द्रोणी	२।२६	घोड़े की पीठ, छाती और कटिपार्श्वों में मांस का कम होना । इस लक्षण से युक्त घोड़ा सुन्दर माना जाता है ।
धन्वन्	६।३६	मरुस्थल

धवः	४।१४	पुरुष
धवलः	७।५८	जवान ; उत्कृष्ट
धिषणः	१।८	बृहस्पति
नलकः	७।५५	तरकश
नलकम्	८।७०	शरीर की हड्डी
नलदम्	८।७०	एक प्रकार की सुगन्ध-युक्त घास
नागदमनः	८।७०	विष को दूर करने वाली ओषधि
नागस्फुटः	७।६८	एक प्रकार की झाड़
नालीवाहिकः	७।५४	हाथी के लिए चारा इकट्ठा करने वाला मेठ
नासीरः	७।५४	सेना के आगे चलने वाला सैनिक; कपूर (शंकर)
निःशूकः	७।५७	निर्दय
निकृतिः	१।१८	शठता
निगडतालकम्	७।५४	पैर को बांधने के काम में आने वाला कड़ा
निचोलकः	४।१४	चादर, प्रच्छदपट
निबधः	३।४४	कठोर, सुदृढ़
निष्प्रवाणि	३।५१	कोरा वस्त्र
निस्त्रिंशः	१।१८	तलवार
नीलाण्डजः	८।७१	एक प्रकार का मृग
नेत्रम्	७।५५	सूक्ष्मवस्त्र, अंशुक
नैचिकी	२।२५	उत्तम गाय
पञ्चब्रह्म	१।८	स्तुति-विशेष । इसमें सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर तथा ईशान के नाम आते हैं ।
पञ्चभद्रः	२।२८	श्वेत मुख और खुरों वाला घोड़ा
पञ्चास्यः	४।१७	चौड़े मुँह वाला, सिंहमुखी
पटकुटी	७।५४	छोटा तंबू
पटच्चरम्	२।२३	चिथड़ा, फटा हुआ कपड़ा
पटोलः	७।६१	परवल
पट्टसूत्रम्	७।६१	रेशमी वस्त्र
पतद्ग्रहः	७।५८	पीकदान
पत्रम्	६।३६	वाहन
पत्रवीटा	७।६८	पत्तों का गुच्छा
पत्राभरणम्	८।७७	कपोल आदि पर की गयी चित्र-रचना
पदकम्	२।२८	मुखबन्धन
पद्मकम्	२।२९	हाथी के शरीर पर लाल-लाल चिह्न-विशेष
परभागः	१।१३	एक रंग की पृष्ठभूमि पर दूसरे रंग की छपाई, कढ़ाई, चित्रकारी आदि ।
पराचीनम्	१।१८	पराङ्मुख
परिवर्धनः	५।२०	साईस
परिवस्त्रा	७।५४	कनात
परिह्लादः	७।५७	प्रतिध्वनि
पलालम्	७।६६	पुआल, भूसा
पल्लविकः	४।११	विट, कामुक
पल्ली	२।२६	छोटा गाँव, पुरवा
पश्चिमः	८।८०	अन्तिम

पाकलः	४।१	हाथी का ज्वर
पाटच्चरः	४।१	चोर
पाटलशर्करा	५।२२	लाल शक्कर
पाटीपतिः	७।५४	सैन्यागार का अधिकारी
पाण्डुरपृष्ठः	६।४६	भीरु; निर्लज्ज
पाण्डुरभिक्षुः	८।७३	आजीवक ; वह भिक्षु, जिसने कषाय-वस्त्र का त्याग कर दिया हो।
पादफलिका	७।५५	रकाब
पारिजातकः	१।६	अनेक द्रव्यों से संस्कृत मुखवास-विशेष
पारिभद्रः	२।२३	नीम का वृक्ष
पारी	५।२२	प्याला
पाशिकः	७।६८	बहेलिया
पिङ्गा	७।५५	पिंडलियों तक लम्बी ढीली सलवार
पिण्डपाती	८।७१	भिक्षा से जीवन-निर्वाह करने वाला
पिण्डिका	८।७६	पिंडली
पिण्डी	३।४२	ताड़-विशेष
पुण्डरीकः	१।१२	बाघ
पुण्ड्रेक्षुः	२।३०	बहुत मीठी, लाल जाति की ईख
पुण्यजनः	२।३७	दैत्य
पुलकबन्धः	१।१४	वस्त्रों पर रंग-बिरंगी बुंदकियों की कढ़ाई, नाना-वर्णबिन्दु-विन्यास
पुलाकः	७।६६	तुच्छ अन्न
पुष्परागः	२।२७	पुखराज
पुष्पलोहम्	४।१०	एक प्रकार की मणि
पूली	२।२१	गुच्छा
पृषदश्वः	७।६०	पवन
पेटकः	२।२२	समूह
पोटा	६।४७	पुरुष के चिह्न दाढ़ी आदि से युक्त औरत, हिंजड़ा
पोत्रम्	३।४२	हल का मुख
पौरोगवः	५।२२	पाकशालाध्यक्ष
प्रगुणा	२।२६	सीधी
प्रतिकौशलिका	७।६२	उपहार के बदले में दिया गया उपहार
प्रतिग्रहः	७।६३	उपहार, भेंट ; सेना का पिछला भाग
प्रतिपत्तिः	१।१३	कर्तव्य
प्रतिपत्तिः	२।२८	सम्मान
प्रतिपुरुषः	४।१०	प्रतिबिम्ब ; प्रतिद्वंद्वी
प्रतिमा	४।१	हाथी का दांतों के बीच का शिरोभाग
प्रतिसंख्यानम्	८।८५	विवेकयुक्त बुद्धि
प्रतिसरा	१।१६	नियोज्या
प्रतीकः	२।२६	अवयव
प्रसन्ना	३।४४	मदिरा
प्रसृता	२।२६	जंघा
प्रसेवकः	७।५७	बोरा

प्रातराशः	७।६८	कलेवा
प्राभृतम्	३।४५	उपहार
प्रारोहकः	७।५५	पल्लव, कल्ला
प्रालम्बमालिका	१।१४	कण्ठ से छाती तक लटकने वाली माला
प्रियजानिः	६।४०	अपनी पत्नी को प्यार करने वाला पुरुष
फलकम्	३।५०	ढाल
फलेग्रहिः	८।७१	समय पर फल देने वाला वृक्ष
फाली	३।५२	फेंटा, कक्ष्याबन्ध
बकः	१।१८	सदा नीचे दृष्टि डालने वाला, नीच, स्वार्थी, शठ, मिथ्याविनीत ब्राह्मण बकव्रतधारी (बक) कहा जाता है।
बभ्रुः	२।२३	नेवला
बर्बरकम्	६।४६	केश
बलाशना	४।१४	एक प्रकार की ओषधि
बलाहकः	३।३८	बादल
बलिभुक्	७।६५	कौआ
बल्वजः	७।६६	एक प्रकार की घास
बहली	७।६८	समूह, राशि
बहुला	४।६	कृत्तिका
बादरम्	४।१४	कपास का कपड़ा
बालपाशः	७।५५	कर्णाभरण विशेष ; शिर पर सामने की ओर बालों को यथास्थान रखने के लिए पहना जाने वाला आभूषण।
बालवीणा	२।३४	वीणा-विशेष
बालिका	१।१५	कर्णभूषण
बालिशः	४।११	धूर्त; बालक
बैडालवृत्तिः	१।१८	लोभ, दम्भ आदि से युक्त व्यक्ति
ब्रह्मोद्या	१।२	ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली— **'ब्रह्मोद्या सा कथा यस्यामुच्यते ब्रह्म शाश्वतम्।'** **हर्ष०, शङ्करकृत टीका, पृ० ११।**
ब्राह्मणायनः	८।७१	श्रेष्ठ ब्राह्मण
ब्राह्मण्यः	६।४०	(अच्छे) ब्राह्मण के गुणों से युक्त
भद्रः	२।३१	उत्तम जाति का हाथी
भद्रासनम्	७।५३	सिंहासन
भल्लः	५।१६	बाण-विशेष
भल्ली	८।७०	बाण-विशेष
भस्त्रा	२।२३	भाथी
भस्त्राभरणम्	७।५५	एक प्रकार का तरकश
भस्मकः	२।२३	वह व्याधि, जिसमें रोगी जो कुछ खाता है, वह भस्म हो जाता है।
भाण्डम्	७।५७	अश्वाभरण
भिन्दिपालः	७।५५	एक छोटा भाला जो हाथ से फेंककर प्रयुक्त किया जाता था।

भीमरथी	५।३३	व्यक्ति के ७७वें वर्ष के ७वें मास की ७वीं रात की संज्ञा।
भुजिष्यः	४।७	परिचारक
भुजिष्या	२।३७	वेश्या
भुरुण्डः	८।७२	एक प्रकार का पक्षी
भृङ्गारः	६।३६	सोने का घड़ा
भोजकः	४।६	भोज देश में उत्पन्न
मकरमुखम्	१।१०	घुटने के ऊपर का भाग
मकरमुखमहाप्रणालः	१।६	मकरमुखी पनाला, जो मन्दिरों या भवनों की वास्तु-कला में लगाया जाता था।
मग्नांशुकम्	५।३०	वह पतला वस्त्र, जो शरीर से सटा हो और जिसे शरीर से अलग पहचानना कठिन हो।
मठिका	७।५५	झोपड़ी
मण्डलः	४।१०	बारह राजाओं का समूह
मण्डलाग्रः	३।५५	तलवार
मत्तकाशिनी	३।४३	अत्यन्त रूपवती स्त्री
मधुगोलः	२।२६	मधुमक्खियों का छत्ता
मधुरकम्	५।५१	विष
मधुरसा	७।६२	दाख
मन्दाक्षम्	१।१२	लज्जा
मयूरः	४।११	जो विट गोप्यस्थानों को दिखाकर नृत्य करता है, उसे मयूर कहते हैं— 'प्रकाश्य गोप्यस्थानानि मयूरा इव ये विटाः। नृत्तं कुर्वन्ति सततं ते मयूरा इति स्मृताः॥' हर्ष०, रङ्गनाथ-कृत टीका, पृ० १०२।
मलकुथा	७।५६	घोड़े की पीठ पर पलान के नीचे बिछाया जाने वाला नमदा; मलपट्टी (शंकर)
मल्लिकाक्षः	२।२८	शुक्ल अपांग वाला घोड़ा
मसारः	५।२२	मरकत-मणि, पन्ना
मस्करी	१।१६	संन्यासी
महामांसम्	६।५१	नरमांस
महामात्रः	६।४६	प्रधान महावत
महामायूरी	५।२१	बौद्धमन्त्र-विशेष
माक्षिकम्	७।६६	मधु
मान्द्यम्	५।२०	रोग
मार्गणः	२।२४	बाण
मार्गणम्	२।२४	याचना
मालुधानः	७।६६	सर्प-विशेष
माहेयी	१।५	गाय
मिहिका	३।३८	कुहरा
मुखकोशः	३।४५	शिवलिङ्ग के ऊपर रखा जाने वाला ढक्कन
मूर्च्छना	७।६६	सात स्वरों का क्रमशः आरोह और अवरोह
मेण्ठः	७।५५	महावत

मौलः	६।३६	वंशपरम्परागत
यमपट्टिका	४।११	वह व्यक्ति, जो उस पट्टिका को, जिस पर यम की यातनाओं का चित्रण रहता था, लोगों को दिखाता फिरता था।
यामकिनी	४।४	रात में पहरा देने वाली स्त्री
युक्तकः	७।५८	अधिकारी
योग :	४।१	युक्ति ; सम्बन्ध
योगपट्टकम्	१।३	योगी का वह वस्त्र, जिससे वह ध्यान करने के समय अपनी पीठ और घुटनों को ढँकता था।
योगपरागः	६।५१	अभिचार-चूर्ण, विषचूर्ण
योगभारकः	३।४६	जिसमें योग के उपकरण रखे जाते हों।
यौतकम्	४।१४	कन्यादान में दिया जाने वाला धन, दहेज
राजबीजिता	५।३१	राजकुल में उत्पन्न होना
राजादनः	७।६६	खिरनी
राजावर्तः	७।५५	एक प्रकार का हीरा, सामान्य कोटि की मणि, कृष्ण-पाषाण।
राजिलः	७।६६	दो मुखों वाला विष-रहित सांप
रेचकम्	२।२२	शृंगार को सूचित करने वाले आँख, भौंह आदि के विकार।
लट्वा	७।६८	एक प्रकार का पक्षी
लम्बनः	७।५८	वह नौकर, जिससे गदहे की तरह निरन्तर काम लिया जाय।
लम्बापटहः	७।५५	एक प्रकार का पटह
लवणकलायी	७।५४	हरिण की आकृति की लकड़ी की पुतली
लामज्जकम्	७।६६	खस
लालातन्तुजम्	४।१४	कौशेय
लालिका	१।१०	लगाम का किनारा
लासकः	१।१६	नर्तक
लासकः	७।६८	शोरवा
लेप्यकारकः	४।१४	खिलौने बनाने वाला
लेशिकः	२।३०	हाथी पर चढ़ने वाला ; हाथी के आगे-आगे दौड़ने वाला।
लोहिताङ्गः	२।३१	मंगल
वक्रचारः	२।३१	वक्रगमन, प्रतीपगमन
वङ्गकः	७।६६	वैंगन
वठरः	३।४१	मूढ़, मूर्ख
वण्ठः	७।५८	अविवाहित, तरुण
वध्रम्	७।५८	चाम की पट्टी
वरत्रा	७।५४	हाथी का जेरवन्द
वरवर्णिनी	१।१६	सुन्दर स्त्री
वर्चस्	७।६५	पुरीष
वर्णकविः	१।१६	वर्ण नामक गीति की रचना करने वाला
वर्षः	३।३८	देश ; वृष्टि

वशिका	२।३७	शून्य, रिक्त
वहंलिहा	८।८४	छिद्रान्वेषिणी
वाटः	२।२२	उद्यान का घेरा
वाटकः	६।५२	उद्यान
वाणिनी	१।१४	दूती
वातखुडः	८।७६	वातव्याधि
वातहरिणः	१।६	तेज दौड़ने वाला हरिण
वातिकः	४।११	धूर्त, भ्रामक
वाध्रीणसः	७।५८	गैंड़ा
वामी	४।१५	घोड़ी
वारबाणः	१।१०	कोट की तरह पहनावा
वारवाजी	७।५४	प्रदर्शन के काम में आने वाला घोड़ा
वार्द्धुषिकः	६।३६	व्याज पर रुपया देने वाला
विकर्णः	८।७०	एक प्रकार का बाण
विकिरः	२।२२	पक्षी
विक्षेपः	२।२६	कर
विघसः	७।५८	खाने से बचा हुआ
विटकवीटकम्	४।७	पचास पानों की गड्डी
विदारी	८।७६	एक पौधा
विद्राणः	५।२२	जगा हुआ
विनायकः	८।८४	विघ्न
विपक्षः	१।१८	पर्वत
विप्रतीसारः	२।३६	पश्चात्ताप
विप्रुष्	५।२२	बूंद
विरोचनः	१।७	सूर्य
विवादी	३।३६	वे स्वर परस्पर विवादी कहे जाते हैं, जिनमें बीस श्रुतियों का अन्तर होता है।
विशङ्कटः	६।३८	बड़ा
विशाखिकादण्डः	३।४७	रुद्राङ्कुश, डंडा
विशारदः	७।५३	शुक्ल
विसंस्थुला	१।६	अस्थिर
विहसतिका	८।८३	मन्द स्मित
विहस्तता	५।२३	अक्षमता
वीतंसः	७।६८	जाल, पिंजड़ा
वीध्रकः	२।२८	विमल
वृजिनम्	२।३४	कलुष, टेढ़ा
वृषविवाहः	३।४३	वृषोत्सर्ग
वृषी	१।४	व्रती का आसन
वेगदण्डः	७।५५	तरुण हाथी
वेत्राग्रम्	७।५८	वंशांकुर
वेसरः	७।५५	खच्चर
वैक्ष्यकम्	१।३	जनेऊ की भांति पहनी गई माला
वैकर्तनः	७।६४	कर्ण

वैजननः	१।११	सूतिमास
वैदेहकः	३।४४	वणिक्
वैवधिकता	१।४	वहंगी ढोना
व्यंसितः	७।५६	वंचित
व्यञ्जनम्	६।३७	दाढ़ी
व्यधनम्	७।६८	मारना, छेदन
व्यवधानम्	७।६८	टट्टी
व्यवहारी	५।२२	व्यापारी
व्याक्रोशी	५।२७	कौए की कांव-कांव की ध्वनि
व्याघ्रपल्ली	७।५५	फूस से छाई हुई झोपड़ी
व्याघ्रयन्त्रम्	७।६८	बाघ को फँसाने के काम में आने वाला जाल
व्यालः	१।१८	शठ
व्युत्थानम्	४।२	समाधिनिवृत्ति
व्योकारः	७।६८	लोहार
शकुरः	७।६६	पालतू
शफरुकम्	४।७	टोकरी, समुद्ग
शम्भली	२।३७	कुटनी
शरारुः	२।३६	नाशक
शललम्	२।२२	साही का काँटा
शलाटुः	८।७२	कच्चा फल
शल्यम्	४।११	वाण की नोंक
शस्तम्	२।२८	पट्टिकाडोर, पटका ; अंगुष्ठरक्षक, दस्ताना
शाक्वरः	७।५८	बैल
शातकौम्भम्	७।५३	सोना
शाराजिरः	४।१४	शराव
शारिः	७।५४	हाथी का झूल
शासनवलयः	७।५३	मुद्राकटक, वह कड़ा जिसमें राजकीय मुद्रा पिरोई रहती थी।
शिक्यम्	८।२१	सिकहर
शिखण्डखण्डिका	१।६	चूड़ाभरण
शिग्रुः	७।६६	सहिजन
शिबिका	५।३२	पालकी
शिरोरक्षी	५।२२	शरीर की रक्षा करने के लिए साथ-साथ चलने वाला सेवक, आसन्न परिचारक।
शुङ्गा	७।६६	कली का कोष
शूकः	२।२२	नोंक
शृङ्गारः	२।३१	सिन्दूर से हाथी को अलंकृत करना
शैलाली	१।१६	नट, नर्तक
श्यामा	३।४४	सुन्दर स्त्री

'शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे या सुखशीतला।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते॥'

V.S. Apte : The Student's Sanskrit-English Dictionary, p.564.

श्येनः २।२३ श्वेत
श्वाविधः २।२२ शिशुमार, साही
श्वेतभानुः ५।२७ चन्द्र
संवर्गणम् ४।१३ पूजा
संवाहिका १।१९ पैर आदि दबाने वाली
संस्तवः १।२० परिचय
संस्थापनम् ८।८० सान्त्वना
सङ्कुलिती ४।६ प्रवीण, जानने वाला
सञ्चारकः १।१६ गुप्तचर
सतुला ७।५५ जांघिया
सनाभिः ५।३५ सपिण्ड
सन्दानितः १।१० बद्ध
सन्नद्धः ३।५० कवच से मुक्त
सप्तार्चिः ७।६० अग्नि
समवर्ती २।३६ यम
समायोगः ७।५५ पट्टी का जोड़
समायोगः ७।५६ सेना का व्यूह-बद्ध प्रदर्शन
समुद्गकः ३।४६ पेटी
समूरुकः ७।६१ मृग-विशेष
सरघा २।२६ मधुमक्खी
सवनम् १।५ यज्ञ ; स्नान
सहकारः १।६ सुगन्धित द्रव्य-विशेष
सादी ७।५५ घुड़सवार
सिद्धार्थकः २।२५ सफेद सरसों
सिद्धिः ४।२ पकना
सुधासूतिः १।७ चन्द्रमा
सुवीथी ५।२२ गृह-प्रान्त
सुरसः ७।६९ तुलसी
सूत्रधारः ४।१४ बढ़ई
सृणिः १।६ अंकुश
सैरिकः ७।६९ हलवाहा
सौविदल्लः ५।२८ कञ्चुकी
स्कन्नः ८।७० झुका हुआ
स्तम्बेरमः २।२२ हाथी
स्तवरकम् ४।१४ एक प्रकार का वस्त्र
स्थपुटम् ३।४५ नतोन्नत
स्थानकम् २।२४ अंगविन्यास, स्थिति
स्थानपालः ७।५४ चौकी का अधिकारी ; अश्वपाल
स्थासकः ४।१४ शरीर में सुगन्धित द्रव्य लगाना
स्फिच् ३।४७ नितम्ब
स्वर्भानुः ५।२७ राहु
स्वस्थानम् ७।५५ सुथना
हरिः ४।१० सूर्य ; विष्णु
हरिणः २।२३ पीला

हलहलकः	८।८०	उत्कण्ठा
हस्तकः	७।५८	सलाख, शूल
हिञ्जीरः	७।५४	हाथी के पैर में बाँधी जाने वाली शृंखला
हैरिकः	१।१९	सोनारों का अध्यक्ष
ह्लादिनी	१।१७	वज्र ; बिजली

कादम्बरी

	पृष्ठ	
अधररुचकम्	१४५	अधर का निष्क (सोने का गोल सिक्का) की भांति लटकता हुआ भाग ।
अनन्तः	२३४	वासुकि
अनिमिषः	१००	मछली
अपध्यानम्	५८	दुश्चिन्तन, अनिष्ट चिन्तन
अप्रतिपत्तिः	२९६	विषयों में अरुचि, अथवा अनिश्चय
अब्रह्मण्यम्	३०७	'अवध्य है' यह कथन
अरिष्टः	१३७	नीम का वृक्ष
अवचूलम्	२१४	कर्णाभरण
अवचूलचामरकलापः	५३	वे चामर, जिनके वाल नीचे की ओर लटके हों ।
अवतरणकमङ्गलम्	१३७	उतारा, भूत आदि की वाधा को उतारनें के लिए की जाने वाली मांगलिक क्रिया ।
अवष्टम्भः	२९०	चित्तवृत्ति-निरोध
असुरविवरप्रवेशः	३९९	भूमि में प्रवेश करके असुर या पिशाच साधना
आकेकरा	१५९	थोड़ा वक्र
आपानकम्	६३	मद्यपान-गोष्ठी
आपीडः	२३४	शेखर, हार
आर्यवृद्धा	१४३	बच्चों की देवी का नाम, शिशुमाता
आस्थानमण्डपः	२८	सभा-मण्डप
आहर्त्ता	८	अनुष्ठाता
इरंमदः	१४०	मेघ से उत्पन्न अग्नि
उच्छ्रायः	२००	अभ्युदय; ऊँचाई
उत्प्रासः	१६४	हँसी, मजाक
उद्धूलनम्	२३६	भस्म से अंगों का लेप
उपग्रहः	२८१	अनुकूलता
उपयाचितकम्	१२९	मन की इच्छा की सिद्धि के लिए देवता को चढ़ाने के लिए प्रतिज्ञात वस्तु, मानता ; भैक्ष्यचर्या (भानुचन्द्र) ।
उपशल्यकम्	९९	ग्रामान्त, गाँव के समीप का खुला स्थान
उपश्रुतिः	१३०	रात में बाहर निकलकर सुना गया शुभ अथवा अशुभ वचन—

"नक्तं निर्गत्य यत्किञ्चिच्छुभाशुभकरं वचः ।
श्रूयते तद्विदुर्धीरा देवप्रश्नमुपश्रुतिम् ॥"
V.S. Apte : The Student's Sanskrit-English Dictionary, P. 114.
भविष्य बताने वाली रात्रि-सम्बन्धी देवी ।

उपसृष्टः	२०४	भूताविष्ट, पिशाचाविष्ट
उलपः	२२९	लता, वल्ली
ऋक्षः	३९	तारा
कण्टकः	२२५	राज्य की शान्ति में विघ्न डालने वाले डकैत आदि
कण्ठयोगः	२४९	रागों का अवस्थान-विशेष
कर्पटम्	३९३	चीर
कालेयकम्	२६१	काला चन्दन
कीर्तनम्	२२५	प्रासाद या देवमन्दिर
कुलगृहम्	२६१	पितृगृह, पीहर
कुलभवनम्	८	राजकुल-प्रासाद
कुवादी	३९८	कुवैद्य
कुहकः	३९९	इन्द्रजाल
कृतार्थता	२७३	पति-समागम की प्राप्ति से स्त्री का स्खलन, गर्भाधान ।
क्रोडः	५४	सूअर
क्षयः	१०३	भवन
खड्गधेनुका	६१	छुरी
खलः	१०१	खलिहान
खुरधारणी	३७७	काष्ठ से आच्छादित, घोड़े के खुरों के नीचे की भूमि ।
गण्डकः,म्	४०	एक प्रकार का आभूषण ; गँड़ा ।
गण्डूकः	४०१	गोलचिह्न (दण्ड के आघात से द्रविड़धार्मिक के शरीर पर गोल चिह्न बन गये थे) ।
गन्धगजः	११७	श्रेष्ठ हाथी, वह हाथी जिसकी गन्ध के कारण विपक्षी हाथी उसके सामने टिक न सकें ।
गारुडम्	१०१	सर्प के विष को उतारने का मन्त्र
गुल्मकः	२४१	सेना की टुकड़ी
गोधा	३९८	गोह
गोलिका	३९८	छिपकली
गौल्मिकः	३९१	सेना की टुकड़ी का व्यक्ति
चूलिका	२१५	प्रान्तभाग
जटा	११२	जड़
जलघटीयन्त्रम्	९९	रहट की भांति यन्त्र-विशेष
जालमार्गः	११	छद्ममय विधि
टङ्कनम्	२३०	प्रस्तरदारक, वह पदार्थ जिससे पत्थर तोड़ा जाता है।
तरङ्गः	२००	रत्न का एक दोष
ताम्बूलकरङ्कवाहिनी	[illegible]	[illegible] और पान के लिए आवश्यक सामग्री

		लेकर अपने स्वामी के साथ रहने वाली स्त्री।
तारः	६६	प्रणव, ब्रह्म
तालपत्रम्	४०	एक प्रकार का कर्णाभरण
तालीपट्टाभरणम्	३४१	"
तालीपुटम्	१८६	"
तिमिरः	२०१	नेत्र-रोग
तुलाकोटिः	११६	नूपुर
तृणपुरुषकः	३६४	पशुओं को डराने के लिए खेत में खड़ा किया जाने वाला तृण का पुतला।
त्रिपदी	१७०	हाथी के पैरों में बाँधी जाने वाली शृंखला; हाथी का एक पैर उठाकर तीन पैरों पर खड़ा होना।
दंशितः	२४१	कवचधारी सैनिक
दन्तपत्रम्	२१	एक प्रकार का कर्णाभरण
दन्तवलभिका	१००	हाथी के दाँतों से निर्मित चन्द्रशाला
दन्तवीणा	३८३	बतीसी, शीत के कारण कम्पित होने से दाँतों के परस्पर संघर्षण से उत्पन्न शब्द।
दृढबन्धः	१०	ओजोगुणयुक्त पद-रचना, समासभूयस्त्व से युक्त पदरचना।
धर्मपटः	१८३	बोधिसत्त्व के अष्टादश आवेणिक धर्म; वे धर्म या विशेषतायें जिनसे बोधिसत्त्व की पहचान होती है।
धवित्रम्	६७	मृगचर्म का पंखा
धातुवादः	३६६	सोना बनाने की विद्या
धूमवर्तिः	५०	धूमवत्ती, सिगरेट आदि की भाँति पदार्थ-विशेष
धेनुका	६१	हथिनी
नक्षत्रमाला	२२	हाथी के शिर पर पहनाई जाने वाली माला
नक्षत्रमाला	१७६	सत्ताईस मोतियों की माला
नागदन्तः	१०३	खूँटी
नागलता	२४१	पान की लता
नाराचः	१८६	लोहे का बाण
निधिवादः	३६६	गड़ा हुआ धन बताना
निर्घातः	२११	झंझावात
निशान्तम्	१७८	भवन
नेत्रम्	४१	वृक्ष की जड़
पक्षकम्	१३६	पक्षद्वार
पक्षचरः	५५	झुंड से अलग होकर घूमने वाला हाथी, यूथभ्रष्ट, एकचर।
पटलकम्	१३७	रक्तवस्त्रनिर्मित गृह, डोला
पटलकम्	१६१	टोकरी
पट्टिशः	३६६	पैनी नोक का भाला
पत्रभङ्गः	११६	सौन्दर्य-वृद्धि के उद्देश्य से स्त्रियों के द्वारा कस्तूरी, केशर आदि के लेप से भाल, कपोल आदि पर बनाया गया चित्र या रेखा।
पत्ररथः	४७	पक्षी

पत्रलता	११६	देखिये 'पत्रभङ्ग'
पललम्	१२६	पिष्टतिलयोजित अन्न, अंदरसा
पानम्	२०४	निशान-घर्षण, सान से तेज करना
पारावतः	२४१	वानर
पारिहार्यः	११७	कटक
पाषाणभेदकमञ्जरी	२२६	पखानभेद नामक ओषधि की मंजरी
पिष्टम्	८२	चूर्ण
पुंनागः	२४१	नागकेसर
पुत्रिका	१४२	स्याही से बनाई गई आकृति—

"यस्मिन् गृहे प्रसूतिर्जायते तद्द्वारदेशे क्रम-व्युत्क्रमाभ्यां मषीलिखिते संश्लिष्टे पुत्रिके क्रियेते इति वृद्धाचारः। कैश्चित्तु बहुपुत्रिका नाम श्लक्ष्णफलैरुपेतो विटपिविशेषः कथ्यते। शता-बरीत्यन्ये।"

भानुचन्द्र-कृत टीका, पृ० १४२।

पुष्करम्	७८	हाथी की सूंड़ के आगे का भाग
पुस्तकव्यापारः	१५०	पुस्तकर्म या मिट्टी-चूने का खिलौना बनाने की कला
पुस्तमयी	२२१	मिट्टी आदि की स्त्री-मूर्ति
पूर्णपात्रम्	१२५	उत्सवों पर सुहृदों द्वारा बलात् छीने गये वस्त्र आदि—

'उत्सवेषु सुहृद्भिर्यत्र बलादाकृष्य गृह्यते।
वस्त्रं माल्यं च तत्पूर्णपात्रं पूर्णानकं च॥'

कादं०, भानुचन्द्र-कृत टीका, पृ० १२५।

प्ता	७४	जटा
प्रतिच्छन्दकः	१८५	प्रतिरूप
प्रतिपत्तिः	२५३	आचार
प्रतिपादुका	५१	पैर रखने के लिये पीठ
प्रतिमा	१७०	दन्तबन्ध, हाथी के दाँत में पहनाने का कड़ा
प्रतिशयितम्	४००	धरना देना
प्रतिसंख्यानम्	२९०	अध्यात्म-ज्ञान
प्रत्यादेशः	९	लज्जित करने वाला, पछाड़ने वाला
प्राग्वंशः	१७६	हवन-शाला के पूर्व की ओर का गृह-विशेष
प्रालम्बः	१०५	हार, आभूषण
बन्धकी	४१४	कुलटा
बन्धुरम्	५	मनोहर
बलाधिकृतः	१५२	सेनापति
बालेयः	१८९	गदहा
बुद्बुदः	२००	रत्न का एक दोष
बुद्बुदः	३९४	बुलबुले की भांति अलंकार; यह अलंकार गोल था और बीच में बुलबुले की तरह उठा रहता था।
भारद्वाजः	२४१	एक प्रकार का पक्षी

भृङ्गराजः	२३६	पक्षि-विशेष
भृङ्गरिटिः	२६२	शिव जी का द्वारपाल
मधुकोशकः	४०	मदिरा का पात्र ; मधुमक्खियों का छत्ता
मधुपङ्कः	१५७	वातादि दोषों की शान्ति के लिए घोड़े के शरीर पर मधुयुक्त वचादि-चूर्ण के पंक से किया गया लेप ।
मर्दलः	१४८	वाद्य-विशेष
महत्तरिका	१३३	प्रधान दासी
महानरेन्द्रः	१२६	महाविषवैद्य
महावीरः	६	मखाग्नि
मातृपटः	१४३	कपड़े पर बनाये गये माताओं के चित्र
मूलम्	२००	राजा का अपना राज्य
यात्रा	११२	उत्सव
योक्त्रम्	१३६	मुख-बन्धन
योगः	११२	विषाग्निप्रयोग (भानुचन्द्र) ; तांत्रिककर्म
योगपट्टिका	२५४	शरीर के ऊपरी भाग को ढँकने के काम में आने वाला योगी का वस्त्र ।
रूपः	२३	मृग
रेचकमण्डलम्	२११	तिर्यग्भ्रमणमण्डल (भानुचन्द्र)
ललामम्	६८	अलंकार
लेख्यम्	१५०	लेखन, लेखपत्र
वर्णकम्बलः	१५५	हाथी अथवा घोड़े का झूल
वर्धमानम्	१४३	शराव, पात्र
वर्षवरः	१७३	नपुंसक
वारबाणः	१६८	कञ्चुक
वारिः	११२	हाथी को पकड़ने के लिए बनाया हुआ स्थान
वारुणम्	३६	मद्य ; वरुण नामक वृक्षों का समूह (भानुचन्द्र)
विच्छित्तिः	११३	रंगों से शरीर को रञ्जित करना; विच्छेद
विटङ्कः	३	उन्नत स्थान
विटपकः	२००	वञ्चक राजा
विडम्बितः	२६१	विह्वलीकृत
विधानम्	६	मद को बढ़ाने के लिए हाथी को दिया जाने वाला भक्ष्य-विशेष ।
विप्रश्निका	१२६	शुभ तथा अशुभ बताने वाली स्त्री, दैवज्ञा
विषम्	११२	जल
विष्टरश्रवाः	१४५	विष्णु
वीरपुरुषघातस्थानम्	३६२	वीरों का चौरा
वैकक्षकम्	१४८	जनेऊ की तरह पहनी गई माला
व्यासङ्गः	१४८-१४६	आसक्ति
शक्तिवलयम्	१३६	मयूर की पूँछ का बनाया गया वह कटक, जो मंत्रों द्वारा शक्ति-सम्पन्न कर दिया जाता था ।
शक्रगोपकः	१६२	वीरबहूटी
शङ्खः	१६६	ललाट की हड्डी
शतह्रदा	३६	विद्युत्

शाखानगरम्	१०२	नगर के समीप का छोटा नगर
शालभञ्जिका	३४	गुड़िया, पुतली
शासनम्	२२५	राजा द्वारा दान में दी गयी भूमि या ग्राम
शिरसिजः	३२८	शिर का बाल
शिलीमुखः	३८	भ्रमर ; लोहखण्ड (भानुचन्द्र)
शीतलप्रदीपः	१३७	कच्ची मिट्टी का दीपक ; कर्पूरप्रदीप (भानुचन्द्र)
शूकः	३८२	नोक
शृङ्गम्	११६	जल भर कर क्रीड़ा करने के काम में आने वाला यन्त्र-विशेष, पिचकारी की तरह यन्त्र-विशेष।
शृङ्गाटकः	९९	चतुष्पथ, चौराहा
संवर्तिका	६६	नवदल, कमल का नया पत्ता
संविभागः	२०६	पारितोषिक
संस्कारः	२६	व्याकरणजनित शुद्धि
सातम्	२७७	सुख
सामजः	२१७	हाथी
सारणा	१६३	वीणा-वादन ; तन्त्री (भानुचन्द्र)
सुब्रह्मण्या	७८	उद्गाता के गान की विशेष विधि
सौगन्धिकम्	४५	श्वेत कमल
हंसपाली	३४२	गृह-हंसों की रक्षा करने के लिए नियुक्त परिचारिका

●

परिशिष्ट २

सुभाषितसंग्रहों में बाणभट्ट के नाम से उद्धृत श्लोक

यहाँ प्रमुख सुभाषितसङ्ग्रहों में बाण के नाम से प्राप्त होने वाले श्लोक प्रस्तुत किये गये हैं। जो श्लोक बाण की उपलब्ध रचनाओं में मिलते हैं, उनका निर्देश श्लोक के अन्त में कर दिया गया है। एक श्लोक का निर्देश एक ही बार किया गया है। यदि पहले के सुभाषित-सङ्ग्रह में कोई श्लोक मिलता है और दूसरे सङ्ग्रह या सङ्ग्रहों में भी प्राप्त होता है, तो पहले के सुभाषितसङ्ग्रह के अन्तर्गत वह पूरा उद्धृत किया गया है और अन्य सङ्ग्रह या सङ्ग्रहों में संक्षिप्त निर्देश किया गया है।

कहीं-कहीं सुभाषित-ग्रन्थों और बाण की रचनाओं में प्राप्त श्लोकों में सामान्य पाठभेद भी मिलता है।

कवीन्द्रवचनसमुच्चय

(कर्ता अज्ञात)

१. तापं स्तम्बेरमस्य प्रकटयति करः शीकरैः....मुक्षन्
पङ्काङ्कं पल्वलानां वहति तटवनं माहिषैः कायकाषैः।
उत्ताम्यत्तालवश्च प्रतपति तरुणानांशवी तापतन्द्री-
मद्रिद्रोणीकुटीरे कुहरिणि हरिणा रात्रयो यापयन्ति ॥६३॥

२. डा० (वाताः ?) पान्थनखंपचाः प्रचयिनो गन्त्रीपथे पांशवः
कासारोदरशेषमम्वु महिपो मथ्नाति ताम्यत्तिमि।
दृष्टिर्धावति धातकीवनमसूक्तर्पण तारक्षवी
कण्ठान् बिभ्रति विष्कराः शरशमीनीडेपु नाडींधमान् ॥६४॥

३. पततु तवोरसि सततं दयिताधम्मिल्लमल्लिकाप्रकरः।
रतिरसरभसकचग्रहलुलितालकवल्लरीगलितः ॥३१२॥

श्रीधरदासकृत सदुक्तिकर्णामृत

१. मौलौ वेगादुदञ्चत्यपि चरणभरन्यञ्चदुर्वीतलत्वा-
दक्षुण्णस्वर्गलोकस्थितिमुदितसुरश्रेष्ठगोष्ठीस्तुताय।
सन्त्रासान्निःसरन्त्याप्यविरतविषजद्दक्षिणार्द्धाङ्गबन्धा-
दत्यक्तायाद्रिपुत्र्या त्रिपुरहर जगत्क्लेशहर्त्रे नमस्ते ॥ —१।३।१

२. नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे ॥ — १।३।२ (हर्ष० १।१)

३. निःशङ्क शङ्कर करग्रथिताहिभोग
भोगप्रद प्रदलितामरवैरिवृन्द ।
वृन्दारकार्चित चिताभसिताङ्गराग
रागातिदूर दुरितापहर प्रसीद ॥ –१।२१।१

४. पादावष्टम्भनम्रीकृतमहिषतनोरुल्लसद्‌बाहुमूलं
शूलं प्रोल्लासयन्त्याः सरलितवपुषो मध्यभागस्य देव्याः ।
विश्लिष्टस्पष्टदृष्टोन्नतविरलबहुव्यक्तगौरान्तराला-
स्तिस्रो वः पान्तु रेखाः क्रमवशविकसत्कञ्चुकप्रान्तमुक्ताः ॥ – १।२५।४

५. विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे ।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्नं
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ॥
– १।२५।५ (चण्डीशतक, ६६)

६. स्वेच्छारम्यं लुठित्वा पितुरुरसि चिरं भस्मधूलीचिताङ्गो
गङ्गावारिण्यगाधे झटिति हरजटाजूटतो दत्तझम्पः ।
सद्यः सीत्कारकारी जलजडिमरणद्दन्तपङ्क्तिर्गुहो वः
कम्पी पायादपायाज्ज्वलितशिखिशिखे चक्षुषि न्यस्तहस्तः ॥ – १।३०।१

७. मलयजपङ्कलिप्ततनवो नवहारलताविभूषिताः
सिततरदन्तपत्रकृतवक्त्ररुचो रुचिरामलांशुकाः ।
शशभृति विततधाम्नि धवलयति धारामविभाव्यतां गतः
प्रियवसतिं व्रजन्ति सुखमेव मियो निरस्तभियोभिसारिकाः ॥ – २।६५।२

८. अस्मिन्नीषद्वितत‍वलितस्तोकविच्छिन्नभुग्नः
किंचिल्लीलोपचितविनतः पुञ्जितश्चोत्थितश्च ।
धूमोद्‌गारस्तरुणमहिषस्कन्धनीलो दवाग्नेः
स्वैरं सर्पन् सृजति गगने गत्वरान् पत्रभङ्गान् ॥ – २।१६०।३

९. पुण्याग्नौ पुण्यवाञ्छः प्रथममगणितप्रोषदोषः प्रदोषे
पान्थस्तप्त्वा प्रसुप्तः प्रतततनुतृणे धामनि ग्रामदेव्याः ।
उत्कम्पी कर्पटार्द्धे जरति पदहतिच्छिद्रिते च्छिन्ननिद्रो
वाते वाति प्रकामं हिमकणिनि कणन् कोणतः कोणमेति ॥
– २।१७४।४

१०. द्वारं गृहस्य पिहितं शयनस्य पार्श्वे

वह्निर्ज्वलत्युपरि तूलपटो गरीयान् ।

अङ्केऽनुकूलमनुरागवशात्कलत्र-
मित्थं करोति किमसौ स्वपतस्तुषारः ॥ — २।१७८।१

११. यस्योद्योगे बलानां दिशि दिशि बलतामुज्जिहानै रजोभि-
र्जम्बालिन्यम्बरस्य स्रवदमरधुनीवारिपूरेण मार्गे ।
संसीदच्चक्रशल्याकुलतरणिकरोत्पीडिताश्वीयदत्त-
द्वित्रावस्कन्दमन्दः कथमपि चलति स्यन्दनो भानवीयः ॥ — ३।३५।१

१२. दाहच्छेदननिकषैरतिशुद्धस्यापि ते वृथा गरिमा ।
यदसि तुलामधिरूढं काञ्चन गुञ्जाफलैः सार्द्धम् ॥ — ४।१६।४

१३. घातयति महापुरुषान् सममेव बहूननादरेणैव ।
परिवर्तमान एकः कालः शैलानिवानन्तः ॥ — ५।७२।१
(हर्ष० ५।१६)

जल्हणकृत सूक्तिमुक्तावली

१. नमस्तुङ्ग............शम्भवे ॥ — १।१ (हर्ष० १।१)

२. हरकण्ठग्रहानन्दमीलिताक्षीं नमाम्युमाम् ।
कालकूटविषस्पर्शजातमूर्च्छागमामिव ॥ — १।२० (हर्ष० १।१)

३. अर्चिष्मन्ति विदार्य वक्त्रकुहराण्यासृक्ववतो वासुके-
स्तर्जन्या विषकर्बुरान् गणयतः संस्पृश्य दन्ताङ्कुरान् ।
एकं त्रीणि नवाष्ट सप्त षडिति प्रध्वस्तसङ्ख्याक्रमा
वाचः क्रौञ्चरिपोः शिशुत्वविकलाः श्रेयांसि पुष्णन्तु वः ॥ — २।४२

४. स्वेच्छारम्यं लुठित्वा.....न्यस्तहस्तः ॥ — २।४३

५. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ — ४।४७ (हर्ष० १।२)

६. कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया ।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥ — ४।५४ (हर्ष० १।१)

७. कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥ — ४।६२ (हर्ष० १।२)

८. दुःखानि सन्दिशन्त्यास्तस्याः कण्ठं मुहुर्मुहुर्बाष्पः ।
स्वल्पावशेषजीवितनिर्वाणभियेव निरुणद्धि ॥ — ३८।६

९. सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां
लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव ।
भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथजुषो नीलपक्ष्माण एते
यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति ॥ — ५३।१२

१०. कारञ्जीः कूजयन्तो निजजठररवव्यञ्जिता वीजकोशी-
रुत्पाकान् कृष्णलानां पृथुसुषिरगतान् शिम्बिकान् पाटयन्तः ।
झिल्लीकाझल्लरीणां बधिरितभुवनं झंकृतं खे क्षिपन्तः
शिञ्जानाश्वत्थपत्रप्रकरझणझणाराविणो वान्ति वाताः ॥ – ६०।२४

११. सर्वाशारुधि दग्धवीरुधि सदा सारङ्गबद्धक्रुधि
क्षामक्ष्मारुहि मन्दमुन्मधुलिहि स्वच्छन्दकुन्दद्रुहि ।
शुष्यत्स्रोतसि तप्तभूरिरजसि ज्वालायमानार्णसि
ग्रीष्मे मासि ततार्कतेजसि कथं पान्थ व्रजन् जीवसि ॥ – ६०।२६

१२. ग्रीष्मोष्मप्लोषशुष्यत्पयसि बकभयभ्रान्तपाठीनभाजि
प्रायः पङ्कैकशेषं गतवति सरसि स्वल्पतोये लुठित्वा ।
कृत्वा कृत्वा चलार्द्रीकृतमुपरि जरत्कर्पटार्धं प्रपायां
तोयं पीत्वापि पान्थः पथि वहति हहाहेति कुर्वन् पिपासुः ॥ – ६०।२७

१३. भ्राम्यच्चीत्कारिचक्रभ्रमभरितघटीयंत्रचक्रप्रमुक्त-
स्रोतः पूर्णप्रणालीपथसरणिसिरासारिसीत्कारि वारि ।
कौपं पान्थाः प्रकामं सितमणिमुसलाकारविस्फारिधारं
विक्षिप्तक्षुण्णमुक्ताकणनिकरनिभासारपातं पिबन्ति ॥ – ६०।२८

१४. गम्भीरोद्गर्जितेन त्रिभुवनविवरं व्याप्य भूकम्पदेन
प्राचीमाक्रम्य विश्वं परिपिबति पयोमेदुरे कालमेघे ।
दृष्ट्वा धाराकदम्बस्तबकधवलिताः प्रोषितैरुन्मयूरा
मूर्च्छाश्यामायमाना यममहिषकुलाकृष्यमाणा इवाशाः ॥ – ६१।११

१५ उद्यद्बर्हिषि दर्दुरारववपुषि प्रक्षीणपान्थायुषि
श्च्योतद्विप्रुषि चन्द्ररुङ्मुषि सखे हंसद्विषि प्रावृषि ।
मा मुञ्चोच्चकुचाग्रसन्ततपतद्बाष्पाकुलां बालिकां
काले कालकरालनीलजलदव्यालुप्तभास्वत्त्विषि ॥ – ६१।४०

१६. अन्योन्याहतदन्तनादमुखरप्रह्वं मुखं कुर्वता
नेत्रे साश्रुकणे निमील्य पुलकव्यासङ्गि कण्डूयता ।
हाहेति स्खलितां गिरं विदधता बाहू प्रसार्य क्षणं
पुण्याग्निः पथिकेन पीयत इव ज्वालाहतश्मश्रुणा ॥ – ६३।२५

१७. पुण्याग्नौ पुण्यवाञ्छः.....कोणतः कोणमेति ॥ – ६४।१२

१८. पततु तवोरसि......गलितः ॥ – ७६।२

१९. स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः ।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम् ॥—६७।२६
(काद०, पृ० २६)

२०. पश्चादङ्घ्री प्रसार्थ त्रिकनतिविततं द्राघयित्वाङ्गमुच्चै-
रासज्याभुग्नकण्ठो मुखमुरसि सटाधूलिधूम्रां विधाय।
घासग्रासाभिलाषादनवरतचलत्प्रोथतुण्डस्तुरङ्गो
मन्दं शब्दायमानो विलिखति शयनादुत्थितः क्ष्मां खुरेण ॥ १०२।४

(हर्ष० ३।४२)

२१. नाधन्यानां निवासं विदधति गिरयः शेखरीभूतचन्द्राः
शृङ्गैर्ज्योत्स्नाप्रवाहं धृतमिव तुहिनं दिङ्मुखेषु क्षिपन्तः।
येषामुच्चैस्तरूणामपि हृतगतिना वायुना कम्पिताना-
माकाशे विप्रकीर्णः कुसुमचय इवाभाति ताराग्रहौघः ॥–१०३।२६

शार्ङ्गधर-पद्धति

१. नमस्तुङ्ग........................ शम्भवे ॥६०॥

२. हरकण्ठग्रहानन्द .... मूर्च्छागमामिव ॥६८॥

३. विद्राणे रुद्रवृन्दे .... भवानी ॥११२॥

४. नवोक्तिर्जातिरग्राम्या श्लेषोक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥१५२॥

(हर्ष० १।१)

५. सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे गृहे।
उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव ॥१५७॥

(हर्ष० १।१)

६. मुखमात्रेण काव्यस्य करोत्यहृदयो जनः।
छायामच्छामपि श्यामां राहुस्तारापतेरिव ॥१६०॥

७. अङ्गणवेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य ॥२३०॥

(हर्ष० ७।५३)

८. मृत्युः शरीरगोप्तारं वसुरक्षं वसुंधरा।
दुश्चारिणी च हसति स्वपतिं पुत्रवत्सलम् ॥३८०॥

९. दामोदरकराघातविह्वलीकृतचेतसा।
दृष्टं चाणूरमल्लेन शतचन्द्रं नभस्तलम् ॥४९८॥

१०. सन्मार्गे तावदास्ते .... पतन्ति ॥३३००॥

११. उद्यद्बर्हिषि दर्दुरारववपुषि .... त्विषि ॥३३९७॥

१२. पततु तवोरसि .... गलितः ॥३६९५॥

१३. कारञ्जीः कुञ्जयन्तो .... वाताः ॥३८५१॥

१४. सर्वाशारुधि .... व्रजञ्जीवसि ॥३८५४॥

१५. ग्रीष्मोष्म .... पिपासुः ॥३८५५॥

१६. वाताकीर्णविशीर्णवीरणतृणश्रेणीझणत्कारिणी
ग्रीष्मे सोष्मणि चण्डसूर्यकिरणप्रक्वाथ्यमानाम्भसि ।
चित्तारोपितकामिनीमुखशशिज्योत्स्नाहृतक्लान्तयो
मध्याह्नेऽपि सुखं प्रयान्ति पथिकाः स्वं देशमुत्कण्ठिताः ॥३८५६॥

१७. भ्राम्यच्चीत्कार .... पिबन्ति ॥३८५७॥

१८. दूरादेव कृतोञ्जलिर्नं तु पुनः पानीयपानोचितो
रूपालोकनकौतुकात्प्रचलितो मूर्धा न शान्त्या तृषः ।
रोमाञ्चोपि निरन्तरं प्रकटितः प्रीत्या न शैत्यादपा-
मक्षुण्णो विधिरध्वगेन विहितो वीक्ष्य प्रपापालिकाम् ॥३८५६॥

१९. अन्योन्याहति .... ज्वालाहतश्मश्रुणा ॥३९३४॥

२०. पुण्याग्नौ .... कोपमेति ॥३९४६॥

२१. धृतधनुषि शौर्यशालिनि शैला न नमन्ति यत्तदाश्चर्यम् ।
रिपुसंज्ञकेषु गणना कैव वराकेषु काकेषु ॥३९६५॥

(हर्षं० ७४३)

वल्लभदेवकृत सुभाषितावलि

१. नमस्तुङ्ग .... शम्भवे ॥ ८ ॥

२. नवोर्थो .... दुष्करम् ॥१३७॥

३. मुखमात्रेण .... तारापतेरिव ॥१३८॥

४. एकैकातिशयालवः परगुणज्ञानैकवैज्ञानिकाः
सन्त्येते धनिकाः कलासु सकलास्वाचार्यचर्याचणाः ।
अप्येते सुमनोगिरां निशमनाद्बिभ्यत्यहो श्लाघया
धूते मूर्धनि कुण्डले कषणतः क्षीणे भवेतामिति ॥४६२॥

५. प्रीतिं न प्रकटीकरोति सुहृदि द्रव्यव्ययाशङ्कया
भीतः प्रत्युपकारकारणभयान्नाकृष्यते सेवया ।
मिथ्या जल्पति वित्तमार्गणभयात्स्तुत्यापि न प्रीयते
कीनाशो विभवव्ययव्यतिकरत्रस्तः कथं प्राणिति ॥४६३॥

६. करिकलभ विमुञ्च लोलतां चर विनयव्रतमानताननः ।
मृगपतिनखकोटिभङ्गुरो गुरुरुपरि क्षमते न तेऽङ्कुशः ॥६२२॥

(हर्षं० २।३६)

७. वरमियमङ्कुशक्षतिरलक्षितमापतिता
विनयविधित्सया शिरसि ते गजयूथपते।
न पुनरपश्चिमा करजवज्रशिखाभिहतिः
प्रसभसमुत्थितस्य निशिता वनकेसरिणः ॥६३२॥

८. तरलयसि दृशं किमुत्सुकामकलुषमानसवासलालिते।
अवतर कलहंसि वापिकां पुनरपि यास्यसि पङ्कजालयम् ॥६६५॥
(हर्ष० १।७)

९. वियोगिनी चन्दनपङ्कपाण्डुमृणालिकाहारनिबद्धजीवा।
बाला चलाम्भःकणदन्तुरेषु हंसीव शिश्ये नलिनीदलेषु ॥१०७५॥

१०. दुःखदशां प्रविशन्त्यास्तस्याः कण्ठं मुहुर्मुहुर्बाष्पः।
स्वल्पावशेषजीवितनिर्याणभियेव निरुणद्धि ॥१३६०॥

११. गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी सीदत इव
प्रदीपोयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो
कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम् ॥१६१२॥

१२. सर्वाशारुधि .... व्रजञ्जीवसि ॥१७०८॥

१३. दूरादेव कृतोञ्जलिर्न .... प्रपापालिकाम् ॥१७०९॥

१४. स्वेदाम्भःकणिकाचितेन वपुषा शीतानिलस्पर्शनं
तर्षोत्कर्षजुषा मुखेन शिशिरस्वच्छाम्बुपानादरः।
दूराध्वक्लमनिःसहैरवयवैश्छायासु विश्रान्तयः
कश्मीरान्परितो निदाघसमये धन्यः परिभ्राम्यति ॥१७१०॥

१५. ग्रीष्मोष्म .... पिपासुः ॥१७१५॥

१६. बभूव गाढसंतापा मृणालवलयोज्ज्वला।
उत्केव चन्दनापाण्डुघनस्तनवती शरत् ॥१७६१॥

१७. लवणाम्बुनिधेरम्भः कृत्स्नमुद्गीर्य तोयदाः।
दधुर्धवलतां भूयः पीतदुग्धार्णवा इव ॥१८०९॥

१८. नीलोत्पलवने रेजुः पादाः श्यामायिता रवेः।
घनबन्धनमुक्तस्य श्यामिकामलिना इव ॥१८१०॥

१९. हे हेमन्त स्मरिष्यामि याते त्वयि गुणद्वयम्।
अयत्नशीतं वारि निशाश्च सुरतक्षमाः ॥१८३६॥

२०. गम्भीरस्यापि सतः सम्प्रति गुरुशोकपीडितस्येव।
कूपस्यापि निशापगमे वाष्पेण निरुध्यते कण्ठः ॥१८३७॥

२१. द्वारं .... तुषारः ॥१८३५॥

२२. पततु तवोरसि ....पतितः ॥२१२०॥

२३. घृतधनुषि .... काकेषु ॥२२६६॥

२४. अङ्गणवीथी वसुधा .... धीरस्य ॥२२७०॥

२५. पश्चादङ्घ्रिं प्रसार्य .... खुरेण ॥२४२०॥

२६. घ्रात्वा श्रोणीमजाया विततमभिमुखं नाससंकोचभङ्गं
स्थित्वा सूर्यं निरीक्ष्य प्रविकसितसटो घट्टयन् क्ष्मां खुरेण।
व्लोव्लोकारान्प्रकुर्वन्मणिशकलनिभं चालयन्नेत्रयुग्मं
छागश्चाटूननेकांश्चतुर इव विटो मन्मथान्धः करोति ॥२४२३॥

२७. स्तनयुगमश्रुस्नातं .... रिपुस्त्रीणाम् ॥२४८२॥

२८. वक्त्राम्भोजं सरस्वत्यधिवसति सदा शोण एवाधरस्ते
बाहुः काकुत्स्थवीर्यस्मृतिकरणपटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः।
वाहिन्यः पार्श्वमेताः सुचिरपरिचिता नैव मुञ्चन्त्यभीक्ष्णं
स्वच्छेन्तर्मानसेस्मिन्कथमवनिपते तेम्बुपानाभिलाषः ॥२५६२॥

परिशिष्ट ३

कवियों द्वारा बाणभट्ट की प्रशस्ति

१. यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः ।

दी इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, १६२६, भाग ५ सप्लिमेन्ट, रसार्णवालंकार ३।८७

२. लावन्नवयणसुहया सुवन्नरयणुज्जलाय वाणस्स ।
चन्दावीणस्स वणे जाया कायम्बरी जस्स ।।
(लावण्यवचनसुखदा सुवर्णरचनोज्ज्वला च बाणस्य ।
चन्द्रापीडस्य वने जाता कादम्बरी यस्य ।।)

इन्द्रसूरि : कुवलयमाला (दे०—संस्कृतिसाहित्यपरिषत्पत्रिका, भाग १४, संख्या १, पृ० ३३) ।

३. हालेनोत्तमपूजया कविवृषः श्रीपालितो लालितः
ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीताः शकारातिना ।
श्रीहर्षो विततार गद्यकवये वाणाय वाणीफलं
सद्यः सत्क्रिययाऽभिनन्दमपि च श्रीहारवर्षोऽग्रहीत् ।।

अभिनन्द : रामचरित, अध्याय ३३ ।

४. शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः ।

त्रिविक्रमभट्ट : नलचम्पू, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ५ ।

५. केवलोऽपि स्फुरन् वाणः करोति विमदान् कवीन् ।
किं पुनः क्लृप्तसंधानपुलिन्ध्रकृतसंनिधिः ।।
कादम्बरीसहोदर्या सुधया वैबुधे हृदि ।
हर्षाख्यायिकया ख्यातिं वाणोऽब्धिरिव लब्धवान् ।।

धनपाल : तिलकमञ्जरी, श्लो० २६-२७ ।

६. सचित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीपतिः ।
श्रीहर्ष इव सङ्घट्टं चक्रे वाणमयूरयोः ।।

पद्मगुप्त : नवसाहसाङ्कचरित २।१८

७. श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु ।
गीर्हर्ष एव निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः ।।

सोड्ढल : उदयसुन्दरीकथा, पृ० २ ।

बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य शक्तिं न केऽत्र कवितास्त्रमदं त्यजन्ति ।

वही, पृ० ३ ।

बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती चकास्ति यस्योज्ज्वलवर्णशोभा ।
एकातपत्रं भुवि पुष्यभूतिवंशाश्रयं हर्षचरित्रमेव ॥

वही, पृ० १५४ ।

रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ।

वही, पृ० १५७ ।

८. जातः शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥
गोवर्धनाचार्य : आर्यासप्तशती, श्लो० ३७ ।

९. बाणः सुवन्धुः कविराजसंज्ञो विद्यामहामाधवपण्डितश्च ।
वक्रोक्तिदक्षाः कवयः पृथिव्यां चत्वार एते नहि पञ्चमोऽस्ति ॥
विद्यामाधव : पार्वतीरुक्मिणीय (दे०—संस्कृत-साहित्य-परिषत्पत्रिका, भाग १३, संख्या १, पृ० ३५-३६ ।)

१०. हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण यदर्पितानि गुणिने बाणाय कुत्राद्य तत् ।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिविसरैरुट्टङ्किताः कीर्तय-
स्तत् कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ्मन्ये परिम्लानताम् ॥
रुय्यक : व्यक्तिविवेकव्याख्यान, द्वितीय विमर्श ।

११. मेण्ठे स्वर्द्विरदाधिरोहिणि वशं याते सुवन्धौ विधेः
शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणे विषादस्पृशः ।
मङ्खक : श्रीकण्ठचरित २।५३

१२. यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥
जयदेव : प्रसन्नराघव १।२२

१३. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥
कविराजसूरि : राघवपाण्डवीय १।४१

१४. रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
तत्किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥
धर्मदाससूरि : विदग्धमुखमण्डन ४।२८

१५. अवन्तिः काव्यमानर्च भर्चोमौंखरिशेखरः ।
शिष्यो बाणश्च संक्रान्तकान्तवेद्यवचाः कविः ॥

सहर्षचरिता शश्वद्धृतकादम्बरीस्यदा ।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा चरति क्षितौ ॥
बाणेन हृदि लग्नेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
प्रायः कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥
शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरुच्यते ।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥
जल्हणकृत सूक्तिमुक्तावली के पृ० ४४-४७ पर राजशेखर के नाम से उद्धृत ।

१६. युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः ।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः ॥
सोमेश्वरदेव : कीर्तिकौमुदी १।१५

१७. वाणीपाणिपरामृष्टवीणानिक्वाणहारिणीम् ।
भावयन्ति कथं वान्ये बाणभट्टस्य भारतीम् ॥
गङ्गादेवी : मधुराविजय १।८

१८. बाणादन्ये कवयः काणाः खलु सरसगद्यसरणीषु ।
इति जगति रूढमयशो वामनबाणोऽपमार्ष्टि वत्सकुलः ॥
वामनभट्टबाण : वेमभूपालचरित, उच्छ्वास १, पृ० १ ।
प्रतिकविभेदनबाणः कवितातरुगहनविहरणमयूरः ।
सहृदयलोकसुबन्धुर्जयति श्रीभट्टबाणकविराजः ॥
जयति कविभट्टबाणे दधति कविंमन्यभावमन्येऽपि ।
प्रद्योतयति रवौ द्यां खद्योताख्या न किंनु कीटमणेः ॥
सगुणालंकृतिसुभगा भणितिरियं भट्टबाण भवदीया ।
अधरयति विधुतनखमुखमुखरितवीणानिनादमाधुर्यम् ॥
वही, चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २१० ।

१९. बाणं सत्कविगीर्वाणमनुबध्नाति कः कविः ।
सिन्धुमन्धुः किमन्वेति द्युमणिं वा तमोमणिम् ॥
वामनबाण : रघुनाथचरित (See S. V. Dixit Bāṇabhṭṭa : His Life and Literature, p. 164)

२०. वक्रिमाणमनुज्झन्तो बाणस्य भणितिक्रमाः ।
कस्य न प्रीतये हृद्याः कान्तानां च दृगञ्चलाः ॥
माधव : नरकासुरविजय (See M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 217).

२१. बाणः धुरीणः कविपुङ्गवेषु प्रकाशतां भव्यफलोदयश्रीः ।
अमुञ्चमानोऽपि गुणं परेषां विव्याध मर्माणि विशेषतो यः ॥
राजचूडामणिदीक्षित । रुक्मिणीकल्याण १।१४

२२. श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे-
लंकारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णके।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥

चन्द्रदेव (दे०—शार्ङ्गधरपद्धति, श्लो० १७७)।

२३. परिशीलितैव सरसं कविराजैर्बहुभिरत्र वाग्देवी।
बाणेन तु वैजात्यात् कथयति नामैव वाणीति ॥

(See S. V. Dixit : Bāṇabhaṭṭa : His Life and Literature, p. 164.)

२४. दण्डीत्युपस्थिते सद्यः कवीनां कम्पतां मनः।
प्रविष्टे त्वन्तरं बाणे कण्ठे वागेव रुध्यते ॥

वही, पृ० १६६।

२५. बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्।

वही, पृ० १६४।

२६. कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते।
कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते ॥

See M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 441.

२७. कादम्बरीरसेनैव सौहित्यं जायते नृणाम्।
बाणभट्टवचोभङ्गीमनादृत्य कुतः सुखम् ॥
इयञ्च रचना लोकान् मदयन्ती प्रियाऽनिशम्।
भावैर्विसृत्वरैर्भाति रसालङ्कारकोटिभिः ॥
प्रेम्णोऽनुबद्धलालित्यं सौहार्द्यं परमाद्भुतम्।
लौकिकव्यवहारस्य विवृतञ्च विभावनम् ॥
प्रतिपादनसामग्र्यं ज्ञानसम्भारमण्डनम्।
एकत्रैव समाकृष्टं प्रीत्यै भवति सर्वदा ॥
सरसाऽप्यरसा चोक्ता सुवर्णा विदुषां हृदि।
प्रसूतेऽमन्दमानन्दं स्फुरन्ती हितकाम्यया ॥

अमरनाथ पाण्डेय : महाकविश्रीबाणभट्टगौरवम्, गुरुकुल-पत्रिका, फाल्गुन-चैत्र, २०२५, पृ० ३४९-३५०।

सहायक साहित्य

संस्कृत-हिन्दी

अग्निपुराण : सम्पा०—पं० बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी, १९६६ ई० ।

अभिधानचिन्तामणि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६४ ई० ।

अभिनन्द : कादम्बरीकथासार, संवत् १९५७ वि० ।

अभिनन्द : रामचरित, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज़, १९३० ई० ।

अमरकोष, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी, १९५७ ई० ।

अमरचन्द्रयति : काव्यकल्पलतावृत्ति, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी, १९३७ ई० ।

अमरनाथ पाण्डेय : बाणभट्ट का आदान-प्रदान, शब्दलोक प्रकाशन, वाराणसी, १९६७ ई० ।

अमरु : अमरुशतक, अर्जुनवर्मदेव की टीका से युक्त, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८८९ ।

अमरु : अमरुशतक, रविचन्द्र-विरचित टीका से समन्वित, संवत् १९४४ ।

आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी, १९४० ई० ।

आनन्दानुभव : न्यायरत्नदीपावलि, मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल सिरीज़, १९६१ ई० ।

आश्वलायनगृह्यसूत्र, त० गणपति शास्त्री द्वारा संशोधित, १९२३ ई० ।

ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१६ ।

ऋग्वेदसंहिता, प्रथम तथा चतुर्थ भाग, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना ।

ए० बी० कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास, अनु० डा० मंगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६० ई० ।

कन्हैयालाल पोद्दार : संस्कृत साहित्य का इतिहास (प्रथम भाग), नवलगढ़ १९३८ ई० ।

कल्हण : राजतरंगिणी, पंडितपुस्तकालय, काशी, १९६० ई० ।

कविराज : राघवपाण्डवीय, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८९७ ।

कवीन्द्रवचनसमुच्चय, एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, १९१२ ई० ।

कामन्दकीयनीतिसार, त० गणपति शास्त्री द्वारा संशोधित, १९१२ ई० ।

कालिदास : अभिज्ञानशकुन्तल, रमेन्द्रमोहन बोस की टीका से युक्त ।

कालिदास : कुमारसंभव, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९५५ ई० ।

: मालविकाग्निमित्र, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९५० ई० ।

: रघुवंश, पण्डितपुस्तकालय, काशी, १९५५ ई० ।

: विक्रमोर्वशीय, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४२ ई० ।

काव्यमाला, प्रथम गुच्छक (१६२६ ई०) तथा चतुर्थ गुच्छक (१६३७ ई०), निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।
काशीनाथ उपाध्याय : धर्मसिन्धु, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६३६ ई० ।
केशवग्रन्थावली, खण्ड १, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, १६५४ ई० ।
केशवमिश्र : अलंकारशेखर, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी, १६२७ ई० ।
कैलासचन्द्र देव बृहस्पति : भरत का संगीत सिद्धान्त, प्रकाशन-शाखा, सूचना-विभाग, उत्तर-प्रदेश, १६५६ ई० ।
कौटिल्य : अर्थशास्त्र, पण्डित-पुस्तकालय, काशी, सं० २०१६ ।
क्षेमेन्द्र : बृहत्कथामञ्जरी ।
गंगादेवी : मधुराविजय, त्रिवेन्द्रम, १६१६ ई० ।
गोपीनाथ कविराज : भारतीय संस्कृति और साधना (प्रथम खण्ड), विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १६६३ ई० ।
गोवर्धन : आर्यासप्तशती, संवत् १६८७ ।
चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा शान्तिकुमार नानूराम व्यास : संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, साहित्य निकेतन, कानपुर, १६५१ ई० ।
चरकसंहिता, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६४१ ई० ।
चिन्तामणिविनायक वैद्य : महाभारतमीमांसा, अनु० माधवराव सप्रे, १६२० ई० ।
जयदेव : प्रसन्नराघव, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १६६३ ई० ।
जल्हण : सूक्तिमुक्तावली, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १६३८ ई० ।
तत्त्वकौमुदी : डा० आद्याप्रसाद मिश्र की व्याख्या से समन्वित, सत्यप्रकाशन, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद, १६६६ ई० ।
तर्कभाषा, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी, १६६७ ई० ।
तारानाथ भट्टाचार्य : वाचस्पत्यम्, तृतीय तथा पञ्चम भाग (१६६२ ई०) ।
त्रिविक्रमभट्ट : नलचम्पू, चण्डपाल-कृत व्याख्या से युक्त, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६०३ ई० ।
दण्डी : काव्यादर्श, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १६५८ ई० ।
दामोदरगुप्त : कुट्टनीमत, इण्डोलाजिकल बुक हाउस, वाराणसी, १६६१ ई० ।
दामोदर मिश्र : संगीतदर्पण, प्रथम खण्ड, कलकत्ता, १८८१ ।
देवेश्वर : कविकल्पलता, सिद्धेश्वर यन्त्रालय, १६०० ई० ।
द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री : संस्कृतसाहित्यविमर्शः, भारती प्रतिष्ठान, मेरठ, १६५६ ई० ।
धनञ्जय : दशरूपक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संवत् २०११ ।
धनपाल : तिलकमञ्जरी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६३८ ई० ।
धम्मपद, सम्पादक—डा० रामजी उपाध्याय, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, विक्रमाब्द २०२३ ।

धर्मदास सूरि : विदग्धमुखमण्डन, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१४ ई० ।
नकुल : अश्वशास्त्र, मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल सिरीज़, १९५२ ई० ।
नारदीयसंहिता, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, १९०५ ई० ।
नित्यनाथ : रसरत्नाकर, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, संवत् १९६६ ।
निर्णयसिन्धु, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, १९५३ ई० ।
नीलकण्ठभट्ट : नीतिमयूख, गुजराती प्रिन्टिंग प्रेस, बम्बई, १९२१ ई० ।
: दानमयूख, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, १९०९ ई० ।
न्यायदर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली, १९६४ ई० ।
पद्मगुप्त : नवसाहसाङ्कचरित (प्रथम भाग), बम्बई, १८९५ ई० ।
पाणिनीयशिक्षा, गुरुप्रसाद शास्त्री की टीका से युक्त, भार्गवपुस्तक भवन, वाराणसी, संवत् २००५ ।
पातञ्जलयोगसूत्र, भोजदेव-कृत राजमार्तण्डवृत्ति से युक्त, भारतीय विद्या प्रकाशन, १९६३ ई० ।
पातञ्जलयोगदर्शन, रामशंकर भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९६३ ई० ।
पार्वतीपरिणय, निर्णयसागर प्रेस, वम्वई, १९२३ ई० ।
पार्श्वदेव : संगीतसमयसार, त० गणपतिशास्त्री द्वारा सम्पादित, १९२५ ई० ।
प्रभाचन्द्राचार्य : प्रभावकचरित (प्रथम भाग) अहमदावाद, कलकत्ता, १९४० ई० ।
प्रवरसेन : रावणवहमहाकाव्य, राधागोविन्द वसाक द्वारा सम्पादित, शक संवत् १८८१ ।
वलदेव उपाध्याय : बौद्धदर्शन, शारदामन्दिर, १९४६ ई० ।
वलदेव उपाध्याय : महाकवि भास—एक अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६४ ई० ।
: कादम्बरी, ऋषीश्वरनाथ भट्ट-कृत अनुवाद से युक्त, १९५० ई० ।
: कादम्बरी, करमरकर द्वारा सम्पादित, १९३८ ई० ।
: कादम्बरी (पूर्वभाग—पीटर्सन का संस्करण, पृ० १–१२४), काणे द्वारा सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस, वम्वई, १९२० ई० ।
: कादम्बरी (पूर्वभाग–पीटर्सन का संस्करण, पृ० १२४–२३७), काणे द्वारा सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस, वम्वई, १९२१ ई० ।
: कादम्बरी (पूर्वभाग) काले द्वारा सम्पादित, मोतीलाल वनारसीदास, वाराणसी, १९६८ ई० ।
: कादम्बरी, चौखम्वा संस्कृत सिरीज़ आफिस, वाराणसी, १९५६ ई० ।
: कादम्बरी (पूर्वभाग), तारानाथ तर्कवाचस्पति द्वारा संस्कृत, कलकत्ता, शकाब्द १७९३ ।
: कादम्बरी, पीटर्सन द्वारा सम्पादित, गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल वुक डिपो, वम्वई, १९०० ई० ।

: कादम्बरी, भानुचन्द्र तथा सिद्धचंद्र की टीकाओं से युक्त, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२८ ई०।[1]

: कादम्बरी, भानुचन्द्र तथा सिद्धचन्द्र की टीकाओं से युक्त, मथुरानाथ शास्त्री द्वारा संशोधित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४८ ई०।

: कादम्बरी (पूर्वभाग), हरिदास सिद्धान्तवागीश–कृत टीका से युक्त, कलकत्ता, १८३८ शकाब्द।

: श्रीहर्षचरितमहाकाव्य, फ्यूरर् द्वारा सम्पादित, १९०९ ई०।

: हर्षचरित, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा संस्कृत, कलकत्ता, सं० १९३९।

: हर्षचरित, काणे द्वारा सम्पादित, मोतीलाल बनारसीदास, वाारणसी, १९६५ ई०।[2]

: हर्षचरित, जीवानन्द विद्यासागर की टीका से युक्त, कलकत्ता, १९१८ ई०।

: हर्षचरित, रंगनाथकृत टीका से युक्त, केरल विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, १९५८ ई०।

: हर्षचरित, शङ्करकृत सङ्केत टीका से युक्त, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९५८ ई०।

: हर्षचरित (उच्छ्वास १–४), अनु० सूर्यनारायण चौधरी, संस्कृत-भवन कठौतियों, पूर्णिया, बिहार, १९५० ई०।

: हर्षचरित (उच्छ्वास ५–८), अनु० सूर्यनारायण चौधरी, संवत् २०२५।

बृहदारण्यकोपनिषद्, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १९२७ ई०।

ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य-समन्वित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०९ ई०।

भर्तृहरि : वाक्यपदीय, पूना, १९६५ ई०।

भवभूति : उत्तररामचरित, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़ आफिस, वाराणसी, संवत् २०१९।

भामह : काव्यालंकार, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सन् १९६२ ई०।

भारवि : किरातार्जुनीय, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०३ ई०।

भास : स्वप्नवासवदत्तम्, काले द्वारा सम्पादित, बुकसेलर्स पब्लिशिंग कम्पनी, बम्बई, १९६१ ई०।

भोजदेव : शृंगारप्रकाश, द्वितीय भाग, कारोनेशन प्रेस, मैसूर, १९६३ ई०।

: शृङ्गारप्रकाश, वी० राघवन् द्वारा सम्पादित, मद्रास, १९६३ ई०।

: सरस्वतीकण्ठाभरण (५ परिच्छेद), निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२५ ई०।

मङ्खक : श्रीकण्ठचरित, जोनराज की टीका से युक्त, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०० ई०।

---

१. कादम्बरी के उद्धरण सर्वत्र इसी संस्करण से दिये गये हैं। जहाँ कहीं अन्य संस्करण के उद्धरण हैं, वहाँ निर्देश कर दिया गया है।

२. हर्षचरित के उद्धरण सर्वत्र इसी संस्करण से दिये गये हैं। जहाँ कहीं अन्य संस्करण के उद्धरण हैं, वहाँ निर्देश कर दिया गया है।

मध्यसिद्धान्तकौमुदी, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, संवत् १६८६ ।
मध्वाचार्य : सर्वदर्शनसंग्रह, लक्ष्मीवेंकटेश्वर मुद्रणालय, संवत् १६८२ ।
मनुस्मृति, कुल्लूकभट्ट की टीका से समन्वित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।
: मेधातिथि-विरचित भाष्य समेत, रायल एशियाटिक सोसाइटी ग्राफ़ बंगाल, कलकत्ता, १६३६ ई० ।
मम्मट : काव्यप्रकाश, झलकीकर की टीका से युक्त, १६५० ई० ।
महाभारत, प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ भाग, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
महाभाष्य (प्रथम खण्ड), मोतीलाल बनारसीदास, १६६७ ई० ।
महिमभट्ट : व्यक्तिविवेक, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी , १६६४ ई० ।
माघ : शिशुपालवध, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् २००६ ।
माधवनिदान, श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालय, संवत् १६६४ ।
माधुरी, वर्ष ८, खण्ड २ (१६८७ वि० संवत्) ।
मार्कण्डेयपुराण, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता, १६६२ ई० ।
मुरारि : अनर्घराघव, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६०८ ई० ।
मेरुतुङ्ग : प्रबन्धचिन्तामणि, शान्तिनिकेतन, बंगाल, १६३३ ई० ।
याज्ञवल्क्यस्मृति, प्रथम भाग (१६०३ ई०) तथा द्वितीय भाग (१६०४ ई०) ।[१]
: मिताक्षरा से संवलित, चेट्टलूर् द्वारा सम्पादित, १६१२ ई० ।
योगरत्नाकर, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी, १६५५ ई० ।
रवीन्द्रनाथ ठाकुर : प्राचीन साहित्य, अनु० रामदहिन मिश्र, हिन्दीग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १६३३ ई० ।
राजचूडामणि दीक्षित : रुक्मिणी-कल्याणमहाकाव्य, १६२६ ई० ।
राजशेखर : काव्यमीमांसा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १६५४ ई० ।
राधाकृष्णन् : भारतीय दर्शन, प्रथम भाग (अनु० नन्दकिशोर गोभिल), राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।
रामजी उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, देवभारती प्रकाशन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १६६६ ई० ।
: संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद, संवत् २०१८ ।
रामदैवज्ञ : मुहूर्तचिन्तामणि, निर्णयसागर मुद्रणालय, बम्बई, १६३४ ई० ।
रुद्रट : काव्यालंकार, नमिसाधु-कृत टीका से युक्त, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६०६ ई० ।
रुद्रट : काव्यालंकार, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, १६६५ ई० ।
रुय्यक : अलंकारसर्वस्व, जयरथ की टीका से युक्त, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६३६ ई० ।

---

१. याज्ञवल्क्यस्मृति के उद्धरण इसी संस्करण से दिये गये हैं। केवल मिताक्षरा के उद्धरण चेट्टलूर के संस्करण से दिये गये हैं।

लौगाक्षिभास्कर : अर्थसंग्रह, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६५० ई० ।

वराहमिहिर : बृहत्संहिता, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, संवत् २०१२ ।

वसन्तराजशाकुन, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, संवत् १६६३ ।

वसुबन्धु : अभिधर्मकोश, राहुलसांकृत्यायन-विरचित टीका से युक्त, काशी विद्यापीठ, वाराणसी, संवत् १६८८ ।

: अभिधर्मकोश, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, १६५८ ई० ।

वाग्भट : अष्टाङ्गहृदय, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १६६३ ई० ।

वाग्भट : काव्यानुशासन, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६१५ ई० ।

वामन : काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति, विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि की व्याख्या से युक्त, आत्माराम एण्ड संस, १६५४ ई० ।

वामनभट्टवाण : नलाभ्युदय, अनन्तशयन ग्रन्थावलि, १६०७ ई० ।

: वेमभूपालचरित, वाणीविलासमुद्रायन्त्रालय, १६१० ई० ।

वाल्मीकि : रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०२० ।

वासुदेव विष्णु मिराशी : कालिदास, पाप्युलर प्रकाशन, बम्बई, १६६७ ई० ।

वासुदेवशरण अग्रवाल : कादम्बरी—एक सांस्कृतिक अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १६५८ ई० ।

: हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १६५३ ई० ।

विद्यानाथ : प्रतापरुद्रयशोभूषण, कुमारस्वामी की रत्नापण नामक टीका से संवलित, १६०६ ई० ।

विशाखदत्त : मुद्राराक्षस, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी, १६६८ ई० ।

विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १६५६ ई० ।

विष्णुपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् १६६३ ।

वैद्यनाथ : कादम्बरीविषमपदविवृत्ति (अप्रकाशित) ।

वैशेषिकदर्शन, संस्कृति संस्थान, बरेली, १६६४ ई० ।

शाङ्खायनगृह्यसूत्र, सीताराम द्वारा संशोधित, १६६० ई० ।

शारदातनय : भावप्रकाशन, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १६३० ई० ।

शार्ङ्गधर : शार्ङ्गधरपद्धति, गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल बुकडिपो, १८८८ ।

शिङ्गभूपाल : रसार्णवसुधाकर, त० गणपति शास्त्री द्वारा संशोधित, १६१६ ई० ।

शुक्रनीति, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, संवत् २०१२ ।

शुभङ्कर : सङ्गीतदामोदर, संस्कृत कालेज, कलकत्ता, १६६० ई० ।

श्रीधरदास : सदुक्तिकर्णामृत, मोतीलाल बनारसीदास, सन् १९३३ ई० ।

श्रीमद्भगवद्गीता, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, १९१२ ई० ।

श्रीमद्भागवतमहापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१८ ।

श्रीहर्ष : नैषधीयचरित, नारायणकृत टीका, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१२ ई० ।

संस्कृतसाहित्यपरिषत्पत्रिका, कलकत्ता, वाल्यूम १३, संख्या १ ।

सरयूप्रसाद : संग्रहशिरोमणि, मुंशी नवलकिशोर यन्त्रालय, सन् १८९६ ।

सामुद्रिकशास्त्र, काशी, १९३५ ई० ।

सिद्धान्तकौमुदी, तत्त्वबोधिनी व्याख्या से संवलित, निर्णयसागर प्रेस, १९१५ ई० ।

सिद्धान्तकौमुदी, बालमनोरमा टीका, प्रथम तथा द्वितीय भाग (१९४८ ई०), तृतीय भाग (१९६१ ई०), चतुर्थ भाग (१९६७ ई०), चौखम्वा विद्याभवन, वाराणसी ।

सुबन्धु : वासवदत्ता, चौखम्वा विद्याभवन, १९५४ ई० ।

सुबन्धु : वासवदत्ता, हाल द्वारा सम्पादित, कलकत्ता, १८५९ ई० ।

सुश्रुतसंहिता, निर्णयसागर प्रेस, शक १८६० ।

सूर्यसिद्धान्त, सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित, एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, १९२५ ई० ।

सोड्ढल : उदयसुन्दरीकथा, सी० डी० दलाल आदि द्वारा सम्पादित, १९२० ई० ।

सोमदेव : कथासरित्सागर, द्वितीय खण्ड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् , पटना, १९६१ ई० ।

सोमेश्वरदेव : कीर्तिकौमुदी, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, संवत् २०१७ ।

हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९५२ ई० ।

हठयोगप्रदीपिका, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, १९६२ ई० ।

हर्ष : नागानन्द, आर० डी० करमरकर द्वारा सम्पादित, १९१९ ई० ।

हर्ष : प्रियदर्शिका, श्रीवाणीविलास मुद्रायन्त्रालय, १९०६ ई० ।

हर्ष : रत्नावली, प्रथम संस्करण, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई ।

हाल : गाथासप्तशती, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३३ ई० ।

हिन्दी विश्वकोष, २०वां भाग, कलकत्ता, १९२९ ई० ।

हेमचन्द्र : अनेकार्थसंग्रह, श्रीमहेन्द्रसूरि विरचित टीका से युक्त, वियना ।

हेमचन्द्र : अनेकार्थ संग्रह, चौखम्वा संस्कृत सिरीज़, १९२९ ई० ।

हेमचन्द्र : काव्यानुशासन, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३४ ई० ।

अंग्रेजी

A.A. Macdonell : A History of Sanskrit Literature, Munshi Ram Manohar Lal, Delhi, 1958.

A.B. keith : The Sāṃkhya System, 1924, London, Oxford University Press.

Allahabad University Studies, Vol. II (1929).

All India Oriental Conference (Proceedings), Madras, 1924.

All India Oriental Conference (Proceedings), Nagpur, 1946.

All India Oriental Conference (Proceedings), 17th Session, 1953.

Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol. XLIV, 1963.

A. Weber: The History of Indian Literature (Tr. by John Mann), London, 1914.

B.C. Law Volume, Part I, Indian Research Institute, Calcutta, 1945.

B.K. Majumdar: The Military System in Ancient India, 1960.

B.S. Upadhyaya: India in Kālidāsa, Allahabad, 1947.

C.M. Ridding: The Kādambarī of Bāṇa, Royal Asiatic Society, 1896.

Cunningham : Ancient Geography of India, Calcutta, 1924.

D.C. Sircar : Studies in the Geography of Ancient and Medieval India, Motilal Banarasidass, 1960.

E.B. Cowell and F.W. Thomas : The Harṣacarita of Bāṇa, Motilal Banarasidass, 1961.

F.T. Palgrave Laurence Binyon : The Golden Treasury, London, 1947.

G.P. Quackenbos : The Sanskrit Poems of Mayūra, Columbia University Press, 1917.

Indian Antiquary, Part I, 1872.

Indian Antiquary, Vol. II, 1873.

Indian Culture, Edited by D.R. Bhandarkar, etc., Vol. IX (July 1942-June 1943).

Indian Historical Quarterly, Vol. V, March, 1929.

Indian History Congress (Proceedings), 8th Session, 1945.

I-Tsing : A Record of the Buddhist Religion as Pracised in India and Malay Archipelago, Tr. by J. Takakusu, Oxford, 1896.

Jadunath Sinha : A History of Indian Philosophy, Vol. I, Sinha Publishing House, Calcutta, 1956.

: A History of Indian Philosophy, Vol. II, Central Book Agency, Calcutta, 1952.

Journal of Oriental Research, Madras, Vol. VI, 1932.

Journal of Oriental Research Madras, Vol. IX (for 1935).

Krishna Chaitanya : A New History of Sanskrit Literature, Asia Publishing House, 1962.

Max Müller: India : What Can it Teach Us? London, 1883.

McCrindle's Ancient India as Described by Ptolemy, Edited by S.N. Majumdar, Calcutta, 1927.

M. Hiriyanna : Outlines of Indian Philosophy, London, 1956.

M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, Madras, 1937.

M. Monier-Williams : Indian Wisdom, London, 1893.

M. Reynolds : The Treatment of Nature in English Poetry, The University of Chicago Press, 1909.

M.V. Cousin : Lectures on the True, the Beautiful and the Good, New York, 1893.

N.L. Dey : The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, Calcutta, 1899.

N.N. Ghosh : Early History of India, 1948.

Rama Shankar Tripathi : History of Kanauj, Motilal Banarasidass, 1959.

R.C. Majumdar, C. Raychaudhuri, and Kalikinkar Datta : An Advanced History of India, London, 1958.

R. Shamasastry : Kautilya's Arthaśāstra, 1915.

Si-Yu-Ki (Tr. by Samuel Beal), Vol. I, London, 1906.

S.K. De : Some Problems of Sanskrit Poetics, K.C. Mukhopadhyaya, Calcutta, 1959.

S.N. Dasgupta and S.K. De : A History of Sanskrit Literature, Vol. I, University of Calcutta, 1947.

S.V. Dixit: Bāṇabhaṭṭa : His Life and Literature, 1963.

Theodor Aufrecht : Catalogus Catalogorum, Part I, 1962.

T.W. Rhys Davids and William Stede : Pali-English Dictionary, London, 1959.

V.S. Apte : The Student's Sanskrit-English Dictionary, Motilal Banarasidass, 1965.

W. H Hudson : An Introduction to the Study of Literature, 1944.

आगामी प्रकाशन

1. महाकवि बाण (छात्रोपयोगी संस्करण)

—डॉ॰ अमरनाथ पाण्डेय

2. सांख्यदर्शन—(विज्ञानभिक्षुभाष्य)
विस्तृत हिन्दी व्याख्या टिप्पणियों सहित

3. मीमांसादर्शन—शाबरभाष्य
मीमांसाश्लोकवार्तिक, न्यायरत्नाकर,
तंत्रवार्तिक व टुपटीका सहित

सम्पादक—डा॰ गजाननशास्त्री मुसलगांवकर
(६ भाग में)

4. वैदिक देवता —डा॰ गयाचरण त्रिपाठी

5. Kalidasa in modern Sanskrit writings

—Dr. Satyavrat Shastri

6. साहित्यसुधासिन्धु (विश्वनाथ-विरचित)

सम्पादक—डा॰ रामप्रताप

7. पातञ्जलयोगदर्शन (स्वामी सत्यानन्द जी)
बंगला से हिन्दी अनुवाद

—अनु॰ डा॰ कोशलपति तिवारी

भारतीय विद्या प्रकाशन

पो॰ बा॰ १०८,
कचौड़ी गली,
वाराणसी-१

(भारत)

सी॰ ११४, शक्तिनगर,
एक्सटेन्शन,
दिल्ली-५२